कथा व्याख्यान भण्डार
अर्थात

दृष्टान्त कथाएं

संग्रहकर्ता
ज्ञानी चन्दासिंह निर्मल षटशास्त्री निर्मल
ऋषिकेश

गीता बुक डिपो
बड़ा बाजार, हरिद्वार-२४९४०१
निवास फोन-०१३३-४२५१३९

। व्याख्यान भण्डार
ृष्टान्त कथाएं

संग्रहकर्ता
ज्ञानी चन्दासिंह निर्मल पदशास्त्री निर्मल
ऋषिकेष

प्रकाशक
अर्जुनसिंह बुकसेलर
बड़ा बाज़ार, हरिद्वार

मूल्य ६०) रुपये

ॐ

कथा व्याख्यान भण्डार—की विषय-

विषय	पृष्ठ
कृपण निन्दा	५६४
शरणागत प्रकरणम्	६०६
भक्ति प्रभावः	६२२
) श्रीरमाउमा प्रश्नोत्तराणी	६२३
(२२) श्रीराधाकृष्ण प्रश्नोत्तराणी	६२४
(२३) अन्ध विश्वास	६२५
(२४) उपहास	६३०
(२५) सन्त वाणी अमूल्य	६३०
(२६) भजन माला	६३५
(२७) दृष्ट कूट	६४१
(२८) शरणागत पालक उपमा रहित राम	६४२
(२९) सुपुत्र लक्षणम्	६४४
(३०) कुपुत्र लक्षणम्	६४६
(३१) नरक गति	६४८
(३२) स्वर्ग गति	६५०
(३३) अन्योक्तयः	६५३
(३४) गुरु प्रभाव	६६१
(३५) क्षमा धर्म	६६६
६) सन्तोष महिमा	६६९
७) उद्यमाख्यानम्	६७४

॥ ॐ ॥

❀ श्री गुरुभ्यो देवेभ्यो नमो नमः ❀

पद्मासनं समारुह्य समकायः शिरोधरः ।
नासाग्रे दृष्टिरेकान्ते जपेदोंकारमव्ययम् ॥
परोपकृतिकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः ।
गुर्वीमुपकृतिमत्वा ह्यवतारान्दशाऽग्रहीत ॥

कथा व्याख्यान भण्डार प्रारम्भः

१- ✳ कर्म-गति ✳

प्र.नं. १–कर्मणो ह्यपि बोधव्यं बोधव्यं च विकर्मणः ।
अकर्मणश्च बोधव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥

टीका–कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्म का स्वरूप भी, तथा निषिद्ध कर्म का स्वरूप भी जानना चाहिये, क्योंकि कर्म की गति गहन है। गी.अ.४-१७।

नारायण निन्दरा काहे भूली गवारी, दुकृत सुकृत थारो कर्मरी। शंकर मस्तक चस्ता, सुरसरि स्नानरे, कुल जनमथ्यो, मिल्यो मारंग पानरे। कर्मकर कलंक मकीटसरी, विश्व का दीपक स्वामी खाँचेरे स्वार्थी। पंखी राय गरुड़ ताँचे बान्धवा, कर्मकर अरुण पिङ्गलारी।

पतित हर्ता त्रिभुवन नागरी, तीर्थ ? भ्रमता, पापी। कर्मकर कपाल मपीटमरी। अमृत, शशी, लक्ष्मी,कल्पतरु शिखर सुनागर,नदी चे नाथ। कर्मकर मपीटमरी। दाहीनें लड्डागढ, उपाडीरे रावण धन.मल भमल आगतोपिले हरि, कर्मकर कछोटी मपीडिमरी। पूर्वलोकृत कर्म न मिटैगी घर गेहरा, नोंनि मोहे जाणिले, राम चे नाम, वदिन त्रिलोचन राम जी। धनानगी रोणी भक्त त्रिलोचन की। गु० ग्र० पृ० ६६५।

कथान १—एक समय की बात है कि त्रिलोचन भक्त के घर कोई पुत्र न था। इसलिये त्रिलोचन की स्त्री दु:ख से चिन्तित रहा करती थी। त्रिलोचन भक्त उसको धैर्य दिया करते थे। समय पाकर प्रेम के वशीभूत हुए परमात्मा नौकर के रूप में उनके घर पर आये। भक्त और भक्तिनी को कहा कि मैं नौकरी करना चाहता हूँ। नौकर की बातां सुन—भक्त त्रिलोचन अपनी पत्नी को कहने लगे कि नौकर आया है फलत: तुम्हें इससे सहायता मिलेगी। पत्नी बोली—नौकर तो आया है पर वेतन क्या लेगा? नौकर-रूप धारण किये हुए भगवान ने कहा—जो आपकी इच्छा हो वही दना मैं तो आपसे केवल रोटी की ही चाहना करता हूँ। इस प्रकार की परस्पर वार्तालाप से दोनों सहमत हो गये। अब नौकर काम धन्धा बडी

सावधानी एवं सेवा भाव से करने लगा। नौकर की कार्य-कुशलता को देखकर भक्तिनी अति प्रसन्न हुई। एक दिन उस स्त्री ने सोचा इस नौकर को कुछ पुरस्कार देना चाहिये। जिससे यह सर्वदा प्रसन्न रहे। उसे बुलाकर स्त्री ने कहा तुम जो कुछ खाना या पैसा चाहो मेरे से ले सकते हो। क्योंकि मैं तुम्हारे कार्यों और सेवाओं से प्रसन्न हूँ। नौकर ने कहा—मैं केवल प्रेम का भूखा हूँ। अन्य पदार्थों की मुझे आवश्यकता नहीं है, किन्तु स्त्री ने अपनी हठ से नौकर को कहा—कि आज मैं तुमको स्वादिष्ट भोजन खिलाऊँगी तुम भर पेट भोजन करना। यह सुन नौकर बोला—मने आज तक पेट भर नहीं खाया और किसी ने खिलाया भी नहीं, तो आप क्यों व्यर्थ में कष्ट करती हो। मैं तो प्रेम से ही तृप्त होता हूँ। इस वार्तालाप को सुनकर भक्त जी बोले—तुम हठ करना त्याग दो, ये नौकर नहीं किन्तु नारायण है। परन्तु स्त्री ने नहीं माना और भोजन बनाना प्रारम्भ कर दिया। नौकर खाता गया गरमी के दिन थे स्त्री पसीने से व्याकुल हो गयी। अनुमानतः दो या तीन मन के लगभग आटा बनाया। किंतु नौकर रूपधारी नारायण सब खागये। अन्ततोगत्वा थकित भक्तिनी ने कहा यह मेरे वश की बात नहीं है। दूसरों के पास जाकर नौकर की निन्दा करने

गी। यह देख—नौकर-रूप नारायण चले गये।

—निन्दा भली किसी की नाहीं, मन मुख मुगधि करंन।
मुह काले तिन निन्दकां, नरके घोर पवंन॥

पुनः कहने लगी यह नौकर सात जन्म का भूखा था नौकर के चले जाने के कुछ समय पश्चात् बड़ी दुःखी हुई और कहने लगी मैं बहुत नौकरों को रख चुकी। यदि परमात्मा मुझे पुत्र वरदान दे दें तो क्या ही अच्छा हो। इस प्रकार की बातें सुनाकर उसने भगवान की निन्दा करनी प्रारम्भ कर दी। यह देख भक्त त्रिलोचन जी बोले—यह सब हमारे कर्मों का ही फल है। इसमें भगवान का कोई दोष नहीं। अतः तुम नारायण की निन्दा मत करो। इस प्रकार समझाते हुये अपनी स्त्री के प्रति शब्द उच्चारण करते हैं—जिससे घरवाली को धैर्य उत्पन्न हो जाय।

यथा—"बड़ों-बड़ों की भावी दूर न हो सकी तो हम किसकी गिनती में हैं" हे मूर्ख स्त्री प्रभु की निन्दा भूलकर भी न करनी चाहिये क्योंकि सुख और दुःख तो हमारे ही पाप और पुण्य का फल है। जैसे-चन्द्रमा को कलंक लगा था, परन्तु कोई दूर न कर सका। तब स्त्री ने पूछा चन्द्रमा को कलंक क्यों लगा? तो भक्त बतलाते हैं। एक समय की बात है कि चन्द्रमा गुरु बृहस्पति जी

से विद्याध्ययन कर रहा था। दैवगति से गुरु पत्नी के साथ उसका सांसारिक प्रेम हो गया। कुछ दिनों के बाद एक पुत्र पैदा हुआ। चन्द्रमा उस के साथ प्रेम करने लगा। गुरु जी को सन्देह हुआ और पता लगाते २ वाद विवाद बढ़ गया। तब गुरु बृहस्पति जी ने देवताओं की सभा बुलवाई। समस्त देवताओं ने गुरु पत्नी के ऊपर ही निर्णय छोड़ दिया तो गुरु पत्नी बोली बच्चा अपने पिता चंद्रमा के पास जाओ। यह निर्णय देख गुरुजी ने क्रोधित होकर चन्द्रमा को श्राप दे दिया। चन्द्रमा ने सोचा अब क्या करना चाहिये। उस समय चन्द्रमा ने अपने लड़के का नाम बुध रखा। वह बड़ा बुद्धिमान होने से अपने पिता चन्द्रमा के पास आया और आप चन्द्रमा हिमालय में जाकर तप करने लगा। कुछ समय के बाद तप पूरा हुआ, और शिव जी महाराज प्रसन्न हुए। वरदान मांगने को कहा, तब चन्द्रमा बोला कि मेरा कलंक दूर कीजिये, शिव जी ने कहा भावी अमिट है मैं इस में कुछ नहीं कर सकता, आप इससे अन्य जो चाहें वह वरदान मांग लो, मैं दे सकता हूं, मैं दूज के चन्द्रमा को ही अपने मस्तक पर धारण करता हूँ, इससे अन्य नहीं। तब चन्द्रमा ने सोचा, यही वरदान अच्छा है।

क्योंकि गङ्गा में स्नान करने से पाप और बड़े २ कलंक दूर

भी जाने है मेरा भी कलंक दूर हो जायेगा, तब बहुत समय तक गंगा जी का स्नान होता रहा, गंगा प्रसन्न हुई और वर मांगने को कहा। यहाँ भी चन्द्रमा ने कलंक दूर करने की ही बात कही।

पुनः गंगा जी ने उत्तर दिया यह वरदान मेरे वश का नहीं है। और जो चाहो मांग लो, तब चन्द्रमा ने भक्ति ही मांगी, गंगा जी ने कहा तथास्तु, अब चन्द्रमा भक्ति करने लगा। जब भक्ति करते २ वर्षों बीत गये तब विष्णु भगवान प्रसन्न हुये, बोले वर मांगो चन्द्रमा ने कहा मेरा कलंक दूर कीजिये। आकाशवाणी हुयी। यह वर मेरे वश का नहीं है, अन्य वर मांगो, तब चन्द्रमा ने कहा मेरे कुल में आप अवतार लेंगे, आकाश वाणी हुई तथास्तु।

कुछ समय पश्चात् भगवान् श्री कृष्णचन्द्र ने अवतार लिया, उस समय चन्द्रमा ने समझ लिया कि अब मेरा काम बन गया। तब भगवान् के पास गया और बोला हे मेरे अत्यन्त आदरणीय आप मेरा कलंक दूर करें।

तब श्री कृष्ण ने कहा यह मेरे वश का रोग नहीं, मैं भी तो आपके कलंक से डरता हूँ, एक समय कृष्ण भगवान को भी भादों शुदी चतुर्थी के दिन चन्द्रमा का दर्शन हो गया था। सत्राजित यादव ने मणि चुराने का कलंक भगवान् को लगाया था। यह कथा—श्रीमद्भागवत में

प्रसिद्ध है, तब भगवान् ने जामवन्त रीछ से युद्ध
और मणि लाकर शत्राजित को दी और अपना कलंक
किया। उससमय शत्राजित ने अपनी कन्या सत्यभामा
जामवन्त ने अपनी कन्या जामवंती, भगवान को
और वह मणि भी दहेज में श्रीकृष्ण को दी। इस प्रकार अनेक
उपाय करने पर भी चन्द्रमा का कलंक दूर न हुआ।

कथा नं० २—एक समय देवताओं का राजा इन्द्र, देव भोगसे तृप्त होकर मृत्यु लोक के भोगों की इच्छा करता हुआ सूर्यादि सब देवताओं से बोला कि मृत्युलोक में कौन सी स्त्री सबसे अधिक रूपवती है? उत्तर मिला—हमको देख समस्त स्त्रियाँ पर्दा कर लेती है। उसका पूरा पता चन्द्रमा का ही ज्ञात है। क्योंकि वह रात्रि को उदय होता है, सब स्त्रियाँ बेपर्दा सोती है अतः चंद्रमा सबकी सौन्दर्यता को देखता है। उससे कोई भी स्त्री शर्माती नहीं। इसलिये आप चन्द्रमा से ही पता करें। पुनः इन्द्र चंद्रमा के पास आया और कहा हे चन्द्रदेव! सत्य कहो मृत्युलोक में कौन सी स्त्री सबसे सुन्दर है; चन्द्रमा ने कहा गौतम ऋषि की धर्म पत्नी सब स्त्रियों में सुन्दरता में शिरोमणि है और साथ२ उपाय भी कहा—यदि मैं मुर्गा बनकर उसके स्नान करने से पहले ही आवाज दे दूँ; तो ऋषि गंगा स्नान करने चले जायेंगे, आप उसकी स्त्री के साथ रमण करना। इन्द्र ने ऐसा ही

ा। जब ऋषि गंगा स्नान को गये तब उधर से आकाश
नी हुई। कि तुम्हारे घर में, इंद्र दुर्भावना लेकर आया
ो ऋषि ने शीघ्र ही आकर देखा जब इन्द्र को मालूम
तो वह भाग चला और गौतम ऋषि ने देख लिया; और
शाप देदिया कि जिस एक भग के लिये तुम यहाँ मृत्युलोक
में आकर मोहित हुये हो; और मेरी स्त्री के साथ क्रीडा की
है जा तेरे शरीर में सहस्र 'योनियों' हो जायें तब इन्द्र के
तन पर सहस्र योनियों के चिह्न हो गये; चन्द्रमा को शाप
दिया तू सदासर्वदा कलंकित ही रहेगा।

और तेरा कलंक कोई दूर नहीं कर सकेगा। अपनी
स्त्री को शाप दिया कि तू पत्थर हो जा। चन्द्रमा का कलंक
अभी तक दूर नहीं हुआ, इसलिये हे श्रीमती! तुम ईश्वर
की निन्दा मत करो, क्योंकि तुम्हारे भाग्य में लडका नहीं
लिखा है।

प्र०—कह मुनीश हिमवन्त सुन, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोय न मेटन हार ॥रामायण॥
लिख्या लेख तिस पुरुष विधाते, मेट न सके कोई ।गुरवाणी।
सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परोददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहंकरोमीति वृथाभिमान, स्वकर्म सूत्रे ग्रथितोहि लोकाः ॥

सुख तथा दुःख का देने वाला दूसरा कोई नहीं,
जो कोई दूसरे को दोष लगाता है, कि अमुक ने मेरे को

दुःख दिया, यह कुबुद्धि है ।

क्योंकि अभिमान पूर्वक किये हुए कर्मरूपी सूत्र
जीव बंधा हुआ है कर्मों का फल सुख-दुःख भोगता है
प्रारब्ध कर्म किसी प्रकार भी मिट नहीं सकता ।
लेखु न मिटई है सखी, जो लिखिया कर्तार ॥ गुरुवाणी ॥

प्रमाण-पाताल में प्रवेश इन्द्र लोक में प्रवेश होय, गिरीन्द्र जो सुमेरु, चाहे ताहि में निवेश होय ॥ सुमन्त्र मेरुजे करे व्याधिहार कारणम् ॥ जो होना है सो होय है अत्र हेतु न विचारणम् ॥

॥ रावण कन्या की कथा ॥ नं०—३

रावण के जीवन चरित्र में ऐसा लिखा है कि महाराज जनक रात्रि के तीसरे प्रहर में यात्रा कर रहे थे, अर्थात् सिपाहियों के वेष में फिर रहे थे। मेरे राज्य में कौन सुखी और कौन दुःखी है, घूमते २ एक जगह आकर क्या देखते हैं कि एक माई का छः मास का बच्चा अपनी माता के स्तन को पुनः २ मुख में डाल रहा है छोड़ता नहीं माता जब छुड़ाने लगी तब वह रोने लगा। इस तरह की घटना को देखकर दूसरी पतिव्रता स्त्री रास्ते में जाती २ बालक की चेष्टा को देखकर हँसने लगी। सिपाही के वेष में राजा जनक ने उससे हँसने का कारण पूछा, तब वह पतिव्रता स्त्री कहने लगी, मेरे को इतना अवकाश नहीं है

ने मैं तेरे को इस बालक और इसकी माता की कथा नाऊँ राजा ने समय न होने का कारण पूछा, तब वह कहने ी आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। वह लड़का और ता दोनों रावण की राजधानी में भंगन और बेटा रूप में प्रगट हो रावण की कन्या के साथ शादी होगी यह आगे कहूँगी अब मैं नदी पर जाकर स्नान करूँ और पति के लिये जल की गागर भरकर घर पहुँचाऊँगी तो मेरे मकान की छत मेरे ऊपर गिर जायगी और मैं मर जाऊँगी।

इसलिये अन्तिम समय में कुछ ईश्वर-स्मरण कर लूँ, कथा सुनाने में व्यर्थ समय न दूँगी, ऐसा कह कर वह चल पड़ी। राजा जनक उसके पीछे २ गये और कहा कि मैं राजा जनक हूँ, मैं तेरे से पूछना चाहता हूँ कि तुझे कैसे पता चला मेरे पर छत गिरेगी। उस स्त्री ने कहा मैं पति व्रत-धर्म के प्रभाव से भविष्य का सब हाल जानती हूँ। फिर राजा जनक ने कहा उससे बच क्यों नहीं जाती, पर जाती ही क्यों हो ?

तब उसने कहा भावी अमिट है, भावी के आगे, किसी का वश नहीं चलता। पुनः राजा ने कहा किसी राजा महाराजा या देव दनुज या ईश्वर कोटि में आये हुये, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकों का वश तो चलेगा, वे तो भावी को

मिटा सकते ह । पतिव्रता स्त्री कहने लगी भावी के किसी का वश नहीं चलता ।

प्र -सवैय्या—शेष,सुरेश,महेश, थके,विधि नाँहि लिखी उलटी, रघु सों नृग सों, बलि बामन सों, नहीं मा तिनसों न हटी । पुन पाण्डव सों, दुर्योधन सों, नाहि चले जब मगध घटी । कङ्कणा शिशुपाल के हा रखो विधिना कछु और की और घटी ॥

भावार्थ यह है कि अनेक एस समाचार सुन है और अनेक ऐसे आने वाले है परन्तु भावी किसी से न मिटेगी । उसने कहा अब रावण पर आने वाली है । राजा ने कहा—कौन सी ? तो उसने कहा, रावण के घर लडकी पदा होगी, वह भङ्गी के लडके के साथ विवाही जायेगी, अनेक उपाय करने पर भी भावी न मिटेगी अगर तुमको सदह हो तो जाकर देख लो ऐसा पतिव्रता स्त्री ने कहा ह राजन् अब हमार पो न बुलाना, तब राजा को बडा आश्चर्य हुआ उसके पीछे २ चलता रहा उस पतिव्रता स्त्री ने नदी में स्नान किया एक गागर जल भरकर घर को जा रही थी । तो राजा जनक उसके पीछे २ जा रहे थे देखें यह सचमुच मर जायगी क्या ?

घर के बाहर पति को स्नान के लिये जल की गागर देकर आप किसी कार्य विशप के लिये घर के अन्दर गई,

ाचानक ही घर की छत गिर पड़ी। वह उसके नीचे
ि मर गई, राजा जनक को पतिव्रता स्त्री के मरने का
ुःख हुआ, परन्तु भावी के आगे कुछ वश न चला
उसकी बातों को याद कर रावण की राजधानी में पहुँचा।

रावण ने राजा का बड़ा सत्कार किया और आने का कारण पूछा। तो राजा जनक ने पतिव्रता स्त्री की सब बातें सुनायीं, तब रावण ने सब, ज्योतिषगण, देवगण, ऋषिगण; ब्रह्मा जी तथा शिव पार्वती को भी बुलाया; और सबसे प्रार्थना की कि इस भावी के मेटने का कोई उपाय करो तब सबने जवाब दिया; कि कर्म रेखा; बदलने में हम समर्थ नहीं हैं। अगर सूर्य्य भगवान् पूरब को छोड़कर पश्चिम में उदय हो जाय; अग्नि शीतल हो जाय; मेरु पर्वत भी अगर गिर जाय। पत्थर पर फूल पैदा हो जाँय भाव यह है कि सब पदार्थ अपना २ स्वभाव बदल सकते हैं परन्तु कर्म रेखा कभी नहीं बदल सकती।

तब रावण को अति क्रोध हुआ। कि जब लड़की जन्मेगी; तो मैं कर्मरेखा लिखने वाली विधातृ के साथ लड़ाई करूंगा; जब समय आया तो लड़की का ही जन्म हुआ छठी रात्रि में, रावण तलवार लेकर खड़ा रहा। इतने में विधात्री कर्मफल लिखने आई। रावण ने उसको कहा क्या लिखेगी ?

उसने कहा, पहले मैं कुछ नहीं कह सकती ज्यों मस्तक पर कलम रखती हूँ तब अन्तर्यामी जैसी करते हैं। वैसा ही लेख लिखा जाता है। लिखकर मैं बता सकती हूँ। तब रावण ने कहा अच्छा, मेरे सा मस्तक पर कलम रखो।

उसने कलम रखी, अपने आप ही लेख लिखा गया, रावण ने कहा, पढ़कर सुनाओ, विधात्री ने पढ़कर सुनाया यह कन्या, अति सुन्दर, पतिव्रता सद्‌गुण सम्पन्न शीलवती होगी, किन्तु भङ्गी के लड़के के साथ इसकी शादी होगी, जो तुम्हारे महलों में सफाई करता है।

रावण को बड़ा क्रोध आया, परन्तु कर्म फल अमिट है, ऐसा विधात्री ने रावण को समझाया और शान्त किया, परन्तु विधात्री के चले जाने के बाद रावण को फिर क्रोध आया और भङ्गी के लड़के को मँगवाया जो कि छः मास का था, रावण ने देखते ही बच्चे पर तलवार खैंच ली, परन्तु प्रजा बिगड़ उठी और कहा कि बिना अपराध बच्चे को न मारने देंगे। चाहे देश निकाला करदो। तब रावण ने उस बालक को जहाज पर चढ़ाकर समुद्र पार किसी जङ्गल में छोड़ दिया, निशान के लिये लड़के की पांव की अंगुली कटवा दी। उस जङ्गल में किसी प्रकार की भी बसासत न थी यह विचार किया कि यह बालक

ऽर जायगा परन्तु दैव रक्षक है, जैसे—प्र०—
तिष्ठति दैवरक्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति जीवत्य
पि.वने विसर्जितः कृतप्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति ।

भा०—मनुष्य से न रक्षा किया हुआ भी दैव से रक्षा किया हुआ रह सकता है । और मनुष्य से सुरक्षित भी दैव से मारा हुआ मर जाता है । जैसे ईश्वर से रक्षा किया हुआ बालक वन में भी जीता रहा । दैव का मारा हुआ घर में भी मर जाता है । (पंच तंत्र मित्रभेद)

बालक को जब रावण वन में छोड़ गया तब तीन दिन तक बालक भूखा रहा, और अपने हाथ का अंगूठा चूसता रहा, तीन दिन भूखे रहने से ब्रह्मलोक में पुकार पहुँची, बालक भूखा क्यों रह गया है ? यह विचार कर विधात्री को आज्ञा दी तुम इस बालक को दूध पिलाया करो और इसकी पालना करो तब उस बालक के लिये विधात्री वहाँ आया करती थी । तथा उसकी अच्छी तरह पालना और हर प्रकार की शुभ शिक्षा दिया करती थी ।

इस प्रकार विधात्री बच्चे का पालन करती रही और बालक को जल पर तैरने की विद्या तथा बेड़ी जहाज बनाना सिखा दिया शास्त्र विद्या भी पढ़ा दी जब बालक चतुर हो गया तथा धर्म में निपुण होगया और आयु भी अठारह वर्ष की होगई, तब विधात्री ने अपने बनाये हुए जहाज

पर बैठाकर दूसरे टापू में भेज दिया।

वहाँ का राजा बिना संतान के मर गया था अ.", राजमन्त्रियों ने सलाह की कि जो पुरुष अमुक दिन प्रातःकाल शाही दरवाजा खुलते ही मिलेगा उसको राजगद्दी का मालिक बनावेंगे। इस नियमानुसार वही बालक पहले मिल गया, इसको राजगद्दी पर बैठाकर इसका नाम देव-गति रखदिया। वह विद्यार्थी की शिक्षा पा चुका था, इसलिये राजपालन में बड़ा निपुण था इसका यश चारों दिशाओं में फैल गया।

जब रावण और उसकी कन्या को मालूम हुआ और उसका चित्र भी पहुँच गया, चित्र की सुन्दरता जब रावण और उसकी लड़की ने देखी और यश सुना, तब रावण का चित्त हुआ कि अपनी कन्याका विवाह इसीके साथ करदें और कन्या का भी मन दैवगति को पति बनाने का था। रावण भी इस आशय को समझ गया। इसलिये रावण ने मन्त्री को भेजा और मन्त्री ने जाकर कहा, तुम श्री रावण की कन्या के साथ शादी करलो, परन्तु दैवगति ने शादी के लिये मना कर दिया। फिर रावण स्वयं कन्या को लेकर वहाँ आया और तुरन्त शादी करा दी प्रसन्न होकर घर पर आया सब देवताओं को बुलाकर कहा; तुम कहते थे राजकन्या भंगी के साथ विवाही जायेगी।

।। राज कन्या भी भङ्गी के लड़के के साथ विवाही सकती है ? यह सुनकर देवताओं ने कहा-जो तुमने रों में निशान किया था वह देखलें । देखने से वही भंगी का लड़का पाया गया ।

तब देवताओं ने रावण को समझाया कि कर्मरेखा कभी नहीं मिटती । रावण भावी अमिट समझकर हर्ष शोक से रहित हो गया और जनक राजा ने पतिव्रता स्त्री के वचन को भी सत्य माना, परीक्षा के लिये रावण के पास गया था वह भी भावी अमिट समझकर हर्ष शोक से रहित होगया ।

प्र.नं०४ चित चाहूँदा करां मैं बादशाही किसमत आखदी करां फकीर तैनूं । चित चाहूँदा खुशी हमेश देखां किस्मत आखदी करां दिलगीर तैनूं ॥ चित चाहूँदा विच अकाश उडसां किस्मत आखदी मारां मैं हेठ तैनूं ॥ चित चाहूँदा तारदियां पार लंघां किस्मत आखदी डोबां वीच नीर तैनूं ॥ चित चाहूँदा रहां आजाद हरदम किसमत आखदी पावां जञ्जीर तैनूं ॥

व्याख्या—त्रिलोचन भक्त अपनी स्त्री के प्रति कहते हैं—यह जो प्रातःकाल तुम्हारे सामने सूर्योदय दिखाई देता है । यह सारे ससार का प्रकाशक और अन्तर्यामी है । सूर्यनारायण का रथ चलाने वाला अरुण

है। उसका भाई पक्षियों का राजा है और कश्यप ऋषि के पुत्र गरुड़ हैं। उनकी माता का नाम विनता है।

इतनी शक्ति वाले, सम्बन्धियों के होते हुए भी 'अरुण' अपने कर्म फल से, पिङ्गल ही रहा। रथ चलाकर सूर्य नारायण को अनेक बार प्रसन्न किया, गरुड़ ने भी अनेक बार विष्णु भगवान को प्रसन्न किया और प्रार्थना की कि मेरा बड़ा भाई अरुण है। वह पिङ्गल अथवा पङ्गु है।

इस पर आप कृपा करें। विष्णु भगवान ने गरुड़ को उत्तर दिया। प्रारब्ध कोटि में आया हुआ जो कर्म है उसे मैं दूर नहीं कर सकता और सूर्यनारायण ने भी अरुण को जवाब दे दिया। जब भक्त ने अपनी स्त्री को यह कथा सुनायी तो स्त्री ने कहा, अरुण किस कर्म से पिङ्गल हुआ? तब भक्त त्रिलोचन जी ने उत्तर दिया कि अरुण पूर्व जन्म में मनुष्य था और बालकपन में इसने अपने चचल स्वभाव से एक दिन भ्रमरी को पकड़ा और उसकी टाँगें तोड़दी।

यह कर्म फल इसकी प्रारब्ध कोटि में आया था इसलिए वह पिङ्गल हुआ है। कश्यप ऋषि की स्त्री विनता संतान के लिये उनके पास गई, तब कश्यप जी ने कहा कि दो अण्डों में से दो बच्चे तुम्हारे को प्राप्त होंगे, उन दोनों को एक हज़ार वर्ष तक समाल रखना। फिर तोड़ना पहिले न तोड़ना, जब गर्भ से अण्डे पैदा हुये तब सत

युग का समय था।

१ जब पाँच सौ वर्ष व्यतीत हो गये, तब माता को मोह उत्पन्न हुआ। शायद ५०० न गये हों पर को फोड़कर देखा, तब एक अण्डा फोड़ा उसमें से मांस पिण्ड निकला, माता को कहने लगा तुमने बहुत बुरा किया, जो पाँच सौ वर्ष पूर्व ही मेरे को निकाल दिया।

तब माता बड़ी घबराई परन्तु कश्यप जी ने कह दिया कि भावी प्रबल है। जो होना था सो होगया। अब दूसरे अण्डे को न फोड़ना। पर स्त्री जाति के बाद दूसरा अण्डा फोड़ा तो उसमें से गरुड निकला और अरुण के अनेक उपाय करने पर भी उसका पंगुपना नहीं गया। इसलिए हे स्त्री, कर्म का फल अमिट है। तू हर्ष शोक से रहित हो।

कथा नं० ४—पुनः अपनी स्त्री को त्रिलोचन भक्त जी कहते हैं ऐसा सुना है कि ब्रह्मा जी अपनी (कन्या) शतरूपा पर मोहित हो गये थे। कन्या ने पिता का चित्त कामातुर देखा, विचार बदलाने के लिए दूसरी ओर हो गई, तब ब्रह्मा जी ने अपनी शक्ति से दूसरा मुख बनाया, कन्या तीसरी ओर हो गई। फिर तीसरा मुख बनाया पुनः चौथी दिशा की तरफ हुई, तो चौथा मुख बना लिया। फिर आकाश को चढ़ने लगी, तब ब्रह्मा जी

ने ऊपर को पाँचवां मुख बनाया।

यह दशा देखकर शिवजी को क्रोध आया वेग को न रोक सके। उस समय शिव जी ने त्रिशूल से ब्रह्मा जी का पाँचवां शिर काट दिया, वह शिर की (कपाली) शिव जी के हाथ में लिपट गई और ब्रह्मा जी ने शाप दिया, यह कपाली तुम्हारे हाथ में लिपटी रहेगी और भीख मांगकर खायेगा। उसी का फल है कि कपाली दूर न हुई।

प्र०—वेद पढ़े चतुरानन ज्, रति के हितमों दुहिता प्रतिधायो। शिव शीश निरखी के काट गिराये॥

ब्रह्मकपाल मादाय, भिक्षार्थं विचरन् महीम्।
महादेवो विशुद्धात्मा, सर्वलोकेषु भवतः॥

भा०—महादेव जी ब्रह्मकपाली, (पाँचवांशिर) लेकर भिक्षार्थ पृथ्वी में विचर रहे हैं १ जो महादेव सर्वलोकों में सर्व प्रकार से पवित्रात्मा है।

स्वयं महेशः श्वसुरो नगेशः,सखा धनेशः तनयो गणेशः। तथापि भिक्षाऽटनमेव शम्भोर्बलीयसीकेवलमीश्वरेच्छा॥

महादेव जी आप सर्वशक्ति सम्पन्न थे, बहुत उपाय करने पर भी भिक्षारूप भावी न हटी; फिर पार्वती ने अपने पिता हिमांचल से कहकर निमन्त्रण दिलाया कि श्वसुराल के घर में आकर रहो; क्योंकि श्वसुराल में किसी को भिक्षा

नहीं माँगनी पड़ती। महादेव जी की बीमारी (मन्दाग्नि) होगई। बाहर जाकर भिक्षा मांगकर खाने से तो स्वास्थ्य ठीक रहता था। किन्तु हिमांचल के घर भोजन पाने से बीमार हो गये। हिमांचल ने अनेक औषधियाँ कीं, परंतु हिमांचल के घर रहने से बीमारी बढ़ती ही गई। फिर पार्वती ने अपने पुत्र गणेश को कहा कि तू ऋद्धि सिद्धि का मालिक है। अपने पिता की भिक्षा मांगने की रुचि को दूर कर। गणेश ने पिता के लिये बड़े २ यत्न किये, परन्तु भावी दूर न हुई। महादेव जी के मित्र कुबेर थे, महादेव को अपने पास बुलाया और भिक्षा के अन्न के बिना दूसरा अन्न पचे, इसलिये अनेक उपाय किये परन्तु महादेव की भावी निवृत्त करने में कोई समर्थ न हुआ भावार्थ यह है कि भावी अमिट है।

अमृत शशीय धेनु लक्ष्मी कल्पतरु सिखरि सुनागर नदीचेनार्थ, कर्मकर खार मफीटमरी।

व्या. नं. ६—हे स्त्री! वरुण देवता का स्वरूप समुद्र। जिस में से देवताओं और दैत्यों ने मथन कर चौदह रत्न निकाले थे। जैसे एक अमृत का घड़ा निकाला जिसकी एक बूँद से आदमी अमर हो जाता है, मरा हुआ भी जीवित हो जाता है और खारे पदार्थ को मीठा कर देता है। अमृत चन्द्रमा में है, कल्पवृक्ष कामधेनु सर्व कामनाओं के पूर्ण करने

वाले हैं। समुद्र ने भी बड़े २ को दामाद बना लिया था, जैसे विष्णु भगवान को लक्ष्मी, इन्द्र को रम्भा, कामधेनु, कल्प वृक्षादि, अनेक पदार्थ दिये। तथा ब्रह्मा जी को कमल, महादेव जी को चन्द्रमा और सूर्य को सप्तमुखी घोड़ा देकर सम्बन्धी बना लिया, वचन भी ले लिया था, कि अगर मेरे पर विपत्ति आवे तो आप लोगों को मेरी रक्षा करनी होगी, जब समुद्र पर भारीरूप विपत्ति आई तब समुद्र की सहायता किसी ने न की।

॥ सवैया ॥

जिनकी है सुता हरि के गृह सुन्दर, ईश के सीस में चन्द्र प्रवीना। इन्द्र गजेन्द्र दिया हय भानु को, कमल को दान प्रजापति दीना। औमुनियों से बिगड़ी जबहीं, अर्घ दोय चुल्लू उसका सब लीना। ऐसी विपत्ति पड़ी रहयों पर, सिन्धु सहाय किनहु नहि कीना॥ श्री मणि सारंग शंख दियो हरि, चन्द्र हलाहल रुद्र दियो है। ऐरावत रम्भा कल्प तरु, इन सब सुधा इन्द्र को दियो है। हय रवि को मद्य दनुजन को, कामधेनु ऋषीश्वर ले जो गयो है। धन्वन्तरी काढ़लिया नप कारण, दुःख रोग निवारण वैद्य भयो है॥

समुद्र ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, सारंग धनुष और शंख दिया, विष और चन्द्रमा महादेव जी को दिया। ऐरावत, रम्भा कल्प वृक्ष, अमृत इन्द्र को दिये,

सूर्य नारायण को उच्चैःश्रवा घोड़ा दिया। देवों को मद्य दिया और ऋषियों को कामधेनु दी एवं धन्वन्तरि वैद्य को सब मनुष्यों का दुःख दूर करने के लिये नियत किया। सार यह है कि सबको कुछ न कुछ देकर वश लिया कि आपत्ति काल में सबकी सहायता करनी पड़ेगी परन्तु समय आने पर किसी ने भी सहायता न की। यह सुनकर भक्त त्रिलोचन जी की स्त्री कहने लगी। समुद्र ने क्या पाप किया था। जिससे इनका खारा जल हुआ।

भक्त त्रिलोचन जी कहने लगे पहले समुद्र का जल मीठा था, जैसे गङ्गा जी के किनारे आजकल सब सन्त रहते हैं वैसे ही समुद्र के किनारे भी ऋषि-मुनि कुटिया बनाकर रहते थे, जब समुद्र ने बड़े-बड़े देवताओं को कुछ न कुछ देकर सबको अपने वश में कर लिया, तब सागर अभिमानी हो गया और अहंकार से अपने किनारे रहने वाले साधुओं की परीक्षा करने लगा, ये साधु मेरे किनारे पर आए हुये यात्रियों के दिये हुये पदार्थ खाते हैं, और भजन भी करते हैं। किन्तु इन सन्तों में कोई विशेष शक्ति भी है या नहीं? अगर शक्ति है तो कितनी? देख तो लूँ, ऐसा विचार कर आधीरात को समुद्र अपनी मर्यादा को उल्लंघन करके सोये हुए ऋषियों की कुटियाओं को बहाने लगा, कितने ही ऋषि तो डूबकर मर गये, और

कितने ही गोते खा-खाकर बाहर निकल आये। इसप्रकार अनेक दुःख सन्तों को दिये, फिर दूसरे दिन समुद्र अपनी मर्यादा में आ गया। सब ऋषीश्वर इकट्ठे होकर विचार करने लगे कि समुद्र ने अपनी मर्यादा क्यों उल्लंघन की? सबने अपनी सर्वज्ञता द्वारा समुद्र का भाव समझ लिया और कहने लगे—यह समुद्र अहंकारी सन्तद्रोही है, तब कोई शान्त चित्त महात्मा बोले इसका अपराध क्षमा कर दीजिये क्योंकि हम इसके तट पर बहुत दिनों से निवास करते हैं और इससे कई सुख भी लिये हैं। अतः इसका अपराध क्षमा कर देना चाहिये। कई गरम स्वभाव वाले ऋषि कहने लगे, कि इस अपराधी को दण्ड देना ही योग्य है. "मूरख गंड़ पर मुँह मार" यह मूर्ख समुद्र मार खाने से ही ठीक होगा, अगस्त्य मुनि विराट-भगवान् के उपासक थे, उन्हों ने अपने उपास्य देवका स्मरण किया, अपना विराटरूप बनाकर समुद्र की ताड़ना की। और कहा सन्त-द्रोही! अब अपने कुकर्मों का फल पाले, मैं तेरा ढाई चुल्लू में पान करूँगा, तब भी समुद्र नम्र न हुआ सोचा मैं इतना बड़ा हूँ मेरे को यह किसप्रकार पान कर जायेगा, तब अगस्त्य जी ने समुद्र को ढाई चुल्लू में पान कर लिया। समुद्र सूख गया, चौरासी लाख योनि जल में रहने वाले जीव जन्तु सब तड़पने लगे। तब समुद्र ने

सब देवताओं से सहायता माँगी और देवताओं ने अगस्त्य मुनि से प्रार्थना की--तब अगस्त्य मुनिने पिया हुआ जल इन्द्रियों द्वारा बाहर निकाल दिया और शाप दिया कि अब तू खारा ही रहेगा कोई तेरे को मीठा करने में समर्थ न होगा। यह किया हुआ पाप कर्म प्रारब्ध कोटि म आ गया, सैकड़ों यत्न करने से भी दूर न होगा। तब समुद्र ने सब देवताओं को बुलाकर कहा मेरा खारापन दूर करो। तब विष्णु भगवान् आदि सब देवताओं ने उत्तर दिया कि प्रारब्ध कर्म को हम दूर करने में असमर्थ हैं क्योंकि सन्तों के साथ तुम्हारा विरोध हो गया है। इसलिये हम कुछ भी सहायता नहीं कर सकते, तू तो सन्त द्रोही और निन्दक है।

प्र०—सन्त के दुःखन तेज सब जाये, सन्तन के दुःखन नीच नीचाय। सन्तका निन्दक महा आततांई, सन्त का निन्दक छिन टिकन न पाई। सन्त का निन्दक महा हत्यारा, सन्त का निंदक परमेश्वर मारा। प्र०-कपिल मुनि सन्तायसे सगर-सुत भस्म भये, दुर्वासा ऋषि सन्तायसे यादव कुल खपायो है। अगस्त्य मुनि सन्तायसे समुद्र को खारा कीनो, गौतम ऋषि सन्तायसे सहस्र भग पायो है। करणी परीक्षित की किस्मत में आन पड़ी, कोट यत्न कीये तो भी सर्प ने डसायो है। विधि के बनाइवे को कवि कौन वर्णन करे, संत के दुखाइवे को किस सुख पायो है। राजा ने

भिंडी ऋषि के गले में मरा हुआ सर्प डाला था ऋषि के लडके ने शाप दिया था। सन्त की देख मत्ये वह पावत, सोनर दिसत वारके निल्ले। गधे वे जून ओह नर पावत, बद्धे रहे नित धोबी के किल्ले। तत्ते विल्ली नित भार उठावत, सुख न पायन कबहु विच दिल्ले। सन्त जना तो जो नर वे सुख, दीन दूनी किने न भल्ले॥

इसलिये सबने अस्वीकार कर दिया और समुद्र का जल खारा ही रहा। क्योंकि भावी अमिट है, हे स्त्री! तू भी कर्म का फल सुख दुःख समझ कर चित्त को शान्त कर।

दाधी ले लङ्कागढ़ उगाडी ले रावण वधा, सलि निसलि आणि तोरिले हरी। कर्मकर कर्लाटी मफीटसरी॥

कथा नं. ७-हे स्त्री! मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी के अनन्य भक्त हनुमान जी पर भावी आई, उसको दूर करने के लिये हनुमान जी ने श्री रामचन्द्र जी की अनन्य सेवा की और शरणागत हुए तथा श्री राम जी के अनेक काम भी किए। जैसे-लङ्का को जलाया। रावण के पुत्र अक्षय कुमार को मारा, अशोक वाटिका को उखाड करके नष्ट भ्रष्ट किया, सीता जी का समाचार लाये। रामानुज के मूर्छित होने पर सञ्जीवनी बूटी लाकर भगवान् श्री राम जी को प्रसन्न किया।

राम जी ने कहा था कि जो मेरे भाई लक्ष्मण जी को मूर्छा से जीवित करेगा मैं उसको सर्वस्व दे दूँगा। हनुमान

जी सञ्जीवनी बूटी लेकर आए और लक्ष्मण जी को जीवित किया। तब श्री राम जी प्रातःकाल एक कच्छा पहिन कर समुद्र के किनारे स्नान के लिये गये और दूसरा कच्छा भी साथ ले गये थे। अन्य कोई कपड़ा पास में न था तब हनुमान ने जाकर भगवान के चरणों में शीश झुकाकर कहा—हे भगवन! सेवक ने बूटी लाकर लक्ष्मण जी को जीवित कर दिया है। भगवान श्री राम जी हनुमान के प्रति कहने लगे।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी, नहिं कोई सुरनर मुनि तनुधारी। प्रति उपकार करौं का तोरा, सन्मुख होइ न सकत मनमोरा॥ ॥रामा०॥

भगवान् ने कहा कि मेरे पास इस समय सर्वस्व एक कच्छा ही है तुम इसे लेलो। क्योंकि तुम्हारे प्रारब्ध में एक कच्छा ही है और कोई वर माँगो म देने के लिये तैयार हूँ। तब हनुमान जी ने भावी को अमिट समझ कर भगवान् राम जी से भक्ति का वर माँगा और मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की प्रशंसा करने लगे।

श्लो०—धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहिता।
मित्रेऽवञ्चकता गुरौ विनयता चित्तेऽति गम्भीरता॥
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञातता।
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता त्वय्यस्ति भो राघव॥

भा०–श्री रामचन्द्र जी महाराज जो गुण आप में विराजमान हैं उनका वर्णन करता हूँ–आप सदा धर्म में तत्पर रहते हो, मीठी वाणी आपके मुख में सदा रहती है। दान देने में उत्साह मित्रों में सचाई गुरु में नम्रता चित्त में गम्भीरता आचार में पवित्रता, गुणों में रसिकता, शास्त्रों में निपुणता, रूप में सुन्दरता और शिव में भक्ति ये गुण आप ही में हैं।

प्र०–उलटा नाम जपत जगजाना, वाल्मीक भये ब्रह्मसमाना ॥

॥ तु. रामायण ॥

कथा नं. ८–ऐसे गुणनिधि रामचन्द्र जी की प्रसन्नता होने पर भी हनुमान जी को कच्छे से अधिक वस्त्र न मिला। तो भक्त की स्त्री कहने लगी–हनुमान को किस पाप का फल मिला। तब भक्त त्रिलोचन जी ने कहा–हनुमान जी पूर्व जन्म में मनुष्य थे परन्तु कुसङ्गति में पड़कर चोरों के कर्म करने लगे और जो लोग नदी के किनारे कपड़े उतार कर स्नान करने जाते थे उनके भूपण-वस्त्र सब लेकर भाग जाते थे। एक दिन एक तपस्वी कपड़े उतार कर स्नान करने के लिये नदी में गये, इतने में यह ऋषि के कपड़े लेकर भागने लगा तो तपस्वी ने देख लिया और तुरन्त बाहर निकलकर इसको बुलाया परन्तु यह पास न आया, तब ऋषि ने शाप दे दिया कि–जैसे मेरे शरीर में एक कच्छा ही तूने छोड़ा है,

ऐसे ही आने वाले जन्म में तेरे को कच्छा ही मिलेगा। इसलिये श्री रामचन्द्र जी को सेवा में प्रसन्न करने पर भी प्रारब्धकर्म में आया हुआ कच्छा न मिटा। अतः भक्त त्रिलोचन जी कहते हैं। कर्मकर कच्छौटी मफीटमिरी, पूर्व लो कृत कर्म न मिटेरी घर गेहणि। तांचे मोहि जापीले राम चे नामं वदति त्रिलोचन राम जी।

टी०—हे अर्धाङ्गिनी, पूर्व जन्म का किया हुआ कर्म न मिटेगा अवश्य भोगना पड़ेगा इसलिये तुम सुख-दुःख में प्रसन्न रहो और मैं भी प्रसन्न होकर राम का नाम जपता हूँ। इस प्रकार स्त्री के चित्त को परमेश्वर की भक्ति में लगाया।

उदा०नं०—२ कर्म प्रधान विश्वकर राखा, जो जस करहीं सो तस फल चाखा। ॥ रामायण ॥

ददा दोष न दीजै किसै, दोष कर्मा आपणयां। जो मैं किया सो मैं पाया, दोष न दीजै अवर जना ॥ गुरुग्रन्थ ॥

कर्मणो हि प्रधानत्वं कि कुर्वन्ति शुभा ग्रहाः।
वशिष्ठ दत्त लग्नोऽपि रामःकि भ्रमते वने ॥ वाल्मि.रामा.

कर्मा कि गत मे क्या जानो, मै क्या जानो बाबा रे। हाड जरे जैसे लकरी का तूला, केश जरे, जैसे घास का पूला ॥ ॥ गुरुदेव वाणी ॥

रङ्कं करोति राजानं, राजानं रङ्कमेवच ।
धनिनं निर्धनं चैव, निर्धनं धनिनं विधिः ॥
॥ चा.नी-श्लो.अ.१०-१२ ॥

टी०—निश्चय है कि, विधि रंक को राजा, राजा को रंक धनी को निर्धन, निर्धन को धनी कर देता है ॥

श्लो०—पत्रं नैव यदा करीर विटपे, दोषो वसन्तस्य किम् ।
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा, सूर्यस्य किं दूषणम् ॥ चा.नी.॥
वर्षा नैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणम् ।
यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥

भा०—यदि करील के वृक्ष में पत्ते नहीं होते तो वसन्त का क्या अपराध है, यदि उल्लू दिन में नहीं देखता तो सूर्य का क्या दोष है वर्षा चातक के मुख में नहीं पड़ती इसमें मेघ का क्या अपराध है पहले ही ब्रह्मा ने जो कुछ ललाट में लिख रक्खा है उसे मिटाने को कौन समर्थ है ।

न निर्मिता केन न दृष्टपूर्वा, न श्रूयते हेममयी कुरङ्गी ।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य, विनाश काले विपरीत बुद्धिः ॥

भा०— स्वर्ण की मृगी न पहले किसीने रची, न देखी और न किसी को सुनाई पड़ती है तो भी रघुनन्दन की तृष्णा उस पर हुई, ठीक है विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है ।

कर्मणा बाध्यते बुद्धिर्न बुद्ध्या कर्म बाध्यते ।
सुबुद्धिरपि यद्रामो हैमं हरिणमन्वगात् ॥

भा०—कर्म से बुद्धि का नाश हो सकता है बुद्धि से कर्म नहीं टलता, सुबुद्धि होकर भी राम स्वर्ण मृग के पीछे दौड़े ।

बुद्धि मन्तं च शूरञ्च, मूढम्भीरुञ्जडङ्कविम् ।
दुर्बलं बलवन्तञ्च, भागिनं भजते सुखम् ॥

भा०—बुद्धिमान हो, शूरवीर हो, मूढ़ हो, डरपोक हो, मूर्ख हो, कवि हो, दुर्बल हो वा बलवान् परंतु सुख तभी प्राप्त होता है । जेकर पुरुष भाग्यशूर नसीबवाला हो ।

भाग्यवन्तं प्रसूयेथा, मा शूरान् मा च पण्डितान् ।
शूराश्च कृत विद्याश्च, वने सीदन्ति पाण्डवाः ॥

भा०—माता पुत्र जने तो भाग्यवान् को जने, शूरवीर व पण्डितों को जन्म न दें, देखो पाण्डव शूरवीर थे, पंडित भी थे परंतु भाग्य दुर्बल होने के कारण वनों में ही विपत्ति भोगते रहे ।　　॥ वाग्भिभूषणम् ॥

पौलस्त्यः कथमन्यदारहरणे दोषं न विज्ञातवान् ।
रामेणापि कथं न हेमहरिणस्यासम्भवो लक्षितः ।
अक्षैश्चापि युधिष्ठिरेण सहसा प्राप्तो ह्यनर्थः कथम् ।
प्रत्यसन्नविपत्तिमूढमनसां प्रायो मतिः क्षीयते ॥

टी०—रावण क्या पर स्त्री दोष को न जानता था ।

क्या रामचन्द्र जी अविवेकी थे ? जानते न थे स्वर्ण धातु का मृग कभी नहीं हुआ। क्या जुवे के दोष को राजा युधिष्ठिर भूला हुआ था ? ये सभी कुछ जानते थे, परन्तु विपत्ति के समीप आने से बुद्धिमानों की बुद्धि भी विनाश हो जाती है।

पश्यैते पाण्डुपुत्राःक्षितिपतितनया धर्मभीमार्जुनाद्याः।
शूराःसत्यप्रतिज्ञा दृढतरवपुषः केशवे नाति गूढाः॥
ते वीराः पाणिपात्राः कृपणजनगृहे भिक्षुचर्या प्रवृत्ताः।
कोवा कार्ये समर्थो भवति विधिवशात् भाविनी कर्म रेखा॥

भा०—राजा पाण्डु के पुत्र युधिष्ठिरादि पाँचों भाई शूरवीर, सत्य प्रतिज्ञ पण्डित और श्रीकृष्ण करके रक्षा किए हुए सो वीर भी हाथ में पात्र लेकर कृपणों के घरों से भिक्षा माँगते भये, सो कर्मगति को कौन निवारण करने को समर्थ है सबको भोगनी ही पड़ती है।

अवश्यं भावि भावानां प्रतिकारो भवेत् यदि।
तदा दुःखैर्न लिप्येरन् नल राम युधिष्ठिराः॥

टी०—भावी अवश्य होती है इसको कोई हटा नहीं सकता अगर भावी को कोई हटाने में समर्थ होता तो सतयुग में नल, त्रेता में श्री रामचन्द्र और द्वापर में राजा युधिष्ठिर दुःखी न होते।

कथा नं० २—"संक्षेप से तीनों की कथा कहते हैं।"

विदर्भ देश का राजा शूरसेन था उसके दो लडके थे एक का नाम नल और दूसरे का पुष्कर था महाराजा नल को राजगद्दी दी। वह धर्मात्मा और दानी था उसके दान से देवता लोग बडे प्रसन्न थे एक दिन हंसों के रूप में देवता उनके दर्शन को आये। राजा नल उनको पकडने लगा उनमें से एक पकडा गया वह हंस कहने लगा कि मेरे को न मारना हम देवता हैं आपके दर्शन को आये थे, और एक सुन्दर रूपवती पतिव्रता भीमसेन की कन्या दमयन्ती की आपसे शादी करा देंगे, फिर हंस ने कहा एक अपना लिखा हुआ पत्र तथा चित्र दे दो और पत्र में यह लिखो कि हम तुम्हारे साथ विवाह करना चाहते हैं।

राजा ने चित्र और पत्र अपने हाथ से लिख कर दे दिया हंस ने दोनों चीज लेकर दमयन्ती को जाकर दे दीं–और दमयन्ती का चित्र और पत्र दोनों हंस ने लाकर महाराजा नल को दे दिये, दमयन्ती ने राजा नल की सुन्दरता चित्र में देख कर तथा उनके गुण श्रवण कर पत्र में यह लिखा कि मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि आपसे ही शादी करूगी औरों से नहीं, एक दूसरे का चित्र देख कर आपस में ध्यान करने लगे और स्वप्न में एक दूसरे का दर्शन भी करने लगे।

आखिर भीमसेन ने अपनी लड़की का स्वयंवर रचा और राजा नल को भी पत्र भेजा, जब राजा नल दमयन्ती के स्वयंवर में जा रहा था तो रास्ते में चार देवता इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम मिले। उन्होंने राजा से पूछा—कि कहाँ जाते हो? राजा ने कहा—मैं दमयन्ती के स्वयंवर में जा रहा हूँ, यह सुन देवताओं ने राजा नल से कहा कि स्वयंवर से पूर्व, आप दमयन्ती को जाकर मिलो और हमारा सन्देश दो कि मृत्युलोक के राजाओं को छोड़कर, स्वर्ग तथा त्रिलोकी का राजा, मैं इन्द्र देव हूँ, मेरे को पति बनाना, यह श्रवण करके राजा नल ने कहा, मैं यह वचन नहीं कहूँगा, क्योंकि मैं उसको वचन दे चुका हूँ, कि मैं तेरे को वरूँगा, देवताओं ने कहा, परोपकारी लोग लोभ नहीं करते, तुम हमारा सन्देश अवश्य पहुँचा दो।

तब राजा नल ने कहा मैं उसके महल में किस प्रकार जा सकता हूँ, इन्द्र ने कहा यह सुरमा नेत्र में डाल लो। दमयन्ती से अन्य तेरे को और कोई न दीखेगा, आखिर सुरमा लगा कर दमयन्ती के महल में गया, दमयन्ती प्रसन्न हुई और चित्र देखा तो ठीक ही राजा नल था, परन्तु फिर भी निश्चय करने के लिए पूछा, आप ही नल हैं! तब राजा ने कहा हां मैं ही नल हूँ। यह सुन कर के दमयन्ती ने कहा—बिना अवसर किस प्रकार महलों

में आयें। अगर हमारे पिता जी को पता चल गया तो महान् अनर्थ हो जायगा दमयन्ती का ऐसा वचन सुन कर राजा नल ने कहा—

त्रिलोकी के राजा इन्द्र ने मुझे तुम्हारे पास सन्देश देकर भेजा है मैं त्रिलोकी का राजा इन्द्र हूँ। स्वयंवर में मुझे ही माला पहनाना, दमयन्ती ने कहा—इन्द्र को कह देना कि मैंने राजा नल को वर बना लिया है, अब यदि विष्णु भी आ जायें तो उन्हें भी न वरूँगी, तुम तो चीज ही क्या हो, राजा नल ने जाकर कह दिया, तब इन्द्र को क्रोध आया और स्वयंवर में चारों देवता नल का रूप बना कर राजा नल के आस पास बैठ गये, जब पांच नल हो गये, तो सभा में बहुत आश्चर्य हुआ। उधर दमयन्ती को पता चला तो दमयन्ती ने अपने इष्ट देव का स्मरण किया, तब आकाश वाणी हुई कि जो नकली नल हैं उनकी आँखें नहीं फड़केंगी, छाया न होगी, पांव भी पृथ्वी से ऊपर होंगे, क्योंकि वे देवता हैं।

तुम समझ कर 'जय माला' डालना। दमयन्ती सभा में आई और पहचान कर असली राजा नल को ही जय माला पहनाई, दमयन्ती की बुद्धि को देख कर सारी सभा प्रसन्न हुई देवता लज्जित हुए और राजा नल के अपराधी भी बने, राजा नल से अपराध क्षमा के लिए चारों

देवताओं ने चार वर दिये--

इन्द्र ने वर दिया कि मेरा रथ तथा सूर्य नारायण का रथ सबसे अधिक वेग वाला है, अब तेरा रथ भी इनके समान वेग वाला होगा और बारह नेत्रों के निशान वाले घोड़े खरीद लेना। वे सूर्य के घोड़ों के बराबर होंगे, अग्नि और वरुण ने कहा जहाँ अग्नि और जल की आवश्यकता होगी हमको याद करना, हम उपस्थित होंगे। यम राज ने कहा शिल्प विद्या तथा भोजन विद्या में तेरे समान निपुण कोई न होगा, ऐसा वर देकर देवता चले गये और राजा नल दमयन्ती को विवाह कर अपने राज्य में चला आया। देवताओं को मार्ग में कलियुग मिला और देवताओं ने पूछा कि कहाँ जाता है? उसने कहा मैं दमयन्ती के साथ शादी करने जा रहा हूँ।

देवता कहने लगे–दमयन्ती को राजा नल विवाह कर ले गया। कलियुग ने कहा कि मैं नल की अच्छी तरह से खबर लूँगा। कलियुग ने अनेक यत्न किये–परन्तु राजा बड़ा धर्मात्मा था और बाहर से जल मृत्तिका की शुद्ध क्रिया रखता था, इसलिए कलियुग का कोई वश न चला। एक दिन राजा नल थकित होकर बाहर से आया, न हाथ-पाँव धोये और न नित्य कर्म ही किया। उसी तरह से आकर सो गया, तब कलियुग को मौका मिल गया और

नल को कहा—अरे! निर्बुद्ध राजा तुम्हारे ऊपर आपत्ति आयेगी और उधर कलियुग ने नल के छोटे भाई पुष्कर को प्रेरणा की कि राजा से कहो मेरे साथ जुआ खेलो, दमयन्ती ने बहुत मना किया, कलियुग का शाप भी स्मरण कराया और बार-बार मना भी किया, जुआ मत खेलो, परन्तु भावी के वशीभूत होकर नहीं माना तब दमयन्ती ने अपने दो बच्चे और कीमती जवाहरात जेवर इत्यादि अपने पिता के घर भेज-दिये राजा ने जुआ खेलना प्रारम्भ किया और सब कुछ हार गये, आखिर दमयन्ती को दाँव में रखने लगा, परन्तु दमयन्ती ने कहा मैं इस समय राजा की आज्ञा न मानूँगी। तो राजा ने दमयन्ती को दाँव में न लगाया, किन्तु सब कुछ हार दिया। एक धोती लेकर शहर से बाहर हो गया, पुष्कर ने डोंडी पिटवाई कि जो इनको अन्न जल तथा निवास देगा उसको फाँसी पर चढ़ाया जायेगा अथवा देश से बाहर निकाल दिया जायेगा, इस तरह राजा के दण्ड भय से सबने दमयन्ती और नल को देश से बाहर निकाल दिया। तीनदिन के भूखे राजा ने एक मृग पकड़ा, कलियुग उसको भी उठा ले गया। राजा ने मृग को धोती से पकड़ा था वह धोती भी ले गया, फिर नदी से मछली पकड़ दमयन्ती को देकर आप लकड़ी लेने गया। सोचा कि इसको

भून कर खायेंगे वह मछली भी उछल कर जल में चली गई तब राजा को बड़ा संदेह हो गया कि मछली को दमयन्ती अकेली खा गई, मेरे को नहीं दी, इसलिये दमयन्ती के त्याग की इच्छा की। तब आधी-रात को दमयन्ती की आधी धोती फाड़कर उसको सोई हुई छोड़ कर चल पड़ा। परन्तु दमयन्ती के प्रेम से फिर वापिस आ गया, ऐसे ही पांच बार आया और पुनः लौट गया, अन्त में कलियुग ने राजा का मन पत्थर बना दिया—तब वह छोड़ कर चला गया। जब दमयन्ती उठी तो देखा कि राजा नहीं है ऊँचे स्वर से रोती हुई चली गई। चलते २ एक अजगर ने दमयन्ती को घेर लिया, तब दमयन्ती ने पुकार की। इतने में एक व्याध आया उसने दूर से बाण मार कर अजगर का सिर काट लिया।

दमयन्ती को देख करके व्याध मोहित हो गया और कहा—अब तू मेरी स्त्री बन। यह सुन करके दमयन्ती ने कहा तुम ने मेरी रक्षा की है इसलिए तुम मेरे पिता के तुल्य हो, किन्तु व्याध ने काम से पीड़ित होकर न माना। दमयन्ती वहां से झट-पट भाग गई, तब बधिक ने बाण मारा, परन्तु जल्दी से बाण उल्टा व्याध के पेट में ही जा लगा। व्याध मर गया और सती दमयन्ती का सत बच गया, फिर आगे चल कर दमयन्ती को सिंह मिला। तब शेर को

कहने लगी तू मेरे को खाकर इस आपत्ति से छुडा दे, परन्तु वह शेर उसके पास से आगे चला गया।

आगे राजा के सौदागर हाथियों पर सामान ले जा रहे थे। रात्रि में एक जङ्गल में उन्होंने डेरा डाला, तब दमयंती भी उनके पीछे २ चल कर थोड़ी दूर पर उनसे अलग बैठ गई, आधी रात को जङ्गली हाथी आ गये। तब हाथियों की आपस में लड़ाई हुई, सौदागरों का काफी नुकसान हुआ, तो सौदागरों ने समझा कि यह स्त्री बड़ी ही पापिनी है, इसके द्वारा ही नुकसान हुआ है, इस को मार डालो ऐसा विचार करके उसके पीछे दौड़े परंतु दमयंती भाग गई। रात्रि को चलती २ प्रातः काल होते ही एक राजा के शहर में पहुँची। शहर के लड़के उसको पगली समझ कर मारने लगे बड़ी कठिनता से अपनी रक्षा की। चलते २ राजा के महल के नीचे पहुँच गई। रानी की दूर से दृष्टि पड़ी तो उसने दमयंती को बुला लिया और कहा तू मेरे ही पास रह।

रानी के वचन सुन करके दमयंती ने कहा कि तीन शर्तों पर मैं रह सकती हूँ। एक तो मेरे ऊपर कोई काम-बुद्धि न करे दूसरा मेरे से जूठे बरतन न मंजवाये, तीसरा अकेली रहूँगी रानी ने सब स्वीकार किया और अपनी अविवाहित कन्या के महल में उसको निवास दिया।

तो वहां से थोड़े दिनों के बाद उसके पिता भीमसेन को पता लगा कि उन पर विपत्ति आई है, राज्य छीन लिया गया है तो उसने इनाम देकर ब्राह्मण को भेजा। जो नल और दमयंती को ढूंढेगा उसको पाँच गाँव और एक सौ गाँयें इनाम देंगे।

आखिर एक ब्राह्मण जो कि दमयन्ती को बचपन से पढ़ाया करता था उसने ढूंढ़ते २ उस राजा के शहर में जाकर नदी में स्नान करके वापिस जाती दमयन्ती को देखा और परस्पर पहचान हो गई। दोनों रोने लगे और रानी को खबर मिली कि यही दमयन्ती है। उसने दमयन्ती को कहा कि मैं तेरी मौसी लगती हूँ तूने पहले क्यों नहीं बतलाया, अच्छा चल तेरे को घर छोड़ आऊँ वह उसको घर छोड़ आई, दमयन्ती बच्चों से मिली और खुश हुई परन्तु पति के बिना उदास रहा करती थी इस प्रकार दमयन्ती की कथा है।

अब राजा नल की कथा सुनो—जब राजा नल सोई हुई दमयन्ती को बन में अकेली छोड़कर चला गया तो पीछे पश्चाताप करने लगा थोड़े आगे गया तो बन में आग लगी हुई देखी, एक सर्प अग्नि में पुकार रहा था और राजा नल को इस प्रकार कहने लगा कि मैंने एक ब्राह्मण को काटा था, उसने मुझे शाप

दिया था कि तू अजगर सर्प हो और इसी जगह पड़ा रह। अपने आप इस जगह से बाहर नहीं जा सकेगा सो अग्नि से मैं जल रहा हूँ, मेरे को दश कदम दूर ले चलें।

यह सुनके राजा नल कहने लगा–पूरा दश कदम ले चलूँगा ऐसा कह कर राजा उसको कन्धे पर उठाकर ले गया और दश कदम ले जाकर छोड़ दिया, कदम गिनकर जब दश कहा तो सर्प ने डङ्क मार दिया, यह देखकर राजा नल ने कहा तुमने यह क्या किया मैंने तो दश कहा था, डश तो नहीं कहा था। राजा नल के वचन सुन कर उस सर्प ने यह उत्तर दिया, कि कलियुग की प्रेरणा से डङ्क मारा है परन्तु मेरा विष तेरे को नहीं चढ़ेगा। शरीर तो जरूर काला हो जायगा। इसलिये आपको कोई पहचान न सकेगा, जब आपकी विपत्ति दूर हो जायेगी, तो मेरी त्वचा को अग्नि से तपाना जो कि मैं आपको देता हूँ। तब मैं आपका काला रूप दूर करके सुवर्ण के तुल्य शरीर की काँति बना दूँगा। राजा बहुत खुश हुआ और घूमता २ अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण के पास नौकर बनकर रहा।

राजा ऋतुपर्ण ने राजा नल से पूछा आप क्या काम कर सकते हैं ? तब नल ने उत्तर दिया कि रसोई का काम अच्छा कर सकता हूँ दूसरा शिल्प का काम कर सकता हूँ और तीसरा रथ चलाने का काम अच्छा कर सकता हूँ

राजा नल की यह सब बातें सुनकर राजा ऋतुपर्ण ने उनके तीनों कामों की परीक्षा की और उसे सबका प्रधान बना दिया। काम करते २ नल ने वे घोड़े खरीदे जो इन्द्र ने कहे थे, इधर दमयन्ती अपने पिता के घर थी, शोक से खाना पीना छोड़ दिया था। पिता उसका दुःख देखकर बहुत दुःखी होते थे। फिर राजा ने ढिंढोरा पिटवाया कि जो कोई राजा नल को ढूँढ़कर लायेगा उसको पाँच ग्राम तथा सौ गौवें इनाम दी जायेंगी और दमयन्ती ने भी ऊपर की कही हुई निशानी सब बतला दी। जल अग्नि आदि के बिना रसोई बनाना, आधी धोती और भूखी स्त्री को छोडकर चले जाना पाप है, जो यह पाप न समझे उसको राजा नल समझ लेना, आखिर ब्राह्मण ढूँढ़ते २ राजमहल के पास पहुँच गया और बातों २ में ब्राह्मण ने स्त्री को आधी धोती देकर तथा भूखी स्त्री को छोड़कर चले जाना पाप है ऐसा कहा तब राजा नल ने कहा कि हे ब्राह्मणदेव! विपत्ति काल में कोई पाप नहीं है। लिखा भी है—"आपत्ति काले मर्यादा नास्ति।"

तब ब्राह्मण ने समझ लिया कि यही राजा नल है, फिर दमयन्ती को जाकर कहा कि सब परीक्षा कर आया हूँ, तो दमयन्ती ने पिता को कहा कि मेरा पति बड़ा रथ वाहक है, इसलिये ऋतुपर्ण राजा को कहला भेजो जिस

राज दूत पहुचे वह कहे कि कल दमयन्ती का स्वयंवर है। आप स्वयंवर में जल्दी पहुचो दूत शीघ्र गया और राजा से कहा कि कल दमयन्ती का स्वयंवर है, आप भी दर्शन दें। तब राजा ने अपने रथवाही नल से पूछा कि कल को पहुचा देगा ? रथवाही ने कहा कि आधे दिन में पहुँचा सकता हूँ, उस समय दे घोड़े रथ में जोते जो इन्द्र ने बताये थे तो राजा ने कहा कि किस तरह पहुँचेंगे ? रथ वाहक ने कहा कि यह जल्दी पहुँचायेंगे ऐसा कह कर राजा को रथ में बिठाया और बड़े वेग से रथ चलाया तो राजा ने जानबूझ कर दुशाला फेंक दिया और कहा कि रथ खड़ा रखो। मेरा दुशाला गिर गया, तब नल ने कहा कि पन्द्रह योजन पीछे छोड़ आये हो, राजा बड़ा हैरान हुआ। रास्ते में एक बड़ का पेड़ आया। नल ने ऋतुपर्ण से कहा कि इसके कितने पत्र है? ऋतुपर्ण ने गिनने की विद्या बता कर एक शाखा के पत्ते गिनाये, कहा कि वृक्ष की इतनी शाखायें है एक शाखा में इतने २ पत्ते है गिने तो बिल्कुल ठीक निकले और राजा नल से ऋतुपर्ण ने रथ चलाने की विद्या सीख ली, अपनी गणित विद्या राजा नल को सिखला दी वहाँ कलियुग भी आ गया कहा कि हे राजा नल ! तेरी विपत्ति अब दूर हो गई।

वहाँ से चलकर शीघ्र ही भीमसेन के राज्य मे पहुँच

गये, राजा ने बडा सत्कार किया। राजा ऋतुपर्ण को अलग आसन दिया और रथ वाहक को अलग आसन अश्वशाला में दिया, रथ वाहक को भोजन की सब सामग्री दी परन्तु जल और अग्नि न दी, बाहर पहरा लगा दिया कि कहीं से जल अग्नि न ले सके। इधर से कहा कि थोडा भोजन दमयन्ती ने मांगा है जल्दी तैयार करो, राजा नल ने झट देवताओं को याद किया, तो अग्निदेव प्रकट हुये और जल का झरना भी गिरने लगा। नल ने भोजन बनाकर कुछ दमयन्ती को भेजा कुछ आप खा लिया, दमयन्ती को भोजन में बडा आनन्द आया जैसा कि पहले राजा नल की बनाई हुई चीजों से आता था, तो उसने समझा कि हाँ ठीक यही राजा नल है, फिर उनको घर बुलाया और कहा कि आपकी खोज के लिये ही यह काम किया है, अब अपना स्वरूप बदल कर पूर्व रूप में आ जाओ। तो राजा नल ने उसी समय सर्प की त्वचा निकाली और अग्नि से उसको तपाया तो एक दम सर्प आ गया सर्प के विष से जो काला रंग हो गया था वह विष सर्प ने खींच लिया और सुवर्ण के समान सारा शरीर बना दिया। फिर आपस में आनन्द पूर्वक राजा-रानी रहने लगे। ऋतुपर्ण राजा ने जुवे के और भी बडे २ दाव समझाये। फिर राजा नल ने अपने भाई पुष्कर के साथ जुआ

खेला, विजय भी पाई और राज्य वापस ले लिया। उसको कहा कि मैं तेरे को न देश निकाला देता हूँ और न भूखा रखता हूँ। तब उसे कुछ नौकरी देकर पास ही रख लिया फिर राजा नल सुख पूर्वक राज्य करने लगे। इस प्रकार राजा नल पर भावी आई जो कि भोग फले दिये बिनो दूर न हुई। जब कलियुग ने बिना अपराध राजा नल को कष्ट दिये—तब कलियुग का बल घट गया और राजा नल के पास आकर कहने लगा कि मेरा अपराध क्षमा करो, राजा नल ने कलियुग से प्रतिज्ञा कराई कि जो मेरी यह कथा पढ़े अथवा सुने उस पर तेरा प्रभाव न पड़े। उसको तू कष्ट न देना, तब मैं तेरा अपराध क्षमा करता हूँ, कलियुग ने यह बात मान ली—लिखा भी है—

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्या नलस्य च।
ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलि नाशनम् ॥

भा०—करकोट नाग की जो नल-दमयन्ती सम्बन्धी कथा तथा ऋतुपर्ण राजर्षि की जो नल सम्बन्धी कथा है उसके स्मरण करने से कलियुग के पाप नाश हो जाते हैं।

श्री रामचन्द्र जी पर भावी आई और वह न हटी, यह रामायण में प्रसिद्ध है, जैसे कैकेयी के कहनेसे सीता लक्ष्मण सहित श्री रामचन्द्र जी को वनवास होना, राजा दशरथ की मृत्यु तथा माता कौशल्यादिकों का रुदन करना,

अयोध्या वासियों का श्री रामचन्द्र जी के जाने पर उदास होना. भरत जी का, नाना के यहा से आना और पुरी की सोचनीय दशा को देखकर घबराना, माता कैकेयी को ताड़ना. फिर वशिष्ठ मुनि की अनुमति से माता आदिकों को साथ लेकर चित्रकूट में जाना, श्री रामजी का भरत की प्रार्थना पर असमर्थता प्रदर्शन करना भरत जी का खड़ाऊँ लेकर वापिस आना, पंचवटी में शूर्पणखा का नाक कान काटना, खर दूषणादि चौदह हजार राक्षस सेना को मारना, रावण की अनुमति से मारीच का सुवर्ण मृग बनना, दशानन का साधु रूप धारण करके, छाया की सीता को चुराना श्रीरामचन्द्र का विलाप करना, और घबराकर लक्ष्मण जी से कहना इत्यादि–

क्षणादूर्ध्वं न जानामि विधाता किं विधास्यति।
यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति।
यच्चेतसाऽपि न कृतं तदिहाभ्युपैति।
प्रातर्भवामि वसुधाधिप चक्र वर्ती।
सोहं व्रजामि विपिने जटिलस्तपस्वी।

भा०—भगवान् राम कहते हैं, हे लक्ष्मण ! मैं जान नहीं सकता कि एक क्षण में ? विधाता क्या करेगा। जो चिन्तन किया था वह तो दूर ही चला गया और जिसका स्वप्न में भी स्मरण न था, वह बात सामने आगई। मेरा

विचार तो था कि प्रातःकाल भुवनाभिपति चक्रवर्ती राजा बनूँगा वही म–ध्यान्ह वनमें जटा बाँधकर तपस्वियों का वेष धारण कर जा रहा हूं और मेरी धर्मपत्नी पति व्रता सीता को कोई ले गया है, अब भी मैं नहीं जानता कि मेरे साथ विधाता क्या करेगा ?

इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी भी भावी को दूर न कर सके, अगर भावी दूर हो सकती तो इतना दुःख सहन न करते।इसी तरह द्वापर में महाराजा युधिष्ठिरादि पाँच पाण्डवों पर भावी आई, एक बार लाक्षा गृह में दुर्योधन ने कुन्ती सहित पाँचों पाण्डवों को जलाना चाहा परन्तु विदुरजी की कृपा से येन केन प्रकार से बच गये और वन को चले गये, अनेक तरह के कष्ट सहन किये। फिर दूसरी बार जुवे में राज्य हार गये और सभा में द्रौपदी को दुर्योधन ने नग्न करना चाहा, तब पाण्डवों को असह्य दुःख हुआ। फिर बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष का गुप्त वास यह तेरह वर्षका वनवास हुआ। अगर तेरहवें वर्ष में प्रकट हो गये तो इतना ही वनवास और भोगना होगा यह प्रतिज्ञा की गई थी, फिर वन मे जाना चित्त में दुःख मानना भोजन से तंग रहना ऋषि मुनियों का अनेक दृष्टान्तों से समझाना, धौम ऋषि जी का कथा उपदेश तथा सूर्य स्तोत्र देना, स्तोत्र से प्रसन्न होने पर

सूर्य नारायण जी ने एक देग दिया जिसमें सबको तृप्त करने की शक्ति थी, परन्तु इसमें द्रौपदी के भोजन करने से पहले तृप्त करने की सामर्थ थी।

फिर दुर्योधन की प्रेरणा से द्रौपदी के भोजन करने के बाद दुर्वासा मुनिका साठ हजार ऋषियों को साथ लेकर वन में पाँडवों के पास आना, द्रौपदी से भोजन माँगना द्रौपदी का दुःखित होकर भगवान का स्मरण करना, भगवान का आना और दुर्वासादि ऋषियों का पेट अफर के भाग जाना, ऐसे ही पाण्डवों पर समय २ पर अनेक कष्टों का आना, कभी २ मार्कण्डेय कभी बगदालभ्य लोमस कभी व्यासादिकों का समय २ पर समझाना, दान के प्रसङ्ग, गुरु सेवा के प्रसङ्ग, पतिव्रता स्त्रियों के कितने ही उत्तम प्रसङ्ग सुनाये। दुर्योधन का पाँडवों को मारने के लिए खाँडव काम्युक वन में आना, गन्धर्वों के राजा चित्रसेन का दुर्योधन को पकड़ना अर्जुन का दुर्योधन को छुड़ाना, लज्जित होकर दुर्योधन का घर को जाना, फिर धृतराष्ट्र का दामाद जयद्रथ जो सिन्धु देश का राजा था, उसका द्रौपदी पर मोहित होना और पाण्डवों को शिकार के लिये दूसरे वन में ले जाना तथा सात सौ राजाओं को साथ ले द्रौपदी को चुराकर अपने रथ में बैठा करके ले जाना एवं पाण्डवों का दौड़कर जयद्रथ को

पकड़ना तथा युद्ध करके द्रौपदी को छुड़ाना, किन्तु जयद्रथ को अपनी चचेरी बहिन का पति समझ कर छोड़ देना तथा द्रौपदी सहित पाण्डवों का रुदन करना, तब धौम ऋषि का उनको श्री रामचन्द्र जी के महान् दुःखों की कथा सुनाकर के सुख दुःख में सम रहने का उपदेश करना इत्यादि अनेक प्रसंग वन पर्व में पाँडवों पर विपत्ति के आये हैं और विराट पर्व में पाँडवों का अलग २ होना तथा नौकरी करनी एवं द्रौपदी का विराट की रानी की सेवा में रहना, विराट की रानी के भाई कीचक का द्रौपदी पर मोहित होना, तथा कीचक को सौ भाइयों सहित मारना ऐसे २ अनेकों महान् कष्ट पाँडवों पर आए। परन्तु भावी दूर न हुई, यदि भावी दूर हो सकती तो पाँडव इतना कष्ट सहन न करते, भावी के दूर न होने पर भावी के अधीन दुःख पाते हैं। प्र० नं०—३

आदौ पाण्डव धार्तराष्ट्र जननम् लाक्षा गृहे दाहनम्।
द्युतस्त्री हरणम् वने विचरणम् मत्स्यालये वर्तनम्॥
लीला गोहरणम् रणे परतरणम् सन्धिक्रिया जन्मनम्।
पश्चाद् भीष्म सुयोधनादि हननम् ह्येतन् महाभारतम्॥

येन यत्रैव भोक्तव्यं सुखं वा दुःखमेववा।
स तत्र वद्ध्वा रज्ज्वेव बलाद्दैवेन नीयते॥
सा संपद्यते बुद्धिः सामतिः साच भावना।

महायास्ताद्दशा एव याद्दशी भवितव्यता ॥
यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनु गच्छति ॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।
स्वं कालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥

भा०—जहाँ जिसने दुःख-सुख भोगना हो सो कर्म रूप रस्सी से बंधा हुआ दैव की प्रेरणा से उसी जगह में जाकर भोगता है। सो सोई २ बुद्धि उदय होती है, सोई विचार में आती है सो निश्चय में जम जाती है, सोई सहायता मिलती है, जैसी भावी होनी हो। जैसे हजारों गौओं में बछड़ा अपनी माता को पहचान लेता है, वैसे ही कर्म भी ईश्वर नियमानुसार कर्ता को प्राप्त होता है बिना विचार के ही जैसे पुष्प, फल अपनी ऋतुकाल और नियमानुसार ही फूलते फलते है वैसे ही कर्म भी पूर्व किये हुए कर्मों के अनुसार ही कर्ता को फल मिलता है।

दृष्टान्त नं० ३—एक नगर में एक दरिद्री पुरुष अपनी पत्नी और पुत्र के सहित रहता था। तीनों वन से शुष्क काष्ठ काटकर लाते थे और उनको बेचकर अपनी उदर पूर्ति करते थे, एक दिन वन में तीनों काष्ठ काट रहे थे, दैव योग से महादेव जी भगवती उमा के साथ

विचरते हुए वहाँ आये।

उनकी दीन अवस्था को देखकर सती जी का हृदय दया से पिघल गया और महादेव जी से पूछा हे स्वामिन्! ईश्वर की सब में समदृष्टि है तो ए जीव क्यों इतनी दीन दशा को प्राप्त हो रहे हैं। ईश्वर विषमकारी भी है क्या? महादेव जी ने कहा—हे सती! ईश्वर तो सदा समदर्शी है, विषमकारी नहीं, परन्तु जिसके जैसे कर्म होते हैं, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। न्यूनाधिक नहीं होता, सती बोली—हे नाथ! आप मेरी प्रसन्नता के लिये इन तीनों को एक २ वर प्रदान करें, यदि फिर भी इनको ऐश्वर्य का लाभ न हुआ तो मेरा संदेह दूर हो जायेगा, महादेव जी—हे सती! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं एक २ वर देता हूँ, परन्तु इससे इन्हें कुछ लाभ न होगा—क्योंकि इनके प्रारब्ध में ऐश्वर्य नहीं है, जाओ इनसे तुम कहो कि यह हम से वर माँग लें, सती जी प्रसन्न होकर पहले उस स्त्री के पास आई और उससे किंचित् वार्तालाप करने के अनन्तर कहा हे सुन्दरी! आज तेरे उत्तम भाग्य हैं जो त्रिलोकी नाथ श्री महादेव जी तुम पर प्रसन्न हुए हैं शीघ्र उनके पास चलकर अपनी इच्छानुसार एकवर माँग लो। यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई और विचार करने लगी कौनसा वर माँगूँ यदि धन सम्पत्ति माँगूँ तो मेरा

स्वामी दूसरा विवाह करके मेरा त्याग कर देगा, तो मुझे असह्य दुःख होगा। पति का सर्वकाल अनुकूल रहना स्त्री के लिये परमसुख है, परन्तु पति सुन्दर स्वरूप और युवावस्था के आधीन होता है, इसलिये मैं यही वर माँगू। ऐसा विचार कर सती जी के साथ महादेव जी के समीप गई और प्रणाम किया। महादेव जी ने प्रसन्न होकर कहा हे पुत्री! तू एक वर माँग ले, वह बोली हे जगन्नाथ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो वर दीजिए, मैं षोडप वर्ष की और सती के समान रूपवती हो जाऊँ। महादेव जी बोले 'तथास्तु' वह तत्काल ही षोडप वर्ष की सुन्दरी बन गई और महादेव जी सती सहित अन्तर्धान हो गये, जब स्त्री वर लेकर पति और पुत्र के समीप आई तो एक राज पुत्र आ पहुँचा और देखा कि अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाली एक युवा स्त्री है दो पुरुष कृष्ण वर्ण और कुरूप उसके समीप खड़े हैं मानों चन्द्रमा को राहु अच्छादन करने को तैयार हो रहा है, उसने समझा यह कोई डाकू हैं किसी धनी की कन्या को पकड़ कर यहां ले आये हैं, ऐसा जानकर राजपुत्र ने उनको बहुत भय दिया और तत्काल उस स्त्री को अपने अश्व पर बिठा कर ले गया। पीछे पार्वती ने उस पुरुष से, उसी प्रकार शिवजी के पास आकर, एक वर माँगने को कहा, उसने विचार किया कि धन सम्पत्ति का,

वर तो अब मेरे किसी अर्थ का नहीं, क्योंकि मेरी स्त्री को राजा बलात्कार से हर ले गया है. मैं ऐसा वर मागूँ जिससे वह राजा के साथ न जावे, यह सोचकर वह महादेव जी के पास गया दण्डवत करके कहा, हे जगत पिता ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये, मेरी स्त्री शूकरी बन जावे, महादेव जी बोले तथास्तु और तत्काल ही वह स्त्री शूकरी बन गई, जब राजकुमार ने वह बडी भयंकर शूकरी के रूप में देखी तो भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही उसे अश्व से नीचे गिरा दिया, और छल जानकर अश्व को दौडाकर वहाँ से चला गया। पीछे सती जी ने उसके पुत्र से वर माँगने को कहा, उसने सोचा यदि मेरी माता दुःख में हो तो धन संपदा से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, क्योंकि पुत्र वही होता है, जो स्वयं दुःख उठाकर भी माता पिता का दुःख दूर करे, इसलिये माता को दुःख से बचाकर मैं पुत्र नाम को सफल करूँ। ऐसा विचार कर महादेव जी के समीप जाकर प्रणाम किया, और बोला हे त्रिलोकीनाथ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं, तो जैसे हम अपने घर से तीनों शरीर आये थे वैसे ही हो जावें, महादेव जी बोले तथास्तु। तीनो जैसे पहले थे वैसे ही हो गये, तब महादेव जी ने कहा सती जी, अब बताओ ईश्वर में कैसे विषमता है ? जैसा इनका धर्म

था उसके अनुसार ही इनको फल प्राप्त हुआ, उससे न्यूनाधिक नहीं हो सकता तब सती जी ने महादेव जी को नमस्कार किया और दोनों अन्य स्थान में विचरने लगे।

प्र.नं.४—मन मूर्ख काहे बिल लाईये, पूर्व लिखे का लिखआ पाईए ॥ गउड़ी सुखमनी म० ५—५—२०६

मू०—असुहृत्य सुहृचापि सशत्रु मित्र वानपि ।
सुप्रज्ञं प्रज्ञया हीनो दैवेन लभते सुखम् ॥

भा०—मित्र की सहायता हो अथवा न हो, शत्रु भी बहुत से हों वा न हों, बुद्धि भी हो या न हो सुख कर्म से ही प्राप्त होता है।

मू०—मा धाव मा धाव विनैव दैवं नो धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः। चेद्धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः श्वा धावमानोपि लभेल्लक्ष्मीम् ॥

भा०—दौड़ा २ मत फिर यदि बहुत दौडने से लक्ष्मी मिले तो दौड २ कर सभी जीव धन जोड लें बहुत दौड़ना धनका साधन नहीं है, धन कर्म से ही मिलता है।

सवैया—नाहि फले जगमाहि निशेश, दिनेश फले न कबी भव मांही। नाहि सुरेश फले जग में, सु महेश फले जग में कहु काही ॥ पुण्य बिना फल आहीं कहीं, निधि लोक सु भूमि रसातल मांही। और फले नहि को जगमें, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माही ॥

मू०—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधन मेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥१॥
दैवे विमुखतां याति न कोऽप्यस्ति सहायवान्।
पिता माता तथा भार्या भ्रातावाथ सहोदरः ॥२॥
भाग्यं फलति सर्वत्र नच विद्या नच पौरुषम्।
समुद्र मथनालेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥

सवैय्या—देश फले न विदेश फले, कछु पूर्व उत्तर मों फल नाहीं। दक्षिण पश्चिम माहिं नहीं फल, नाहि अहै सरिता तट मांही॥ बैठन नाहि फले जग में, अरु नाहि फले रटनों जग मांही। और फले नहीं को जग में, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माहीं॥

कर्म गति टारी नाहिं टरे॥ ॥ टेक ॥
गुरु वशिष्ठ महामुनि ज्ञानी, गिन गिन लगन धरे।
सीता हरण मरण दशरथ को, बन-बन राम फिरे॥ करम.

दृष्टान्त नं० ४—एक साहूकार था जिसका कोई ऐसा पाप कर्म उदय हुआ, जिससे उसका सब धन नष्ट हो गया और वह जंगल से लकड़ी बीन २ कर लाता और उनको बेचकर अपना निर्वाह करता एक दिन जंगल में लकड़ियां बीनता फिरता था, दैव योग से भाग्यदेव और लक्ष्मी भी विचरते हुए उसी जंगल में आए लक्ष्मी ने भाग्यदेव से कहा देखो इस पुरुष के पास जब तक मैं

थी वह आनन्द करता था और अब मेरे बिना इसकी यह दशा हो रही है। ऐसा सुनकर भाग्यदेव ने कहा हे लक्ष्मी, तुम कुछ नहीं कर सकती, यदि कर सकती हो तो अब इसको साहूकार बना दो, तब लक्ष्मी ने उस पुरुष को बुलाकर दो लाल बहुमूल्य के द दिये, उसने लेकर अपनी जेब में डाल लिये और घरको चल पड़ा। रास्ते में प्यास लगी, जब नदी में झुक कर पानी पीने लगा, तो दोनों लाल नदी में गिर पड़े और उनको एक मछली ने निगल लिया, बहुत खोज करने पर भी वह उसे न मिले, तब पश्चाताप करता हुआ घर-चला गया, जब दूसरे दिन फिर जंगल में लकड़ी लेने गया तब लक्ष्मी ने पूछा, अब क्यों लकड़ियाँ लेन आया, उसने सारा हाल कह सुनाया, फिर लक्ष्मी ने नौलखा हार दिया, उसने लेकर पगड़ी में रख लिया, और आनन्द मग्न चला जा रहा था, एक चील की दृष्टि उस हार पर पड़ी और तुरन्त ही झपटा मार कर उसे ले गई, वह पश्चाताप करता हुआ घर चला गया, तीसरे दिन फिर जंगल में लकड़ियाँ लेने गया और लक्ष्मी के पूछने पर उसने सारा हाल कह सुनाया तो लक्ष्मी ने एक मुहरों की थैली देदी और कहा इसको सभाल कर ले जाना। वह बोला अब तो इसको नहीं छोड़ूँगा, जब घर जा रहा था तो बड़े जोर की लघुशंका लगी परन्तु

दौडता २ घर पहुँच गया: पहुंचते ही अपनी स्त्री को पुकार कर कहा ले संभाल और थली रखकर लघुशंका को चला गया. उसकी स्त्री उस समय घर में नहीं थी. उसकी बात को पड़ोसिन ने सुना और जाकर देखा तो मुहरों की थली पड़ी थी. जल्दी से उठालाई, जब वह पुरुष घर आया तब तक उसकी स्त्री आगई थी, उससे पूछा, थली रखली थी! स्त्री ने उत्तर दिया मैंने तो देखी भी नहीं। यह सुन पश्चाताप करने लगा। जब फिर लकड़ियाँ लेने गया, तो लक्ष्मी के पूछने पर उसने सारा समाचार सुना दिया, तब भाग्यदेव ने कहा है लक्ष्मी तुमने अपना पूरा बल लगा लिया अब बताओ लक्ष्मी ने कहा—यह बेचारा बडा दुःखी हो रहा है अब आपही कृपा करें।

तब भाग्यदेव ने केवल दो पैसे दिये, जब पैसे लेकर चला तो मार्ग में मछलियाँ बिकती थी. उसने एक मछली मोल ले ली फिर विचार किया कि कुछ सूखे इन्धन ले चलूँ, इधर उधर देखा तो एक पेड पर एक घौंसला दिखाई दिया, जब उपर चढा तो नौलखा हार पडा देखा उसने, उसे उठा लिया और आनन्द में मग्न हुआ घर आया, दरवाजे के अन्दर घुसते ही कहा मिल गया है मिल गया है, जब भाग्य जाग्रत हो जाता है, तो गया हुआ धन भी मिल जाता है. इस बात को पडोसिन ने

भी सुना और मनमें विचारा इनको कुछ पता लग गया है, यदि यह पुलिस लाकर हमारे घर की तलाशी करवादें तो हमारी बदनामी होगी—यह विचार कर वह पीछे की ओर से थैली उसके घर के अन्दर डाल गई, जब मछली को चीरा तो दोनों लाल उसके पेट से निकल आये, देखो जब तक भाग्य में न था तब तक पदार्थ प्राप्त हुए भी नष्ट होते रहे और जब भाग्योदय हुआ तो नष्ट हुए पदार्थ भी प्राप्त हो गये, इससे सिद्ध हुआ कि मनको अपने किये कर्मों के अनुसार ही धन प्राप्त होता है।

प्र० नं० ५—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म फलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ गी. अ. २—४७

भा०—तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्धय सिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ गी. २-४८

भा०—हे धनंजय! आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर यह समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है। गी. अ. २ श्लो. ४८

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ॥ गी. अ. ३-५

भा०—तथा सर्व कर्मोका स्वरूप से त्याग हो भी नहीं सकता, क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है, निस्सन्देह सब ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते हैं ।

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ गी. अ. ३-८

भा०—इसलिए तू शास्त्र विधि में नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोक संग्रह मेवापि संपश्यन्कर्तु मर्हसि ॥ अ. ३-२०

इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए हैं, इसलिए लोक संग्रह को देखता हुआ भी तू कर्म करने को ही योग्य है ।

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥ अ. ३-२१

भा०—क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो २ आचरण करते हैं

अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार कार्य करते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके ही अनुसार चलते हैं।

कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ गी अ ५-११

भा०-इसलिये निष्काम कर्मयोगी ममत्व बुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।
होय सोई जो राम रच राखा क्या, कोई तर्क बढ़ावे साखा॥

यद्धात्रा निज भाल पट्ट लिखित स्तोकं महद्वाधनम् ।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेपिनितरां मेरौततोनाधिकम् ॥
तद्धीरो भवविचनत् सुकृपणा वृत्तिं वृथा मा कृथा ।
कूपे पश्यपयोनिधावपि घटो गृह्णातितुल्यं जलम् ॥

भा०-जो धन अपने भाग्य में होता है वही मिलता है थोड़ा हो या अधिक हो, वह मरुस्थल में भी मिलेगा, सुमेरु पर्वत में भी जावो तो अधिक नहीं होगा, इससे पुरुषों को धैर्य करना चाहिये, कृपण दुष्ट मनुष्य मूर्ख जो धनवान् हैं, उनके आगे दीन होकर याचना न करनी चाहिये देखो घड़े का जितना आकार है उतना ही जल होता है चाहे कुए से भरो वा समुद्र से भरो।

दो०— पहिले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर ।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहीं बांधे धीर॥

दृष्टान्त नं० ४—एक ब्राह्मण मन्दिर में रामायण की कथा किया करता था, उस मन्दिर में श्री रामचन्द्र जी और श्री हनुमान जी की मूर्ति थी वहां कथा सुनने वाले एक दो ही कथा प्रेमी जाते थे, लोगों ने कहा महाराज, लोग तो आते नहीं आप कथा किसको सुनाते हो और आपको प्राप्त क्या होगा, ब्राह्मण ने कहा सब के दाता राम है, मैं उनको ही कथा सुनाता हूँ और जो कुछ मेरे प्रारब्ध में होगा वह अवश्य भगवान् कहीं न कहीं से दिला ही देंगे, इस प्रकार कथा करते २ एक वर्ष हो गया, कथा समाप्ति से एक दिन पहले श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति से शब्द हुआ हनुमान, इस ब्राह्मण ने मेरे भरोसे पर यहाँ कथा बाँची है, इसको कुछ देना चाहिये, हनुमान जी बोले जो आज्ञा, भगवन् ! एक हज़ार रुपये इसको दे देना, इस वार्ता को एक साहूकार ने मन्दिर के पास स्नान करते-समय सुना, उसने ब्राह्मण के घर जाकर कहा कि हमारे साथ कथा के चढ़ावे का पाँच सौ रुपये में ठेका करलो, हम तुमको पाँच सौ रुपये दे देंगे जो चढ़ावा चढ़ेगा, वह चाहे ज्यादा हो या कम हमारा होगा।

ब्राह्मण ने कहा मुझे स्वीकार है परन्तु रुपये पहिले

देदो, साहूकार ने पाँच सौ रुपये दे दिये। जब दूसरे दिन कथा की समाप्ति का समय हुआ तो साहूकार भी जा बैठा परन्तु चढ़ावा कुछ न चढ़ा; तब वह ब्राह्मण कथा समाप्त कर अपने घर चला गया, और साहूकार ने हनुमान जी की मूर्ति को लात मारी और बोला तुम झूठे हो; उसका पाँव तुरन्त ही मूर्ति मे चिपक गया, दूसरी ओर श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति से शब्द हुआ, हनुमान! ब्राह्मण कथा समाप्त करके चला गया? कुछ उसको दिया या नहीं? हनुमान हे भगवन्! पाँच सौ रुपये तो दिलवा दिये हैं और पाँच सौ का आसामी पकड़ा हुआ है, यदि वह पाँच सौ रुपये देगा तो छूटेगा। ऐसा सुनकर साहूकार ने अपने घर सन्देशा भेजा कि पाँच सौ रुपये ब्राह्मण को और देदो, उन्होंने रुपये ब्राह्मण को दे दिये, और मूर्ति ने साहूकार की लात छोड दी, तब उसने निश्चय किया कि भगवान् की वाणी सच्ची है। इससे सिद्ध होता है कि जो ईश्वर पर भरोसा करता है उसको अवश्य ही अन्तर्यामी किसी न किसी प्रकार धन पहुँचा देते हैं। इस पर कथन किया है।

प्र.नं.६ सवैयाः—हो निश्चिन्त करो मत चिन्ता, चोंच दई सोई चिन्त करेगो। पाऊं पसार पर्यो किंन सोवत। पेट दयो सोई पेट भरेगो। जीव जिते जल में थल में, पुनि पाहन में

पहुँचाई धरेगो । भूखोभूख पुत्रागत है नर, सुन्दर तू वहीं भूखो मरेगो ॥ गुरु जी कहते हैः– (गु.सुख.म.पृ पृ.२८१) मानुष की टेक वृथा मवजान, देवन को एको भगवान। जिनके दिये रहे अघाय बहुर न तृष्णा लागै आय॥

मू०–उपर्यु परलोकस्य सर्वेगन्तुँ समीहते।
यततेच यथाशक्तिर्नच तद्वर्तते तथा॥
सन्ति पुत्राः सुबहवो दरिद्राणामनिच्छताम् ।
नास्ति पुत्रः स्मृद्धानां विचित्रं विधिचेष्टितम्॥
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यत् वसुमान् नरः।
दरिद्रश्च परि क्लिष्ट शतवर्षो जरान्वितः॥

भा०—बड़े से बड़े होने की सभी लोग इच्छा करते हैं, जितनी २ शक्ति है उतना प्रयत्न भी करते हैं, परन्तु इच्छानुसार सुख किसी को नहीं होता॥ दरिद्रियों की सन्तान की ज्यादा २ इच्छा भी नहीं होती उनके बहुत से पुत्र हो जाते है, धनी पुरुष एक पुत्र की इच्छा करते हैं सो भी पूरी नही होती कर्मगति विचित्र है। राजा व धनवान नर युवावस्था में ही मृत्यु पाते हैं अनेक रोगों से पीडित हुए दरिद्री तुरन्त मरना चाहते हैं वे सौ वर्ष तक भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते ॥

मू०–अघटित घटनानि घटयति, घटित घटिता निर्दु र्घटं करोति। विधिरेवता विघटयति यानि पुमान्न विचिन्तयति॥

भा०—जो न होने वाली घटना हो उसको घटित कर देता है। होने वाली होने नहीं पाती। दैव ऐसी रचना करता है जो किसी पुरुष के विचार में न आ सके। गुरु नानक देव कहते हैं। (रामकली वार म. ३-९४५)

मू०—सहस दान दे इन्द्र रोआया, परशुराम रोवै घर आया। अजेसु रोवै भिखा खाय, ऐसी दरगह मिलै सजाय। रोवहि राम निकाला भया, सीता लछमण विछुड़ गया, रोवै दहसिरु लंक गवाय, जिन सीता आंदी डौरू वाय, रोवहि पाण्डव भए मजूर, जिनके स्वामी रहत हदूर। रोवहि जनमेजा खुयगया, एकी कारण पापी भया। रोवहि शेख मसायक पीर, अन्तकाल मत लागै भीड़। रोवहि राजे कंन पड़ाय, घर २ मांगहि भीखा जाय। रोवहि कृपण संचहि धन जाय, पंडित रोवहि ज्ञान गवाय। बाली रोवै नांहि भर्तार, नानक दुःखीआ सब संसार॥

कथा नं०६—जब श्री गुरु नानक देव जी सत घर में आये तब यह शब्द उचारण किया था "नानक दुःखीआ सब संसार" इतनी पंक्ति सुनकर मरदाना शहर में गया और एक बड़ा साहूकार देखा जो बड़ी गद्दी तकिया लगाकर बैठा था, उनके ऊपर सेवक चंवर हिला रहे थे, और कई हाथ जोडकर खड़े थे। बड़ा दर्शनीय मकान था, अनेक जिसमें मुन्शी हिसाब लिख रहे

हैं और रुपयों के नोटों की थैलियों आगे पड़ी हैं, इत्र छिड़के हुये हैं। भाव यह कि सुख की सब सामग्री मरदाने ने देखी तब मरदाने के चित्त में सन्देह हुआ, गुरु जी कहते हैं, संसार में सब दुःखी हैं। इसके समान तो कोई सुखी नहीं तब गुरु जी के पास आकर कहने लगा महाराज आप कहते हैं सब दुःखी हैं यह देखो कैसा सुखी है, तो गुरु जी कहने लगे इसको सुखी न समझ, इसके समान दुःखी कोई नहीं है। चाहे पूछकर देखलो।

मरदाना उसके पास गया और कहा आप से एकान्त में बात पूछनी है। सेठ ने कहा बहुत अच्छा। फिर एकान्त में जाकर मरदाना ने कहा—हमारे गुरु जी कहते हैं, इस जैसा कोई दुःखी नहीं मेरे को तो सुखी मालूम होते हो अतः सत्य कहो, तब धनी ने कहा आपके गुरु जी ने जो कहा है वह सत्य है मेरे जैसा कोई दुःखी नहीं, मरदाना बोला सुनाओ तुम्हे क्या दुःख है। तब वह धनी मरदाने को अपना दुःख सुनाने लगा मैं अपने माता पिता का एक ही लडका था, मेरी शादी एक शाहूकार के घर बड़ी सुन्दर विदुषी कन्या के साथ हो गई। हम दोनों का अतुल प्रेम हो गया, माता-पिता के मरने के बाद स्त्री बीमार हो गई और मेरे सामने रोने लगी।

मैंने उससे पूछा क्यों रुदन कर रही हो, उसने कहा

महायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता ॥
यथा धेनु सहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनु गच्छति ॥
अचोद्यमानानि यथा पुष्पाणि च फलानि च ।
स्वं कालं नाति वर्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥

भा०—जहाँ जिसने दुःख-सुख भोगना हो सो कर्म रूप रस्सी से बंधा हुआ दैव की प्रेरणा से उसी जगह में जाकर भोगता है । सो सोई २ बुद्धि उदय होती है, सोई विचार में आती है सो निश्चय में जम जाती है, सोई महायता मिलती है, जैसी भावी होनी हो । जैसे हजारों गौओं में बछडा अपनी माता को पहचान लेता है, वैसे ही कर्म भी ईश्वर नियमानुसार कर्ता को प्राप्त होता है बिना विचार के ही जैसे पुष्प, फल अपनी ऋतुकाल और नियमानुसार ही फूलते फलते हैं वैसे ही कर्म भी पूर्व किये हुए कर्मों के अनुसार ही कर्ता को फल मिलता है ।

दृष्टान्त नं० ३—एक नगर में एक दरिद्री पुरुष अपनी पत्नी और पुत्र के सहित रहता था । तीनो वन से शुष्क काष्ठ काटकर लाते थे और उनको बेचकर अपनी उदर पूर्ति करते थे, एक दिन वन में तीनों काष्ठ काट रहे थे, दैव योग से महादेव जी भगवती उमा के साथ

विचरते हुए वहाँ आये।

उनकी दीन अवस्था को देखकर सती जी का हृदय दया से पिघल गया और महादेव जी से पूछा हे स्वामिन्! ईश्वर की सब में समदृष्टि है तो ए जीव क्यों इतनी दीन दशा को प्राप्त हो रहे हैं। ईश्वर विषमकारी भी है क्या? महादेव जी ने कहा—हे सती! ईश्वर तो सदा समदर्शी है, विषमकारी नहीं, परन्तु जिसके जैसे कर्म होते हैं, उसको वैसा ही फल प्राप्त होता है। न्यूनाधिक नहीं होता, सती बोली—हे नाथ! आप मेरी प्रसन्नता के लिये इन तीनों को एक २ वर प्रदान करें, यदि फिर भी इनको ऐश्वर्य का लाभ न हुआ तो मेरा संदेह दूर हो जायेगा, महादेव जी—हे सती! तुम्हारी प्रसन्नता के लिए मैं एक २ वर देता हूँ, परन्तु इससे इन्हें कुछ लाभ न होगा—क्योंकि इनके प्रारब्ध में ऐश्वर्य नहीं है, जाओ इनसे तुम कहो कि यह हम से वर मांग लें, सती जी प्रसन्न होकर पहले उस स्त्री के पास आई और उससे किंचित् वार्तालाप करने के अनन्तर कहा हे सुन्दरी! आज तेरे उत्तम भाग्य हैं जो त्रिलोकी नाथ श्री महादेव जी तुम पर प्रसन्न हुए हैं शीघ्र उनके पास चलकर अपनी इच्छानुसार एक वर माँग लो। यह सुनकर वह बड़ी प्रसन्न हुई और विचार करने लगी, कौनसा वर मागूँ यदि धन सम्पत्ति मागूँ तो मेरा

स्वामी दूसरा विवाह करके मेरा त्याग कर देगा, तो मुझे असह्य दुःख होगा। पति का सर्वकाल अनुकूल रहना स्त्री के लिये परमसुख है, परन्तु पति सुन्दर स्वरूप और युवावस्था के आधीन होता है, इसलिये मैं यही वर माँगू। ऐसा विचार कर सती जी के साथ महादेव जी के समीप गई और प्रणाम किया। महादेव जी ने प्रसन्न होकर कहा हे पुत्री! तू एक वर माँग ले, वह बोली हे जगन्नाथ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुए हैं तो वर दीजिए, मैं षोडष वर्ष की और सती के समान रूपवती हो जाऊँ। महादेव जी बोले 'तथास्तु' वह तत्काल ही षोडष वर्ष की सुन्दरी बन गई और महादेव जी सती सहित अन्तर्धान हो गये, जब स्त्री वर लेकर पति और पुत्र के समीप आई तो एक राज पुत्र आ पहुँचा और देखा कि अत्यन्त सुन्दर स्वरूप वाली एक युवा स्त्री है दो पुरुष कृष्ण वर्ण और कुरूप उसके समीप खड़े हैं मानो चन्द्रमा को राहु अच्छादन करने को तैयार हो रहा है, उसने समझा यह कोई डाकू हैं किसी धनी की कन्या को पकड़ कर यहां ले आये हैं, ऐसा जानकर राजपुत्र ने उनको बहुत भय दिया और तत्काल उस स्त्री को अपने अश्व पर बिठा कर ले गया। पीछे पार्वती ने उस पुरुष से, उसी प्रकार शिवजी के पास जाकर, एक वर माँगने को कहा,-उसने विचार किया कि धन सम्पत्ति का

वर तो अब मेरे किसी अर्थ का नहीं, क्योंकि मेरी स्त्री को राजा बलात्कार से हर ले गया है म इनसे वर मांगूँ जिससे वह राजा के साथ न जावे, यह सोचकर वह महादेव जी के पास गया दण्डवत करके कहा, हे जगत पिता ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न है तो यह वर दीजिये, मेरी स्त्री शूकरी बन जावे, महादेव जी बोले तथास्तु और तत्काल ही वह स्त्री शूकरी बन गई, जब राजकुमार ने यह बडी भयंकर शूकरी के रूप में देखी तो भय से व्याकुल होकर शीघ्र ही उसे अश्व से नीचे गिरा दिया, और छल जानकर अश्व को दौड़ाकर वहाँ से चला गया। पीछे सती जी ने उसके पुत्र से वर मॉगने को कहा, उसने सोचा यदि मेरी माता दुःख मे हो तो धन सम्पदा से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा, क्योंकि पुत्र वही होता है, जो स्वय दुःख उठाकर भी माता पिता का दुःख दूर करे, इसलिय माता को दुःख से बचाकर म पुत्र नाम को सफल करूँ। ऐसा विचार कर महादेव जी क समीप जाकर प्रणाम किया, और बोला हे त्रिलोकीनाथ ! यदि आप मेरे उपर प्रसन्न हुए है, तो जैसे हम अपने घर से तीनों शरीर आये थे वैसे ही हो जावें, महादेव जी बोले तथास्तु। तीनो जैसे पहले थ वैसे ही हो गये, तब महादेव जी ने कहा सती जी, अब बताओ ईश्वर में कैसे विषमता है ? जैसा इनका कर्म

था उसके अनुसार ही इनको फल प्राप्त हुआ, उससे न्यूनाधिक नहीं हो सकता तब मनी जी ने महादेव जी को नमस्कार किया और दोनों अन्य स्थान में विचरने लगे।

प्र.नं.४—मन मूर्ख काहे विल लाईये,पूर्व लिखे का लिख-आ पाईए ॥ गउड़ी सुखमनी म० ५–५–३०६

मू०—असुहृत्स सुहृच्चापि सशत्रु मित्र वानपि ।
सुप्रज्ञं प्रज्ञया हीनो दैवेन लभते सुखम् ॥

भा०—मित्र की सहायता हो अथवा न हो, शत्रु भी बहुत से हों वा न हों, बुद्धि भी हो या न हो सुख कर्म से ही प्राप्त होता है।

मू०—मा धाव मा धाव विनैव दैवं नो धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः। चेद्धावनं साधनमस्ति लक्ष्म्याः श्वा धावमानोपि लभेल्लक्ष्मीम् ॥

भा०—दौड़ा २ मत फिर यदि बहुत दौड़ने से लक्ष्मी मिले तो दौड़ २ कर सभी जीव धन जोड़ लें बहुत दौड़ना धनका साधन नहीं है, धन कर्म से ही मिलता है।

सवैया—नाहि फले जगमाहि निशेश, दिनेश फले न कभी भव मांही। नाहि सुरेश फले जग में, सु महेश फले जग में कछु काही॥ पुण्य विना फल आही कहीं, विधि लोक सु भूमि रसातल मांही। और फले नहि को जगमें, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माहीं॥

मू०—आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधन मेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिन ॥१॥
दैवे विमुखता याति न कोऽप्यस्ति महायवान्।
पिता माता तथा भार्या भ्रातावाथ सहोदर ॥२॥
भाग्य फलति सर्वत्र नच विद्या नच पौरुषम्।
समुद्र मथनालेभे हरिर्लक्ष्मीं हरो विषम् ॥

सवैय्या—देश फले न विदेश फले, कछु पूर्व उत्तर में फल नाहीं। दक्षिण पश्चिम माहि नहीं फल, नाहि अहै सरिता तट माही॥ बैठन नाहि फले जग में, अरु नाहि फले रटनों जग माही। और फले नहीं को जग में, कृत पुण्य फले द्रुम ज्यों ऋतु माही॥

कर्म गति टारी नाहिं टरे॥ ॥ टेक ॥
गुरु वशिष्ठ महामुनि ज्ञानी, गिन गिन लगन धरे।
सीता हरण मरण दशरथ को, वन-वन गम फिरे॥ करम

दृष्टान्त नं०४—एक साहूकार था जिसका कोई ऐसा पाप कर्म उदय हुआ, जिससे उसका सब धन नष्ट हो गया और वह जगल से लकड़ी बीन २ कर लाता और उनको बेचकर अपना निर्वाह करता एक दिन जगल में लकड़िया बीनता फिरता था, दैव योग से भाग्यदेव और लक्ष्मी भी विचरते हुए उसी जगल में आए लक्ष्मी ने भाग्यदेव से कहा देखो इस पुरुष के पास जब तक मैं

थी वह आनन्द करता था और अब मेरे बिना इसकी यह दशा हो रही है। ऐसा सुनकर भाग्यदेव ने कहा हे लक्ष्मी, तुम कुछ नहीं कर सकती, यदि कर सकती हो तो अब इसको साहूकार बना दो, तब लक्ष्मी ने उस पुरुष को बुलाकर दो लाल बहुमूल्य के दे दिये, उसने लेकर अपनी जेब में डाल लिये और घरको चल पड़ा। रास्ते में प्यास लगी, जब नदी में झुक कर पानी पीने लगा, तो दोनों लाल नदी में गिर पड़े और उनको एक मछली ने निगल लिया, बहुत खोज करने पर भी वह उसे न मिले, तब पश्चाताप करता हुआ घर चला गया, जब दूसरे दिन फिर जंगल में लकड़ी लेने गया तब लक्ष्मी ने पूछा, अब क्यों लकड़ियाँ लेने आया, उसने सारा हाल कह सुनाया, फिर लक्ष्मी ने नौलखा हार दिया, उसने लेकर पगड़ी में रख लिया, और आनन्द मग्न चला जा रहा था, एक चील की दृष्टि उस हार पर पड़ी और तुरन्त ही झपटा मार कर उसे ले गई, वह पश्चाताप करता हुआ घर चला गया, तीसरे दिन फिर जंगल में लकड़ियाँ लेने गया और लक्ष्मी के पूछने पर उसने सारा हाल कह सुनाया तो लक्ष्मी ने एक मुहरों की थैली देदी और कहा इसको संभाल कर ले जाना। वह बोला अब तो इसको नहीं छोड़ूँगा, जब घर जा रहा था तो बड़े जोर की लघुशंका लगी परन्तु

दौडता २ घर पहुँच गया. अङ्गनें ही अपनी स्त्री को पुकार कर कहा न सभाल और थली रखकर लकडीयों को चला गया उसकी स्त्री उस समय घर म नहीं थी, उसकी बात की पडोसिन ने सुना और जाकर देखा तो सुखे की थली पडी थी. जल्दी से उठालाई, जब यह पुरुष घर आया तब तक उसकी स्त्री आगई थी, उससे पूछा, थली रखली थी! स्त्री ने उत्तर दिया मने तो देखी भी नहीं। यह सुन पश्चाताप करने लगा। जब फिर लकडियाँ लने गया, तो लक्ष्मी के पूछने पर उसने सारा समाचार सुना दिया, तब भाग्यदेव ने कहा हे लक्ष्मी तुमने अपना पूरा बल लगा लिया अब बताओ लक्ष्मी ने कहा—यह बेचारा बडा दु खी हो रहा है अब आपही कृपा करें।

तब भाग्यदेव ने केवल दो पेसे दिये, जब पेसे लेकर चला तो मार्ग में मछलियाँ बिकती थी. उसने एक मछली मोल ले ली फिर विचार किया कि कुछ सूखे इन्धन ले चलूँ, इधर उधर देखा तो एक पेड पर एक घोसला दिखाई दिया, जब उपर चढा तो नौलखा हार पडा देखा उसने उसे उठा लिया और आनन्द में मग्न हुआ घर आया, दरवाजे के अन्दर घुसते ही कहा मिल गया है मिल गया है , जब भाग्य जाग्रत हो जाता है, तो गया हुआ धन भी मिल जाता है. इस बात को पडोसिन ने

भी सुना और मनमें विचारा इनको कुछ पता लग गया है, यदि यह पुलिस लाकर हमारे घर की तलाशी करवावें तो हमारी बदनामी होगी—यह विचार कर वह पीछे की ओर से थैली उसके घर के अन्दर डाल गई, जब मछली को चीरा तो दोनों लाल उसके पेट से निकल आये, देखो जब तक भाग्य में न था तब तक पदार्थ प्राप्त हुए भी नष्ट होते रहे और जब भाग्योदय हुआ तो नष्ट हुए पदार्थ भी प्राप्त हो गये, इससे सिद्ध हुआ कि सबको अपने किये कर्मों के अनुसार ही धन प्राप्त होता है।

प्र० नं० ५—कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥ गी. अ. २–४७

भा०—तेरा कर्म करने मात्र में ही अधिकार होवे, फल में कभी नहीं और तू कर्मों के फल की वासना वाला भी मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी प्रीति न होवे।

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥ गी. २ ४८

भा०—हे धनंजय! आसक्ति को त्याग कर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर यह समत्वभाव ही योग नाम से कहा जाता है। गी. अ. २ श्लो. ४८

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्य कर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृति जैर्गुणैः ॥ गी अ. ३–५

भा०—तथा सर्व कर्मोंका स्वरूप से त्याग हो भी नहीं सकता, क्योंकि कोई भी पुरुष किसी काल में क्षण मात्र भी बिना कर्म किये नहीं रहता है, निस्सन्देह सब ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए गुणों द्वारा परवश हुए कर्म करते है ।

नियत कुरु कर्मत्वं कर्मज्यायो ह्यकर्मणः ।
शरीर यात्रापि च ते न प्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ गी. अ. ३–८

भा०—इसलिए तू शास्त्र विधि में नियत किए हुए स्वधर्म रूप कर्म को कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है, तथा कर्म न करने से तेरा शरीर निर्वाह भी नहीं सिद्ध होगा ।

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोक सग्रह मेवापि सपश्यन्कर्तु मर्हसि ॥ अ ३–२०

इस प्रकार जनकादि ज्ञानीजन भी आसक्ति रहित कर्म द्वारा ही परम सिद्धि को प्राप्त हुए है, इसलिए लोक सग्रह को देखता हुआ भी तू कर्म करने को ही योग्य है।

यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदे वेतरो जनः ।
न यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥ अ. ३–२१

मा०–क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष जो २ आचरण करते है

अन्य पुरुष भी उसके ही अनुसार कार्य करते हैं। वह पुरुष जो कुछ प्रमाण कर देता है लोग भी उसके ही अनुसार चलते हैं।

कायेन, मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वात्मशुद्धये ॥ गी.अ.५-११

भा०–इसलिये निष्काम कर्मयोगी ममत्व बुद्धि रहित केवल इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर अन्तःकरण की शुद्धि के लिये कर्म करते हैं।
होय सोई जो राम रच राखा क्या,कोइ तर्क बढ़ावै साखा॥

यद्धात्रा निज भाल पट्ट लिखितं स्तोकं महद्वाधनम् ।
तत्प्राप्नोति मरुतस्थलेपिनितरां मेरौततोनाधिकम् ॥
तद्धीरो भववित्तवत् सुकृपणां वृत्तिं वृथा मा कृथाः ।
कूपे पश्यपयोनिधावपि घटो गृह्णातितुल्यं जलम् ॥

भा०–जो धन अपने भाग्य में होता है वही मिलता है थोड़ा हो या अधिक हो, वह मरुस्थल में भी मिलेगा; सुमेरू पर्वत में भी जावो तो अधिक नहीं होगा, इससे पुरुषों को धैर्य्य करना चाहिये, कृपण दुष्ट मनुष्य मूर्ख जो धनवान् है, उनके आगे दीन होकर याचना न करनी चाहिये देखो घड़े का जितना आकार है उतना ही जल होता है चाहे कुए से भरो वा समुद्र से भरो।

दो०— पहिले बनी प्रारब्ध, पाछे बना शरीर ।
तुलसी यह आश्चर्य है, मन नहीं बांधे धीर ॥

दृष्टान्त नं० ५—एक ब्राह्मण मन्दिर में रामायण की कथा किया करता था, उस मन्दिर में श्री रामचन्द्र जी और श्री हनुमान जी की मूर्ति थी वहां कथा सुनने वाले एक दो ही कथा प्रेमी जाते थे, लोगों ने कहा महाराज, लोग तो आते नहीं आप कथा किसको सुनाते हो और आपको प्राप्त क्या होगा, ब्राह्मण ने कहा सब के दाता राम हैं, मैं उनको ही कथा सुनाता हूँ और जो कुछ मेरे प्रारब्ध में होगा वह अवश्य भगवान् कहीं न कहीं से दिला ही देंगे, इस प्रकार कथा करते २ एक वर्ष हो गया, कथा समाप्ति से एक दिन पहले श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति से शब्द हुआ हनुमान, इस ब्राह्मण ने मेरे भरोसे पर यहाँ कथा बाँची है, इसको कुछ देना चाहिये, हनुमान जी बोले जो आज्ञा, भगवन् ! एक हजार रुपये इसको दे देना, इस वार्ता को एक साहूकार ने मन्दिर के पास स्नान करते समय सुना, उसने ब्राह्मण के घर जाकर कहा कि हमारे साथ कथा के चढ़ावे का पाँच सौ रुपये में ठेका करलो, हम तुमको पाँच सौ रुपये दे देंगे जो चढ़ावा चढ़ेगा, वह चाहे ज्यादा हो या कम हमारा होगा ।

ब्राह्मण ने कहा मुझे स्वीकार है परन्तु रुपये पहिले

देदो, साहूकार ने पाँच सौ रुपये दे दिये। जब दूसरे दिन कथा की समाप्ति का समय हुआ तो साहूकार भी जा बैठा परन्तु चढ़ावा कुछ न चढ़ा; तब वह ब्राह्मण कथा समाप्त कर अपने घर चला गया, और साहूकार ने हनुमान जी की मूर्ति को लात मारी और बोला तुम झूठे हो; उसका पाँव तुरन्त ही मूर्ति मे चिपक गया, दूसरी ओर श्री रामचन्द्र जी की मूर्ति से शब्द हुआ, हनुमान ! ब्राह्मण कथा समाप्त करके चला गया ? कुछ उसको दिया या नहीं ? हनुमान हे भगवन ! पाँच सौ रुपये तो दिलवा दिये हैं और पाँच सौ का आसामी पकड़ा हुआ है, यदि वह पाँच सौ रुपये देगा तो छूटेगा। ऐसा सुनकर साहूकार ने अपने घर सन्देशा भेजा कि पाँच सौ रुपये ब्राह्मण को और देदो, उन्होंने रुपये ब्राह्मण को दे दिये, और मूर्ति ने साहूकार की लात छोड़ दी, तब उसने निश्चय किया कि भगवान् की वाणी सची है। इससे सिद्ध होता है कि जो ईश्वर पर भरोसा करता है उसको अवश्य ही अन्तर्यामी किसी न किसी प्रकार धन पहुँचा देते हैं। इस पर कथन किया है।

प्र.नं.६ सवैया:—हो निश्चिन्त करो मत चिन्ता, चोंच दई सोई चिन्त करेगो। पाऊं पसार पर्यो किं न सोवत। पेट दयो सोई पेट भरेगो। जीव जिते जल में थल में, पुनि पाहन में

पहुँचाई धरेगो। भूखोभूख पुकारत हैं नर, सुन्दर तू कहाँ भूखो मरेगो॥ गुरु जी कहते हैं:- (गु.सुख.म.पृ.पृ.२=१)
मानुप की टेक वृथा सबजान, देवन को एको भगवान।
जिसके दिये रहे अघाय बहुर न तृष्णा लागै आय॥

मू०—उपर्यु परलोकस्य सर्वेगन्तुँ ममीहते।
यततेच यथाशक्तिर्नच तद्वर्तते तथा॥
सन्ति पुत्राः सुबहवो दरिद्राणामनिच्छताम्।
नास्ति पुत्रः स्मृद्धानां विचित्रं विधिचेष्ठितम्॥
दृश्यते हि युवैवेह विनश्यन् वसुमान् नरः।
दरिद्रश्च परि क्लिष्ट शतवर्षो जरान्वितः॥

भा०—बड़े से बड़े होने की सभी लोग इच्छा करते हैं, जितनी २ शक्ति है उतना प्रयत्न भी करते हैं, परन्तु इच्छानुसार सुख किसी को नहीं होता॥ दरिद्रियों को सन्तान की ज्यादा २ इच्छा भी नही होती उनके बहुत से पुत्र हो जाते हैं, धनी पुरुष एक पुत्र की इच्छा करते हैं सो भी पूरी नही होती कर्मगति विचित्र है। राजा व धनवान नर युवावस्था में ही मृत्यु पाते हैं अनेक रोगों से पीड़ित हुए दरिद्री तुरन्त मरना चाहते हैं वे सौ वर्ष तक भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते॥

मू०—अघटित घटनानि घटयति, घटित घटिता निर्दु घटं करोति। विधिरेवता निघटयति यानि पुमान्न विचिन्तयति॥

भा०—जो न् होने वाली घटना हो उसको घटित कर देता है। होने वाली होने नहीं पाती। दैव ऐसी रचना करता है जो किसी पुरुष के विचार में न आ सके। गुरु नानक देव कहते हैं। (रामकली चार म. ३-६४५)

मू०—सहस्र दान दे इन्द्र रोआया, परशुराम रोवै घर आया। अजेसु रोवै भिखा खाय, ऐसी दरगह मिलै सजाय। रोवहि राम निकाला भया, सीता लक्ष्मण विछुड़-गया, रोवै दहसिर लंक गवाय, जिन सीता आंदी डौरू वाय, रोवहि पाण्डव भए मजूर, जिनके स्वामी रहत हदूर। रोवहि जनमेजा खुयगया, एकी कारण पापी भया। रोवहि शेख मसायक पीर, अन्तकाल मत लागै भीड़। रोवहि राजे कंन पड़ाय, घर २ मांगहि भीखा जाय। रोवहि कृपण संचहि धन जाय, पंडित रोवहि ज्ञान गवाय। बाली रोवै नांहि भर्तार, नानक दुःखीया सब संसार॥

कथा नं०६—जब श्री गुरू नानक देव जी सब घर में आये तब यह शब्द उच्चारण किया था "नानक दुःखीआ सब संसार" इतनी पंक्ति सुनकर मरदाना शहर में गया और एक बड़ा साहूकार देखा जो बड़ी गद्दी तकिया लगाकर बैठा था, उनके ऊपर सेवक चंवर हिला रहे थे, और कई हाथ जोड़कर खड़े थे। बड़ा दर्शनीय मकान था, अनेक जिसमें मुन्शी हिसाब लिख रहे

हैं और रुपयों के नोटों की थैलियाँ आगे पड़ी हैं. इत्र छिड़के हुये हैं। भाव यह कि सुख की सब सामग्री मरदाने ने देखी तब मरदाने के चित्त में सन्देह हुआ, गुरु जी कहते हैं, संसार में सब दुःखी हैं । इसके समान तो कोई सुखी नहीं तब गुरु जी के पास आकर कहने लगा महाराज आप कहते हैं सब दुःखी हैं यह देखो कैसा सुखी है, तो गुरु जी कहने लगे इसको सुखी न समझ, इसके समान दुःखी कोई नहीं है। चाहे पूछकर देखलो।

मरदाना उसके पास गया और कहा आप से एकान्त में बात पूछनी है। सेठ ने कहा बहुत अच्छा। फिर एकान्त में जाकर मरदाना ने कहा—हमारे गुरु जी कहते हैं, इस जैसा कोई दुःखी नहीं मेरे को तो सुखी मालूम होते हो अतः सत्य कहो, तब धनी ने कहा आपके गुरु जी ने जो कहा है वह सत्य है मेरे जैसा कोई दुःखी नहीं, मरदाना बोला सुनाओ तुम्हें क्या दुःख है। तब वह धनी मरदाने को अपना दुःख सुनाने लगा मैं अपने माता पिता का एक ही लड़का था, मेरी शादी एक शाहूकार के घर बडी सुन्दर विदुषी कन्या के साथ हो गई। हम दोनों का अतुल प्रेम हो गया, माता-पिता के मरने के बाद स्त्री बीमार हो गई और मेरे सामने रोने लगी।

मैंने उससे पूछा क्यों रुदन कर रही हो, उसने कहा

मैंने आपकी सेवा की है किन्तु कोई सुख नहीं लिया, परन्तु काल ने आकर घेर लिया, इसलिये रोती हूँ, तब साहूकार कहने लगा यह वचन सुनकर मुझे भी रोना आ गया, तब स्त्री ने कहा आपका रोना तो झूठा है, मैं मर जाऊँगी तो आप दूसरी शादी कर लेंगे, यह तो स्त्रियों की ही लज्जा होती है, पति के मर जाने पर पति के घर में ही सम्पूर्ण आयु व्यतीत कर देती हैं, दूसरी शादी नहीं करतीं, मैंने भी उस समय मोहवश होकर कह दिया, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ तुम्हारे मरने के बाद दूसरी शादी नहीं करूँगा, तब मेरी स्त्री ने कहा यह कब संभव है, अवश्य आप दूसरी शादी करोगे तब मैंने कामुक प्रेम वश होकर उसी समय अपनी शिश्ना-इन्द्री काटदी उधर मेरी स्त्री उपचार द्वारा धीरे २ अच्छी हो गई, रोग निवृत हो गया, पदार्थ खाने से शरीर पुष्ट हो गया, काम वासना-उदय हुई और मेरे सामने पर-पुरुषों से प्रीति करने लगी। मैंने बहुत प्रकार से समझाया और यह भी कहा देख मैंने तेरे प्रेमवश अपना जीवन बेकार बना लिया, भारी कष्ट उठाया है अब तुझे यह कुकर्म न करना चाहिये, इससे तेरा लोक परलोक नष्ट होगा, घोर नरक में दुःख मिलेगा, परन्तु वह नहीं समझी अब मेरे सामने कुकर्म हो रहा है, मैं बहुत दुःखी हूँ अब न इसे त्याग सकता हूँ न मार सकता हूँ मैं

बहुत दुःखी हूँ क्या करूँ कहाँ जाऊँ जी चाहता है किसी उपाय से मर जाऊँ तो अच्छा है, बाहर के भोग पदार्थ मुझे सुखदाई प्रतीत नहीं होते।

इसलिये मेरे समान संसार में कोई दुःखी नहीं, आप अपने गुरु जी से कहियेगा क्या करूं मुझे इस दुःख से छुड़ा दें यह श्रवण करके मरदाने ने श्री गुरु-महाराज से प्रार्थना की, हे महाराज इसका दुःख दूर करने की कृपा कीजिए तब श्री गुरु जी ने सेठ-सेठानी को अपने पास बुलाया। पहले सेठ जी को यही शब्द सुना करके समझाया फिर उसकी स्त्री को पतिव्रत धर्मोपदेश देकर यह भी बताया तुम्हें अपने इस कुकर्म का फल घोर नरक भोगना पड़ेगा, उसको ऐसे समझा बुझा करके स्वधर्म में स्थित किया। अब सेठानी ने अपने पति से कुकर्म की क्षमा माँगी और आगे के लिये सेवा में तत्पर रहने की प्रतिज्ञा की, इस प्रकार दोनों को सुखी किया तथा कर्म फल भोगने में सम रहने का उपदेश दिया, और कहा कर्म फल सबको अवश्य भोगना पडता है। ऐसे दृष्टान्तों द्वारा समझाया, सहस्र दान दे इन्द्र रुआया। अब महर्षि गौतम जी ने देवराज इन्द्र को अपनी स्त्री अहल्या के साथ संगम करता देखकर यह शाप दिया कि तू एक भग पर मोहित हुआ है, जा तेरे शरीर पर ऐसे हजार भग हो जावें, तब इन्द्रदेव लज्जित

होकर अपना राज छोड़ बन को चला गया और रोने लगा इस पर गुरु जी कहते हैं—

गौतम तपा अहल्या स्त्री, तिस देख इन्द्र लुभाया। सहस्र शरीर चिह्न भग हुए, ता मन पच्छोताया ।प्र.-द.म.१३४३.

॥ इस प्रकार इन्द्र को कर्म फल भोगना पड़ा ॥

परशुराम रोवै घर आया, परशुराम के पिता का नाम जमदग्नि और माता का नाम रेणुका, रेणुका की छोटी बहिन सहस्र बाहु के साथ बिवाही थी, एक दिन राजा सहस्रबाहु सेना सहित शिकार खेलता हुआ जमदग्नि के स्थान में पहुँचा तो जमदग्नि ने कहा, आज आप और आपकी सब सेना का भोजन हमारे यहाँ होगा, तब सहस्र-बाहु ने कहा आप ऋषि हैं। आपके पास इतनी सामग्री कहाँ है। ऋषि ने कहा नहीं हम जरूर भोजन करायेंगे, तब जमदग्नि ने स्वर्ग से कामधेनु गौ बुलाकर घोड़ों सहित, सबको यथेच्छ भोजन खिलाया। जब सहस्रबाहु ने काम-धेनु का महत्व देखा तो ऋषि से वह गौ माँगी, तब जम-दग्नि ने कहा यह स्वर्ग में रहने वाली इन्द्र की कामधेनु गौ है मैं इसको दे नहीं सकता तब सहस्रबाहु ने कोपकर, जमदग्नि को मार दिया, पीछे रेणुका सहस्रबाहु को बुरा-भला कहने लगी, तो उसको भी बाँण से मार दिया। मरते समय परशुराम को याद किया। परशुराम आकर

माता-पिता को मरा देखकर रोने लगा और प्रतिज्ञा की, इन क्षत्रियों ने घोर अत्याचार किये हैं, इसलिये मैं पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित कर दूँगा, इस प्रतिज्ञानुसार परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियों से रहित किया था—

"अजै सु रोवे भीखा खाय।"

अज राजा भी भिक्षा खाकर रोया था, इसकी कथा दो तरह से सुनी जाती है, एक तो यह राजा अज अपनी अश्वशाला में खड़ा था और एक महात्मा जोकि कई दिन से भूखे थे, राजा से भोजन के लिये कहा, तो राजा ने उत्तर दिया अब तो भोजन का समय नहीं, सन्त ने कहा जो समय पर उपस्थित है वही ददो, राजा ने कहा इस समय तो यह घोड़ों की लीद है, लेनी होतो लेलो सन्त जी ने कहा अपने हाथ से दोगे तो इसे भी ले लूँगा। राजा ने लीद की अजली भरकर संत जी को दे दी सन्त जी ने अपनी कुटिया के बाहर पास ही फेंक दी, तो वह दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगी, एक दिन राजा अज को शिकार खेलते हुये प्यास लगी, सन्त जी के आश्रम में पहुँच गया लीद देखकर राजा ने पूछा, महाराज इतनी लीद क्यों इकठ्ठी कर रखी है तो ऋषि ने कहा, आपका ही दान फलीभूत हो रहा है। पूछने पर सब कथा लीद भिक्षा की सुनाई और कहा यह लीद आपको खानी पड़ेगी, तब राजा

भयभीत हो कर शरणागत हुआ, चरणों में गिर पड़ा तब सन्त जी को दया आई और कहा अच्छा तुम अपनी निन्दा कराओगे तो व्याज निवृत हो जावेगा, परन्तु मूल लीद जरूर खानी पड़ेगी, आखिर राजा ने लोगों को दिखाने के लिये कोई निन्दनीय कर्म किया, जिससे निन्दा हुई, इस तरह सूद की लीद निवृत कर ली, मूल की जितनी लीद थी उसको खाता हुआ रोता है और पश्चाताप करता है कि मैंने ऐसा क्यों किया।

• दूसरी कथा का संक्षेप यह है—राजा अज की स्त्री पतिव्रता थी, एक दिन राजा से कहा मैं आपके मरने पर इस शरीर को जीवित न रखूँगी, एक दिन राजा उसकी परीक्षार्थ शिकार को गया और मृग के रुधिर से अपना वस्त्र भिगोकर कहला भेजा कि राजा को शेर ने मार दिया, रानी यह वचन सुनके ठण्डी श्वास लेकर मर गई। सतीआं एह न आखीअन जो मड़ियाँ लग जलंन। नानक सतीआं जाणीअन जे विरह चोट मरंन॥ गुरुदेव वाणी॥ राजा ने आकर देखा कि स्त्री मरी पड़ी है तो ऐसी पतिव्रता स्त्री के वियोग से दुःखित होकर रोने लगा, और पुत्र को राज्य देकर वन को चला गया और भीख माँगकर खाता रहा स्त्री के वियोग में रोता रहा। तीसरी कथाः—इन्दुमती अप्सरा अज राजा के पास स्त्री

चनकर रही थी, वह मुनि के शाप के कारण, स्वर्ग नहीं जा सकती थी, जब स्वर्ग के फूल मिलें तो स्वर्ग जा सकती थी, एक दिन नारद मुनि स्वर्ग के कल्प वृक्ष के फूलों की माला वीणा में पहनाए हुए आरहे थे, राजा अज इन्दुमती अप्सरा से हाथ में हाथ मिलाकर घूम रहे थे, इतने में नारद जी आ गये तो इन्दुमती ने नारद जी से प्रार्थना की कि माला मुझे देदो। तब नारद जी ने वह माला उसे दे दी, इन्दुमती स्वर्ग को चली गई, इन्दुमती के चले जाने पर अज ने बडा विलाप किया और मूर्छित हो गया, वशिष्ठादि अनेक मुनियों ने बहुत समझाया परन्तु सब निष्फल हुआ।

नमलिन चेतस्युपदेश बीजप्रोहोऽजवत्। (सां.शा.अ.४-२६)

अर्थ—अज राजा की तरह मलिन चित्तों में महात्माओं का उपदेश रूप बीज पैदा ही नहीं होता इस प्रकार राजा अज भी रोता रहा, परन्तु भावी को मिटा नहीं सका।

"रोवै राम निकाला भया, सीता लक्ष्मण बिछुड गया।"

श्री रामचन्द्र जी भी सीता के चुराये जाने पर विलाप करने लगे और लक्ष्मण को मूर्छित देखकर भी रोने लगे कि हे तात! लक्ष्मण उठो मेरे वचन को सत्य करो, क्योंकि मैं विभीषण को लंकेश कह चुका हूँ और मेघनाद तथा रावण जबतक जीवित हैं तब तक विभीषण

को लंका का राज्य कैसे दे सकता हूँ ? मेरा वचन झूठा हो जायेगा, इसलिये मिथ्या भाषण के पाप का मेरे को सब से अधिक दुःख है, ऐसे लक्ष्मण को देखकर सब दुखी हो रहे थे।

चौ०—लक्ष्मण देख सबै बिलखाने, प्राण आपने संग न जाने।
रोवत नैनन जल न रहहीं, तब रघुवीर बीर सो कहहीं॥
तुमरो मरण धीर रण गाढ़े, रहे छाड़ इह अवसर ठाढ़े।
अब तुम सब में प्रगट जनायो, वन फल खात बहुत दुःख पायो॥
सीता हरण आदि दुःख मानो, तांते सुरपुर कौन पिआनो।
मो विन भोजन पीवत न पानी, वही मीत सुन प्रीति कहानी॥
गुप्त सोच जो मन में रहई, रोवत राम सु तोसों कहई।
मम हित लागि तज्यो पितु माता,
सह्यो विपिन हिम आतप वाता।
सो अनुराग कहां अब भाई,
उठहु विलोकि मोरि विकलाई॥
मात को सोच न तात को सोच,
न सोच पिता सुरधाम गये को।
सीता हरी कुछ सोच नहीं,
नहीं सोच जटायु के पंख जरे को॥
भरत भूपाल को सोच नहीं, नहीं सोच हमें वनवास भये को।
बारहिं बार विलोकिहिं प्रभु, इक सोच विभीषण वाक दये को।

इस प्रकार रामचन्द्र जी भी रोये।

"रोवै दह सिर लङ्क गवाई, जिन सीता आन्दी डौहू वाई।

इसी प्रकार रावण अपने पुत्रों-समेत लंका को नष्ट कराकर रोया था और पाण्डव भी रोये यह कथा लिख-आए हैं। इसी प्रकार राजा जनमेजय भी रोया था, उसकी कथा इस प्रकार है व्यास जी के पास एक दिन जनमेजय ने आकर कहा कि महाराज! आपके और श्री कृष्णचन्द्र के होते भीष्मपितामह द्रोणाचार्य और धर्मात्मा पांडवों के के होते यह महाभारत का युद्ध क्यों हुआ? समझौता क्यों न कराया? यह सुनकर व्यास जी कहने लगे हे राजन्! भावी ऐसी ही थी जो किसी से दूर नहीं हो सकती।

राजा ने कहा दूर क्यों नहीं हो सकती? शास्त्रों में जो विचार लिखे हैं वे सब भावी दूर करने में समर्थ हैं। व्यास जी ने बहुत समझाया भावी बलवान् है, परन्तु राज्य मद में आकर अपने पितामह व्यास जी के वचन न माने। तो व्यास जी ने कहा अच्छा तुम्हारे पर भावी आयेगी और जितना तुम्हारे को विचार पुरुषार्थ करना हो कर लेना भावी न हटेगी, मैं तुम्हें बता देता हूँ। तुम एक यज्ञ करोगे और तुम्हारी रानी का कपड़ा वायु से उड़ेगा रानी को नग्न देखकर ब्राह्मण हँसेंगे तुम क्रोध से उन अठारह ब्राह्मणों को मार दोगे, यह तुम्हारे पर भावी

आयेगी तुम्हारा क्रोध करना और ब्राह्मणों को मारना योग्य नहीं है। परन्तु तुम अवश्य मारोगे किसी के मना करने पर भी न मानोगे, अच्छा मै अब तेरे को बतलाता हूँ, इतने वर्ष की अवस्था में अमुक माम अमुक दिन तुम शिकार खेलने जाओगे, मैं तुम से कहता हूँ तुम अपने विचार बल से शिकार के लिये मत जाना परन्तु भावी बड़ी बलवान् है, इसलिये तुम अवश्य जाओगे, अच्छा अगर जाओ भी तो उत्तर दिशा को मत जाना, यदि उत्तर दिशा में भी जाओ, तो समुद्र के किनारे मत जाना, अगर समुद्र के किनारे पर भी पहुंच गये तो समुद्र से जो घोड़ा निकलेगा वह घर न लाना, अगर उसे भी ले आओ तो उससे यज्ञ न करना, अगर यज्ञ भी करो तो ब्राह्मणों को मत मारना, परन्तु भावी ने तुमसे ये सब काम अवश्य कराने हैं एक दिन राजा को शिकार खेलने का संकल्प हुआ, मन में विचारा कि व्यास जी ने उत्तर दिशा में जाने को मना किया है, तो उस तरफ न जाऊंगा, परन्तु भावी-वश उत्तर दिशा को ही चल पड़ा, तात्पर्य यह है जो कुछ व्यास जी ने कहा था वैसा ही हुआ, भावी दूर न हुई, और अठारह ब्राह्मणों के मारने से अठारह प्रकार का शरीर में कुष्ठ हो गए, उससे दुःखी हो गया था। प्र.म. १ अ८.पृ.२३४४.

राजा जनमेजा दे मती, वरजिव्यास पढ़ाया।
तिन करिजग अट्ठारह पाए, किन्त न चले चलाया॥

अठारह प्रकार के कुष्ट रोग से दुखित होकर व्यास जी से कुष्ट निवृत्ति का उपाय पूछा तो व्यास भगवान् ने कहा कि महाभारत श्रवण करो और हर एक बात में सत्य वचन कहते जाना, तब कुष्ट रोग दूर होगा, तो राजा महाभारत श्रवण करने लगा, उसके सब कुष्ट दूर हो गये, एक जगह आकर सत्य वचन न कहा, व्यास जी ने कहा भीमसेन के फेंके हुए हाथी अभी तक वायु चक्र में पड़े आकाश में भ्रमण कर रहे हैं, तब जनमेजय ने कहा, यह कभी नहीं हो सकता और सब सत्य है, परन्तु यह बात बिल्कुल गलत है, तो व्यास जी ने बहुत समझाया, परन्तु न माना, इस जगह सत्य वचन न कहने से एक कुष्ट बाकी रह गया।

रोवै जनमेजा खुय गया, एकी कारण पापी भया॥

इस प्रकार जनमेजय राजा भी रोया था, और शेख पीर जिज्ञासु जन्म-मरण के दुःख से रोते ही रहे। भर्तृहरि आदि राजा की कथा एक दिन सन्ध्या के समय किसी राज महल में सङ्गमर्मर के फर्श पर भर्तृहरि जी घूमते थे, वहां किसी ने पान खाकर के सङ्गमर्मर पर थूक फेंकी थी, उसमें बुदबुदा सा बना हुआ था, राजा ने उसको कीमती लाल जानकर उसमें हाथ डाला, तो लोगों ने

हँसी उड़ाई; इससे भर्तृहरि को महान् कष्ट हुआ, वह इस प्रकार बोला:—

रतन जड़त मन्दिर तजे और सखियन के साथ।
त्रिग मन धोखे लाल के भरे पीक सो हाथ ॥

एक दिन भर्तृहरि जी ने किसी जगह से बड़े चटपटे खटाईदार, तीक्ष्ण स्वादिष्ट भोजन खाये, रात्रि में स्वप्न-दोष हो गया, तो बहुत रोने लगा, कि न राज का ही सुख भोगा और न योग का ही आनन्द आया, कामदेव अब भी नहीं छोड़ता; इसलिए घर को चलें ऐसा मन में विचार कर घर को चल पड़ा। तब गोरखनाथ जी ने विचारा इसको उपदेश देकर गृहस्थ रुपी कूप में गिरने से बचाना चाहिये, गोरखनाथ जी स्त्री का स्वरूपधारण कर गागर ले कुए से पानी भरने चले, पानी गागर में जोर से पड़ने से गागर कम ही रही, फिर भरें तो भी कम ही रही; इस तरह देखकर भर्तृहरि जी ने कहा, हे देवी! पानी जोर से पड़ने के कारण गागर कम ही रह जाया करती है गागर को अलग करलो क्योंकि जितना अधिक जल पड़ता है उतना ही निकल जाता है। तब स्त्री स्वरूप गोरख ने कहा तू क्यों घर को जाता है? जितने अधिक चटपटे भोजन खायेगा उतना ही वीर्य निकलेगा। तब भर्तृहरि जी समझ गये कि गोरखनाथ जी ने ही स्त्री रूप में दर्शन दिया है। भर्तृहरि

जी चरणों में गिर पड़े और नमस्कार किया तब गोरख-नाथ जी अपने असली रूप में हो गये और भर्तृहरि को वापस साथ ले गये, इसलिये भर्तृहरि आदि राजा भी रुदन करते थे और धन को इकट्ठा करने वाले कृपण धन के नाश होने पर रोते हैं। रोवे कृपन संचे धन जाय॥

खाय न खरचे सूम धन अन्त चोर ले जाय।
पाछे जिऊ मधुमक्खिका हाथ मले पछताय॥

जैसे एक कृपण साहूकार था, रात्रि को दीपक भी नहीं जलाने देता था, कहीं तेल का खर्च न हो जाय और कहीं घूमने नहीं जाता था कि जूता न घिस जावे, तात्पर्य यह है कि हर एक बात में संकोच करता था। चोरों को पता चला कि अमुक साहूकार के पास धन बहुत है रात्रि को आकर उसका सब धन छीन कर ले गये जैसे मक्खियां शहद की रक्षा करती हैं तो कोई भील आदि आकर शहद को निकाल लेते हैं तो शहद के चले जाने पर मक्खियों पश्चाताप करतीं हैं, उसी तरह यह सेठ चोरों से धन लुटवा कर पश्चाताप करता २ मर गया। पंडित लोग शास्त्रार्थ में पराजय पाकर और अपनी शान को गंवाकर रोते हैं। एक शास्त्री पंडित था वह शास्त्रार्थ में सब को विजय करता हुआ राजा भोज की सभा में

आया, तब राजा भोज ने ज्योतिषियों को बुलाकर पंडित जी के पराजय करने की विधि पूछी तो ज्योतिषियों ने कहा यदि कोई जाति का तेली एक आंख वाला हो तो वह इसको जीतेगा। क्योंकि यह पंडित उस तेली का पूर्व जन्म का ऋणी है और ऋणी की हमेशा नीची आँख रहती है, ऋण दाता का उस पर प्रभाव पड़ जाता है इस-लिये यह पंडित इससे ही पराजय होगा और कोई पंडित इस पर विजय पाने को समर्थ नहीं है। ढूंढते २ बात करने में चतुर और चालाक एक गंगू नाम का तेली एक आँख का काना मिल गया। गंगू तेली को बुलाकर राजा ने कहा तुम इस पंडित के साथ शास्त्रार्थ करो चाहे हार हो चाहे जीत हो मैं तेरे को बहुत इनाम दूँगा। तब राजा ने उस तेली को अपनी तरफ से कपड़े, जूता आदि सब सामान दिया और दिन निश्चय कर पंडित जी को कह दिया अमुक दिन सभा लगेगी तो उसी निश्चित दिन में राजा ने बहुत भारी सभा लगाई।

जब गंगू तेली अपना जूता रुमाल में लपेट कर कोखमें दबाकर शास्त्रार्थ के लिये पंडित जी के सामने गद्दी पर आकर बैठ गया और सभासदों ने सत्कार किया। तब रुमाल में लपेटे हुये जूते को देखकर पंडित जी ने कहा—किमिदं पुस्तकम्? गंगू ने कहा—"कंटक चूर्ण

मिदं" पंडित सुनकर डर गया और मन में विचारा कि कोई कण्टकों को चूर्ण करने वाला ग्रन्थ होगा, मैंने तो इसका नाम भी इसके ही मुख से सुना है यह सोचकर पंडित जी ने कहा, हम तो दो तरह से शास्त्रार्थ करते हैं, एक संकेत द्वारा दूसरा वाणी द्वारा पहिले संकेत से चर्चा शुरू करते हैं, तब गंगू ने कहा बड़ी खुशी से जिस तरह आपकी इच्छा हो, तदनन्तर पंडित जी ने एक अंगुली उठाई तो गंगू ने दो अंगुली उठाई फिर पंडित जी ने पांच अंगुलियाँ उठाईं तो गंगू ने मुक्का उठाया, तब पंडित जी चुप हो गये तो सब ने ताली बजाई, गंगू की जय हुई तदनन्तर पंडित जी से लोगों ने पूछा, आपने एक अंगूली के इशारे से क्या कहा था और गंगू ने क्या जवाब दिया, तब पंडित ने कहा मैंने एक अंगुली उठाई, .. एक अद्वितीय आत्मा ब्रह्म है, तो उसने दूसरी अंगुली उठा .. कहा, दूसरी माया भी साथ है, फिर मैंने पांच अंगुली .। पांच तत्त्वों से सृष्टि होती है, तो उसने पांचों को .. करके मुक्का बनाया, और कहा कि पांचों तत्त्वों के मिलने से सृष्टि होती है अलग २ नहीं तब हम चुप हुए कि बिलकुल ठीक है, फिर लोगों ने गंगू से जाकर पूछा, कि तुमने क्या समझा, और उसका उत्तर क्या दिया, तब .. ने कहा; पंडित जी ने यह कहा था तू मेरे से

शास्त्रार्थ-करने आया है तुम्हारी एक ही आंख है उसे निकाल दूँगा, तब मैंने यह समझ करके दो अंगुलियों से कहा, मैं तेरे दोनों नेत्र निकाल दूंगा। तदनन्तर उसने पाँच अंगुली उठाई तो मैंने समझा तमाचा मारेगा तब मैंने मुक्का बनाकर कहा कि तुम्हारे को इससे ठीक कर दूँगा, यह बात सुन पंडित जी बहुत दुःखी हुए इस प्रकार पण्डित लोग अपना ज्ञान खोकर रोते रहते हैं।

"वाली रोवै नाहि भरतार।"

जिसको पति न मिला और अपने किये हुए कर्म का उसको फल भोगना ही पड़ा, ऐसा पुराणों में प्रसंग आया है। एक देवीदास राजा था; उसके यहां एक सुन्दर रूपवती कन्या विद्यादेवी नाम वाली पैदा हुई, जब शादी के योग्य हुई, तो एक राजकुमार के साथ उसकी शादी होने लगी। तो फेरे लेते २ ही राजकुमार मर गया, तब पंडितों ने कहा कि जब तक वेद मन्त्रों से पूरी चार परिक्रमा नहीं होती तब तक शादी नहीं मानी जाती, फिर छः मास के बाद दूसरे राजकुमार के साथ शादी करने लगे वह भी परिक्रमा लेते २ मर गया। इस प्रकार इक्कीस पति बनाये परन्तु कोई एक परिक्रमा रहते कोई दो परिक्रमा रहते मर गया। तब राजा बड़ा दुःखी हुआ और बहुत निन्दा हुई कि राजा कि कन्या पतियों को खाने

वाली "डाईन" है। पुनः राजा ने लड़की का स्वयंवर रचा और उसमें पृथ्वी मण्डल के राजा बुलाए, मन राजा लडकी का स्वरूप देखकर मोहित हो गये, और सबने इच्छा कि यह राजकुमारी मुझको ही जयमाला पहनाए। दैवयोग से राजाओं कि आपस में बोलचाल हो गई और इस तरह बढते २ शस्त्रों से लडने लगे तो देश में हलचल मच गई, राजा की लडकी के निमित्त सब राजाओं का आपस में विरोध हो गया है तब राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा तो उन ज्योतिषियों ने कहा अगर यह कन्या आपके राज्य में रहेगी तो राज नष्ट हो जायेगा इसको वनवास देदो तब राजा उसे रथपर बैठा कर वन में छोड आया, वन में लडकी घबरा कर रोने लगी । वृक्ष के ऊपर एक तोता अपने बच्चो सहित रहता था बच्चों ने तोते से पूछा, पिता जी यह कौन है जो रो रही है तब तोते ने कहा, यह देवीदास राजा की कन्या है, और यह पूर्वजन्म की पापिन है। इसके पिछले जन्म की कथा यह है। एक चक्रवर्ती राजा के पुरोहित की यह कन्या थी। पुरोहित को इस कन्या के सिवाय और कोई सन्तान न थी, इसलिये पुरोहित कन्या की शादी करके दामाद को अपने घर में रखना चाहता था, और पुरोहित के घर में कोई लड़का रहना नहीं चाहता था । इसलिए किसी गरीब

ब्राह्मण के साथ उसकी शादी करादी, कन्या को बहुत अभिमान था इसलिये अपने पति को नौकरों के तुल्य समझती थी सत्कार नहीं करती थी, जब माता-पिता मर गये, तब वह कन्या अपनी इच्छानुसार विचरने लगी, पति ने बहुत समझाया परन्तु उसने एक न मानी। और पति को घर से बाहर निकाल कर अपनी सारी आयु व्यभिचार में ही व्यतीत की कितनी ही पतिव्रता स्त्रियों के पतियों को अपने आधीन कर रक्खा था क्योंकि इसका रूप अति सुन्दर होने के कारण, सब इस पर मोहित हो जाते थे।

इस तरह इक्कीस पतिव्रता स्त्रियों ने, जिनके पति इसने अपने आधीन कर रखे थे, शाप दिया कि तू मरकर फिर राजकन्या होगी, तेरे को पति न मिलेगा और पिता भी तेरे को राज्य से बाहर निकाल देगा, इसलिये यह इक्कीस पति मार चुकी है और स्वयंवर में भी इसके निमित्त कई राजकुमार आपस में लड़कर मर चुके हैं। जहां यह रहेगी वहां लक्ष्मी नष्ट हो जावेगी। इसलिये इसको कोई न रख सकेगा ऐसे वचन सुन कर कन्या अधिक रोने लगी तब तोते ने समझाया कर्मफल अमिट है, अब तू वन में रहकर तपस्या कर जब तेरे पाप नष्ट हो जायेंगे तब तेरे को पति मिलेगा और तुम्हारी मुक्ति

होगी। इस प्रकार से कर्मफल अमिट समझकर गुरु मुख लोग सुख दु:ख में सम रहते हैं, जैसे गुरु अर्जुनदेव जी महाराज का भाई भिखारी नाम वाला शिष्य था, गुजरात शहर पंजाब का रहने वाला था श्री गुरु अर्जुनदेव जी के पास एक शिष्य ने प्रश्न किया था महाराज जी, सुख दुःख में सम रहने वाला और ईश्वर में प्रसन्न रहने वाला आपका कोई शिष्य है तो उसका दर्शन करावो तब गुरु जी ने उसको गुजरात में भाई भिखारी जी के पास भेज दिया, उस समय भाई भिखारी मुर्दे की पालकी बना रहा था, जब वह शिष्य पहुँचा तो भाई भिखारी जी ने उसका बड़ा सत्कार किया और घर ले गया, अपने पुत्र के विवाह की सामग्री दिखाई, एक तरफ हलवाई मिठाई बना रहे हैं और सुनार भूषण बना रहे ह दरजी कपड़े सी रहे ह तात्पर्य यह है कि अनेक प्रकार विवाह की सामग्री दिखाई और लड़के की शादी तक शिष्य को घर में रक्खा। तब उस शिष्य ने पूछा यह पालकी क्यों बनाई है? यह क्या काम देगी? तो भाई भिखारी जी ने कहा कि फिर बतलायेंगे, तब बड़ी धूमधाम से शादी हुई, सम्बन्धी मित्र बहुत इकट्ठे हुए, जब शादी कराकर घर लौटे तब लड़के के पेट में दर्द हो गया और प्रात:काल होते ही मर गया। उसी पालकी में लड़के को श्मशान भूमि में ले गए

बड़ा धैर्य रखा, परमेश्वर की इच्छा में प्रसन्न रहे।

लड़के मरने का कुछ शोक न किया और उस शिष्य को कहा पालकी इसलिए तैय्यार की थी शिष्य हैरान हुआ और कहने लगा अगर आपको पहले ही पता था कि लड़का मर जायगा तो इसकी शादी क्यों कराई? इस लड़के की स्त्री को कन्या ही रहने देना था। अब यह विधवा हो गई हमेशा के लिये दुःखी रहेगी अथवा गुरु अर्जुनदेव जी से और आयु मांग लेनी थी, तब भाई भिखारी ने कहा—यह सब काम भावी ने किया है मैंने कुछ नहीं किया। भावी अमिट है इसलिये गुरु जी से भी आयु नहीं मांगी और गुरुओं से तो केवल ईश्वर नाम ही हमेशा मांगना चाहिए, अनित्य पदार्थों की याचना करनी शास्त्र विवर्जित है। हम परमेश्वर की इच्छा में प्रसन्न हैं इसलिये कोई दुःख प्रतीत नहीं होता और इसकी स्त्री भी कन्या रहने में खुश न थी संशय हो तो जाकर पूछ लो, तब उस शिष्य ने नवविवाहित स्त्री से पूछा—तुमको पति के मरने का शोक है या नहीं? तब उसने कहा मैं बड़ी प्रसन्न हूँ मेरी इतनी ही अभिलाषा थी और मेरा पूर्व जन्म का प्रयास अभी सफल हुआ है मैं अपनी और अपने पति के पूर्व जन्म की कथा सुनाती हूँ।

मैं पूर्व जन्म में राजकुमारी बड़ी विदुषी थी

ब्रह्मचारिणी थी, और यह मेरा पति बड़ा तपस्वी नैष्ठिक ब्रह्मचारी था। जीवन भर गुरु के पास रहकर विद्या पढ़े और शादी न करावे, उसे नेष्ठिक ब्रह्मचारी कहते हैं। जब मैं सोलह वर्ष की हुई तब मेरे माता-पिता ने मुझे शादी के लिये कहा मैंने मना कर दिया कि मैं ब्रह्मचारिणी ही रहूँगी। जब कुछ समय बीत गया तब माता पिता ने मुझे शादी के लिये बहुत कहा हम तेरे को अविवाहित नहीं रहने देंगे तब मैंने प्रतिज्ञा की कि स्वयंवर में उसको पति बनाऊँगी जिसके साथ नेत्र मिलाने से मेरे नेत्र डर कर दब जावें, मैं जाति का कुछ विचार न करूँगी। मेरे माता-पिता ने यह प्रतिज्ञा स्वीकार करली, जब स्वयंवर हुआ तो जिसके साथ मैं नेत्र मिलाऊँ तो मेरे नेत्र से उसके नेत्र दब जायें तो मैंने किसी को पति नहीं बनाया; फिर मैं पति की खोज में अपने माता पिता को साथ लेकर तीर्थ यात्रा करने लगी, गंगा के किनारे एक ब्राह्मण तपस्या कर रहे थे, जब इनके नेत्रों से मैंने नेत्र मिलाये तो मेरे नेत्र दब गये और मेरे माता-पिता ने भी देख लिया। कि यह इस कन्या के योग्य वर है, हम सबने इस ब्राह्मण को शादी के लिये कहा परन्तु ब्राह्मण ने न माना तब मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं भी आपको ही पति बनाने के लिये तपस्या करती हूँ एक जन्म अथवा दो जन्म बीत जावें

तो भी आपको ही पति बनाऊँगी जैसे पार्वती जी ने प्रतिज्ञा की थी।

कोटि जन्म लौ रगड़ हमारी, बरूं शंभु नत रहूँ कुमारी।

पार्वती कहती है करोड़ों जन्म तक यह हमारी प्रतिज्ञा है कि शिवजी को ही पति बनाऊँगी नहीं तो अविवाहित ही रहूँगी। आखिर इस ब्राह्मण ने नहीं माना और मैं भी उसी जगह तप में स्थित हो गई, जब मेरे को घोर तपस्या करते कुछ समय व्यतीत हुआ तब इस ब्राह्मण को अनेक ऋषिमुनियों ने और मेरे पिता राजा ने बहुत समझाया, यह आपका तीव्र भोग है, यह भोगना ही पड़ेगा, बिना भोगे दूर न होगा। जैसे नारद जी को चतुर्थ संन्यासाश्रम धारण करते समय भगवान् विष्णु ने कहा था। तुम्हारे प्रारब्ध में गृहस्थाश्रम लिखा है, आपको पति बनाने के लिये महाराजा श्री जय की पुत्री सुवर्णग्रीवा नाम वाली तपस्या कर रही है, तपस्या करके तुम्हारे को पति बनाने का वरदान भी ले चुकी है और विधाता के लेख उलटे नहीं हो सकते; इसलिये तुम पहले गृहस्थी बनो पीछे जो इच्छा हो सो करो।

> नारायणवचः श्रुत्वा हृदयेन विदूयता।
> प्रणम्य प्रययो शीघ्रं नारदः श्रीजयालयम्॥
> नारदस्तु मुनि श्रेष्ठो बाधितः पूर्व कर्मणा।

यस्ययत् प्राक्तनं विप्र तत्केन विनिवार्य्यते ॥
ब्रह्म वैवर्त पु. कृष्ण जन्म खण्ड अ. १२.

नारायण के ऐसे वचन सुनकर नारद जी बड़े दुःखी हुए तथा शीघ्र कर्मफल भोगने के निमित्त राजा श्री ञय के पास पहुँचे और सुवर्णग्रीवा के साथ शादी करली। जो नारद जी मुनियों में श्रेष्ठ हैं वह भी पूर्व कर्मों से बाधित हो गये, जिसका पूर्व का तीव्र कर्म होता है, हे ब्राह्मण! वह किससे निवृत्त हो सकता है? किसी से नहीं। प्रारब्ध कर्म भोगना ही पड़ता है यह श्रवण कर मेरे पिता जी तपस्वी जी को कहने लगे हे ब्राह्मणदेव! एक बार मेरी कन्या के साथ शादी कर लीजिए फिर जैसे आपकी इच्छा हो सो करियेगा; तब इस ब्राह्मण ने वचन दे दिया अच्छा मैं शादी तो कर लूंगा, परन्तु मैं इससे गृहस्थ कर्म नहीं करूंगा। मैंने कहा कि मैं इसमें ही प्रसन्न हूँ एक बार मैं तुमको पति अवश्य बनाऊँगी, उस ब्राह्मण ने और मैंने उस शरीर को छोड़ कर इस शरीर में जन्म लिया। और प्रतिज्ञानुसार शादी हो गई, सम्बन्ध तो होना नहीं था प्रतिज्ञा भी दोनों की पूरी होगई। हमारे सास-श्वसुर दोनों गुरुमुख हैं और भावी को अमिट समझ करके प्रसन्न रहते हैं। सर्व जीआ सिरि लेखु धुराहू, बिनु लेखै नहीं कोई जीओ। आपि अलेखु कुदरति करि देखै,

हुकमी चलाए सोई नीओ ॥ सो. म. ५-५६८

इस प्रमाणानुसार सुख दुःख कर्मों के आधीन समझ कर चित्त को समझाना चाहिये, तथा हर्ष शोक न करना चाहिये । प्रमाण नं.७

क्वचन तुजनकाधिराज पुत्री,क्वंच दश कन्धर मंदिरे निवासः।
अपिखलु विषमःपुरा कृतानां,भवतिहिजन्तुषु कर्मणां विपाकः॥
सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्न मलङ्करणं भुवः ।
तदपि तत्त्वण भङ्गिकरोति चेदहह कष्टमपण्डिततांविधेः ॥

अर्थ—देखो ये कहाँ तो जनकराज पुत्री सीता कहां रावण के मंदिर में इसका निवास, अवश्य ही पुरुषों का किया हुआ जो पूर्व कर्म है वह बड़ा विषम है, सब सुख-दुःख उसी का ही फल भोगना पड़ता है, शुभ गुणों की खान भूमण्डल के शृंगार को ये पुरुष रूप रत्न विधाता ने प्रथम तो रचा फिर उसी क्षण में उसको अनेक व्याधियों से पीड़ित कर विनाश भी कर दिया; ये महान् कष्ट की बात है; विधाता बड़ा मूर्ख सा है—

अवश्यं भाविनोभावा भवन्ति महतामपि ।
नग्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः॥स्कंधं.अ.३८श्लो.७५
यस्य हस्ते च यन्मृत्युर्विधात्रा लिखितः पुर ।
नच तं खण्डितुं शक्तः स्वयं विष्णुश्च शंकरः ॥

नारद पञ्चरात्र अ. ३-१३

विपत्तौ किं विषादेन सम्पत्तौ हर्षणेन किम् ।
भवितव्यं भवत्येव कर्मणामीदृशी गतिः ॥ (सुभाषित ९.१२३)

महतामाश्रयः पुँसां फलं भाग्यानुसारतः ।
ईशस्य कण्ठलग्नोऽपि वासुकिर्वायुभक्षकः ॥
पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरी ।
शंखो रोदिति भिक्षार्थी फल भाग्यानुसारतः ॥
लिखिताचित्रगुप्तेन ललाटेऽक्षरमालिका ।
ता देवोऽपि न शक्नोत्युल्लिख्य लिखितुं पुनः ॥

यः सुन्दरस्तद्वनिता कुरूपा, या सुन्दरी सा पतिरूपहीना ।
यत्रोभयं तत्र दरिद्रताच, विधे ! विचित्राणि विचेष्टितानि ॥

तुलसी जस भवितव्यता तैसी उपजे बुद्धि ।
होनहार होकर मिटे बिसर जात सब शुद्धि ॥
और करे अपराध को और पाप फल भोग ।
अति विचित्र भगवन्त गतिः को जग जाने योग ।
सुन हो भरत भावि प्रबल बिलख कहो मुनिनाथ ॥
हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि हाथ ॥ रामा०

कथा न० ७—एक ब्राह्मणी गोमती नाम वाली थी, जिसको वृद्धावस्था में एक पुत्र हुआ था, पुत्र पैदा होने पर पति मर गया, और पति के मरने के बाद बड़ी दीन दशा से पुत्र को पालती रही, जब लड़का बड़ा हुआ तो—दूसरे लड़कों के साथ जंगल से लकड़ियाँ लेने को गया,

तो उसको सर्प ने डसकर मार दिया, दूसरे लड़के सब भाग गये एक वधिक (पक्षियों को मारने वाला) आया; वह उसी शहर का था जिस शहर का वह लड़का था, उसने लड़के को पहचाना कि यह गोमती ब्राह्मणी का ही पुत्र है, उसने गोमती को खबर दी गोमती को पहले तो पतिके मरने का बड़ाही दुःख था फिर लड़के के मरने से दुःख में और दुःख आगया, दुःख के कारण रोने लगी रोने की आवाज सुनके अर्जुन नाम वाला गारुड़ी भी उसके पास आया और रोने का निमित्त पूछा गोमती ने कहा कि मेरे निरापराध बालक को सर्प ने मारकर अब मेरे को निराधार कर दिया, मैं किसके आधार पर अपना जीवन व्यतीत करूँगी? अर्जुन ने उसको धैर्य दिया और कहा कि मैं साँप को अभी बुलाता हूँ अगर तेरा लड़का न जियायेगा तो मैं उसको जान से मार दूँगा, ऐसा कह कर मन्त्र पढ़ा। तो सर्प आगया उस सर्प से पूछा तुमने इस बच्चे को क्यों मारा? तब सर्प कहने लगा, मृत्यु की प्रेरणा से मैंने इसको मारा है। इस वास्ते मुझे दोष न लगाओ। इतने में मृत्युदेव भी ब्राह्मणी के शाप से डरता मूर्तिधारण कर प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा, हे गोमती! मेरे को शाप न देना मेरा भी कोई दोष नहीं, काल की प्रेरणा से मैंने इसको मारा इसलिये इस लड़के को मारने

वाला काल ही है, मेरा दोप नहीं इतने में काल भी सामने आया, और कहने लगा मैंने तेरा लड़का नहीं मारा मेरे को ईश्वर की प्रेरणा हुई है, इसलिए ईश्वर ही सब पापों का भागी है। इतने में ईश्वर चतुर्भुज मूर्ति धारण कर प्रकट हुये और कहने लगे, मेरे को दोप मत लगाओ मेरे को इसके कर्मों ने प्रेरणा की है, इसलिये यह दोप इसके कर्मों का ही है, इतने में बालक के पाप कर्म प्रकट हुए, और कहने लगे कि हमारा दोप नहीं इस बालक का दोप है। इसने हमारे को किया तो हमने इसको फल दिया, अगर न करता तो फल भी न देते इतना कहकर बालक को सजीव कर दिया और कहा कि अपनी माता को समझाओ तो बालक समझाने लगा कि हे माता जी इन सब में किसी का दोप नहीं मेरा ही दोप है। जो मैं किया सो मैं पाया, दोप न दीजै और जना। हे माता जी! धैर्य्य धर, निश्चय कर कि जो सुख-दुःख मिलता है वह सब अपने किये हुए कर्मों का ही मिलता है, तब गोमती को निश्चय हुआ और कहने लगी, गोमती उवाच—नैव कालो न भुजङ्गो न मृत्युरिह कारणम्।
स्व कर्म भिरयं बालः कालेन निधनं गतः॥

माता को शान्ति देकर बालक अन्तर्ध्यान हो गया माता जी सुखी हो गई, हे युधिष्ठिर! तू भी कर्मों का फल

सुख-दुःख जो भी मिलता है वह ठीक ही है यह समझ कर सुखी हो। इसमें एक और दृष्टान्त सुनाते हैं, वह भी श्रवण कर और कर्मों को ही सुख-दुःख का कारण समझ कर दोनों में सम बुद्धि रख—पद्म पुराण में प्रयाग के महात्म्य में वसिष्ठ मुनि और राजा दिलीप के प्रसङ्ग में लिखा है कि एक ब्राह्मण प्रयागराज से पांच कोश की दूरी पर रहता था, प्रत्येक संक्रांति पर स्नान करने के लिये प्रयाग में जाया करता था, और माघ की संक्रान्ति पर वह अवश्य ही अपने परिवार सहित आया करता था।

अब वह ब्राह्मण बुड्ढा हो गया; और माघ की संक्रान्ति आई, तो वह चलने में असमर्थ था, अपने पुत्र को बुलाकर कहा. कि हे पुत्र तुम प्रयागराज जाओ, त्रिवेणी में स्नान करके मेरे लिए भी त्रिवेणी के जल की गागर भरकर लाना और संक्रान्ति के पुण्यकाल में ही मेरे को स्नान कराना, देर मत करना, पिता जी के वचन का पालन करता हुआ उसका लड़का प्रयाग को चल पड़ा, त्रिवेणी में स्नान कर जल की गागर पिता के स्नान के लिये ला रहा था, तो रास्ते में एक भूत प्यास के कारण बहुत व्याकुल हो रहा था और गंगाजल पीने की इच्छा करता था, इसलिये, वह रास्ते पर पड़ा था, ब्राह्मण के लड़के ने कहा; हमारे को रास्ता दो तब वह प्रेत कहने

लगा तुम कहां से आये हो तुम्हारे शिर पर क्या है ? उसने कहा यह त्रिवेणी का जल है, प्रेत ने प्रार्थना की मैं इसी इच्छा से रास्ते में पड़ा हूँ, कोई दयालु मेरे को गंगाजल पिलावे, तो मैं इस भूत योनि से मुक्त हो जाऊँ। क्योंकि मैंने गंगाजल का महत्व अपने नेत्रों से देखा है, उस ब्राह्मण के लड़के ने पूछा क्या महत्व देखा है ? वह प्रेत कहने लगा एक ब्राह्मण जो बड़ा विद्वान् था और उसने शास्त्रार्थ द्वारा दिग्विजय करके बहुत धन उपार्जन कर रखा था। उसने क्रोधवश किसी ब्रह्मवेत्ता ब्राह्मण को मार दिया और उस पाप से मरकर बड़ाभारी ब्रह्म राक्षस हुआ और हमारे साथ आठ वर्ष रहा। आठ वर्ष के बाद उसके पुत्र ने उसकी हड्डियां लाकर श्री गंगा जी के निर्मल तीर्थ कनखल में डालकर गंगा जी से प्रार्थना की, हे पाप नाशिनी गङ्गे माता ! मेरे पिता जी की गति कर, तब तत्काल, वह ब्रह्म राक्षस भाव से मुक्त हुआ, और मरते समय मुझे गंगाजल का महात्म्य सुनाया था, मैं उसको मुक्त हुआ देखकर गंगाजल की इच्छा से यहां पड़ा हूँ। अतः मुझको भी गंगाजल पिलाकर मुक्त करदे, तुम्हारा महान् पुण्य होगा। तब ब्राह्मण पुत्र बोला मैं लाचार हूँ क्योंकि मेरे पिता जी बीमार हैं और संक्रान्ति के स्नान का उनका नियम है अगर मैंने श्री गंगाजल तुझको पिला

दिया तो गंगाजल पुण्यकाल न पहुँचने के कारण मेरे पिता जी का नियम भङ्ग हो जावेगा। तब भूत ने कहा तेरे पिता का नियम भी भंग न हो, और मेरी भी गति हो जावे ऐसा उपाय करो, इस उपकार के बदले में तुम्हें अद्भुत कथा सुनाऊँगा परन्तु पहिले मेरे को जल पिलाओ, तब कथा सुनाऊँगा, और नेत्र बन्द करने से ही श्री गंगा जी पर पहुँचाकर तुम्हारे पिता जी के पास पहुँचा दूँगा, यह श्रवण कर उस ब्राह्मण पुत्र ने उसकी दुर्दशा पर दया करके,- उसे जल पिला दिया, और कहा कथा सुनाओ तब वह प्रेत कहने लगा हे ब्राह्मण पुत्र, सुख दुःख को देने वाला अपना कर्म ही है, ऐसा जानकर किसी से रागद्वेष न करना और जीवनमुक्त होकर संसार में विचरना, इस पर तुम्हें दृष्टान्त सुनाता हूँ, जो सारस पक्षी ने बन्दर को सुनाया था—एक तालाब पर एक सारस का जोड़ा रहता था, उसी वन में एक बन्दर रहता था, वह बन्दर आहार न मिलने से भूख से व्याकुल हो सारस को मारने लगा, मारते समय सारस ने बन्दर को ज्ञान का उपदेश किया, और कहा थोड़े जीवन के वास्ते, हे पापी अगर पाप कर्म करेगा तो फिर तेरे को, दुःख ही भोगना पड़ेगा, मैं तेरे को एक कथा सुनाता हूँ जिसके धारन करने से तू पाप करने से रुक

जायेगा। एक राजा बड़ा, धर्मात्मा, न्यायकारी, सन्त; परमेश्वर का भक्त था, उसके घर में एक ही लड़का पैदा हुआ, राजा ने उसे पढ़ाकर विद्वान् किया, उस राजा ने ठाकुर जी का मन्दिर बनवाया उसमें एक ब्राह्मण पुजारी रक्खा, वह बड़ा सदाचारी धर्मात्मा और सन्तोषी था, वह राजा से याचना कभी नहीं करता था, और राजा भी उसके स्वभाव पर बहुत ही प्रसन्न था, उस राजा के मन्दिर में पूजा करते हुए बीस वर्ष हो गये थे उसने कभी भी राजा से किसी प्रकार का प्रश्न नहीं किया, अब राजा का लड़का बड़ा हुआ तो उसकी शादी एक सुन्दर राजकन्या के साथ हो गई, जिस दिन शादी करके राजकन्या को अपने घर लाये तो राजा ने एक नया महल राजकुंवर के लिए तैय्यार करा रक्खा था, वहां शयन करने को भेजा। रात्रि में राजकुंवर को नींद आगई परन्तु उसकी स्त्री को नयी जगह होने के कारण निद्रा न आई इधर-उधर घूमने लगी और राजमहल के सजावट की चीजें देखने लगी। देखते २ जब अपने पति के पलङ्ग के पास आई, तो क्या देखती है कि एक हीरे जवाहरात जड़ित मुट्ठी वाली तलवार पड़ी है, उस राज कन्या ने देखने के लिये तलवार जब म्यान से बाहर निकाली, तब वह तीक्ष्ण धार वाली और बिजली के समान प्रकाश वाली तलवार

देखकर डर गई और डरके मारे उसके हाथ से तलवार गिर पड़ी। वह राजकुमार की गर्दन पर लगी, राजकुमार का शिर कट गया और वह मर गया, राजकन्या पति के मरने का बहुत शोक तथा रुदन करने लगी, क्योंकि वह अच्छे घराने की थी, परमेश्वर से प्रार्थना की कि—यह अचानक पाप, पति मृत्यु का मेरे हाथ से हो गया, आप तो जानते ही हैं परन्तु सभा में मैं सत्य न कहूँगी, क्योंकि मेरे माता-पिता और सास ससुर को कलङ्क लगेगा—और मेरे से अचानक मरने का कोई भी विश्वास न करेगा ऐसे ईश्वर के आगे प्रार्थना करती रही, जब प्रातः काल हुआ तो ब्राह्मण कुए पर स्नान करने के लिये आया तो राजकन्या ने उसको देखकर विलाप करना शुरू किया और इस प्रकार कहने लगी मेरे पति को कोई मार गया। लोग इकट्ठे हो गये और राजा साहब आकर पूछने लगे किसने मारा है वह कहने लगी, मैं जानती तो नहीं कौन था, इस ठाकुर के मन्दिर में पुजारी अन्दर जाता देखा था, सबलोग राजा समेत ठाकुर मन्दिर में आये तो ब्राह्मण को पूजा करते हुये देखा उसको पकड़ लिया और कहा तूने राजकुमार को क्यों मारा। ब्राह्मण ने कहा इसमें ईश्वर साक्षी है, मैंने राजकुमार को नहीं मारा और मैंने तो वह राजमहल भी नहीं देखा कि कहां है। बिना देखे अपराध

का दोष लगाना ठीक नहीं ब्राह्मण की तो कोई बात ही नहीं सुनता था, कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। राजा के दिल में भी यह ख्याल आता था कि यह ब्राह्मण निर्दोष है परन्तु बहुतों के कहने पर राजा ने ब्राह्मण से कहा कि मैं तो तुम्हें कोई दण्ड नहीं देता, लेकिन जिस हाथ से तुमने मेरे पुत्र को तलवार से मारा है वह तेरा हाथ कटवा देता हूँ, ऐसा कहकर राजा ने उसका हाथ कटवा दिया इस पर ब्राह्मण बड़ा दुःखी हुआ, राजा को अधर्मी जानकर उसका देश छोड़कर विदेश को चला गया। और यह खोज करने लगा कोई विद्वान् ज्योतिषी मिले तो बिना अपराध हाथ काटने का कारण पूछूँ। किसी ने कहा एक विद्वान् ज्योतिषी काशी में रहते हैं, तब वह उनके घर पर पहुँचा, ज्योतिषी जी वहाँ बाहर गये थे, उसने ज्योतिषी जी की धर्मपत्नि से पूछा हे माता जी आपके पति ज्योतिषी जी महाराज कहां गये हैं। तब उस स्त्री ने अपने मुख से अयोग्य-असभ्य दुर्वचन कहे, जिनको सुन करके वह ब्राह्मण हैरान हुआ और मन ही मन में कहने लगा कि मैं तो अपने हाथ कटने का कारण पूछने आया था, परन्तु अब इनका ही हाल पूछूँ। इतने में ज्योतिषी जी भी आगए, उनको घर में आते ही ब्राह्मणी ने अनेक दुर्वचन कहकर तिरस्कार किया। परन्तु ज्योतिषी

का दोष लगाना ठीक नहीं ब्राह्मण की तो कोई बात ही नहीं सुनता था, कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। राजा के दिल में भी यह ख्याल आता था कि यह ब्राह्मण निर्दोष है परन्तु बहुतों के कहने पर राजा ने ब्राह्मण से कहा कि मैं तो तुम्हें कोई दण्ड नहीं देता, लेकिन जिस हाथ से तुमने मेरे पुत्र को तलवार से मारा है वह तेरा हाथ कटवा देता हूँ, ऐसा कहकर राजा ने उसका हाथ कटवा दिया इस पर ब्राह्मण बड़ा दुःखी हुआ, राजा को अधर्मी जानकर उसका देश छोड़कर विदेश को चला गया। और यह खोज करने लगा कोई विद्वान् ज्योतिषी मिले तो विना अपराध हाथ काटने का कारण पूछूं। किसी ने कहा एक विद्वान् ज्योतिषी काशी में रहते हैं, तब वह उनके घर पर पहुँचा, ज्योतिषी जी कहीं बाहर गये थे, उसने ज्योतिषी जी की धर्मपत्नि से पूछा हे माता जी आपके पति ज्योतिषी जी महाराज कहां गये हैं। तब उस स्त्री ने अपने मुख से अयोग्य-असह्य दुर्वचन कहे, जिनको सुन करके वह ब्राह्मण हैरान हुआ और मन ही मन में कहने लगा कि मैं तो अपने हाथ कटने का कारण पूछने आया था, परन्तु अब इनका ही हाल पूछूँ। इतने में ज्योतिषी जी भी आगए, उनको घर में आते ही ब्राह्मणी ने अनेक दुर्वचन कहकर तिरस्कार किया। परन्तु ज्योतिषी

ब्राह्मणी बनी और मैं बड़ा भारी ज्योतिषी बना अब वही आकर मेरी स्त्री हुई, जो मेरे मरण पर्यन्त अपने मुख से गाली निकाल कर दुःख देगी क्योंकि मैंने भी इसको पूर्व जन्म में मुख से ही कष्ट दिया था, अब मैं अपना कर्म समझकर सहन करता हूँ और इसका दोष नहीं कहूँगा, क्योंकि किये हुये कर्मों का ही दोष है इसलिये मैं शान्त रहता हूँ अब तुम अपना समाचार पूछो। तब ब्राह्मण देवता ने अपना सब समाचार सुनाया और कहा कि अधर्मी पापी राजा ने मुझ निरपराधी का हाथ क्यों कटवाया? ज्योतिषी कहने लगे कि राजा ने तेरा हाथ नहीं कटवाया तेरे कर्मों ने ही तेरा हाथ कटवाया है। तब, ब्राह्मण कहने लगा कि किस प्रकार, तब ज्योतिषी जी ने कहा कि पूर्व जन्म में तुम तपस्वी थे और राजकन्या गौ थी तथा राजकुमार कसाई था वह कसाई जब गौ को मारने लगा तब गौ बेचारी जान बचाकर तुम्हारे सामने से भाग गई थी। पीछे कसाई आया और तुमसे पूछा कि इधर कोई गौ तो नहीं गई? तूने हाथ से समझाया कि गौ इधर गई है क्योंकि तूने प्रणकर रखा था कि झूठ नहीं बोलूँगा परन्तु शास्त्र की आज्ञा है कि अगर सच बोलने से अपने प्राण, गौ, ब्राह्मण के प्राण जाते हैं तो सच बोलने की जगह झूठ बोलना ही ठीक है अगर झूठ भी न बोले

तब ज्योतिषी ने कहा कि सुनिये—मैं पूर्व जन्म में कौआ था, और वह मेरी स्त्री पूर्वजन्म में गधी थी, इसकी पीठ पर फोडा था, फोडे की पीडा से दुःखी थी और कमजोर रहती थी, मेरा स्वभाव बडा दुष्ट था, इसलिये मैं अपने दुष्ट स्वभाव से जाकर उसके फोडे में चोंच मारकर दुःखी करता था, जब वह दुःखी होकर कूदती थी तो मैं देखकर खुश होता था, और मेरे डर से डरती हुई, बाहर नहीं निकलती थी, और मैं भी इसको ढूंढता फिरता और जहा मिले वहीं दुःखी करता था, आखिर मेरे दुःख से दुःखी होकर दश बारह मील ग्राम से बाहर जगल में जाकर, गगा जी के किनारे सघन वन में हरा २ घास खाकर और मेरी चोटों से बचकर सुख पूर्वक रहने लगी, मैं भी उसके बिना नहीं रह सकता था, उसको ढूढते २ वन में ही जा पडा और जोर से चोंच मारी तो मेरी चोंच उसकी हड्डी में चुभ गई, इस पर उसने अनेक प्रयत्न किये, फिर भी न छूटी, मैंने भी निकालने का बडा यत्न किया, मगर चोंच न निकली, आखिर वह गगा जी में प्रवेश कर गई कि पानी के भय से ही छोडेगा परन्तु वहा भी न छोडा, आखिर वह प्रवाह में प्रवेश कर गई गगा प्रवाह के तेज होने के कारण हम दोनों वह गये और बीच में ही मर गये तब गगा जी के महत्व से यह तो

तब ज्योतिषी ने कहा कि सुनिये—मैं पूर्व जन्म में कौआ था, और वह मेरी स्त्री पूर्वजन्म में गधी थी, इसकी पीठ पर फोडा था, फोडे की पीडा से दुःखी थी और कमजोर रहती थी, मेरा स्वभाव बडा दुष्ट था, इसलिये मैं अपने दुष्ट स्वभाव से जाकर उसके फोडे में चोंच मारकर दुःखी करता था, जब वह दुःखी होकर कूदती थी, तो मैं देखकर खुश होता था, और मेरे डर से डरती हुई, बाहर नहीं निकलती थी, और मैं भी इसको ढूंढता फिरता और जहां मिले वहीं दुःखी करता था, आखिर मेरे दुःख से दुःखी होकर दश बारह मील ग्राम से बाहर जगल में जाकर, गंगा जी के किनारे सघन वन में हरा २ घास खाकर और मेरी चोटों से बचकर सुख पूर्वक रहने लगी, मैं भी उसके बिना नहीं रह सकता था, उसको ढूंढते २ वन में ही जा पडा और जोर से चोंच मारी तो मेरी चोंच उसकी हड्डी में चुभ गई, इस पर उसने अनेक प्रयत्न किये, फिर भी न छूटी, मैंने भी निकालने का बडा यत्न किया, मगर चोंच न निकली, आखिर वह गंगा जी में प्रवेश कर गई कि पानी के भय से ही छोडेगा परन्तु वहा भी न छोडा, आखिर वह प्रवाह में प्रवेश कर गई गंगा प्रवाह के तेज होने के कारण हम दोनों वह गये और बीच में ही मर गये तब गंगा जी के महत्व से यह तो

तब ज्योतिषी ने कहा कि सुनिये—मैं पूर्व जन्म में कौआ था, और वह मेरी स्त्री पूर्वजन्म में गधी थी, इसकी पीठ पर फोडा था, फोडे की पीडा से दु खी थी और कमजोर रहती थी, मेरा स्वभाव बडा दुष्ट था, इसलिये मैं अपने दुष्ट स्वभाव से जाकर उसके फोडे में चोंच मारकर दु खी करता था, जब वह दु खी होकर कूदती थी, तो मैं देखकर खुश होता था, और मेरे डर से डरती हुई, बाहर नहीं निकलती थी, और मैं भी इसको ढूंढता फिरता और जहा मिले वहीं दु खी करता था, आखिर मेरे दु ख से दु खी होकर दश बारह मील ग्राम से बाहर जगल में जाकर, गगा जी के किनारे सघन वन में हरा २ घास खाकर और मेरी चोटों से बचकर सुख पूर्वक रहने लगी, मैं भी उसके बिना नहीं रह सकता था, उसको ढूढते २ वन में ही जा पडा और जोर से चोंच मारी तो मेरी चोंच उसकी हड्डी में चुभ गई, इस पर उसने अनेक प्रयत्न किये, फिर भी न छूटी, मन भी निकालने का बड़ा यत्न किया, मगर चोंच न निकली, आखिर वह गगा जी में प्रवेश कर गई कि पानी के भय से ही छोडेगा परन्तु वहा भी न छोडा, आखिर बड प्रवाह में प्रवेश कर गई गगा प्रवाह के तेज होने के कारण हम दोनों बह गये और बीच में ही मर गये तब गगा जी के महत्व से यह तो

ब्राह्मणी बनी और मैं बड़ा भारी ज्योतिषी बना अब वही आकर मेरी स्त्री हुई, जो मेरे मरण पर्यन्त अपने मुख से गाली निकाल कर दुःख देगी क्योंकि मैंने भी इसको पूर्व जन्म में मुख से ही कष्ट दिया था, अब मैं अपना कर्म समझकर सहन करता हूँ और इसका दोष नहीं कहूँगा, क्योंकि किये हुये कर्मों का ही दोष है इसलिये मैं शान्त रहता हूँ अब तुम अपना समाचार पूछो। तब ब्राह्मण देवता ने अपना सब समाचार सुनाया और कहा कि अधर्मी पापी राजा ने मुझ निरपराधी का हाथ क्यों कटवाया? ज्योतिषी कहने लगे कि राजा ने तेरा हाथ नहीं कटवाया तेरे कर्मों ने ही तेरा हाथ कटवाया है। तब ब्राह्मण कहने लगा कि किस प्रकार, तब ज्योतिषी जी ने कहा कि पूर्व जन्म में तुम तपस्वी थे और राजकन्या गौ थी तथा राजकुमार कसाई था वह कसाई जब गौ को मारने लगा तब गौ बेचारी जान बचाकर तुम्हारे सामने से भाग गई थी। पीछे कसाई आया और तुमसे पूछा कि इधर कोई गौ तो नहीं गई? तूने हाथ से समझाया कि गौ इधर गई है क्योंकि तूने प्रणकर रखा था कि झूठ नहीं बोलूँगा परन्तु शास्त्र की आज्ञा है कि अगर सच बोलने से अपने प्राण, गौ, ब्राह्मण के प्राण जाते हैं तो सच बोलने की जगह झूठ बोलना ही ठीक है अगर झूठ भी न बोले

तो चुप रहना ही ठीक है। उस धर्मशास्त्र को तू नहीं जानता था जब तुमने हाथ से इसारा किया तो उस कसाई ने जाकर गौ को मार डाला और गगा के किनारे उसकी चमडी निकाल रहा था इतने में उस जंगल से शेर निकल कर गगा जी के किनारे पानी पीने आया, वह कई रोज से भूखा था उसने गौ और कसाई दोनों को खाकर हड्डिया छोड गया वर्षा के दिन थे वर्षा पडने से गंगा चढी और हड्डिया गगा में बह गई गंगा जी के प्रताप से कसाई राजकुमार और गौ राजकन्या हो गई एवं उस पूर्व जन्म के किये हुए कर्म ने एक रात्रि के लिए उनको इकट्ठा किया। जिस तरह कसाई ने गौ को तलवार मारी थी उसी तरह राज कन्या ने तलवार से राजकुमार को मारा कर्म इस तरह अपना फल देकर निवृत्त हो गया, तुमने जो हाथ का इसारा रूप कर्म किया था उस पाप कर्म ने तेरा हाथ कटवा दिया है इसमें तुम्हारा दोष है दूसरों को दोष न दो ऐसा निश्चय कर सुख पूर्वक रहो उस भूत ने ब्राह्मण के बालक को ये वचन सुनाए और कहा सारस बन्दर का संवाद सुन कर मैं भूत योनि में भी सुखी रहता हूँ।

एवं ब्राह्मण तिष्ठामि भुँजानः कर्मणां फलम्।
शोचामीति भूत्वाऽहं विमृश्य च पुनःपुनः॥

न दुनोमि तथा तावद्यावज्जम्वालिनी तटे ।
सारसोदीरितं वाक्यं श्रुतं पर्यटता मया ॥

अर्थ–इसी तरह हे ब्राह्मण पुत्र ! मैं भी कर्म फल भोगता हुआ भूत योनी में स्थित हूँ। परन्तु इन वचनों को पुनः २ याद करता हुआ कि कर्म ही सुख दुःख को देने वाला है अब शोक नहीं करता आनन्द से रहता हूँ। जिस दिन से मैंने जम्बालीनि नदी के किनारे घूमते हुए सारस के मुख से निकले हुए वाक्य सुने। तब से हर हालत में सुखी रहता हूँ आप भी इन वचनों को धारण करोगे तो सुखी रहोगे अच्छा अब नेत्र बन्द करो और त्रिवेणी का जल लिए हुए अपने पिता के पास पहुंचा हुआ देखो, तब ब्राह्मण बालक ने नेत्र बन्द करके देखा कि त्रिवेणी के जल की गागर भरकर पिता जी के पास पहुँचा हुआ हूँ। बड़ा आश्चर्य हुआ प्रथम पिता जी को स्नान कराकर फिर गंगा जी के महात्म्य की कथा सब परिवार को सुनाई। परिवार को सुनाकर और उस कथा के अनुसार अपने आचरण करता हुआ सुखी हो गया ।

सुख दुःख पूर्व जन्म के किए, सो जाने जिन दाते दिये।
किसको दोष देह तू प्राणी, सहे अपना किया करारा है॥

भा–हे प्राणि ! जो तेरे को सुख-दुःख मिल रहा है ।

वह तेरे पूर्व जन्म का किया हुआ कर्मफल है उनको तू नहीं जानता क्योंकि जानने वाला वह है जो कर्मों का फल जीवों को देता है वह ईश्वर सर्वज्ञ है। अब तू किसी को दोष न दे, किये हुए कर्मों का फल सुख-दुःख सहन कर। जैसे कि त्रैता में वाली को श्री राम जी ने वद्धक की भाँति छिपकर वाँण से मारा था। वैसे ही द्वापर में श्री राम को कृष्ण रूप में देख, वाली ने वद्धक रूप में छिपकर पहले जन्म का बदला लेने के लिए उसी वाँण के द्वारा मारा। तात्पर्य यह है कि भावी कर्म हमारे पूज्यवर अवतारों में भी आयो सो भोगना ही पडा, किन्तु उसके मिटाने में असमर्थ ही रहे। इसलिए इतर जीवों की तो क्या ही कथा कही जा सकती है? क्योंकि भावी कर्म अमिट जानकर दुःख-सुख में सम रहना चाहिए। जिससे अन्त शान्ति को प्राप्त कर सकें इस प्रकार संक्षेप से कर्म गति कही गई नाधिकं।

कहो रे मन! कौन सुखी जग में तनधार के जो दुःख पावत नाहीं॥

१-※ माया प्रभावः ※

प्र. नं०१–दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
माभेव ये प्रपद्यन्ते मायां मेतां तरन्तिते ॥गी.अ.७॥

ये माया जित हरि विसरे मोह उपजै भौ दूजालाया।
माया मोह गुबार है गुरबिन ज्ञान न होई।
शब्द लगे तिन बुझ्या दूजै परज विगोई। वडहंस ३-५५६
माया मोह गुबार है दूजै भरमाई।
मन मुख ठौर न पायनी फिर आवे जायी। सुही.म.३-७८६
इन माया जगदीश गुसांई तुमरे चरन विसारे।
किंचित् प्रीत न उपजे जनको जन कहां करे विचारे॥
धृग तन धृग धन धृग इह माया, धृगधृग मति बुद्धि फंनी।
इस माया को दृढ़कर राखो बांधे आप वचंनि।
यह माया मोहनी जिन एत भ्रम भुलाया।
माया तो मोहनी तिनै कीती जिन ठगौली पाया॥
माया ऐसी मोहनी भाई, जेते जीव तेते डहकाई॥

कथा नं०–१ यह जो मेरी माया है सो बड़ी चमत्कार वाली है अर्थात् लोगों को मोहित करने वाली त्रिगुण स्वरूप है, माया से तरना बड़ा कठिन है, मेरी शरण में या श्री गुरुदेव जी की शरण में जो आते हैं वे ही तर सकते हैं अन्य कोई उपाय नहीं। अर्जुन ने हठ किया कि

मैं आपकी माया से तर जाऊँगा । भगवान ने कहा माया बड़ी प्रबल है तुम माया के प्रभाव से हमारे को भी भूल जाओगे तथा अपने आपको भी भूल जाओगे, अर्जुन ने कहा कि मैं कभी नहीं भूलूँगा आप अपनी माया दिखाओ भगवान् चुप रहे अर्जुन ने फिर कहा कि वह भुलाने वाली माया अवश्य दिखाओ इस प्रकार अर्जुन के अधिक हठ करने पर श्री कृष्ण भगवान् ने कहा कि अच्छा मे दिखाऊँगा । ऐसा कहकर रथ में बिठला कर अर्जुन को एक तालाव पर ले गये, श्री कृष्ण भगवान् ने कहा कि मैं दतौन करता हूँ तुम स्नान करके मेरी सेवा के लिये तैय्यार हो जाओ साथ ही कहा कि मेरी माया को भी देखो । भूलना नहीं मैं यहां ही बैठा हूँ और दतौन कर रहा हूँ मेरी माया भुला देगी, परन्तु तुम मुझे न भूलना अर्जुन ने कहा कभी नहीं भूलूँगा । ऐसा कहकर पानी में गोता लगाया बाहर निकला तो देखा जङ्गल ही जङ्गल है न भगवान् और न रथ ही है । हे भगवन् ! २ ऐसा पुकारता हुआ अर्जुन इधर उधर दौड़ा कुछ पता नहीं लगा जिस तरफ जाता है उसी तरफ सिंह, व्याघ्र, चीते, हाथी आदि बड़े-बड़े जङ्गली जानवर दिखाई देते हैं और खाने को आते हैं । अर्जुन को बडा भय हुआ कोई आदमी दिखाई नहीं देता पुकार २ कर थक गया, कुछ समझ में न आया

कि मैं कौन हूं ? अर्जुन सारा दिन ही भ्रमण करता रहा परन्तु कुछ पता न चला। भ्रम के वशीभूत हुआ इधर-उधर फिर रहा है और पुकार रहा है—कि हे भगवन् हे कृष्ण हे नारायण ! हे यदुपते ! मै भूल गया हूँ दया करके दर्शन दो ऐसा कहता जाता है, और रोता जाता है, इस प्रकार रोते हुए तीन दिन बीत गये। परन्तु भगवान् का कोई पता न चला भूख प्यास ने बहुत सताया, न कोई ग्राम दिखाई देता है और न पीने के लिये जल दिखाई देता है इधर-उधर घूमते हुए उसको एक आदमी नजर आया। अर्जुन ने उस आदमी से पूछा कि कहीं आपने भगवान् श्री कृष्ण जी को देखा है? मैं भूल गया हूँ हमारे साथ स्नान करने को आये पता नहीं चले कहां गये ? यदि आपको मिले हों अथवा कहीं देखे हों तो बताइये। उसने कहा कौन कृष्ण? अर्जुन ने कहा वसुदेव और देवकी के पुत्र उसने कहा वे तो द्वापर में हो चुके हैं और अब कलियुग है अब भगवान् श्री कृष्ण कहां ? तू बावला तो नहीं हो गया, अर्जुन ने कहा—अभी तो द्वापर है और मेरा नाम भी अर्जुन है उसने कहा—पांचों पाण्डव तो मर चुके हैं अर्जुन का पोता परीक्षित भी हो चुका है और परीक्षित का पुत्र जनमेजय भी हो गया हमारे शहर के मन्दिर में महाभारत की कथा होती है और रोज हम कथा

सुनते है तू अर्जुन कहा से आ गया ? यह सुनकर अर्जुन को बडा आश्चर्य हुआ आगे ही दुखी था। यह बात सुनकर बहुत दुख हुआ और उनसे कहा—"कि मुझ अपने गाव में ले चलो" तब उसने कहा हम नहीं ले जावेंगे, न जाने तू कौन है ? वह कहने लगा—"कि मै अर्जुन हूँ भगवान् के साथ रथ में बैठकर स्नान करने को आया था, अब भूल गया हूँ—"तब उसने कहा यदि तुम वास्तविक अर्जुन ही हो तो भी, हम नहीं ले जावेंगे और हमारे को भगवान् का भी कुछ पता नहीं अगर तुम अपने को अर्जुन कहोगे तो पकडे जाओगे, अर्जुन बडा दुखी हुआ, कि देखो न कोई मेरे को जानता है न श्री कृष्ण को ही जानता है, कहते है कि द्वापर में ही हो चुके है, अर्जुन हठ से उसके पीछे दौडा। जब शहर में आया तो नया ही शहर दिखाई पडा तो जो न कभी पूर्व ही देखा था और न सुना ही था, कोई बात तक भी अर्जुन से नहीं करता। अन्त में मन्दिर में आया तो वहा पर महा भारत की कथा हो रही थी, व्यास भगवान् राजा जनमेजय को पाण्डवों कौरवो के युद्ध की कथा सुना रहे है, युद्ध में पाण्डु पुत्रों की जय हुई और कितने वर्षों तक उन्होंने राज्य किया भगवान् श्री कृष्ण जी का देहान्त हो गया और अर्जुन द्वारका से भगवान् की रानिया हस्तिना-

पुर को ला रहा था, रास्ते में भीलों ने पकड़ लिया, अर्जुन से युद्ध हुआ और अर्जुन हार गया, फिर यह प्रसंग आया पाण्डव भी परीक्षित को राज्य देकर पांचों भाई द्रौपदी सहित हिमालय पर्वत में गलकर मर गये, यह वचन सुन कर अर्जुन का चित्त डर गया अर्जुन कहने लगा हाय! कृष्ण भगवान् मर गये, पाण्डव हिमालय में गल गये, तो मैं किस प्रकार बच गया मैं जागता हूं या स्वप्न देख रहा हूँ, पता नहीं चलता क्या बात है, लोग इकट्ठे हुए और पूछा क्यों रोता है अर्जुन ने कहा मैं अर्जुन हूं मैंने इस कथा में सुना, पाण्डव गल कर मर गये और भगवान् श्री कृष्ण भी मर चुके। मैं कैसे जीवित रहा? लोगों ने कहा—अरे पागल! पाण्डवों के तो कुल का भी कोई नहीं है वे तो द्वापर में हो चुके हैं, अब कलियुग है। "अर्जुन बेचैन होता है और कहता है यह क्या कह रहे है? कुछ पता न लगा माया ने भुला दिया अब कहने लगा मैं अर्जुन नहीं हूँ मेरे को भ्रम हो गया है, अब मैं अर्जुन न कहलाऊँगा लोग मेरा नाम सुनकर पागल कहते हैं परन्तु अनुभव तो अर्जुनपने का ही है। पता नहीं सच्चा अर्जुन मैं हूं या लोग सच्चे हैं या शास्त्र सच्चा है मेरा दुश्मन भी कोई नहीं है जब ऐसी दशा देखें तो लोग फिर इकट्ठे हो जायें और पागल कहकर

पुकारें आखिर अर्जुन को यह पक्का भ्रम हुआ कि में अर्जुन नहीं और न भगवान् श्री कृष्ण जी ही अब हैं न द्वापर है, अब कलियुग है अर्जुन ने अपना नाम परदेशी रख लिया और भोजन से भी तङ्ग हो गया— वहां के राजा की एक बड़ी सुन्दर लड़की थी जब वर के योग्य हुई तो ज्योतिषी बुलाकर पूछा इस कन्या के योग्य वर कौन है उन्होंने ज्योतिष विचार कर कहा एक परदेशी है जो महान् शूरवीर है यह कन्या उसको विवाही जावेगी, राजा ने उसको ढूँढ लिया राजा ने उसको कहा—तुम कोई विद्या (हुनर) भी जानते हो। उसने कहा हाँ मैं धनुर्विद्या अच्छी तरह जानता हूँ, राजा ने परीक्षा की तो धनुष विद्या में बड़ा शूरवीर निकला, राजा ने उसको कन्या विवाह दी और दान दहेज में राज्य का कुछ भाग दे दिया। अर्जुन स्त्री पाकर खुश हुआ और सब कर्म धर्म भूल गया रात दिन स्त्री लोलुप ही रहने लगा। जब चार बच्चे हो चुके, तो देश का राजा मर गया, दूसरे सम्बन्धियों ने राजा का राज्य सम्भाल लिया पिता के मरने से और राज्य के चले जाने से अर्जुन की स्त्री बीमार होकर मरने लगी और अन्त में रोने लगी अर्जुन को अपने बच्चों की रक्षा के हेतु कहा इनको दुःखी न करना, अर्जुन भी रोने लगा, और कहने लगा मैं तुम्हारे साथ

ही मर जाऊँगा। स्त्री ने कहा तू बड़ा ही भोगी है, मेरे मरने पर दूसरा विवाह कर लेगा वह मेरे बच्चे को दुःख देगी, परदेशी ने कहा—मैं सत्य कहता हूँ मैं तेरे साथ ही मर जाऊँगा, इतने में स्त्री मर गई अर्जुन ऊँचे स्वर से रोने लगा और कहने लगा मैं अपनी स्त्री के साथ अवश्य मरूँगा, लोगों ने बहुत समझाया परन्तु परदेशी ने न माना, इतने में भगवान् श्री कृष्ण जी ने आदमी भेजा, उस रोते हुए आदमी को यहाँ ले आओ, वह आदमी आकर अर्जुन को पकड़ता है और कहता है—"भगवान् श्री कृष्ण जी आपको बुलाते हैः—

अर्जुन ने कहा—"कौन भगवान् श्री कृष्ण ? मैं नहीं जानता फिर उस आदमी ने कहा—"अरे भगवान् वसुदेव देवकी नन्दन तुम (अर्जुन) को बुलाते हैं वह कहने लगा मैं अर्जुन नहीं मैं परदेशी हूँ अर्जुन नाम से मैंने बहुत दुःख सहन किये, मैं नहीं चलूंगा मैं अपनी स्त्री के साथ ही जलकर मर जाऊँगा, फिर आदमी ने दूसरी बार कहा भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं:—अभी द्वापर है, मैं तुम्हारे को रथ पर बैठाकर स्नान कराने आया हूँ, तू भूल गया, भगवान् से भी स्त्री प्यारी समझ रक्खी है परन्तु माया मोहित अर्जुन ने कोई ध्यान दिया ही नहीं अन्त में स्त्री के साथ जलने के लिये श्मशान भूमि में गया, ब्राह्मणों

ने कहा—पहिले स्नान करलो फिर चिता में बैठायेंगे, पास ही एक कच्चा तालाब था, उसमें स्नान करने गया जब गोता लगाकर बाहर निकला तो क्या देखता है भगवान् श्री कृष्ण उसी तरह दतौन कर रहे हैं और घोड़ों के सहित रथ खड़ा है न वह स्त्री है न वह श्मशान भूमि और न बच्चे ही हैं बड़ा हैरान हुआ और भगवान् को देखकर भी भगवान् का कुछ ध्यान न किया स्त्री के पीछे दौड़ा। हाय स्त्री! हाय स्त्री! करके पुकारता हुआ दौड़ चला, तो भगवान् ने पकड़ कर बड़े जोर से तमाचा मारा माया दूर हुई तो भगवान् ने कहाः—माया ने भुलाया या नहीं? इतना प्रेम होते हुए भी किञ्चित् प्रीती न रही। अर्जुन बहुत लज्जित हुआ और निश्चय किया कि परमेश्वर की माया बड़ी प्रबल है यह (अज्ञान) बन्धन है।

प्र० नं० २—माया मात्रमिदंद्वैतमद्वैतं परमार्थतः।
इतिब्रूतेश्रुतिः साक्षात्सुषुप्तावनुभूयते॥विवेक.चू.४-६
जो माया वश भयो गोसाईं, बन्ध्यो कीट मर्कट की नाईं।
माया मोह महा संकट बन, तास्यो रुचि उपजावै।गु.वाणी।
यथा स्वप्न प्रपञ्चोयं मयिमाया विजृम्भितः।सुत-सं.खं.३
शत्रु मित्र सुख दुःख जगमाहीं, मायाकृत परमार्थ नाहीं।
ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। गी.अ.१८-६१

जैसी अग्नि उदर महि तैसी बाहर माया ।
माया अग्नि सब इकोजेहि करते खेल रचाया ॥
माया होई नागनी जगत् रही लपटाये, जो इसकी सेवा करे तिस ही को फिर खाए ॥ गुरुवाणी ॥

कथा नं०.२—यह माया ईश्वर को तो नहीं भुलाती पर जीव को भुला देती है। श्री गुरु नानक देव जी घूमते २ जब लाहौर में पहुँचे वहां आकर रावी नदी के तट पर आसन लगाया, आपके दर्शनार्थ वहां पर एक मुलतानी नाम का प्रेमी आया जो प्रत्येक सन्त की सेवा किया करता था और प्रत्येक सन्त से माया का स्वरूप जानने की जिज्ञासा करता था, एवं प्रश्न रूपी प्रार्थना द्वारा यह कहता था आप कृपा करके मुझको माया दिखा दीजिये परन्तु उस प्रेमी की यह कामना किसी साधु सन्त ने पूर्ण न की। उसकी माया को देखने की अत्यन्त इच्छा हो रही थी तो श्री गुरु नानक देवजी महाराज ने अनेक प्रकार से उसको उपदेश किया। गुरु जी के मुखारविन्द द्वारा माया के रूप को आश्चर्य मय सुन करके श्री गुरुजी से प्रार्थना की, हे महाराज! कृपा करके वह माया मुझको दिखलाईए, यह प्रार्थना सुन गुरुजी उसको बहुत कहते रहे। परन्तु उसने बहुत हठ किया, तब गुरुजी ने कहा अच्छा—नदी में स्नान करो और माया देख लो,

गुरुजी की आज्ञा सुन करके वह कपड़े उतार कर अपनी माला और सब सामग्री बाहर रखकर जब नदी में डुबकी लगाने गया, तो क्या देखता है मुझको मगरमच्छ ने पकड़ लिया है और वह मच्छ उसको मुलतान की तरफ ले गया। मुलतान के लोग भी निर्जला एकादशी होने से नदी पर स्नान करने आये, यह नदी मुलतान से कुछ दूरी पर थी, इसी निर्जला एकादशी के दिन मुलतान का एक शाहुकार अपनी धर्मपत्नी के सहित स्नान करने आया। जब मच्छ ने मुलतानी राम को पकड़ लिया था उस समय मुलतानी राम की आयु सिर्फ २१ साल की थी और घर में माता-पिता स्त्री और एक पुत्र भी हुआ था, मायारूपी मच्छ ने उसको निगल करके मुलतान में ले जाकर उसी समय गर्भ से निकाल करके बालक बना कर अपने मुँह से बाहर निकाल दिया। बालक को देख कर सेठ सेठानी बड़ी ही प्रसन्न हुई, क्योंकि उनकी सन्तान नहीं थी। अब वरुणदेव ने उन पर प्रसन्न होकर पुत्र दिया, शहर में जाकर उन्होंने बड़ी धूम-धाम से खुशी मनाई और बाजे बजवाये, प्रगट किया हमारे घर लड़का हुआ है, लड़के की छट्ठी बड़ी धूम धाम से मनाकर ब्राह्मणों को बुला कर बहुत दान दिया और लड़के का नाम रखाया, पंडित लोगों ने ज्योतिष शास्त्र के अनुसार मुल-

तानीराम नाम रक्खा। तब से उसके माता-पिता लड़के का बड़े प्रेम से पालन करने लगे और देख-देख कर, बड़े प्रसन्न हुआ करें और अपने धन्य भाग्य मानें, जब लड़का बड़ा हुआ तो उसको स्कूल में पढ़ाया, लड़का थोड़े दिनों में ही पढ़कर चतुर हो गया किसी बड़े घर में मंगनी भी करादी। अट्ठारह वर्ष के होने पर उसकी शादी करादी गई। उसके घर एक लड़का पैदा हुआ, वह उसको प्रेम से पालने लगा अब उसकी इकीस वर्ष की अवस्था हुई, जब गुरु नानक देवजी को लाहौर वाला मुलतानीराम मिला था तब भी इकीस वर्ष की आयु थी, अब पिता को कहने लगा, आप घर में रह कर ईश्वर चिन्तन करो, कभी दिन में एक बार दृष्टि दे आया करो और मैं आप ही दुकान का अच्छी तरह काम चला लूँगा, पिता ने भी व्यवहार में कुशल देख कर सब व्योपार का काम उसको सौंप दिया। उसी शहर में एक हरिदास नाम वाला साधू रहता था। मुलतानीराम उनमें अच्छी तरह श्रद्धा रखता था, सन्त हरिदास जी ने मुलतानीराम को सत्यवादी जानकर एक सौ अशर्फियों की थैली अमानत रख कर आप तीर्थ यात्रा को चले आये, मुलतानीराम ने उनकी थैली पेटी के नीचे वाले खाने में रखदी और सन्त हरिदासजी का नाम और रकम वही में न लिखा,

मुलतानीराम दुकान का काम बडी चतुरता से करने लगा माता पिता की सेवा बडे प्रेम से करता था, माता पिता भी प्रेम और सेवा से वशीभूत होकर पुत्र दर्शन बिना व्याकुल हो जाते थे और स्त्री भी बडी पतिव्रता थी, पति के दर्शन बिना अन्नजल ग्रहण न करती थी फिर निर्जला एकादशी का मेला आया तो अपने सारे कुटुम्ब को लेकर उसी जगह स्नान करने गये, मुलतानीराम को पानी में प्रवेश करते ही मगरमच्छ ने पकड लिया और लाहौर में जाकर उसी जगह जिस जगह पहले गोता लगाया था, आकर छोड दिया जब मुलतानीराम बाहर निकला तो किनारे पर उसी तरह अपने कपडे देखे बडा हैरान हुआ और पहिचाने भी कि ए कपड़े मेरे ह परन्तु म यहा के रहने वाला नहीं मैं तो मुलतान का रहने वाला हूँ ऐसे सकल्प विकल्प करते हुए को कोई बात समझ में न आई तो आस पास के लोगो से कहने लगा, मे कहा का रहने वाला हूँ ? सब दोस्त मित्र उसको अच्छी तरह पहिचानते थे वह सब कहने लगे तू लाहौर का रहने वाला है और मुलतानीराम तेरा नाम है क्या सोया हुआ बातें करता है ? या कोई दिमाग में फरक होगया, जो अपने आपको भी भूल गया अभी तो तू हमारे साथ सन्तों के दर्शन के लिये बाहर आया था, फिर पूछता है मे किस

शहर का रहने वाला हूँ ? तू लाहौर का ही रहने वाला है वह कहने लगा-भाई मैं लाहौर का रहने वाला तो नहीं मैं तो मुलतान का रहने वाला हूँ और मेरी दूकान भी मुलतान में है ऐसा कहकर रोने लगा मेरी स्त्री मेरे दर्शन विना अन्नजल ग्रहण न करेगी माता-पिता कैसे जीयेंगे और मैं यहां किस प्रकार आया ऐसा कहकर विलाप करने लगा उसके सम्बन्धी मित्र सब हैरान हुये, इसको क्या हुआ ? और कहा कि देख यह तेरे कपड़े पड़े हैं, वह कहता है क्या मैं जागता हूँ या सोया ? मैं जानता हूँ यह शहर भी मैंने कभी पहले देखा है पता नहीं स्वप्न में देखा या जागृत में कुछ पता नहीं लगता तो उसके मित्रों ने जाना, शायद यह पागल हो गया है चलो इसको घर पर छोड़ आवें मुलतानीराम को घर ले आये और उसके माता-पिता स्त्री को कहा, इसको सम्भाल लो यह पागल हो गया है, माता-पिता ने कहा पुत्र अभी तो तू यहां से गया था जल्दी क्यों लौट आया ? तू तो रोजाना नदी किनारे पर नित्य नियम संन्ध्या वन्दन करके आता था, आज क्या हो गया, वह कहने लगा तुम कौन हो उन्होंने कहा हम तुम्हारे माता-पिता हैं, क्या हमारे को भूल गया ? मुलतानीराम ने कहा मेरे माता-पिता तो मुलतान में हैं और मेरी स्त्री मेरा लड़का

मेरी दुकान सब मुलतान में है तो तुम अपना पुत्र किस प्रकार से कहते हो ? तो स्त्री कहने लगी तुम हमारे पति हो और यह तुम्हारा लडका है और दुकान आपकी यहां अनारकली बाजार में है ससुराल भी तुम्हारा लाहौर में ही है इतने में उसके सास और ससुर वहा पहुँच गये, वह कहने लगा मैं तुम्हारा ससुर हूँ और यह तेरी सास है आज तुझे क्या हो गया है ? वह कहने लगा। मैं तो मुलतान का रहने वाला हूँ तुम्हारे को भ्रम हो गया है, मेरे सम्बन्धी तो मुलतान में है, परन्तु अन्दर से जानता भी है ये मेरे सम्बन्धी हैं, उसको कुछ समझ में न आया कि ये सच्चे सम्बन्धी ह । म मुलतान का रहने वाला हूँ या लाहौर का रहने वाला सब से पूछा मुझे सत्य २ बतलाओ मैं कहां का रहने वाला हूं ? तो सबने कहा तू लाहौर का रहने वाला है (मुलतान का तेरे को भ्रम हो गया है) जब सबने मिलकर बार २ ऐसा कहा तो उसने कहा शायद लाहौर का रहने वाला ही होऊँगा परन्तु रात दिन मुलतान के सम्बन्धियों को याद करता है, खान पान व्यवहार कोई अच्छा नहीं लगता हर समय यही कहता रहता है कि मैं मुलतान का या लाहौर का, सम्बन्धी उसको बहुत समझावें तू मुलतान का क्यों कहता है ? तुमने तो मुलतान आंखों से भी नहीं देखा है, और न मुलतान में हमारा

कोई सम्बन्धी ही है परन्तु उसको मुलतान के सम्बन्धी याद आते हैं और उनके प्रेम की खेंच पड़ती है तो रोने लगता है आखिर पिता ने उसको दुकान पर बैठाया और उसके मित्र दोस्त सम्बन्धी वारंवार कहते हैं तू लाहौर का है मुलतान का नहीं भ्रम छोड़ दे, तब उसने बहुतों के कहने से निश्चय किया कि मैं लाहौर का हूँ और दुकान का काम करने लगा सब सम्बन्धियों से मिल गया ऐसे ही एक वर्ष बीत गया ।

अब मुलतान वालों की कथा सुनो मुलतान वालों ने जब देखा मुलतानीराम जल से बाहर नहीं निकला, तो बहुत से मल्लाह नौकायें लेकर उस जगह ढूँढते और गोते लगाते हैं, परन्तु मुलतानीराम का पता न लगा, तब उन्होंने निश्चय किया कि डूब गया और कहने लगे अपगति से मरा ऐसा कहकर सब विलाप करने लगे । उसके निमित्त मृतक क्रिया करी उनके मन की सब खुशी जाती रही, उसके निमित्त गयादि कर्म करके निश्चय कर बैठे मुलतानीराम डूबकर मर गया, अब मुलतानीराम के पुत्र को प्रेम से पालते हैं परन्तु मुलतानीराम का प्रेम उनके हृदय से भूलता नहीं याद कर रोते रहते हैं ऐसे एक वर्ष बीत गया । तब सन्त हरिदास जी तीर्थ यात्रा करके आये और उनकी दुकान पर आकर अपनी सौ असरफी मांगने

लगे। तब उन्होंने कहा हमारे को तो कोई खबर नहीं, वहियां ढूँढी—परन्तु कोई लेख न मिला और मुलतानी राम के शरीर को छूटे एक वर्ष होगया है और हमने सब रकमें जांच ली हैं, तुम्हारी रकम कहीं भी देखने में नहीं आई इसलिये हम नहीं देंगे, तब साधू ने पंचायत में कहा पंचायत ने साधू से पूछा कोई लेख या गवाह है तो उसने कहा कुछ नहीं तब पंचायत ने कहा यह पैसा तुमको नहीं मिल सकता, फिर साधू अदालत में गया उन्होंने भी साधु को भूठा किया। साधू बड़ी अदालत लाहौर में आकर फरियाद करने का विचार कर रहा था, जब—अनारकली बाजार में पहुँचा तो सामने मुलतानीराम उसकी दुकान पर बैठा हुआ दिखाई पड़ा तब सन्त दुकान पर आया, मुलतानीराम ने नमस्कार करके दुकान पर बैठाया कुछ खिला पिलाकर सब समाचार पूछा, तब सन्तजी कहने लगे तू इस जगह पर आकर क्यों बैठा है, तेरे मां बाप रो रहे हैं और तेरे को मरा जानकर सब क्रिया कर्म करा चुके हैं—मुलतानीराम कहने लगा, सन्त जी मैं कहां का रहने वाला हूँ, सन्तों ने कहा तू मुलतान का रहने वाला है। तब मुलतानीराम ने कहा मैं लाहौर का रहने वाला हूँ। ऐसे भगड़ते २ बहुत लोग इकट्ठे हो गये और कहने लगे पहले भी यह कहता था।

मैं मुलतान का रहने वाला हूँ और यह सन्त भी कहते हैं, मुलतान का रहने वाला है, सबके चित्त में भ्रम हो गया और किसी की बात समझ में नहीं आती। तब सब लोगों ने जबरदस्ती से सन्त को झूठा किया, यह मुलतान का रहने वाला नहीं, लाहौर का रहने वाला है। तब सन्त कहने लगे एक साल हो गया है, मैं इसके पास सौ असरफियां अमानत रखकर, तीर्थ यात्रा को गया था। वह मेरी अमानत देदो, तब मुलतानीराम से पूछा तेरे पास इसने अमानत रक्खी थी ? मुलतानीराम ने कहा हां रक्खी तो थी, तब लोगों ने कहा इसकी अमानत कहां है ? उसने कहा—मुलतान की दूकान में पेटी के नीचे वाले खाने में पड़ी है जाकर देखलो। आखिर पंचायत ने कहा कि पंचायत की तरफ से एक भला भला आदमी इस सन्त के साथ भेज देवें और मुलतानीराम से चिट्ठी लिखाकर ले जावें उस दूकान में मुलतानीराम के पिता से सन्त को सौ असरफियां दिला देवें और उसके मां-बाप को सुना देवें कि तुम्हारा पुत्र लाहौर में जीता है, ऐसे पंचायत ने एक चिट्ठी लिखवा कर मुलतानीराम ने भी एक चिट्ठी लिखवाकर अपने आदमी को सन्त के साथ भेजा।

वे मुलतान पहुँचे और उसके पिता से मिले सब हाल सुनाया, पेटी के नीचे वाले खाने में मुलतानीराम

अशरफियां बतलाता है उन्होंने पेटी खोलकर देखा तो बराबर सौ अशरफियों की अमानत जिसके ऊपर सन्त हरिदास का नाम भी लिखा हुआ था वह मिल गई, तब साधू ने मुलतान की पंचायत को तथा अदालत को अपनी अमानत दिखलाई सब देखकर हैरान हुए। और मुलतानीराम के लाहौर में नये सम्बन्धी सुनकर उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और तमाशा देखने के लिये माता-पितादि बहुत सम्बन्धी तथा मुलतान की पंचायत के आदमी सन्त को साथ लेकर लाहौर पहुँचे, और मुलतानीराम के बचपन से लेकर इक्कीस वर्ष तक छपे हुए फोटो साथ ले आए और सरकारी कागज़ जिनमें उसके जन्म की तिथी लिखी हुई थी। स्कूल के सार्टिफिकेट शादी के कागज और मुलतानीराम के पुत्र के कागज़ जिनमें तिथी, वार, संवत् लिखा हुआ था सब ले आये। जब लाहौर पहुँचे तो मुलतानीराम को दुकान पर बैठा देख कर बड़े प्रसन्न हुए और बहुत प्रेम से मिले, इतने में लाहौर वाले सम्बन्धी भी आगये। उन सम्बन्धियों का आपस में झगड़ा होगया। वे कहें मुलतानीराम हमारा लड़का है, वे कहे मुलतानीराम हमारा लड़का है, आखिर पंचायत इकट्ठी हुई तो मुलतानीराम से पूछा, सच बता तू किसका लड़का है? मुलतानीराम कहने लगा हूँ तो मैं दोनों

का ही परन्तु मेरे को कुछ पता नहीं चलता, तदन्तर वह मुकदमा मुसलमान बादशाह के पास गया। बादशाह ने लाहौर वालों के कागजात और मुलतान वालों के कागजात देखे परन्तु दोनों के दिन, महीने, साल एक जैसे निकले, अर्थात् जिस दिन मुलतानीराम का लाहौर में जन्म हुआ था उसी दिन, उसी महीने, उसी साल में मुलतान में जन्म हुआ। मतलब यह है सब काम जो भी उसने मुलतान में किया था वही काम, उसी घड़ी, उसी दिन लाहौर में किया। तब बादशाह की सब सभा हैरान हुई फोटो मिलाए तो दोनों जगह के एक जैसे मालुम हुए, तब बादशाह ने जवाब दे दिया कि, मेरे को कुछ पता नहीं चलता, इसलिये मेरे से यह इन्साफ नहीं हो सकता। मैं हैरान हूँ, लड़का तो एक है और जन्म दो जगह। सम्बन्धी, माता-पिता, पुत्र सब दो-दो हैं।

ऐसी बात न कभी देखी और न कभी सुनी है, मैं क्या इन्साफ (न्याय) करूँ और बालक किसको दूँ। आखिर बादशाह ने कहा:-इस बालक को चीर कर आधा आधा लेलो, उन्होंने कहा, ऐसे तो मर जायेगा और हम अपने लड़के को मारना नहीं चाहते, तब बादशाह ने कहा, बालक की एक-एक भुजा पकड़ लो. जिसके साथ यह बालक जाये वह ले जाये, अब बालक को दोनों तरफ

से दोनों सम्बन्धियों ने पकड़ लिया। लाहौर वाले लाहौर की तरफ और मुलतान वाले मुलतान की तरफ खींच रहे हैं, तब दोनों सम्बन्धियों ने दोनों तरफ से, किसी ने भुजा और किसी ने टांग, किसी ने कुछ किसी ने कुछ खींचा लड़के का अवयव पकड़ कर इधर-उधर खींच रहे हैं और बालक दुःखी हो रहा है। श्रीगुरु नानकदेव जी को याद कर रहा है। हे गुरु नानकदेव! हे गुरु नानकदेव! मेरी रक्षा करो। तब सब लोगों ने कहा इसको क्यों मार रहे हो? गुरु नानकदेव जी रावी नदी के किनारे पर बैठे हुए हैं, उनके पास चलो। तब सब मिलकर गुरु नानकदेव जी के पास आये, सब ने कहा महाराज हमारा फैसला करो और मुलतानीराम दुःखित हुआ पुनः पुनः प्रार्थना करता है, मेरी रक्षा करो और मेरे निमित्त दोनों माता-पितादि परिवार लड़ रहे हैं और मेरे को इधर-उधर खींच रहे हैं आप इनसे मेरी रक्षा करो। जब बालक ने गुरुजी की बारबार पुकार करी और बहुत लोग इकट्ठे हो रहे हैं, बालक को सम्बन्धियों ने पकड़ रक्खा है। तब श्री गुरुनानकदेव जी ने सब सम्बन्धियों को अलग २ बिठला कर उन दोनों के बीच में लड़के को बैठा दिया और सबको कहा आखें बन्द करो और हरे राम हरे राम की ध्वनि करो। तब गुरु जी के वचनानुसार सबने आंखें बन्द करली

और हरे राम हरे राम की ध्वनि करने लगे, फिर गुरु नानकदेव जी ने कहा नेत्र खोलो, तो क्या देखते हैं मुलतानीराम दो बने बैठे हैं। एक लाहौर वालों के पास और एक मुलतान वालों के पास। सब हैरान हुए और कहने लगे, यह क्या हुआ, गुरुजी ने कैसी लीला की है, परन्तु दिल में दोनों सम्बन्धी बड़े प्रसन्न हुए और गुरुजी की स्तुति की, तब गुरुजी ने मुलतानीराम से पूछा कि माया देखी; मुलतानीराम ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज अपनी माया को समाप्त करो, आपकी माया ने हम सब को भुला दिया है, अब आप ही हमारी रक्षा करो।

जब सब अपने २ घर चले गये तो मुलतानीराम हैरान ही रहा, दूसरे दिन लाहौर वाला मुलतानीराम गुरुजी के पास आया तब उसने आकर गुरुजी को नमस्कार की और कहा कल का विचार किस तरह हुआ था। तब गुरुजी ने कहा यह माया थी हुआ कुछ भी नहीं, तू यहाँ ही बैठ रहा था। तुमने जो कहा माया दिखाओ सो मैं आधी घड़ी में स्वप्न की तरह तुमको मुलतान में जन्म से लेकर पुत्र तक और लाहौर वालों के साथ झगड़ा करना, पंचायत इकट्ठी करनी, बादशाही अदालत में जाना और घसीट कर तेरे को यहां मेरे पास लाना, यह सब तेरे को माया द्वारा झूठा ही अनुभव कराया है,

परन्तु तुमको और तुम्हारे सम्बन्धियों को सत्य ही प्रतीत हुआ परन्तु सत्य बिलकुल नहीं था, तू यहाँ का यहाँ ही बैठा हुआ जैसे जिसको स्वप्न होता है। वह अपने घर में पलंग पर ही सोया रहता है, परन्तु अपने को अनेक जगह भ्रमण करता हुआ अपने को सुखी दुःखी देखता है, परन्तु पलंग पर जो सोया हुआ आदमी होता है, वह क्रिया रहित होता है और स्वप्न का अनुभव उसको सब होता है, तैसे ही तुमको मुलतान का सब अनुभव करा दिया। वह सब स्वप्नान्तर माया थी उसमें तू भूल गया, इस माया से गुरु ही रक्षा करते हैं। इसीलिये यह जीव सत् संगति में जाकर छूट सकता है, गुरुजी कहने लगे, हे मुलतानीराम जिस तरह मुलतान के सम्बन्धियों का आधी घड़ी के अन्दर तेरे को माया द्वारा झूठा ही अनुभव हुआ, तैसे तुम शुद्ध सच्चिदानन्द को, लाहौर वाले सम्बन्धियों का और संसार का, वासना के वश से ही झूठा अनुभव हो रहा है। इनमें सत्य कुछ भी नहीं, हे मुलतानीराम जिस तरह तेरे को मुलतान के सम्बन्धी प्यारे लगे थे जो कि स्वप्न के थे और इक्कीस वर्ष आयु का भी अनुभव हुआ और माया के प्रभाव से लाहौर के सम्बन्धी, स्त्री, पुत्रादि में प्यार करने से तेरे को सच्चा सम्बन्धी परमेश्वर भूल गया। यह सम्बन्धी

वास्तव में है नहीं परन्तु न होने पर भी तेरे को प्रतीत हो रहे हैं और परमात्मा सत्य रूप और सदैव रहने वाला, तू अपने आप होने पर भी तेरे को प्रतीत नहीं होता, इसीका नाम माया है, इसलिये तू भी गुरुशरण में जाकर इस माया से पार हो।

प्र०नं० ३—माई बाप पूत हित भ्राता, उन घर-घर मेल्यो दूआ। किसही वाध घाट किसही पहि, सगले लर लर मूआ। हौं बलिहारी सत गुरु अपने, जिन-एह चलत दिखाया, गुप्ती माह जलै संसारा, भगत न व्यापे माया। धनासरी० म० ५—पृ० ६७१॥

माया मोह सचो जग बांधा, हौं मैं पचे मनमुख मूराखा गुरु नानक बांहि पकर हम राखा॥

अव्यक्त नाम्नी परमेश शक्तिः,
अनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा।
कार्यानुमेया सुधियैव माया,
यया जगत्सर्वमिदं प्रसूयते॥ ११० पृ० ३७॥

भा०—जो अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की परा शक्ति है, वही माया है, जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है। बुद्धिमान जन इसके कार्य से ही इसका अनुमान करते हैं।

सन्नाप्यऽसन्नाप्युभयात्मिकानो,
भिन्नाप्यऽभिन्नाप्युभयात्मिकानो।
साङ्गाप्यऽनङ्गाप्युभयात्मिकानो,
महाद्भुतानिर्वचनीय रूपा ॥१११॥

भा०—वह न सत् है, न असत् है और न (सदसत्) उभय रूप है, न भिन्न है, न अभिन्न है और न (भिन्नाभिन्न) उभय रूप है और न अङ्ग सहित है, न अङ्ग रहित है। और न (साङ्गानङ्ग) उभयात्मिका ही है, किन्तु अत्यन्त अद्भुत और अनिर्वचनीय रूपा। जो कही न जा सके ऐसी प्रसिद्ध है।

शुद्धाद्वय ब्रह्म विबोधनाश्या, सर्प भ्रमो रज्जु विवेकतो यथा।
रजस्तमः सत्वमिति प्रसिद्धा, गुणस्तदीयः प्रथितैः स्वकार्यैः
॥११२॥

भा०—रज्जु के ज्ञान से सर्प—भ्रम के समान, वह अद्वितीय शुद्ध ब्रह्म के ज्ञान से ही नष्ट होने वाली है। अपने-अपने प्रसिद्ध कार्यों के कारण सत्य रज और तम—ये उसके तीन गुण प्रसिद्ध हैं।

माया मायाकार्यं सर्वं महदादि देह-पर्यन्तम्।
असदिद मनात्मिकं त्वं विद्धि मरु मरीचिका कल्पम् ॥१२५

भा०—माया और महत्तत्व से लेकर देह पर्य्यन्त माया

के सम्पूर्ण कार्यों को तू मरुमरीचिका के समान असत् और अनात्मक जान ॥ वि. चू ।

मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥

भा०—हे अर्जुन मेरी महत् ब्रह्मरूप प्रकृति अर्थात् त्रिगुणमयी माया सम्पूर्ण भूतों की योनी है और गर्भाधान का स्थान है, और मैं उन योनियों में चेतन रूप बीज की स्थापना करता हूँ उस जड़ चेतन के संयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है ॥

सर्व योनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ गी. अ. १४ श्लो–४

भा०—तथा हे अर्जुन ! नानाप्रकारकी सब योनियों में जितनी मूर्तियां अर्थात् शरीर उत्पन्न होते हैं, उन सबकी त्रिगुणमयी माया तो गर्भ को धारण करने वाली माता है । और मैं बीज की स्थापना करने वाला पिता हूँ ।

बाजीगर जैसे बाजी पाई नानारूप भेष दिखलाई ।
स्वांग उतार थमयों पासारा तब एको एकं कारा ॥

भा०—जैसे एक मदारी होता है, वह अनेक चित्रकारी करता है और जिस समय अपनी प्रवृत्ति को संकोचता है तब अकेला ही रह जाता है ।

बाजीगर डंक बजाई सब खलक तमासे आई ।
बाजीगर स्वाग सकेला अपने रङ्ग रवे अकेला ॥ गुरु बाणी ॥

भा०—जब बाजीगर अपना डमरू बजाता है सब दुनियां एक साथ इकट्ठी हो जाती है । जिस समय मदारी अपने खेल की निवृत्ति कर लेता है, तो अकेला ही बाकी रह जाता है ।

कथा नं० ३—एक चक्रवर्ती राजा बड़ा धर्मात्मा प्रजा पालक और एक स्त्री व्रत राज्य कर रहा था। एक बाजीगर उसके पास आया और कहने लगा महाराज मैं अच्छे-अच्छे खेल दिखाया करता हूँ और मैं बाजीगर हूँ, जैसा तमाशा आप देखना चाहो आज्ञा करो, मैं वैसा ही तमाशा दिखा कर आपसे इनाम पाऊँ । राजा साहब ने कहा, कोई ऐसा तमाशा दिखाओ जो होवे कुछ न परन्तु प्रतीत सब होवे और मेरे को इन्द्र, अग्नि आदि देवताओं के दर्शन करने की भी इच्छा है अगर दर्शन करा सकता है तो करा, मैं तुझे बडा इनाम दूगा । मदारी ने कहा महाराज! यदि मेरे को आज्ञा दो तो मैं स्वर्ग में जाकर इन्द्र, अग्नि आदिकों से युद्ध करके, मूर्छित कर या अङ्ग भङ्ग करके सब देवताओं को यहां आपके पास भेज दूँ और आपको दर्शन कराऊँ । क्योंकि मैं शूरवीर भी अद्वितीय हूँ । तो राजा ने कहा इससे परे और अच्छा

नया होगा, वेशक युद्ध करो। तब उस बाजीगर ने कहा— महाराज ! मेरे साथ एक पतिव्रता स्त्री है, वह मेरे बिना कहीं नहीं रह सकती और मैं युद्ध करने जाता हूँ, उसको साथ किस प्रकार ले जाऊँ। अगर उसको आप सहित सारी सभा अपनी कन्या तुल्य समझे, कोई खोटी दृष्टि न करे तो आपके पास रह सकती है, आप उसको रखें तो मैं तमाशा दिखलाऊँ, राजा कहने लगा, तुम्हारे आने तक हम और सारी प्रजा प्रतिज्ञा करती हैं, तुम्हारी स्त्री को कन्याभाव से संभाल कर रखेंगे, वेशक अपनी स्त्री को बुला लो। उस बाजीगर ने उसी जगह खड़े होकर आवाज दी, हे श्रीमती ! हे श्रीमती ! अन्दर आओ इतने में बड़ी सुन्दर स्त्री युवावस्था वाली, भूषण वस्त्रों से भूषित अन्दर आई और बाजीगर के चरणों में नमस्कार किया, मदारी ने कहा हे वरानने ! मैं राजा की आज्ञा पाकर देवताओं के साथ युद्ध करने के लिये स्वर्ग को जा रहा हूँ और तुम्हारे को राजा सहित सारी प्रजा पुत्री भाव से पालेंगे तुम यहाँ पर रहो और मैं देवताओं के साथ युद्ध करके शीघ्र ही वापिस आऊँगा। तो श्रीमती कहने लगी, महाराज ! यहाँ राजा से लेकर सब सभा के लोग व्यभिचारी बैठे हैं। मुँह से कन्या कहते है परन्तु अन्दर से दुष्ट हैं, मैं इनके पास कभी न रहूँगी।

राजा ने कहा—तू हमारी पुत्री है और सभा के लोग भी कहने लगे हे पुत्री; यह धर्मात्मा राजा है। इसलिये इसकी सभा भी धर्मात्मा है। यहां तेरे धर्म को जरा भी कोई न विगाड़ेगा, तुम प्रेम से हमारी कन्या के महल में रहो। यहाँ पुरुषमात्र का दर्शन भी नहीं होगा। ऐसा कह कर राजा ने अपनी अविवाहित कन्या को बुलवाया और कहा—इसको अपनी बहिन समझो और अपने साथ महल में ले जाओ। श्रीमती जाना नहीं चाहती थी परन्तु बहुत बार राजा और प्रजा के लोगों ने शपथ करी और कहा—तुम्हारे धर्म की रक्षा करेंगे और सुखी रक्खेंगे तब पति की आज्ञा पाकर, श्रीमती महलों में चली गई। और वाजीगर कहने लगा, महाराज! मैं अब स्वर्ग को जाता हूँ। छः महीने के भीतर ही सब देवताओं को युद्ध में नीचे गिरा दूंगा। आप सब देवताओं का दर्शन भली-प्रकार कर लेना और कहा अब मैं स्वर्ग जाने के लिये सीढ़ी तैयार करता हूँ। ऐसा कह कर एक सूत की कच्ची तन्तु का गोला निकाला, उस गोले को ऊपर फेंका, जहाँ तक ऊँचा गोला गया वहाँ तक सीढ़ी तैयार हो गई, फिर ऊपर जाकर गोले को ऊपर को फेंका, उसी तरह सीढ़ी बन गई। और वह ऊपर को चढ़ता हुआ यह कहने लगा, आठ दिन में स्वर्ग पहुँच जाऊँगा फिर युद्ध की तैयारी

करूँगा। एक मास तक गोलियों और शस्त्रों की आवाज़ आपको सुनाई देगी, फिर धीरे-धीरे देवताओं का भी दर्शन होगा, ऐसा कह कर सबके देखते-देखते सीढ़ी पर चढ़ता हुआ आकाश में दूर चला गया। सबके देखते-देखते ऊपर जाकर गायब हो गया। बराबर एक मास के बाद तोपों के गोले छूटने लगे और उनकी आवाज़ सुनाई देने लगी और धीरे-धीरे देवताओं के शिर धड़ गिरने लगे। आखिर में अग्निदेव का शिर गिरा जिसके मुख से प्रज्वलित अग्नि निकल रही थी। सबने दर्शन किया और मुकुट पर अग्निदेव का नाम लिखा था। सबने जाना यह अग्निदेव है, फिर इसी तरह से वायुदेव गिरा और फिर इन्द्रदेव गिरा वह बड़े हैरान हुए कि देखो कितना बड़ा शूरवीर है, जिसने देवताओं के साथ युद्ध करके जय करली है फिर उन देवताओं के शिर अन्तर्ध्यान हो गये। और दूसरे देवताओं के शिर गिरते रहे, दर्शन देने के बाद वे भी अन्तर्ध्यान हो गये। थोड़े दिनों के बाद बाजीगर के अङ्ग भी गिर पड़े प्रथम भुजा गिरी फिर टांग फिर शिर फिर सारा शरीर गिर पड़ा तो श्रीमती अपने पति का शिर पहिचान कर रोने लगी और कहने लगी मैं अपने पति के साथ सती हो जाऊँगी, राजा और सभा के लोगों ने बहुत रोका परन्तु न रुकी, पति के सब अवयव

इकट्ठे करके चिता बनाकर सती हो गई। सबने कहा देखो बाजीगर बेचारा युद्ध में मारा गया, स्त्री भी सती हो गई, और उसको इनाम भी न मिला, इसके अनन्तर शीघ्र ही उसी सीढ़ी से उतरता हुआ बाजीगर भी आ पहुँचा और राजा को नमस्कार करके कहने लगा, महाराज! आपने सब देवताओं के दर्शन किये और युद्ध भी खूब देखा तो राजा हैरान होकर कहने लगा, देवताओं के दर्शन भी किये युद्ध भी अच्छा हुआ, परन्तु तू भी तो मर कर यहां गिर गया था। तब बाजीगर कहने लगा, महाराज मैं तो नहीं मरा कोई और मरा होगा, अब मेरी स्त्री और इनाम दो, हम आपका धन्यवाद करते हुए अपने घर को जावें, राजा कहने लगा, इनाम तो दे देते हैं, परन्तु स्त्री तुम्हारी सती हो गई, वह कहां से देंगे। वह कहने लगा मैं तो जिन्दा हूँ वह किसके साथ सती हो गई, राजा की गर्दन नीची हो गई, तब बाजीगर राजा को प्रजा सहित बुरा भला कहने लगा, सारी सभा अधर्मी है मुझ गरीब की स्त्री छिपाकर तुम क्या फल पाओगे, अनर्थी पापी, और अमानत की ख्यानत करने वालो, मुझ गरीब को मेरी स्त्री देदो अन्दर क्यों छिपा रखी है। राजा और सभा के लोग सब कसम खाने लगे, तेरी स्त्री पति के साथ सती हो गई है। वह कहने लगा, उसका पति मैं हूँ और

जिन्दा हूँ। वह सती किसके साथ हुई, अरे दुष्टो! चोरो! मेरी स्त्री देदो—यह वचन सुनकर राजा को बड़ा शोक और दुःख उत्पन्न हुआ और सभा में अपना निरादर सुन, सहन न कर सका और दिल में बड़ी ग्लानि हुई और यह कहने लगा अगर धरती फट जाय तो मैं अभी इसमें समा जाऊँ, मदारी को कुछ उत्तर दे नहीं सकता था। बाजीगर कहने लगा अगर मेरे को ऐसा मालूम होता, यह लोग मेरी स्त्री पर मोहित होकर छिपा लेंगे, छोड़ेंगे नहीं तो मैं अपनी स्त्री को यहां छोड़ कभी न जाता। अरे पापी राजा! तूने मेरे को इनाम देने के बजाय तूने तो मेरा घर ही बरबाद कर दिया। मुझ गरीब की स्त्री छिपाने से तेरे को पुण्य तो होगा नहीं, केवल नरक होगा, तब राजा ने कहा तू मेरे को पापी-पापी कहता है मैंने तुम्हारी स्त्री तो छिपाई नहीं सारी सभा जानती है। तब वह कहने लगा, आपकी सभा तो आप जैसी ही है। मेरी स्त्री तुम सब ने मिल कर सात कोठरियों के अन्दर छिपा रक्खी है। अगर कहो तो मैं अपनी स्त्री को बुला सकता हूँ, और ताला खोल सकता हूँ। तो राजा ने कहा बड़ी खुशी से बुलालो, तब बाजीगर ने कहा—हे श्रीमती! आवाज आई, जी महाराज, "अरी" कहां है, महाराज! सात कोठरियों के अन्दर बन्द हूँ। राजा को बाजीगर ने

कहा—देख मेरी स्त्री सात कोठरियों के अन्दर बन्द है, ताले खोलोः—ताले खोले तो सातवीं कोठरी से निकल आई, राजा और सभा के लोग बड़े लज्जित हुए और उनको इतना दुःख हुआ जिसको जबान से कह न सके, कुछ समय तो चुप ही रहे, फिर राजा ने उसको बहुत इनाम देकर खुश किया, बाजीगर ने कहा—महाराज जैसा तमाशा आपने कहा था, मैंने आपको वैसा ही दिखाया क्योंकि आपने कहा था, ऐसा तमाशा दिखाओ, जो होवे कुछ न परन्तु उससे दुःख सुख प्रतीत होवे। इसलिये हे राजन्! देखो हुआ तो कुछ नहीं केवल मैंने अपनी माया से आपको सुख दुःख का अनुभव कराया है, देखो मैं यहाँ का यहाँ ही अकेला आया और कहीं गया नहीं, यहाँ बैठे-बैठे ही छः मास का तमाशा, न होने वाले पदार्थों का दिखलाया। वास्तव में मैं ही-हूँ मेरे सिवाय न कोई श्रीमती स्त्री थी और न सूत का गोला था, न सीढ़ी थी न देवताओं से लड़ाई हुई, और न देवता गिरे, और न मैं मरा और न मेरी स्त्री सती हुई, न मेरी स्त्री सात कोठरियों में छिपी हुई थी, मतलब यह है कि कुछ भी न था। एक मैं ही था, परन्तु मैंने अपनी माया से सबका तेरे को अनुभव कराया और तेरे को सुख दुःख भी हुआ।

दृष्टिमान है सगल मिथेना॥ गुरुवाणी पृ०—१०८३

अर्थात् सब मायिक है, वास्तव में कुछ भी नहीं, केवल प्रतीतिमात्र है, जैसे स्वप्न के पदार्थ, है कुछ नहीं परन्तु मिथ्या ही प्रतीत होते हैं–तैसे यह राज्यादि सामग्री और यह सभा—अहंत्वमादि जो तेरे को दिखाई अथवा सुनाई आ रहा है, यह सब मिथ्या है और झूठा है परन्तु मेरे तमाशे की तरह तुम इसको सत्य समझ कर सुखी और दुःखी होते हो और इन पदार्थों में राग-द्वेष करके पुण्य पाप करते हो और उसका फल स्वर्ग नरक में भोगते हो परन्तु एक चेतन के बिना और कुछ नहीं।

न देव दानवा नराः न सिद्ध साधका धरा।
असति एक दिगर कुई एक तुही एक तुही॥ गुरुवाणी

राजा ने यह वचन सुनकर और मदारी का तमाशा देखकर निश्चय किया कि जगत है नहीं। यह दृष्टि धारण कर जीवन्मुक्त होकर विचरने लगा और शरीर को छोड़ कर विदेह मुक्त हो गया—ऐसे ब्रह्म के स्वरूप को आच्छादन करने वाली माया कही जाती है।

प्रमाण नं० ४—"अघटन घटन पटीयसी माया"

माया किसको आखिये क्या माया कर्म कमाय।
सुख दुःख एह जीव बध है, हौं मैं कर्म कमाय॥ सिरी-म. ३-६७

पाये ठगौली सब जग जोहा।
ब्रह्मा विष्णु महादेव मोहा॥ आसा–म–५–३६४

जल में मीन माया के वेधे, दीपक पतङ्ग माया के छेदे।
काम माया कुँचर को व्यापे, भुजङ्ग भृङ्ग माया महिखापे॥
माया ऐसी मोहिनी भाई, जेते जी तेते डहकाई।
पंखी मृग माया महि राते, सूकर माखी अधिक संतापे॥
तूरे उष्ट्र माया में भेला, सिद्ध चौरासी माया में खेला।
छः जतिः माया के वंधा, नवै नाथ सूरज अरु चन्दा॥
तपे ऋषिश्वर माया में सूता, माया महि अरु पंच दूता।
श्वान स्याल माया महिराता, बन्दर चीते अरु सिंघाता॥
मार्जार गाड़र अरु लूँबरा, वृप मूल माया महि परा।
माया अन्तर भीने देव, सागर इन्द्रा अरु धरतेव॥
कहे कबीर जिस उदर तिस माया, तब छूटे जब साधु पाया॥

सन्त कबीर—पृ० २०७

कथा नं० ४—माया बड़ों-बड़ों को गिरा देती है, अर्थात् सुखी दुःखी करके भुला देती है, जैसे एक बार माया ने नारद को भी भुला दिया था। एक समय नारद जी भगवान के साथ देशाटन करते हुए एक वन में आ निकले, वहां एक स्त्री प्रसूत वायु की पीड़ा से दुःखी होकर रुदन कर रही थी और कहती थी हे भगवन् मेरे को इस दुःख से छुड़ा ले फिर मैं पति सङ्गम न करूँगी। तब नारद ने भगवान से प्रार्थना की, कि इसको दुःख से छुड़ाओ, भगवान ने कहा

इससे पूछो, यह सच्ची प्रतिज्ञा करती है क्या। नारद ने पूछा तो उसने कहा मैं सच्ची प्रतिज्ञा करती हूँ, तब नारद ने भगवान से कहा, महाराज जी यह सच्ची प्रतिज्ञा करती है, तब भगवान ने उस पर दया की तो बालक पैदा हुआ। कुछ वर्ष बाद भगवान तथा नारद फिर वहाँ आये और माई को फिर गर्भवती और प्रसूत की वायु की पीड़ा से रोते हुये देखा और भगवान को पुकारने लगी, हे भगवन् इस दुःख से छुड़ा दो! तब नारद ने भगवान को कहा— महाराज! यह वही माई है, क्या फिर भूल गई, भगवान कहने लगे हां नारद! मेरी माया सब को भुला देती है। नारद ने कहा फिर भी अपना बल रखना चाहिये हिम्मत न हारनी चाहिये। भगवान ने कहा—मेरी माया के आगे किसी का बल नहीं चल सकता। नारद ने कहा आपकी माया मेरे को नहीं मोह सकती भगवान ने कहा—तू भी भूल जायेगा, तब नारद ने हठ किया और कहा—आपकी माया मेरे को नहीं भुला सकती अर्थात् मैं इस स्त्री जैसा विषयासक्त नहीं होऊँगा। भगवान कहने लगे—तू इस स्त्री से भी अधिक विषयासक्त हो जावेगा यह स्त्री तो दो-चार बच्चों में ही संतुष्ट हो जायेगी। अगर तू स्त्री बनेगा तो पचासों बालक पैदा करके भी सन्तुष्ट न होवेगा। नारद कहने लगा—अगर माया से स्त्री बन भी

जाऊँ तो अपने पुरुषार्थ से, ज्ञान से ब्रह्मचारिणी बनकर रहूँगी, शादी न कराऊँगी। शादी बिना बच्चे कहाँ से पैदा करूँगी। भगवान् कहने लगे माया तुम्हारा सब ज्ञान-ध्यान भुला कर विषयों में आसक्त कर देगी और तू पति की इच्छा करेगी सन्तुष्ट न होवेगी, ऐसी इच्छा माया करा देगी तू माया से तर नहीं सकेगा। तब नारद ने कहा अच्छा भगवन्! मेरे को अपनी माया दिखाओ, भगवान ने देखा नारद को अहंकार हो गया है। इसका अहंकार दूर करना चाहिये। तब भगवान ने कहा, अपने आप को संभाल-ले, मेरी माया तेरे को भुला देगी। तो नारद जी सचेत रहे और भगवान के साथ एक सरोवर पर पहुँचे वहां भगवान दतौन करने लग और नारद जी ने स्नान करने के लिये जल में प्रवेश किया, गोता लगाते ही एक मच्छ ने नारद जी को निगल लिया, नारद मच्छ के पेट में चला गया, उस मच्छ को एक भील पकड़ कर ले गया और मच्छ का पेट चीरा तो नारद जी सुन्दर कन्या के रूप में मच्छ में से निकले। उस कन्या को भील ने पाला जब कन्या बड़ी हो गई तब उसको कामदेव के प्रभाव से रात-दिन ॥दी की इच्छा लगी रहती थी। माता पिता ने उसका . स्वभाव देख कर एक कुरूप भील के लड़के से उसकी शादी करदी। निरन्तर विषयासक्त होने से उसके

साठ पुत्र और बारह कन्या पैदा हो गई, तब भी कामेच्छा की निवृत्ति न हुई, एक दिन बच्चों के मल-मूत्र से भीगे हुए कपड़े धोने के लिये तालाब पर आई, जब सब कपड़े धोकर स्नान करके बाहर निकली और अपने को नारद-शरीर में देखा और भगवान को दतौन करते हुए देखा। भगवान का दर्शन करने पर भी भगवान में किंचित् मात्र प्रीति न हुई, तब रोने लगा और अपने पुत्र तथा कन्याओं का नाम लेकर पुकारने लगा और इधर-उधर दौड़ने लगा परन्तु कहीं भी उसका पति, पुत्र दिखाई न पड़ा और रो-रो कर बहुत व्याकुल हुआ भगवान ने उसको समझाया हे देवर्षि नारद! तू अपने स्वरूप को पहचान, तू असङ्ग है तेरा देह पुत्रादिकों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु नारद जी ने कहा उनको देखे बिना मेरे को शान्ति नहीं आयेगी एक बार मेरे को सब का दर्शन करा दीजिये भगवान ने उसके सब परिवार को दिखाया तो नारद को फिर मोह हुआ। भगवान ने फिर समझाया तो नारद ने प्रार्थना की मेरे बच्चों को उत्तम स्थान दो, तब भगवान ने साठ पुत्रों को साठ संवत् बनाया और बारह कन्याओं को बारह राशियाँ बनाईं, भगवान नारद को कहने लगे क्यों नारद? मेरी माया ने तुमको भूला दिया कि नहीं तब नारद जी ने कहा आपकी कृपा

विना माया का तरना अत्यन्त कठिन है। देखो मैं परमानन्द स्वरूप होता हुआ भी अपने को मायिक धर्मवान् कर्त्ता भोक्ता सुखी-दुःखी समझने लगा अब आपकी कृपा से माया निवृत्त हुई, हर्ष शोक से रहित हो गया हूँ। सुख दुःख दोनों को सम अर्थात् मिथ्या समझता हूँ इसलिये ज्ञानी पुरुष सुख-दुःख को मान-अपमान को मिथ्या समझ कर और उन में सम बुद्धि से हर्ष और शोक नहीं करते, जैसे जागृत काल में जागते हुए पुरुष, स्वप्न काल में स्वप्न के पदार्थों का, सुख दुःख अनुभव करते भी जागृत काल में हर्ष , शोक नहीं करते, समचित्त रहते हैं। वैसे ज्ञान होने के पीछे अज्ञान कृत पदार्थ शोक के हेतु नहीं होते। जैसे नारद जी को पहले शोक था फिर सनत्कुमारों के उपदेश करने से ऐसा चित्त शान्त हुआ कि बड़े-बड़े अवसर आने पर भी धैर्य रखा। जब दक्ष ने शाप भी दिया और अनेक दुर्वचन भी कहे तो भी नारद जी का चित्त सम रहा किंचित्मात्र भी हर्ष शोक न किया। दक्ष के शाप देने का कारण यह है। पांचजन्य प्रजापति की पुत्री अशकुनी दक्ष प्रजापति के साथ विवाही गई। दक्ष प्रजापति को ब्रह्माजी के संकल्प से सृष्टि पैदा करने का ख्याल हुआ तब दक्ष प्रजापति ने अपनी स्त्री, अशकुनी से हर्षारवादी दश हजार पुत्र पैदा किये, वे सब

लड़के सम स्वभाव, समाकृति, सम विद्या और समान ही पुरुषार्थ वाले थे। दक्ष ने उन सबको प्रजा उत्पन्न करने की आज्ञा दी, तो उन्होंने कहा—हम तपस्या करके आपकी आज्ञा पालन करेंगे। पुनः ऐसा कह पिताजी से आज्ञा लेकर सिन्धु नदी के किनारे घूमते-घूमते नारायण-सरोवर में पहुँच गये। वहां तपस्या करके चित्त की शुद्धि को प्राप्त हो गये, वहाँ नारद जी भी घूमते-घूमते जा पहुँचे और उन सबको उत्तमाधिकारी देख गृहस्थाश्रम की ग्लानि कराकर, ईश्वर भक्ति करने के लिये चतुर्थाश्रम अर्थात् साधु बनने की शिक्षा देने लगे, नारद जी के वचनों में दृढ़ विश्वास करते हुए वे सब ही साधु बन गये। पिता दक्ष के समझाने पर भी न रुके, दक्ष को नारद पर बड़ा क्रोध आया परन्तु ब्रह्मा जी ने दक्ष को शान्त किया, कहा और पुत्र पैदा करके प्रजा की वृद्धि करो। तब दक्ष ने उसी स्त्री से एक हजार पुत्र शबलाश्वादि पैदा करके उनको दक्षजी ने अनेक विद्या में निपुण कर दिया, उन्हीं को आज्ञा दी कि तुम तपस्या करके जल्दी वापिस आजाओ, आकर प्रजा की वृद्धि करो। तब वे भी नारायण सरोवर में जाकर तपस्या करने लगे। नारद जी फिर वहाँ पहुँच गये और उनको भी उपदेश देकर साधु बना दिया। जब दक्ष को पता चला तो नारद पर बड़ा क्रोधित हुआ,

इतने में नारद जी भी दक्ष के पास पहुँच गये, नारद को देख कर दक्ष के नेत्र लाल हुए और बड़े कटु वचन कहे, और शाप दे दिया तुम्हारा सारा जीवन संसार में भ्रमण करते हुए ही व्यतीत होगा। तू किसी एक जगह नहीं ठहरेगा हमेशा घूमता रहेगा, नारद जी दक्ष के कठोर वचन सुनकर शापादि देने को समर्थ होते हुए भी दक्ष को कुछ न कहा और हंसते रहे, प्रसन्न वदन होकर दक्ष के शाप को स्वीकार किया। इस प्रकार नारदजी के सुख दुःख में सम रहने की कथा शुकदेव स्वामी ने राजा परीक्षित को सुनाई और कहा हे परीक्षित! तुम भी पदार्थों को मायिक निश्चय करके श्री नारद जी की तरह हर्ष शोक से रहित हो जाओ। जिसकी भी पदार्थ में मिथ्या बुद्धि हो जाती है, उसको सुख दुःख आने पर भी हर्ष तथा शोक नहीं होता। जैसे सनकादि मुनियों को पहिले अज्ञान काल में, मान-अपमान से हर्ष शोक होता था। भगवान वेदव्यास ने शिव पुराण, रुद्र संहिता, पार्वती खण्ड के दूसरे अ० में सनत्कुमारों की कथा लिखी है:—

एक समय ब्रह्माजी की सभा में सब देवतागण, ऋषिगण, सत्संग करने के लिये आये थे। नारदजी प्रश्न करते जाते थे और ब्रह्मा जी उत्तर देते जाते थे। नारदजी ने पारवती, सीता, राधाजी के कल्पान्तरीय जन्म की

कथा पूछी, तब ब्रह्माजी कहने लगे, हे नारद ! तुम्हारे भाई दक्ष की साठ कन्यायें थीं जो कश्यपादि ऋषियों को विवाही गई थीं। उनमें स्वधा नाम की कन्या का विवाह पितृदेव जी के साथ हुआ था। स्वधा से मेना, धन्या, कलावती, नाम की तीन कन्यायें पैदा हुई, वे तीनों ही भगवत् भक्ति परायण रहती थीं। और तीनों ही युवावस्था को प्राप्त हो गईं, परन्तु हृदय में भगवान विष्णु के दर्शन की अभिलाषा करती रहीं। एक समय श्वेत द्वीप में भगवान के दर्शनार्थ तीनों ही गईं, दर्शन कर तृप्त चित्त होकर भगवान के पास ही बैठी रही, इतने में भ्रमण करते हुए सनत्कुमार आदि भी वहाँ आ पहुंचे और आकर भगवान विष्णु जी की स्तुति करने लगे। सनत्कुमारों को आते देख कर सब सभा उठ खड़ी हुई और सनत्कुमारों को नमस्कार किया। परन्तु पितृदेव की तीनों कन्या न उठीं और न नमस्कार कीं तब सनत्कुमारों को और सभासदों को बड़ा कोप हुआ, तब सनत्कुमार कहने लगे हे लड़कियों तुम अति मूढ़ हो और वैदिक धर्म से विमुख हो, जो अपने से बड़ों के आगे न तो उत्थान कर्म किया और न नमस्कार कीं, अब मैं तुमको शाप देता हूँ। तुम स्वर्ग से गिर जाओ और मनुष्य लोक में मानव स्त्री बन कर रहो। कन्यायें शाप सुनकर चरणों में गिर पड़ीं

और बहुत बार कहा—क्षमा करो क्षमा करो तब सनत्कुमार आदि फिर प्रसन्न हुए कहा अच्छा मैं तुमको वर देता हूँ, तुम तीनों क्रम से पार्वती, सीता और राधिका के रूप में जन्म धारोगी। पार्वती शिवजी को विवाही जायेगी और सीता श्री रामचन्द्र जी के साथ विवाही जायगी और राधिका का श्रीकृष्ण के साथ प्रेम होगा जो विष्णु के स्वरूप हैं और तुम्हारा नाम भगवान के नाम से मिलाकर लोग जपेंगे और नाना प्रकार के नैवेद्य अर्पण करेंगे। इस प्रकार सनत्कुमारों को मान अपमान में पहले हर्ष शोक होता था, तथा जय-विजय द्वारपालों ने केवल अन्दर विष्णु भगवान के पास न जाने दिया, तो अपना अपमान समझकर जय विजय को शाप दिया तुम घोर राक्षस बनो और वैर भाव करते भगवान् के हाथ से मरकर के तीन जन्म भोगकर फिर इस द्वारपाल के पद को प्राप्त होंगे इस प्रकार मान अपमान से सनकादियों को पहले हर्ष शोक हो जाया करता था, पीछे जब हंसावतार द्वारा नित्यानित्य का विचार किया, तो मायिक पदार्थ अनित्य (मिथ्या) है, जब यह दृढ़ निश्चय हुआ तो एक दिन सनकादि ऋषि समाधि में स्थित थे और आस-पास ऋषि-मुनि भी कोई तप कोई ईश्वर भक्ति कोई ध्यान कर रहे थे उसी समय श्री गङ्गा जी के किनारे श्रेष्ठ महात्माओं

और उत्तम आश्रमों की यात्रा करते हुए शिव जी पार्वती सहित वहां पर आये तो सब ऋषिश्वर उठकर खड़े हुए शिव जी का सन्मान किया और पूजा की शिव भगवान् भी सब महात्माओं के आसनों पर जाकर यात्रा तथा सबका दर्शन करते हुए सनत्कुमार के पास पहुँचे परन्तु सनत्कुमार ऋषि समाधि में स्थित रहे और महादेव जी ध्यान स्थित देखकर बड़े प्रसन्न हुए परन्तु पार्वती जी स्त्री स्वभाव से महादेव जी का अपमान सहन न कर सकी और सनत्कुमारों को अनेक दुर्वचन कहकर शाप देने का ख्याल किया, इनको अधिक कष्ट दायक शाप दूँ ऐसा विचार कर कहा अरे महादेव के अपमान करने वाले मूढ़ में तुम्हारे को शाप देती हूँ। महादेव ने पार्वती की यह दशा को देखकर बहुत रोका परन्तु पार्वती का क्रोध न रुका और शाप दे दिया कहा तुम्हारा जन्म शूद्र अश्वपाल अर्थात् घोड़ों की सेवा करने वाले लीद उठाने वाले दुर्गन्धि में रहने वालों के घर हो। ऐसे अनेक दुर्वचन कहे सनत्कुमार पार्वती को शाप देने में सामर्थ भी थे परन्तु सत्यासत्य के विवेक से उनका चित्त शान्त हो चुका था पार्वती का शाप स्वीकार कर चित्त में कोई हर्ष विषाद न हुआ झटपट अपने पहले शरीर को छोड़कर अश्वपाल का रूप धारकर पहले से भी स्वतन्त्र और

शौच स्नानादि नित्य कर्म की विधि से भी रहित हो गये, अब उनको शूद्र होने पर सन्ध्यादि कर्म का कोई कर्तव्य न रहा दिन रात आनन्द में रहने लगे कुछ दिन बाद पार्वती का क्रोध शान्त हुआ तो विचार किया कि मैंने निष्पाप सनत्कुमारों को शाप दिया अब चलकर उनकी खबर लूँ महादेव के साथ वहां आई जहां सनत्कुमार जी अश्वशाला के द्वार पर आनन्द में मग्न हुए पड़े थे वहां भी सनत्कुमार की खुशी देखकर बड़ी प्रसन्न हुई कहा कि वर मांगो मैं तुम्हारे पर बड़ी प्रसन्न हूँ। सनत्कुमार कहने लगे, मेरे पर आपकी महती कृपा है मैं पहले ब्राह्मण शरीर से इस शूद्र शरीर में सौ गुना अधिक सुखी हूँ। थोड़ी सी कठिनाई इस शूद्र शरीर में भी मानता हूं जो मल-मूत्र के लिये उठकर दूर जाना पड़ता है और हस्त पादादि धोने पड़ते हैं ऐसा कोई शरीर कृपाकर के हमको दें जो खड़े खड़े या बैठे बैठे मल-मूत्र त्याग करूं और हमारे को मल-मूत्र का विशेष स्पर्श भी न हो, तब पार्वती को फिर क्रोध हुआ और कहने लगी, ऐसे तो ऊँट होते हैं तुम ऊँट हो जाओ तब जल्दी ही तथास्तु कहते ही ऊँट बन गये और किसी के सिखलाने मारने पीटने पर भी काम न किया करें तब ऊँट वालों ने उनसे तङ्ग आकर उन्हें खुला छोड़ दिया तब वह स्वतन्त्र हरी २ वृक्षों की टहनीयां खाकर

और गङ्गा जल पीकर बड़े मस्त रहा करें। अब तो सब वैदिक क्रिया का अभाव है, हमारे लिये विधि नहीं रही बैठे बैठे ही मल मूत्र का त्याग करते हैं कुछ काल पाकर पार्वती को फिर ख्याल आया और महादेव जी के साथ आकर देखा तो पहले से भी अधिक आनन्द में बैठे हैं पार्वती ने आकर कहा वर मांगो तब सनत्कुमारों ने कहा जब तक हमारी प्रारब्ध है तब तक हमारे को यह वर दो यह ऊँट शरीर ही हमको मिलते रहें तब पार्वती जी बड़ी दीन हुई और कहा अगर आप निष्काम हों और मेरे से वर नहीं मांगते तो आपही मुझपर प्रसन्न होकर वर दो तब वह कहने लगे हम तुम्हारे पर प्रसन्न हैं तू वर माङ्ग तब पार्वती ने कहा मेरा वर यही है तुम हमारे पुत्र हो तब सनत्कुमार जी ने कहा तथास्तु फिर आकर पुत्र हुये, उनका नाम कार्तिकेय हुआ और स्कन्द भी था कामजीत भी उनको कहते हैं इस प्रकार नित्यानित्य के विवेक से पीछे सनत्कुमार जी को सुख दुःख मान अपमान में समदृष्टि हो गई। प्रमाण नं०—५

माया मेघो जगन्नीरं वर्षत्वेष यथातथा।
चिदाकाशस्य नो हानिर्नैवलाभ इतिस्थितिः॥

माया मेघ बनकर अनेक प्रकार के सुख दुःख रूपी जल की वृष्टि करे परन्तु मैं आकाश की तरह असङ्ग रहूँ

मेरी क्या हानिकर सक्ती है ॥

माया साथ ना चलई, क्या लपटावे अन्ध। मारवार।
माया सच राजे अहकारी, माया साथ न चले प्यारी।
माया ममता है बहुरङ्गी, बिन नावे को साथ न सङ्गी॥
भूपत होय के राज कमाया, करकर अनर्थ विहाजी माया।
सचित सचित थैली कीनी, प्रभु उसते डार और को दीनी॥
गहोकर पकडी ना आई हाथ, प्रीतकरि चालि नहीं साथ।
कहो नानक जो त्यागदई तब ओह चरणी आयपदी॥

कथा नं०—५ एक समय की बात है कि भगवान् विष्णु और लक्ष्मी दोनो ससार यात्रा के लिये भ्रमण कर रह थ, अनेक तीर्थों में घूमते २ एक शुभस्थान पर पहुचे परस्पर बातचीत होने लगी और बात करते २ आपस में कलह सी हो गई, तो भगवान् ने कहा मेरे भक्त ऐसे उदास रहते ह कि तुम्हारी इच्छा तक नहीं करते लक्ष्मी ने कहा कि मेरे को मानने वाले तुमको धक्का देकर निकाल देते ह, आपको कुच्छ नहीं समझते और मेरी ही पूजा करत ह यदि आपको विश्वास नहीं है तो परीक्षा कर सकते ह ऐसा लम्बा चौडा वाद-विवाद बढ़जाने पर भगवान विष्णु जी बोले म अपने भक्त के पास जाता हूँ तुम बाद में आजाना, इसमें ही निर्णय हो जायगा ऐसा कह कर विष्णु जी एक शेठ के पास पहुँच गये और शेठ ने

बहुत स्वागत किया, चाय पानी और दुधादि की सेवा की और रहने के लिये अलग २ अच्छे अच्छे कमरे खोल दिये और विशेष सेवा के लिये पूछा हे भगवन् आप किसी किसम का संकोच मत करियेगा आपके लिये सब सामग्री तैय्यार है, तब भगवान् ने अति प्रेमी समझकर बोला हे भक्त मेरी इच्छा यहा पर चतुरमासा रहने की है, तुम मुझे एक अच्छा कमरा खोल दो और साथ ही प्रतिज्ञा कर दो की मै आपको चार मास तक कभी नही निकालूगा, और आपका सब खाने पीने का प्रबन्ध करूँगा, और किसी प्रकार की कमी नही रहने दूँगा तब हम आपके पास ठहर सकते है नहीं तो अभी से जबाब दे देना चाहिये जिनसे मै अपना दूसरा उपाय सोच लूँ। तब शेठ भक्त डर कर बोला, हे भगवन् आपका कार्य आपकी इच्छानुसार होगा, आप चिन्ता मत करियेगा, तब भगवान् ने आसन लगा दिया और सेवा प्रेम से होने लग गई, तब भगवान् ने समझा अब मेरा लक्ष्मी कुछ नहीं बिगाड़ सकती क्योंकि मेरा काम बिलकुल पक्का हो गया है, उधर से लक्ष्मी को पता चला विष्णु ने अपना पक्का काम कर लिया है, अब जाना चाहिये ऐसा कहकर लक्ष्मी अच्छी तरह भूषणों के सहित और चपडासियों को साथ लेकर प्रेम पूर्वक चल पड़ी और देखा शेठ जी अपनी घर वाली

के साथ कुछ बात चीत कर रहे हैं आकर वहां पर ही आसन जमा दिया, और शेठ शेठानी अतिथि सत्कार के लिये नीचे उतर आये; और क्या देखा लक्ष्मी जी ने सोने चांदी के बरतनों में चाय पिया, और वहां पर ही छोड़ दिया, तो शेठ जी सोना चांदी देखकर चकित हो गये, और सोचने लगे यदि वह स्त्री कुछ दिन यहां रही तो हम लोग मालोमाल हो जायेंगे। ऐसा समझकर लक्ष्मी का स्वागत करने लगे और कहा हे माया यदि आप यहां पर ठहरो तो आपका रहने का प्रबन्ध कर दें तो लक्ष्मी ने बोला अच्छा कमरा मेरे अनुकूल का होना चाहिये शेठ ने बोला जो इन कमरों में तुमको अच्छा लगे सो ले सकती हो, तो लक्ष्मी ने विष्णु के कमरे को लेना स्वीकार किया, शेठ ने बोला देवी और जो अच्छा कमरा होवे सो ले सकती हैं परन्तु इसमें साधु रहते हैं और हमने प्रतिज्ञा भी की है, इसलिये और कमरा अच्छे से अच्छा आप लेवें। किन्तु लक्ष्मी नहीं मानी और बोली इसी कमरे में रहना चाहती हूँ शेठ जी ने लोभ में आकर अपने लड़के को बोल दिया, उस बूढ़े बाबा को बोलो कमरा शीघ्र खाली कर दें नहीं तो तिरस्कारित करके निकाला जायगा। तो लड़के ने ऐसा ही बोल दिया तब साधु जी कहने लगे तुम्हारे पिता ने चार मास की प्रतिज्ञा की है, उसके

अनुसार रहना चाहिये तब लड़का बोला अब मेरे पिता की बात छोड़ो क्योंकि उसकी घर में नहीं चलती, आप कृपा करके मकान खाली कर दें नहीं तो धक्के लगेंगे, साधु हठकर पड़ा ही रहा तो लड़का और उसकी स्त्री भूत की तरह पीछे पड़ गये और साधु के सामान को पटक दिया और दे धक्के से धक्का बाहर कर दिया, और लक्ष्मी को कमरा दे दिया तो कुछ दिनों बाद लक्ष्मी भी चली गई, और सोने चांदी के बरतन सो भी राख हो गये और लक्ष्मी आगे जाकर विष्णु को मिल गई, वह बोली हे पतिदेव आपको हमने धक्के दिलाए और आपका सामान भी फेंक दिया गया तो मेरे भक्त बड़े हैं और इसलिये मैं भी बड़ी हूँ विष्णु भगवान् बोले ठीक है, तुम बड़ी तेरे भगत बड़े परन्तु अब मेरा भी एक भक्त है सो तुमको ठीक करेगा मैं उसके पास जाता हूं बाद में तू आजाना तो विष्णु जी कबीर के पास गये जाकर शिर की पगड़ी बुनाने को देदी और बोल दिया शीघ्रातिशीघ्र पगड़ी बुन कर देनी होगी कबीर जी ने कहा बहुत अच्छा बाद में योग माया गई और उसने भी अपनी साड़ी बुनने को देदी और कह दिया मेरी साड़ी सबसे पहले बुनकर देनी होगी, और मेरे से पैसे जितने चाहिये पहिले पेशगी ले लें, कबीर ने बोला यहां पर तो नम्बर

वार काम होता है और रकम का कोई सवाल नहीं है, लक्ष्मी ने बहुत हठ किया और कहा यह ले पैसे शीघ्राति-शीघ्र मेरा काम कर, नहीं तो मैं दूसरे किसी से काम करा लूंगी, कबीर ने समझ लिया, मेरे भगवान को नीचा दिखाना चाहती है और मेरे साथ छल कपट करती है, भगत ने बुलाकर लक्ष्मी के नाक कान काटकर नीचे गिरा दिया और माया रोती २ विष्णु के पास आई तो भगवान ने कहा, कहो मैं बड़ा या तुम बड़ी तो माया बोली आप बड़े हैं और मेरी तो भक्त कबीर ने दशा ही खराब कर दी।

प्र० नं० ६—नाको काटी कानो काटी, काट कूटके डारी, कहे कबीर सन्तन की वैरन तीन लोक की प्यारी। माया मन हो न विशरे, मांगे दंमा दंम, सो प्रभु चित न आवई; नानक नहिं कर्म। मोहिनी मोह लिये त्रयगुणियां, लोभ व्यापी झूठी दुनियां, मेरी२ करके संची अन्तकी वार सगल लें छलिया। निशिदिन माया कारणे, प्रानी डोलत नीत। कोटन में नानक कोऊ, नारायन जेह चीत। माया ममता मोहनी। जिन विण दन्ता जग खाया। मन मुख खादे गुरुमुख उबरे; जिन सच नाम चित लाया॥

मन माया में रम रह्यो, निकसत नाहिन मीत।
नानक मूर्ति चित्र ज्यों, छाड़त नाहिन भीत॥

कथा नं० ९-हिमालय पर्वत में एक बड़ी पवित्र गुफा थी, उसके समीप ही सुन्दर गङ्गा जी की धारा बहती थी, वहां परम पवित्र सुन्दर आश्रम देखने पर नारद जी के मन को बहुत ही सुहावना लगा, पर्वत नदी और वनके सुन्दर विभागों को देखकर नारद जी का लक्ष्मीकान्त भगवान् के चरणों में प्रेम हो गया। भगवान् का स्मरण करते ही उन (नारद मुनि) के शाप की जो उन्हें दक्ष प्रजापति ने दिया था, और जिसके कारण वे एक स्थान पर नहीं ठहर सकते थे, गति रुक गई और मन के स्वाभाविक ही निर्मल होने से उनकी समाधि लग गई नारद मुनि की यह तपोमयी स्थिति देखकर देवराज इन्द्र डर गया। उसने कामदेव को बुलाकर उसका सत्कार किया और कहा मेरे हित के लिये तुम अपने सहायकों सहित नारद की समाधि भङ्ग करने को जाओ, यह सुनकर मीनध्वज कामदेव मन में प्रसन्न होकर चला, इन्द्र के मन में यह डर हुआ, देवर्षि नारद मेरी पुरी (अमरावती) का राज्य चाहते हैं। जगत में जो कामी और लोभी होते हैं, वे कुटिल कौए की तरह सबसे डरते हैं, जैसे मूर्ख कुत्ता सिंह को देखकर सूखी हड्डी लेकर भागे, वह मूर्ख समझे कहीं उस हड्डी को सिंह छीन न लेवे वैसे ही इन्द्र को, नारद जी मेरा राज्य छीन लेंगे, ऐसा सोचते लाज नहीं आई,

जब कामदेव उस आश्रम में गया, तब उसने अपनी माया से वहाँ बसन्त ऋतु को उत्पन्न किया, तरह २ के वृक्षों पर रंग बिरंगे फूल खिल गये, उन पर कोयलें कूकने लगीं और भौंरे गुंजार करने लगे, कामाग्नि को भड़काने वाली तीन प्रकार की (शीतल मन्द और सुगन्ध) सुहावनी हवा चलने लगी, रंभादि नवयुवतियाँ देवाङ्गनाएँ जो सब की सब काम कला में निपुण थीं, वे बहुत प्रकार की तानों की तरङ्ग के साथ गाने लगीं और हाथ में गेंद लेकर नाना प्रकार के खेल, खेलन लगीं, कामदेव अपने इन सहायकों को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और फिर उसने नाना प्रकार के माया जाल किये। परन्तु कामदेव की कोई भी कला मुनि पर असर न कर सकी तब तो पापी कामदेव अपने ही नाश के भय से डर गया लक्ष्मी पति भगवान जिसके बड़े रक्षक हों भला उसकी मर्यादा को कोई दबा सकता है? तब अपने सहायकों सहित कामदेव ने बहुत डरकर और अपने मन में हार मान कर बहुत ही (अति दीन) वचन कहते हुए मुनि के चरणों को जा पकड़ा नारद जी के मन में कुछ भी क्रोध न आया उन्होंने प्रिय वचन कहकर कामदेव का समाधान किया, तब मुनि के चरणों में सिर नवा कर और उनकी आज्ञा पाकर कामदेव अपने सहायकों सहित लौट गया। देवराजेन्द्र की

सभा में जाकर उसने मुनि की सुशीलता और अपनी करतूत सब कही जिसे सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ, और उन्होंने मुनि की बड़ाई करके श्री हरि को सिर नवाया। तब नारद जी शिव जी के पास गये, उनके मन में इस बात का अहंकार हो गया, हमने कामदेव को जीत लिया उन्होंने कामदेव के चरित्र शिव जी को सुनाए और महादेव जी ने उन (नारद जी) को अत्यन्त प्रिय जानकर इस प्रकार शिक्षा दी हे मुने! मैं तुमसे बार २ विनती करता हूँ। जिस तरह यह कथा तुमने मुझे सुनाई है उस तरह भगवान श्री हरि को कभी मत सुनाना चर्चा भी चले तब भी इसको छिपा जाना यद्यपि शिव जी ने यह हित की शिक्षा दी, पर नारद जी को यह अच्छी न लगी।

हे भरद्वाज! अब कौतुक (तमाशा) सुनो हरि की इच्छा बलवान् है श्री रामचन्द्र जी जो करना चाहते हैं वही होता है ऐसा कोई नहीं जो इसके विरुद्ध कर सके, श्री शिव जी के वचन नारद जी के मन को अच्छे नहीं लगे, तब वे वहाँ से ब्रह्मलोक को चल दिये, एक बार गान विद्या में निपुण मुनिनाथ, नारद जी हाथ में सुन्दर वीणा लिये, हरिगुण गाते हुए, क्षीर सागर को गये। जहां वेदों के मस्तक स्वरूप (मूर्तिमान वेदान्त तत्त्व) लक्ष्मी निवास भगवान नारायण रहते हैं, रमा निवास भगवान

उठकर बड़े आनन्द से उनसे मिले और ऋषि नारद जी के साथ आसन पर बैठ गये, चराचर के स्वामी भगवान् हँसकर बोले, हे मुनिनाथ आज आपने बहुत दिनों पर दया की यद्यपि श्री शिव जी ने उन्हें पहले से ही वरज रखा था, तो भी नारद जी ने कामदेव का सारा चरित्र भगवान् को कह सुनाया, श्री रघुनाथ जी की माया बड़ी ही प्रबल है जगत में ऐसा कौन जन्मा है जिसे वह मोहित न करदे भगवान् रूखा मुँह करके कोमल वचन बोले हे मुनिराज आपका स्मरण करने से दूसरों के मोह, काम और मद का अभिमान मिट जाता है। फिर आपके लिये तो कहना ही क्या है हे मुनिराज ! सुनिये मोह तो उसके मन में होता है, जिसके हृदय में ज्ञान वैराग्य नहीं है आप तो ब्रह्मचर्य व्रत में तत्पर और बड़े धीर बुद्धि हैं भला कहीं आपको भी कामदेव सता सकता है नारद जी ने अभिमान के साथ कहा—भगवन् यह सब आपकी कृपा है करुणानिधान भगवान ने मन में विचार कर देखा, इनके मन मे गर्व के भारी वृक्ष का अंकुर पैदा हो गया है मैं उसे तुरन्त ही उखाड़ फेंकूगा क्योंकि सेवकों का हित करना हमारा प्रण है, मैं अवश्य ही वह उपाय करूँगा जिससे मुनि का कल्याण और मेरा खेल हो, तब नारद जी भगवान् के चरणों में शिर नवाकर चले, उनके

हृदय में अभिमान और बढ़ गया, तब लक्ष्मी पति भग-वान ने अपनी माया को प्रेरित किया अब उसकी कठिन करनी सुनो, उस हरि माया ने रास्ते में सौ योजन (चार सौ कोष) का एक सुन्दर नगर रचा, उस नगर की भाँति २ की रचनाएं लक्ष्मी निवास विष्णु के नगर (वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर थी, उस नगर में ऐसे सुन्दर नर-नारी बसते थे। मानो बहुत से कामदेव और उसकी स्त्री, रति ही मनुष्य, शरीर धारण किये हुए हो। उस नगर में शीलनिधी नाम का राजा रहता था जिसके यहां असंख्य घोड़े हाथी और सेना के समूह (टुकड़ियां) थे उसका वैभव और विलास तो इन्द्र के समान था वह रूप तेज, बल और नीती का घर था। उसके विश्व मोहिनी नाम की ऐसी रूपवती कन्या थी जिसके रूप को देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाय वह सब गुणों की खान भगवान की माया ही थी, उसकी सोभा का वर्णन कैसे किया जा सकता है, वह राज कुमारी स्वयंवर करना चाहती थी, इसके यहां अगणित राजा आये हुए थे। खिलवाड़ी मुनि नारद जी उस नगर में आये और नगरवासियों से उन्होंने सब हाल पूछा सब समाचार सुनकर वे राजा के महल में आये राजा ने पूजा करके मुनि को आसन पर बैठाया, फिर राजा ने राजकुमारी को लाकर नारद जी को दिखाया

और पूछा हे नाथ ! आप अपने हृदय में विचार कर इसके सब गुण दोष कहिये। उसके रूप को देखकर मुनि वैराग्य को भूल गये और बड़ी देर तक उसकी ओर देखते ही रह गये उसके लक्षण देखकर मुनि अपने आपको भी भूल गये और हृदय में हर्षित हुए पर प्रकट रूप में उन लक्षणों को नहीं कहा, लक्षणों को सोच कर वे मन में कहने लगे, जो इसे व्याहेगा वह अमर हो जायगा और रण भूमि में कोई उसे जीत न सकेगा यह शील निधि की कन्या जिसको वरेगी सब चर-अचर जीव उसकी सेवा करेंगे सब लक्षणों को विचार कर मुनि ने अपने हृदय में रख लिया और राजा से कुछ अपनी ओर से बनाकर' कह दिया राजा से लड़की के सुलक्षण कहकर नारद जी चल दिये परन्तु उनके मन में यह चिन्ता थी कि मैं जाकर सोच-विचार कर वही उपाय करूँ जिससे यह कन्या मुझे ही वरे। इस समय जप-तप से तो कुछ हो नहीं सकता हे विधाता ! मुझे यह कन्या किस तरह मिलेगी, इस समय तो बड़ी भारी शोभा और विशाल सुन्दर रूप चाहिये जिसे देखकर राजकुमारी मुझ पर रीझ जाय और तब जयमाला मेरे गले में डाले एक काम करूँ भगवान से सुन्दरता मांगूँ पर भाई उनके पास जाने में तो बहुत देर हो जायेगी किन्तु श्री हरि के समान मेरा हेतु भी कोई

नहीं है इसलिये इस समय वेही मेरे सहायक हों उस समय नारद जी ने भगवान की बहुत प्रकार से विनती की तब लीलामय कृपालु प्रभु वहीं प्रकट हुए, स्वामी को देखकर नारद जी के नेत्र शीतल हो गये और वे मन में बड़े ही हर्षित हुए, अब काम बन ही जायगा। नारद जी ने आर्त होकर सब कथा कह सुनाई और प्रार्थना की कृपा कीजिये, मेरे सहायक बनिये, हे प्रभो आप अपना रूप मुझको दीजिये और किसी प्रकार उस राज कन्या को नहीं पा सकता, हे नाथ जिस तरह मेरा हित हो, आप वही शीघ्र कीजिये मैं आपका दास हूँ अपनी माया का विशाल बल देखकर दीन दयालु भगवान् मन ही मन हंसकर बोले, हे नारद जी सुनो जिस प्रकार आपका परमहित होगा, हम वही करेंगे, दूसरा कुछ नहीं हमारा वचन असत्य नहीं होता है हे योगी मुनि! सुनिये रोग से व्याकुल रोगी कुपथ्य मांगे तो वैद्य उसे नहीं देता उसी प्रकार मैंने भी तुम्हारा हित करने की ठान ली है, ऐसा कहकर भगवान अन्तर्धान हो गये, भगवान की माया के वशीभूत हुए मुनि ऐसे मूढ़ होगये, वे भगवान की अगूढ वाणी को न समझ सके, ऋषिराज नारद तुरन्त वहां से गये, जहां स्वयंवर की भूमि बनाई हुई थी राजा लोग खूब सज-धजकर समाज सहित अपने र

आसन पर बैठे थे मुनि (नारद) मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे मेरा रूप बड़ा सुन्दर है मुझे छोड़ कन्या भूल कर भी दूसरे को न वरेगी कृपानिधान भगवान ने मुनि के कल्याण के लिये उन्हें ऐसा कुरूप बना दिया कि जिसका वर्णन नहीं होसकता। परन्तु यह चरित्र कोई भी न जान सका सबने उन्हें नारद ही जानकर प्रणाम किया वहां दो शिव जी के गण भी थे वे सब भेद जानते थे और ब्राह्मण का वेष बनाकर सारी लीला देखते फिरते थे, वे भी बड़े मौजी थे, नारद जी अपने हृदय में रुप का बड़ा अभिमान लेकर जिस समाज (पंक्ति) में जाकर बैठे थे वे शिव जी के दोनोंगण भी वहीं बैठ गये ब्राह्मण के वेष में होने के कारण उनकी इस चाल को कोई न जान सका।

वे नारद जी को सुना २ कर व्यङ्ग वचन कहते थे, भगवान ने इनको अच्छी सुन्दरता दी है इनकी शोभा देखकर राजकुमारी रीझ जायेगी और 'हरि' (वानर) जानकर इन्हीं को खास तौर से वरेगी, नारद मुनि को मोह हो रहा था, क्योंकि उनका मन दूसरे के हाथ (माया) के वश में था, शिव जी के गण बहुत प्रसन्न होकर हंस रहे थे, यद्यपि मुनि उनकी अटपटी बातें सुन रहे थे, बुद्धि भ्रम में सनी हुई होने के कारण वे बातें उनकी समझ में नहीं आती थीं, उनकी बातों को अपनी प्रशंसा समझ रहे

थे, इस विशेष चरित्र को और किसी ने नहीं जाना केवल राजकन्या ने नारद जी का वह रूप देखा, उनका बन्दर का सा मुँह और भयंकर शरीर देखते ही कन्या के हृदय में क्रोध उत्पन्न हो गया तब राजकुमारी सखियों को साथ लेकर इस तरह चली मानों राजहंसनी चल रही है वह अपने कमल जैसे हाथों में जय माला लिये सब राजाओं को देखती हुई घूमने लगी। जिस ओर नारद जी (रूप के गर्व में फूले बैठे थे उस ओर उसने भूलकर भी नहीं ताका, नारद मुनि बारंबार उचकते और छटपटाते हैं उनकी दशा देखकर शिव जी के गण मुस्कराते हैं। कृपालू भगवान् भी राजा का शरीर धारण कर वहां जा पहुंचे राजकुमारी ने हर्षित होकर उनके गले में जयमाला डाल दी लक्ष्मी निवास भगवान् दुलहिन को ले गये सारी राज मण्डली निराश हो गई मोह के कारण मुनि की बुद्धि नष्ट हो गई थी, इससे वे राजकुमारी को गयी देख बहुत विकल हो गये, मानो गांठ से छूटकर मणि गिर गई हो .तब शिव जी के गणों ने मुस्कराकर कहा जाकर दर्पण में अपना मुंह तो देखिये ऐसा कहकर वे दोनों बहुत भयभीत होकर भागे मुनि ने जल में झांककर अपना मुंह देखा, अपना रूप देखकर उनका क्रोध बहुत बढ़ गया, उन्होंने शिव जी के उन- गणों को अत्यन्त कठोर शाप दिया

तुम दोनों कपटी और पापी राक्षस हो जाओ तुमने हमारी हँसी की है उसका फल भोगो अब फिर किसी मुनि की हंसी करना, मुनि नें फिर जल में देखा तो उन्हें अपना असली रूप प्राप्त हो गया तब भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ उनके ओष्ठ फड़क रहे थे और मन में क्रोध भरा हुआ था, तुरन्त ही वे भगवान् कमलापति के पास चले, मन में सोचते जाते थे, जाकर या तो शाप दूंगा या प्राण दे दूंगा उन्होंने जगत में मेरी हँसी-करायी, दैत्यों के शत्रु भगवान हरि उन्हें बीच रास्ते में ही मिल गये साथ में लक्ष्मी जी और वही राजकुमारी थी, देवताओं के स्वामी भगवान ने मीठी वाणी से कहा हे मुनि व्याकुल की तरह कहां चले, ये शब्द सुनते ही नारद को बड़ा क्रोध आया, माया के वशीभूत होने के कारण मन में चेत नहीं रहा मुनि ने कहा तुम दूसरों की सम्पदा नहीं देख सकते, तुम्हारे को ईर्षा और कपट बहुत है समुद्र मथते समय तुमने शिव जी को बावला बना दिया और देवताओं को प्रेरित करके उन्हें विष पान कराया, असुरों को मदिरा और शिव जी को हलाहल विष देकर तुमने स्वयं लक्ष्मी और सुन्दर कौस्तुभ मणि लेली, तुम बड़े धोखेबाज और मतलबी हो सदा कपट का व्यवहार करते हो, तुम परम स्वतन्त्र हो, सिर पर तो कोई है नहीं इससे जब जो मन को भाता है,

(स्वच्छन्दता से) वही करते हो भले को बुरा और बुरे को भला कर देते हो हृदय में हर्ष विषाद कुच्छ भी नहीं लाते सब को ठग-ठगकर परक गये हो, और अत्यन्त निडर हो गये हो, (इसी से ठगने के काम में) मन में सदा उत्साह रहता है, शुभ-अशुभ कर्म तुम्हें बाधा नहीं देते, अब तक तुमको किसी ने ठीक नहीं किया था, अबके तुमने अच्छा घर बना दिया है, (मेरे जैसे जबर्दस्त आदमी से छेड़खानी की है अतः अपने किये का फल अवश्य पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है, तुम भी वही शरीर धारण करो, यह मेरा शाप है तुमने हमारा रूप बन्दर का सा बना दिया था, इससे बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे, मैं जिस स्त्री को चाहता था उससे मेरा वियोग कराकर तुमने मेरा बड़ा अहित किया है। इससे तुम भी स्त्री के वियोग में दुखी होओगे शाप को शिर पर चढ़ाकर हृदय में हर्षित होते हुए प्रभु ने नारद जी से बहुत विनती की, और कृपानिधान भगवान ने अपनी माया की प्रबलता खींच ली, जब भगवान ने अपनी माया को हटा लिया तब वहा न लक्ष्मी ही रह गयी न राजकुमारी ही तब मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर श्री हरि के चरण पकड़ लियें, और कहा हे शरणागत दुखों को हरने वाले मेरी रक्षा कीजिये, हे कृपालु मेरा शाप मिथ्या

हो जाय—तब दीनों पर दया करने वाले भगवान ने कहा यह सब मेरी ही इच्छा से हुआ है मुनि ने कहा मैंने आपको अनेक खोटे वचन कहे, मेरे पाप कैसे मिटेंगे भगवान् ने कहा जाकर शंकर जी के सत नाम का जप करो इससे हृदय में तुरन्त शान्ति होगी, शिव जी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। इस विश्वास को भूलकर भी न छोड़ना हे मुनि! पुरारि शिव जी जिस पर कृपा नहीं करते वह मेरी भक्ति नहीं पाता हृदय में ऐसा निश्चय करके जाकर पृथ्वी में विचरो अब मेरी माया तुम्हारे निकट नहीं आयेगी, बहुत प्रकार से मुनि को समझाकर (ढाढस) देकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। और नारद जी श्री राम जी के गुणों का गान करते हुए सत्य लोक को चले गये शिव जी के गणों ने जब मुनि को मोह रहित और मन में बहुत प्रसन्न होकर मार्ग में जाते हुए देखा तब वे अत्यन्त भयभीत होकर नारद जी के पास आये और उनके चरण पकड़ कर दीन वचन बोले हे मुनिराज हम ब्राह्मण नहीं हैं शिव जी के गण हैं हमने बड़ा अपराध किया जिसका फल हमने पा लिया, हे कृपालु अब शाप दूर करने की कृपा कीजिये दीनों पर दया करने वाले नारद जी ने कहा तुम दोनों जाकर राक्षस होवो तुम्हे महान् ऐश्वर्य तेज और महान् बल की प्राप्ति

हो, तुम अपनी भुजाओं के बल से सारे विश्व को जीत लोगे, तब भगवान् विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेंगे, युद्ध में श्री हरि के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी। जिससे तुम मुक्त हो जाओगे और फिर संसार में जन्म नहीं लोगे वे दोनों मुनि के चरणों में शिर नवाकर चले और समय पाकर राक्षस हुए, देवताओं को प्रसन्न करने वाले सज्जनों को सुख देने वाले और पृथ्वी का भार हरण करने वाले भगवान् ने एक कल्प में इसी कारण मनुष्यावतार लिया था, इस प्रकार भगवान ने-अनेकों सुन्दर सुखदायक और अलौकिक जन्म और कर्म किये हैं। प्रत्येक कल्प में जब २ भगवान अवतार लेते हैं और नाना प्रकार की सुन्दर लीलाएं करते हैं तब २ मुनिश्वरों ने परम पवित्र काव्य रचना करके उनकी कथाओं का गान किया है और भाँति-भाँति के अनुपम प्रसङ्गों का वर्णन किया है जिनको सुन कर समझदार विवेकी लोक आश्चर्य नहीं करते. श्री हरि अनन्त हैं (उनका कोई पार नहीं पा सकता) और उनकी कथा भी अनन्त हैं। तब सन्त लोग उसे बहुत प्रकार से कहते और सुनते हैं। श्री रामचन्द्र जी के सुन्दर चरित्र करोड़ कल्पों में भी गाये नहीं जा सकते, शिव जी कहते हैं हे पार्वती ! मैंने यह बतलाने के लिये इस प्रसङ्ग को कहा है। ज्ञानी मुनि भी भगवान् की माया से मोहित हो

जाते हैं। प्रभु कौतुकी (लीलामय) हैं और शरणागत का हित करने वाले हैं, वे सेवा करने में बहुत सुलभ और सब दुःखों के हरने वाले हैं, देवता मनुष्य और मुनियों में ऐसे कोई नहीं हैं जिसे भगवान् की महान् बलवती माया मोहित न करदे, मन में ऐसा विचार कर उस महा माया के स्वामी (प्रेरक) श्री भगवान् का भजन करना चाहिये, जिससे संसार सागर से पार होने में कोई विलंब न हो शीघ्रातिशीघ्र पार हो सकें इससे अतिरिक्त माया से तरने का कोई भी उपाय नहीं ॥

३- * समय प्रभावः *

प्र. नं.-१ कवित-वेणु मान्धाता पृथ्वी-पालक दिलीप दक्ष, सगरे सगर पुत्र धरा ही बीच आगए ॥ प्रियव्रत, परिचित, कर्ण, घोष विक्रम से, अनेक सो नग्न आये नग्न ही समा-गए ॥ हरिश्चन्द्र, भगीरथ, रावण, ययाति, रघु, कंस और दुर्योधन को काल हूँ खपा गए ॥ ममा रह्यो स्थिर न रहे भीम भीष्म से, बाली औ बलि से विरोले ज्यों उड़ा गए ॥१॥

ऐसे भये राजा तीन लोक में नगारा बाजे, जाके रथ पहियन सो सातो सिन्धु खोदे हैं ॥ अरब खरब द्रव्य जाकी कोट पर्व आरजा सी, एक राए लिए हाथ वैरी सब डाटे है ॥ वह भी मर गए जाका नाम हूँ न लेत कोऊ, कहीं कहीं स्मृति पुराणों ही में आते हैं ॥ औ तू कहे मेरी मही तेरी भी न भई मही, तेरे जैसे कगले हजारों काल काटे है ॥ बने रहे पठने वनाय रहे जेवर सब, अत्रन फुलेलन, की शीशीया भरी रही ॥ तनी रही चांदनी सुहाए रहे सेज फूल, मखमल्ल, के तकी यन की पद्धति धरी रहीं ॥ आयो जब काल तब चलत, भयो नग्न पाओं, नाह नाह करत पास सुन्दरी खड़ी रही ॥ धूर में मिलाय गयो चूर होई मसाण रेत, खेल गयो खेल खाली खोपडी पड़ी रही ॥

काहे गर्व करे नर मूरख, यह सब दुनिया फानी है।
विनस जाय स्वप्ने की माया जिमि, अञ्जली का पानी है ॥
ब्रह्मा रुद्र भी जल जावेंगे क्या तेरी जिन्दगानी है।
पल में नाश होवे यह काया, व्यर्थ बना अभिमानी है ॥
कहां गय वह हिरण्यकश्यप से, जो दैत्य वीर बलवान बड़े।
सकल जगत के राजे जीतकर, मन में बहु अभिमान भरे ॥
कहां गये वह बलीराज, जिन रण में इन्द्र हराया था।
स्वर्ग लोक पाताल जमीं पर, अपना राज चलाया था ॥

कहां गये वह दश शिर रावण, तीन लोक वश किये थे।
कठिन तपस्या करके जिसने, शंकर से वर लीये थे॥
माल खजाने सेना भारी, सुन्दर महल बगीचे थे।
इन्द्र कुबेर वरुण यमराजा, जिनके सब अधीने थे॥

कथा नं०—१ इत्यादि बहुत वचन है और कालवादी सब सृष्टि कालाधीन ही कहते है और ज्योतिष शास्त्र भी कालाधीन ही सर्व व्यवहार कहता है। जिसमें घड़ी-पल तिथि दिन मासादि का विचार किया जाता है, और जन्म से लेकर मरण पर्यन्त, और नव ग्रहों के द्वारा सुख-दुःख का कारण काल हो ही बताते है जैसे सुना जाता है अकबर का वजीर जो बीरबल था वह जब अपनी माता के गर्भ में था—तब ज्योतिषियों ने कहा था अगर बालक प्रातः काल जन्म लेगा तो बड़ा दरिद्री और कंगाल होगा मध्यान के जन्म से गरीब होगा, सायंकाल के जन्म से थोडा धनी होगा और रात्रि के दश बजे यदि जन्म लेगा तो वजीर होगा बारह बजे रात्रि को जन्म लेगा तो राजा होगा तो बीरबल की माता ने बड़ा कष्ट उठाया उल्टा लटकी और मूर्छित हो गई, बड़ी मुश्किल से बीरबल को रात्रि के दश बजे जन्म दिया, वह बीरबल अकबर बादशाह का वजीर बना इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र काल के अधीन सब कुछ कहता है अर्थात् सुखदुःख दोनों काल के अधीन

होने से आगमापायी है—इसी प्रकार की एक निर्मोह राजा की कथा संसार में प्रसिद्ध है—विश्वावसु गन्धर्व की मंदाल्सा नाम की कन्या परम रूपवती और सुन्दरी थी, उस पर पातालकेतु नाम वाला एक राक्षस मोहित हो गया, और उसे उठाकर पर्वत की गुफा में ले गया परन्तु मंदाल्सा ने अपना सत भङ्ग न होने दिया, जब गालव मुनि यज्ञ करता था तो पाताल केतू ऊपर से हड्डियों की वर्षा कर देता था यज्ञ नहीं होने देता था, तब गालव मुनि काशी के राजा शत्रुजित के पास आये उसके पुत्र ऋतुध्वज को यज्ञ की रक्षा वास्ते मॉगा जैसे महर्षि विश्वामित्र जी ने महाराजा दशरथ जी से भगवान् श्री रामचन्द्र जी को यज्ञ की रक्षा के लिए मॉगा था राजा शत्रुजित ने गालव मुनि के बहुत कहने पर अपना पुत्र उसके साथ भेज दिया, गालव मुनि ने एक घोड़ा (कमलाश्व) नाम वाला और शस्त्र जो उन्हें देवताओं से मिले थे, उस राक्षस को मारने के लिये ऋतुध्वज को दे दिया, ऋतुध्वज उस घोड़े पर सवार होकर पाताल केतु की गुफा में गया और युद्ध करके उसको मार डाला, ऋतुध्वज ने मंदाल्सा से शादी कर ली और उसे घर ले आया, मंदाल्सा ने राजा से कहा, जो सन्तान होगी वह मेरे अधीन रहेगी, क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा की है, जो मेरे

गर्भ से बालक पैदा होगा उसे मैं ब्रह्मज्ञानी बनाऊँगी राजा ने उसका वचन मान लिया, मदालसा के छः पुत्र हुए उन सब को ज्ञान की लोरी (थपकियाँ) देकर ज्ञानी बनाया और उन्हें वन में भेज दिया जब सातवां पुत्र अलर्क नाम वाला पैदा हुआ तो राजा ऋतुध्वज ने मदालसा से कहा इसको राजकार्य चलाने के लिए घर में रहने दो, तब रानी ने यह श्लोक लिखकर तावीज बनाकर उसके गले में बाँध दिया और उससे कहा जब तुम्हें कोई कष्ट आपड़े तो उस तावीज को खोलकर पढ़ लेना यह श्लोक नीचे है—

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि संसार माया परिवर्जितोऽसि।
संसार स्वप्नवत् त्यज मोह निद्रां मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम्॥

अर्थ–तू शुद्ध रूप है ज्ञान स्वरूप है माया रहित है सांसारिक मोह से रहित है, संसार स्वप्नवत् है असत्य है मोह निद्रा को त्याग कर अपने स्वरूप को पहिचान। इस प्रकार का वाक्य मदालसा ने अपने पुत्र के प्रति कहा, यही मदालसा का सातवाँ पुत्र अलर्क नाम वाला अपने छेह भाईयों के उपदेश से ज्ञानी हुआ और यही अलर्क राजा निर्मोह के नाम से प्रसिद्ध हुआ इसने अपना सब परिवार हर्ष शोक से रहित कर रक्खा था; एक दिन गर्मियों में प्रातःकाल निर्मोह राजा की सवारी निकली

बाजार में बड़ी भीड़ थी बहुत सी गुजरियां दूध दही बेचने के लिये जा रही थीं धक्का लगने से दूध दहीं के बर्तन गिर गये, सब रोने लगी परन्तु एक गुजरी हँसने लगी तो राजा की दृष्टि हँसने वाली गुजरी पर पड़ी, यह देखकर राजा ने उससे पूछा सब तो रो रही हैं तूं क्यों हँस रही है ? नुकशान सबका बराबर हुआ तब गुजरी ने कहा कि आने जाने वाले अर्थात् आगमापायी पदार्थों का क्या शोक करना है ?

प्रामण–ज़ातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवजन्म मृतस्यच।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे नत्वंशोचितुमर्हसि ॥ गी.अ.२ श्लो.२

अर्थ–जन्म वाले की निश्चय करके मृत्यु होती है और मरने वाले का फिर जन्म होता है, इसको कोई दूर नहीं कर सकता फिर क्या शोक करना है ? गुरु जी भी लिखते हैं।

जो उपजयो सो विनस है परो आज के काल।
नानक हरिगुण गायले छाडि मगल जंजाल ॥
जो जन्मे तिस मरपर मरना कृत पया सिरसाहा हे ॥

इसलिये मैं शोक नहीं करती कितनी ही ऐसी दशायें मेरे पर बीत चुकी हैं किस २ दशा के दुःख को रोऊँ सब राजा ने कहा तू अपनी बीती हुई सब दशायें सुना–
नृप मार चली पीये आपन सों.

पीय साप डस्यो दुखहीं भरहीं ॥
वन माफ गई वन चार गही, तिन वेच दई गणिका घर हीं ॥
सुतसंग कीयो तब जरन चली, मिलकाठ के संग नदी तरहीं ॥
सुन हे महाराज हौं गुजरी हूँ, अवछाछ की सोच कहां करहीं ॥

अर्थ—हे राजन ! मैंने साहूकार के घर जन्म लिया मेरे माता-पिता ने बड़े प्रेम से पालन पोषण किया विद्या पढ़ाई बडी होने पर एक साहूकार के सुन्दर लडके के साथ शादी करादी मेरापति सौदागर था सौदागरी के लिए बाहर गया हुआ था परन्तु विदेश जाने से पहिले मेरे दो बच्चे हो चुके थे, पति के साथ मेरा अत्यन्त प्रेम था पति के विना मैं व्याकुल रहती थी, पति के बाहर चले जाने पर, हमारे शहर के राजा ने मुझे सुन्दर रूपवती देखकर जबरदस्ती पकड़ मंगवाया और अपने महलों में दाखिल कर लिया, जब मेरा पति आया तो मैंने दासी द्वारा अपने पति को अपना सब हाल लिखकर दिया कि मैं अब भी तेरी ही स्त्री हूँ मुझे इस राजा के फन्दे से निकाल दे अपनी धर्मपत्नी का पत्र देख कर उसके पति ने रात्रि का समय नियत कर लिख भेजा इधर मैंने भी हीरे जवाहरात के डिब्बे भरकर तैय्यार कर रक्खे थे आधीरात को सोए हुए राजा को मारकर हीरे जवाहरात के डिब्बों को लेकर अपने पति के पास पहुँच

गई और पति को साथ लेकर वन को चली गई कि कोई राजदूत पकड़ न ले वन में जाकर कुछ आराम किया तो सोये हुए मेरे पति को साँप ने काटा वह मर गया तब मैं रोने लगी, मेरी आवाज़ सुनकर वन में रहने वाले डाकू आ गये वे मेरे को पकड़ कर ले गए, सब हीरे जवाहरात छीन ले गये मेरे को वेश्या के घर बेच दिया मेरा सुन्दर स्वरूप देखकर बड़े २ धनाढ्य लोग मेरे पास आने लगे जब कुछ वर्ष वेश्या के पास व्यतीत हुए तो एक दिन मेरा पुत्र वेश्या के पास आया और वेश्या ने मेरे पास भेज दिया, जब मेरे साथ संसर्ग हो चुका तो मैंने उससे सब हाल पूछा तो पता चला यह मेरा ही पुत्र है, परन्तु मैंने पुत्र को अपनी कुछ पहिचान न बतलाई और न उसने मुझको ही पहिचाना, जब मेरा पुत्र मेरे पास रात्रि रहकर चला गया तो मैंने बड़े २ विद्वानों को बुलाकर पुत्र संसर्ग होने का प्रायश्चित पूछा, तब विद्वानों ने कहा पीपल की लकड़ियों के साथ जीते ही जल जाने से यह पाप उतरेगा, मैंने दो चार आदमियों को बुलाकर उनको पैसे देकर कहा मेरे को पीपल की लकड़ियाँ लादो नदी के किनारे चिता बनादो उन्होंने मेरे कथनानुसार सब काम कर दिया मैं चिता में प्रवेश कर अग्नि लगाली ऊपर से जोर की वर्षा हुई नदी में

बाढ़ आ गई मैं नदी में बह गई गोते खाकर बेहोश हो गई तो एक गुजर ने मुझको निकाल लिया और अपनी स्त्री बना लिया हे राजन! अब गुजरी बनकर छाछ बेचने आई हूँ मटकी फूट जाने का क्या शोक करूं? मैं अब हर्ष शोक से रहित हो गई हूँ, चार दिन जीवन के बिताने हैं इनमें शोक क्या करना है? ऐसे वचन सुन कर राजा उसके विचार तथा रूप पर मोहित हुआ और उसको अपनी पटरानी बना लिया पहले राजा को सन्तान न थी परन्तु उस गुजरी से एक पुत्र पैदा हुआ बड़ा हो जाने पर शादी करदी। एक दिन वह लड़का शिकार खेलता हुआ एक तपस्वी ऋषि के आश्रम में पानी पीने आया, तो तपस्वी ने पूछा तू कौन है किसका पुत्र है उसने कहा मैं निर्मोह राजा का पुत्र हूँ ऋषि हैरान होकर कहने लगा राजा और निर्मोह इस बात का सूर्य और अन्धकार की तरह विरोध है यह बात सुन करके राज-कुमार ने कहा मैं सत्य बोलता हूँ आप परीक्षा करलो। तब ऋषि ने कहा तुम यहां ठहरो आराम करो मैं तुम्हारे सम्बन्धियों की परीक्षा लेकर आता हूँ तब तक तू यहां से न जाना ऐसा कहकर ऋषि राजा के महल पर पहुँचा तो सब से पूर्व राजा की दासी मिली तो तपस्वी ने उससे कहा—

दोहा—तू सुन चेरी श्याम की बात सुनाऊँ तोहि।
कुँवर विनाशियो सिंह ने आसन परियो मोहि॥
उत्तर—ना मैं चेरी श्याम की ना को मेरो श्याम।
प्रारब्ध बस मेल यह सुनो ऋषि अभिराम॥

जब ऋषि ने देखा दासी को मोह नहीं हुआ तो राजकुमार की स्त्री के पास आकर कहा—

तू सुन चातुर सुन्दरी अबला यौवन वान।
देवर नाहन दल मलियो तुमरो थी भगवान्॥

उत्तर—राजकुमार की स्त्री कहा:—

तपिया पूर्व जन्म की क्या जानत हैं लोग।
मिले कर्म वस आन हम अब विधि कीन वियोग॥

तब ऋषि ने देखा इसको मोह नहीं हुआ शायद यह व्यभिचारिणी होगी, पति से प्रेम न होगा फिर उसकी माता के पास आकर कहा—

रानी तुम पर विपत्ति अति सुत खायो मृगराज।
हमने भोजन ना कियो तिस मृतक के काज॥

तब रानी ने कहा—

दोहा०—एक वृक्ष शाखा घनी पंछी बैठे आय।
पहूँ फाटी पीरी भई उडउड चहूँ दिश जाय॥

तब ऋषि ने राजा को देखा, इसको मोह होता है या नहीं क्योंकि राजा का एक पुत्र है रानियाँ तो बहुत

सी होती हैं शायद यह उस राजकुमार की सगी माता न होगी तो राजा के पास जाकर कहा—

दो०—राजा मुख ते राम कहो पल पल घडी घडी ॥
सुत खायो मृगराज ने मेरे पास मढ़ी ॥

ऋषि के ऐसे वचन को सुनकर के राजा ने उत्तर दिया—

दो०—तपिया तप क्यूं छाडियो यहां पलक नहीं शोक।
वासा जगत सराय का सभी मुसाफिर लोग ॥

ऋषि सब परिवार को निर्मोह देखकर बडा प्रसन्न हुआ और कहने लगा ईश्वर की इन पर बडी कृपा है तब ऋषि ने एक दोहा कहा—

क्या राजा क्या रङ्क है, कौन तपी को वास।
जा पर प्रभु कृपा करे तांके हृदे प्रकाश ॥

इस प्रकार तपस्वी प्रसन्न होकर आशीर्वाद देकर वहां से चला और अपनी कुटीया में आया तब राजकुमार को कहा—

दोहा—सुन नृपनन्दन बात मम महाशोक की खानि।
निकसे पीछे युद्ध में भई तब कुल की हानि ॥

अर्थ—हे राजकुमार तुम्हारे शिकार खेलनें के पीछे दूसरे शत्रु राजा ने युद्ध में तेरे कुल का नाश कर दिया अर्थात् तुम्हारे पिता को युद्ध में मार दिया और तुम्हारी

मातायें सब सती हो गयी और शहर उजड गया है
राजकुमार का उत्तर—एक दिन लोग कुटुम्ब ते आखिर
बिछुडन होई। तातें हम पहिले तजे सङ्ग न करिहौं कोई॥
चलते मार्ग एक से मिले बटाउ साथ। चाहो अबही
बिछुडें चाहो कोश पचास॥ क्या गहीये क्या छोड़िये
थोड़े जीवन काज। छोड़ छोड़ सबै जात है घर धन
बन्धू राज॥

अर्थ—हे महाराज! (इस स्वप्न की सृष्टी में आखिर एक दिन लोग कुटुम्ब से बिछुड़ेंगे, अतः हमने पहले ही छोड़ रक्खा है, किसी का भी सङ्ग नहीं होता (अर्थात् यह सृष्टि कई बार उत्पन्न होकर लय हो जाती है हर एक सृष्टि में कईक माता पिता देखे अब किसको सच्चा मानूँ, जिस तरह से कि एक मार्ग में चलते हुए साथी मिल जाते हैं और वे चाहे अब ही बिछुड जायें चाहे पचास कोश पर इस थोड़े जीवन के कारण क्या ग्रहण करें और क्या त्याग करें, सर्व घर धन बन्धु और राज को छोड़कर चले जाते हैं अर्थात् सब स्वप्न पदार्थवत् झूठे हैं ऐसा कहकर राजकुमार चुप हो गया, ऋषि जी ने उसको निर्मोह देख कर धन्यवाद किया इस प्रकार सुख दुःख को कालाधीन समझ कर शान्त चित्त रहना चाहिये, सुख दुःख काला-धीन है यह भगवान श्री रामचन्द्र जी श्री लक्ष्मण के

प्रति कहते हैं —प्रमाण नं० २—

पश्य लक्ष्मण कालस्य प्रतिकूलानुकूलते ।
वन वासे पिता हेतुः समुद्र मतरणे शिला ॥

कथा नं० २—हे लक्ष्मण जी ? काल की अनुकूलता प्रति कूलता को देख अर्थात् काल प्रतिकूल हुआ तो माता पिता भी कहने लगे कि वन को चले जाओ, जब काल अनुकूल हुआ तो समुद्र में पत्थर भी तैरने लग पड़े इस लिये सब काल के आधीन हैं। कालाधीन सर्व वस्तु है इस पर एक इतिहास कहते हैं। भगवान् वेद व्यास जी कार्के हैं उनकी एक कल्प भर की आयु है, चारों युग हजारों बार व्यतीत हो जायें इतने काल को कल्प कहते हैं, व्यास जी महाराज अपनी सेवा के लिये एक योग्य सेवक चाहते थे दैवगति से उन्हें एक अनुकूल योग्य सेवक मिल गया जो संकल्प मात्र से बड़ी प्रीतिपूर्वक सेवा किया करता था, भगवान् व्यास जी उस पर बहुत प्रसन्न थे और विचारा कि इनकी भी मेरे बराबर आयु चाहिए, क्योंकि ऐसा सेवक मिलना कठिन है यह विचार कर ब्रह्मा जी के पास पहुंचे और कहा यह मेरा योग्य सेवक है इसे भी कल्प भर की आयु दीजियेगा, ब्रह्मा जी कुछ सोच विचार कर चुप हो गये ऋषि के शाप के भय से उनके साथ हो लिये और शिव जी के पास पहुँच गये उन से भी यही कहा

हे भगवन् ? इस सेवक की आयु एक कल्प की कीजियेगा इसको आपने मारना न होगा, शिव भगवान् ने कहा आजीविका पहुँचाने वाले विष्णु हैं चलो हम भी साथ चलते हैं, चारों चल दिये श्री विष्णु जी के यहां पहुँच गये भगवान ने सबका स्वागत किया। सब को मिलकर आने का कारण पूछा तो सारा वृतान्त कह दिया भगवान् विष्णु युक्ति से कहने लगे, यमराज चित्रगुप्त को भी यह समाचार देना चाहिये। उनकी सम्मति भी संग में होनी चाहिये, चलो हम भी संग में चलते हैं पांचों चल दिये, पहले यमराज के यहा पहुंचे उसको संग लेकर चित्रगुप्त के पास पहुँच गये उसी समय व्यास जी महाराज के शिष्य को शौच लगा और बाहर के लिये चला गया, पेट में घोर शूल हो गया वापस आते समय मकान के पास आकर मृत्यु हो गई, चित्रगुप्त ने कहा काल की प्रेरणा से आप इसके मरने के लिये मेरे यहाँ इकट्ठे हुये हो इसके मृत्यु में यही निमित्त था भगवान् व्यास जी ने सर्वज्ञ दृष्टि से देखा कि अब यह जी नहीं सकता तब बहुत दुःखी हुये, उस समय सब देवताओं ने मिलकर धैर्य्य दिया और समझाया सुख दुःख कालाधीन है उस दिन से व्यास भगवान् सब पदार्थ कालाधीन और आत्मा को काल रहित समझकर सुख दुःख में सम रहने लगे, जैसे

गुरु जी लिखते हैं।

प्रमाण नं० ३—काल पाय ब्रह्मा वपु धरा, काल पाय शिवजु अवतरा। काल पायकर विष्णु प्रकाशा, सकल काल का किया तमासा। यवन काल योगी शिव कीयो, वेदराज ब्रह्मा जू थियो यवन काल सब लोक सवारा, नमस्कार है ताहि हमारा। यवन काल सब जगत बनायो देव-दैत्य जक्षन उपजायो ॥ गुरु देव वाणी ॥

समय बड़ो बलवान है नहीं पुरुष बलवान।
काबे अर्जुन लूँटियो वे ही धनुष वही बाण ॥

काल ही पाय भयो ब्रह्मा गहि दण्ड कमंडल भूमि भ्रमान्यों ॥
काल ही पाय सदा शिव जू सब देश विदेश भया हम जान्यों ॥
काल ही पाये भयो मिटयो जग, जाते ताहे सबो पहिचान्यो
वेद कतेब के भेद सबे तज केबल काल कृपानिधि मान्यो
॥ श्री मुख वाक्य पातशाही १० ॥

कालका चक्र सदा चल रहा जग उपर रात दिन जीव की अवधि घट जावती ॥ जावती है रात दिन समझे न मूढ़जन छिन, छिन पल पल अवधी विहावती ॥ कईक चल गये कई चलने को तैयार हुवे मौतकिसे जीवका लिहाज न रखावती ॥ रखीये प्यार तातें एकही अकाल साथ, करके भक्ति देही सकल सदावती ॥

दो०—जल कहां थल कहां गगन के गौण कहां।

कालके बनाये सब काल ही चबाहेंगे ॥श्रीसुखवाक्य॥

बारे बूढे तरुने भैग्या मबहूँ जमलै जई है रे ॥ मान सुवपुरा मूसाबिनो मीच बिलईया खईहैरे ॥ धनवंता अर निर्धन मनई ताकी कछू न कानीरे ॥ राजा प्रजा सबकर मारे ऐसो काल बिडानी रे ॥ बिलावल कबीर जी पृ ८५५

मातुलो यस्य गोविन्दः पिता यस्य धनञ्जयः ।
सोऽपि काल वशं प्राप्तः कालोहि दुरतिक्रमः ॥

भा०–काल की महिमा कहते हे श्री कृष्णचन्द्र जिसके मामा पिता अर्जुन दसों–सो अभिमन्यु भी कालवश हो गया काल बडाबली है ।

नमन्त्रा न तपोदानं न मित्राणि न बान्धवाः ।
शक्नुवन्ति परित्रातु नरकालेन पीडीतम् ॥

भाषा–न मन्त्र, तप, दान, मित्र, बन्धु काल से कोई नही रचा करने को समर्थ होता ॥

कालः पचति भूतानि कालः संहरते तथा ।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालोहि दुरतिक्रमः ॥

भा०—काल से सभी भूतप्राणी डरते है काल से ही सबको सहारा होता है, काल, सोये पर भी जागता है काल अति बलवान् है ।

अशनं मे वसन मे जाया मे बन्धुवर्गोमे ।
इति मेमे कुर्वाणकालो वृको हन्तिपुरुषाजम् ॥

भा.—यह मेरा अशन है, ये मेरा भोज है, ये मेरा वस्त्र है, मेरी स्त्री मेरे पुत्र मेरा घर मेरे बन्धु ह ऐसे में मैं मेरे २ करते हुवे पुरुष रूप बकरे को काल रूप भेड़िया मार लेता है ।

माकुरुजन धन यौवन गर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम् ।
मायामयमिदमखिलं हित्वा ब्रह्मपदं प्रविशाशुविदित्वा ॥

भा.—हे पुरुष तू धन यौवनादि विभूतियों का गर्व मत कर, इसको तो एक क्षण में काल हर लेता हे, इन सब पदार्थ को झूठा जानकर इसको त्यागकर ब्रह्म स्वरूप में जल्दी प्रवेशकर निज स्वरूप को जान । जाके बांये दाहने समंत चक्र होतेस्तम्न, राजन की सभा थी मयंक मुखी नारियाँ ॥ भूपन के पुत्र थे विचित्रवीर अहंकारी, वृन्द बन्दीजन होते वंस के पुचारियां ॥ अहो भाई भारी कष्ट भारी भूप भये नष्ट, स्मृति पदं प्रविष्ट जांकी कथा भारिया ॥ हिंसक प्रपंच साविरञ्च के असंग पुन, तेहिकाल वीर को जुहार वार वारियां ॥

कथा नं० ३–राजा भोज ने अपने चाचा मुञ्ज को सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं ऐसा उपदेश करके पाप से बचाया था, भोज जब बचा ही था तब उसका पिता मर गया, मरते समय राज्य तथा प्रिय पुत्र भोज को अपने भाई मुञ्ज के हवाले कर गया तब राज्य के लोभ से, मुञ्ज

राजाभोज को मरवाने लगा, मन्त्री और सम्बन्धियों ने बहुत समझाया परन्तु न समझा और जल्लादों को कहा कि जङ्गल में जाकर इसे मार दो और इसका रुधिर मेरे पास ले आओ, जब जल्लाद इसको जङ्गल में ले गये तब उन्हें दया आई और कहने लगे कि हमें मारने का हुक्म हुआ है परन्तु तुम्हारा स्वभाव तथा सुन्दर रूप देख-कर दया आती है मारने को चित्त नहीं चाहता तब भोज ने कहा मुझे मारो मत मेरी छठी अंगुली काट दो और रुधिर निकाल कर ले जाओ, और यह श्लोक भी ले जाओ जोकि मैं लिखता हूँ—

मान्धाता सुमहीपतिः कृतयुगेऽलङ्कार भूतोगतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौदशास्यान्तकः ॥
अन्येऽपि युधिष्ठिर प्रभृतयो यातादिवंभूपते ।
नैकेनापि समंगता वसुमती मन्येत्वया यास्यसि ॥

अर्थ—हे चाचा ! सतयुग में मान्धाता जैसे प्रतापी राजा हुए हैं जो कि पृथ्वी-मण्डल के भूषण थे वे भी आज दिखाई नहीं आते उनका आज नाम निशान नहीं रहा, तथा त्रेतायुग में श्री रामचन्द्र जी महाराज, जिन्होंने समुद्र पर पुल बांधा था, वह भी न रहे और द्वापर में युधिष्ठिरादि जो बड़े २ राजा थे वह भी न रहे और न पृथ्वी न राज्य ही साथ ले गये। हे मुञ्ज ! मैं जानता हूँ कि

शायद तुम रह जायगा या पृथ्वी और राज्य को साथ ले जायगा, जो निर्दोष बालक को मरवाता (मारता) है, महापातक करता है। यह पत्र पढ़ते ही मुञ्ज के हृदय में विचार और वैराग्य हुआ जल्लादों को बुलाया और पूछा कि सत्य २ कहो भोज जीता है उसे जीवित लादोगे तो तुम्हें ईनाम दूंगा। उन्होंने भोज को मुञ्ज के पास पहुँचा दिया और मुञ्ज उसे राज गद्दी देकर आप वन को चला गया और सुख-दुःख मे सम रहने लगा, इस प्रकार बुद्धि-मान को विचार द्वारा सुख-दुःख में सम रहना चाहिये, कालाधीन ही सुख तथा दुःख है। कालाधीनत्व दोनों में एक समान है दुःखादि सारा संसार आने जाने वाला है स्थिर नहीं॥ प्रमाण नं० ४

धरती अकाशु पाताल है चन्दु सरु विनासी॥ बाद-शाह साह उमराव, खान ढाहि डेरे जासी॥ रङ्ग तुरङ्ग गरीब मस्त प्रभु लोकु सिधासी॥ काजी शेख मसाइकासवे उठ जासी॥ पीर पैगम्बर औलीए, कोथिर न रहासी॥ रोजा पीर निवाज कतेब, विणि बुझे सवजासी॥ लख चौरासिह मेदिनी, सब आवे जासी॥ निश्चल सच खुदाय एक, खुदाय बन्दा अविनासी॥ वट तीर्थ देव देवालिया, केदार मथुरा काशी" कोट तेतीसादेवते, सण इन्द्रेजासी॥ सिमरति शास्त्र वेदचार पट्दर्शसमासी॥ पोथी पण्डित

गीत कवित, कविते भी जासी ॥ जती सती सन्यासीया सब काले खासी ॥ मुनि जोगी दिगम्बरा, जमे सण जासी॥ जो दीसे सो विणपणा, सब विनस विनासी ॥ स्थिर पार ब्रह्म परमेश्वरी, सेवक थिर होसी ॥ मारुवा. डरुणे पौड़ी सब दिन होत न एक समान । एक दिन राजा हरिश्चन्द्र घर संपत्ति मेरू समान । एक दिन जाई स्वपच घर सेवत अम्बर हरत मसान । एक दिन दुलहा बनत बराती चहुँ दिश भूलत निशान । एक दिन डेरा पडत जंगल में कर सीधे पगतान । एक दिन सीता रुदन करत है महाविपत्ति उद्यान । एक दिन रामचन्द्र सों मिलकर विचरत पुष्प विमान । एक दिन राजा राज युधिष्ठिर अनुचर श्री भगवान् । एक दिन द्रौपदी नग्न करत है चीर दुसासन तान । प्रगट होत पूर्व की करणी तज मन को अभिमान । सूरदास सुन कहाँ लग बरणूं विधि के अंक प्रमान ॥ सूरदास ॥

सादे त्रै मण देहुरी चलै पाणी अन्न ।
आयो बन्दा दुनी विच वंत आसूणी बन्न ॥
मलकल मौतजाँ आवसी सब दरवाजे भन्न ।
तिनां प्यारीया भाईय्यों आगे दिया बन्न ॥
वेखहु बन्दा चलिया चहुजाणियां दे कन्न ॥
फरीदा अमल जे कीते दुनी विच दरगेह आए कम्म।
शेष हैयाती यज्ञ नं कोई स्थिर रहा । जिस आसन

हम बैठे केते बैस गय्या ॥ श्लो. शेष फरीद पृ.१३८३ ।

भूत भविष्यत्, वर्तमान भेद से काल तीन प्रकार का है वर्तमान थोड़ा होता है बीते हुए समय को भूतकाल कहते हैं, उस काल में भी दुःख नहीं क्योंकि वह व्यतीत हो चुका है बीती हुई वस्तु के साथ फिर मेल नहीं होता ।

अनागत वतीं चिन्ता मसंभाव्यां करोति यः ।
स एव पाण्डुरः शेते सोम शर्म्मा पिता यथा ॥

कथा नं.४–शेख चिल्ली और सोमशर्म्मा के पिता की कथा दोनों एक जैसे ही हैं श्लो. भाव यह है अनागत पदार्थों की चिन्ता करनी योग्य नहीं परन्तु जो चिन्ता करता है वह पीतवर्ण वाला अर्थात् दुखी होता है जैसे सोमशर्म्मा का पिता । एक नगर में एक कृपण ब्राह्मण रहता था, एक दिन भिक्षा में बहुत से सत्तू मांगलाया, उन सत्तूओं का घड़ा भर कर खूँटी पर लटका दिया और चारपाई पर लेट गया, और विचार करता है, जब दुर्भिक्ष (अकाल) पड जायेगा तो यह मटका एक सौ रुपये में बेचूँगा और उन रुपयों से पशुओं का व्यापार करूँगा, अर्थात् गौ, बकरी, भैंस, घोड़े आदि खरीदूंगा, उनको बेचकर बहुत धन कमाकर सुन्दर घर बना लूंगा फिर किसी विद्वान् की कन्या से शादी करूँगा उससे पुत्र पैदा होगा तो उसका नाम सोम शर्म्मा रखूंगा, पुत्र को गोद में लेकर

स्त्री को बुलाऊँगा वह अभिमान से न आवेगी तो फिर बुलाऊँगा जब पास आयेगी तब उसे क्रोध से ऐसे लात मारूंगा ऐसा ख्याल करके उसने जोर से लात मारी वह घड़ा फूट गया, सब सत्तू मट्टी में मिल गया, तब रोने लगा, मेरा सब कुटम्ब नष्ट हो गया, इसी प्रकार की कथा शेखचिल्ली की है इसलिये अनागत की जो चिन्ता करता है वह मूर्ख है, जैसे भूत, भविष्यत् काल की चिन्ता मूर्ख लोग करते हैं, तैसे वर्तमान काल के पदार्थों की चिन्ता मूर्ख करते हैं। प्रमाण नं० ५--

कालः सम विषमकरः परिभवः सम्मानं कारकः कालः ।
कालः करोतिपुरुषं दातारं याचितारं च ॥समुचित.प.माली॥
अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधितां धूली लवः शैलतां ।
मेरुर्मृतकणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणं प्रायताम् ॥
वह्निः शीतलतांहिमे दहनता मायाति यस्येच्छया ।
लीला दुर्ललिताद्भुत,व्यसनीनःकालाय तस्मैनमः॥प्र.पारिजातः॥
आयु नश्यति पश्यतां प्रतिदिनं यातिक्षयं यौवनम् ।
प्रत्यायांति गताः पुनर्न दिवसाः कालो जगद्भक्षकः ॥

कथा नं० ५--जैसे किसी नगर में एक मनुष्य ने एक दुकानदार से जाकर आग मांगी तब उसने कहा दो तीन घण्टे बाद इस दुकान में आग लगेगी, उस समय जितनी आग चाहिए ले जाना, वह बोला जब तेरे को इस बात

का पता है, तो अपना सामान दुकान से क्यों नहीं निकाल लेता। दुकानदार कहने लगा, मेरे को समय नहीं यदि तुझे पूछना है तो समुद्र के किनारे सौदागर जहाज भर रहा है उसे जाकर पूछले तब वह समुद्र के किनारे गया और सौदागर से पूछा। उसने कहा हे भाई! मैं इस समय जहाज भर रहा हूँ यह दो तीन मील पर जाकर डूब जायगा, इसलिये मुझे जल्दी होने के कारण उत्तर देने का अवकाश नहीं। वह पुरुष यह सुनकर चकित हुआ और कहने लगा कि यह उससे बढ़कर निकला, सौदागर कहने लगा आश्चर्य क्यों करता है? यदि तेरा मन नहीं मानता तो यहां से एक मील दूरी पर एक सन्त बैठे हैं, उनसे जाकर पूछले, वह सन्त के पास जाकर नमस्कार कर बैठ गया और हाथ जोड़कर दुकानदार व सौदागर का समाचार सुनाया, कहा मुझे तो दोनों मूर्ख प्रतीत होते हैं सन्त बोले हे भाई! तू उनको मूर्ख कहता है आप चतुर बनता है आज से आठवें दिन तुझे उस सामने वाले पेड पर फांसी लगेगी, तू अपना मनचाहा उपाय करके देखले, वह बोला महाराज! आठवें दिन तो मैं वहां पर पहूँचूंगा जहां पर इस पेड़ की वायु तक भी न लगेगी, ऐसा कहकर वह वहां से चल पड़ा, दिन भर चलता रहा रात्रि को खा पीके सो जावे प्रातःकाल

फिर चल पड़े इस प्रकार बड़े यत्न से चलते २ दो सौ मील की यात्रा कर डाली और थकित हो गया, आठवें दिन उसने मार्ग में एक रथ आता हुआ देखा जिसमें एक युवा स्त्री सुन्दर रूप वाली वस्त्र भूषणों से सुसज्जित बैठी थी उस मनुष्य ने उससे पूछा तू कहाँ जा रही है? स्त्री—मैं वर की खोज में हूँ मनुष्य ने कहा यदि तू वर को चाहती है तो मेरे को ही वर बनाले, स्त्री ने कहा तू इस रथ पर सवार हो वह रथ में बैठ गया और थके होने के कारण उसको निद्रा आगई तब उस स्त्री ने बड़े वेग से रथ चलाया, और उसी शहर के बाहर लाकर खड़ा कर दिया क्योंकि वह तो भावी ने ही स्त्री का रूप धारण किया हुआ था, उसने उस पुरुष को जगाकर कहा मुझे भूख लगी है यह लो नौ लखाहार इसको बाजार में ले जाकर बेच डालो और भोजन की सामग्री ले आओ, इस प्रकार उसे बाजार में भेजकर आप अन्तर्ध्यान हो गई जब उस पुरुष ने एक सराफ की दुकान पर जाकर हार दिखाया तब उसने उसे देखते ही पहचान लिया और कहा—यह तो वही हार है जो राजा के यहाँ से चोरी हुई है। उसी समय कोतवाल को बुलाकर उसे हार समेत उनके हवाले कर दिया। जब कोतवाल ने राजा के सन्मुख (उपस्थित) किया तो राजा ने पूछा, यह हार तुमने कहाँ से लिया

है वह बोला यह मेरी स्त्री का है। राजा—तेरी स्त्री कहाँ है, वह बोला शहर के वाहर बैठी है। राजा ने बोला हमारे इस आदमी के साथ जावो उसे ले आवो जब शहर के बाहर उस स्थान पर आये तो न वहाँ पर शहर था न स्त्री, तब राजा का आदमी उसको राजा के पास ले गया और कहा यह झूठा है, वहाँ पर कोई स्त्री नहीं, राजा ने कहा यह चोर है इसको फांसी देदो। (पहले समय चोर-जार को फांसी ही दी जाती थी)। जब उसको फांसी देने के लिये उस पेड़ के पास ले गये तब उस स्थान पर वह सन्त भी आ गये और उसको पहचान कर बोले हे भाई तूने अपना मनचाहा उपाय कर लिया, तुझको पता भी था, मुझे आठवें दिन फांसी लगनी है और तूने यत्न करके भी जोर लगा लिया, परन्तु जो होना था वह होकर रहा। तू दूकानदार—सौदागर को मूर्ख कहता था। सो वे मूर्ख नहीं वे तो गुरुमुख हैं, क्योंकि जगद्गुरु के वाक्यों पर निश्चय है परन्तु तू मनमुख है। इस लिये तूने दुःख पाया है, इन आठ दिनों में प्रभु का भजन स्मरण करता तो तेरा परलोक सुधर जाता यह समय तो टलता ही नहीं, तथा सन्त का ऐसा उपदेश श्रवण कर वह पुरुष पश्चाताप करने लगा, परन्तु अब पछताने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था उसी समय फांसी पर

चढ़ा दिया गया। इसलिये जिज्ञासु पुरुष सुख दुःख को परमेश्वर की आज्ञा समझ कर प्रसन्न रहते हैं और मनमुख पुरुष काल से बचने के लिए कई प्रकार के यत्न करते हैं, मरना नहीं चाहते परन्तु काल रूपी शिकारी पीछे लगा हुआ है उसके आगे क्या बस चल सकता है।

प्रमाण नं० ६–इस पर गुरु जी कथन करते हैं:—

दिन ते पहर पहर ते घड़ियां आव घटै तनु छीजै।
काल अहेरी फिरै बधिक जिउँ कहहु कवन विधि कीजै॥
धनासरी भक्त कबीर जी पृ.–६६१॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपितं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न सोचामि न विस्मयो मे यदस्मदीयं नहि तत्परेषाम्॥
श्लो० मित्र सम्प्राप्ति॥

अर्थ—मनुष्य प्रारब्ध के अधीन योग्य पदार्थ को अवश्य पाता है, परमेश्वर भी प्रारब्ध में प्रतिबन्धक नहीं इसलिये मेरे को न शोक है और न हर्ष है, क्योंकि जो हमारा है इसको दूसरा कोई नहीं भोग सकता।

कथा नं० ६—जैसे सागरदत्त वैश्य का पुत्र यह कथा पढ़ कर हर्ष शोक से रहित हो गया था, सागरदत्त का लड़का सत्सङ्गी था, एक सन्त की शरण में गया उनको सेवाकर प्रसन्न किया और कहा कि कोई ऐसा श्लोक सुनाओ जो हर समय चित्त को धैर्य्य देता रहे, सुख-दुःख

मालुम न हो, तब सन्तों ने विचारा इसको श्लोक सुनाऊँ यह श्लोक की कदर न करे तो अच्छा नहीं होगा और हमारे वचन अमूल्य हैं। तब सन्तों ने उससे कहा सौ रुपये लेकर एक श्लोक सुनायेंगे, वह पिता के पास गया और कहा मेरे को सौ रुपया दो तो मैं एक अमूल्य वस्तु खरीद लाऊँ पिता ने नहीं दिया, बालक ने हठ किया (नाराज हो गया) तब उसकी माता ने सौ रुपये दिये तो वह सन्तों से श्लोक लिख कर ले आया और सन्तों ने श्लो० की टीका करके बालक की बुद्धि में अच्छी तरह उसका अर्थ दृढ़ करा दिया। वह बालक भी पुनः पुनः श्लोक स्मरण कर शोक रहित प्रसन्नवदन हो गया, जब घर आया तो माता पिता ने पूछा क्या अमूल्य वस्तु लाया है तब बालक ने कहा—महात्मा का श्लोक रूपी अमूल्य रत्न लाया हूँ— तब पिता बड़ा क्रोधित हुआ और बेटे को बहुत मारा और हमेशा के लिये घर से निकाल दिया और कहा कि यह मेरा बालक नहीं, बालक प्रसन्न वदन है और पिता की आज्ञा मान कर देशान्तरों में चला गया और वहाँ जाकर प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यः इस श्लोक का अभ्यास करता और कोई पूछता है, तुम्हारा क्या नाम है, तो उसको भी प्राप्तव्यमर्थं इतना ही कह देता था। लोगों ने इसका नाम प्राप्तव्यमर्थं रख दिया, अब वह निर्भय होकर

शहरों और जङ्गलों में रहने लगा, दिन शहर में तो रात्रि जङ्गल में कभी दिन जङ्गल में तो रात्री शहर में इस प्रकार भय रहित हो विचरने लगा, एक दिन एक सेठ की कन्या की शादी थी वहां रत्नजड़ित मण्डप और वेदी बनी हुई थी बारात आ रही थी, बिजली जल रही थी लोग इकट्ठे होरहे थे, यह लड़का भी स्वभाविक वहाँ चला गया, जब बारात दरवाजे पर आई तब एक मदोन्मत्त हाथी महावत से बिगड़ गया और मस्त होकर लोगों को मारने लगा, वर और बाराती सभी भाग गये, वहाँ केवल सखियों सहित वह कन्या ही रह गई, हाथी चीघाड़ता हुआ कन्या की तरफ आया तो कन्या डरसे रोने लगी मेरी रक्षा करो मेरी रक्षा करो तब कोई न आया, प्राप्तव्यमर्थ को दया आई और कहा देवी मत डरो ऐसा कहकर वह भागकर कन्या के पास चला गया इसने हाथी को किसी तरह दूर भगा दिया, कन्या भयभीत होकर उसके गले से लिपट गई और कहा कि तूही मेरा पति है जिसने मेरे प्राण बचाये हैं। हाथी के दूर होजाने के बाद वर सहित बाराती फिर इकट्ठे हुये विवाह की तैय्यारी करने लगे, तब कन्या बोली मैं तो इसके साथ ही शादी करूँगी क्योंकि इसने मेरी रक्षा की है। तब पिता ने कन्या का वचन मानकर प्राप्तव्यमर्थ के साथ शादी

करदी, परन्तु प्राप्तव्यमर्थ ने कहा—मैं स्वतन्त्र रहूँगा। कन्या ने स्वीकार किया और अपने पति की सेवा कर प्रसन्न किया तथा अपने पिता को हर समय अपने पति के ही गुण सुनाया करती थी। एक दिन लड़की का पिता प्राप्तव्यर्थ को कहने लगा मैं जहाज भर कर सौदागरी करने के लिये किसी राजा के देश में जाऊँगा आप भी साथ चलें तो अच्छा है, प्राप्तव्यर्थ ने कहा अच्छा चलेंगे परिवार सहित तैय्यारी की, जहाज में सवार होकर दूर देश एक राजा के शहर में पहुँच गये, वहां ढिंढोरा पिट-रहा था। शाही दरवाजे पर जो अक्षर लिखे हैं जो उनको पढ़ेगा उसकी शादी राजकन्या और वजीर की कन्या के साथ करदी जायेगी। अगर न पढ़ सकेगा तो उसको गिरफ्तार करके उसका सारा माल छीन लिया जायेगा, टिकट लेकरके अन्दर जाने देते थे। अतः यह सर्व परि-वार सहित टिकट लेकरके शहर गया तो प्राप्तव्यमर्थ का जो श्वसुर था, वह बड़ा विद्वान् था, वह कई प्रकार के अक्षर जानता था। उसको ख्याल था मैं अवश्य पढ़ लूँगा और दोनों कन्याओं के साथ अपनी शादी कर लूँगा, जब प्रथम प्राप्तव्यमर्थ का श्वसुर अक्षर पढ़ने गया तो पढ़ न सका, तब उसको दिवान ने गिरफ्तार कर लिया। तदनन्तर, प्राप्तव्यमर्थ को कहा—तुम भी पढ़ो तो उसने

यही सन्तों का दिया हुआ श्लोक पढ़ा :—

प्राप्तव्यमर्थंलमते मनुष्यो, देवोऽपितं लंघयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो में यदस्मदीयं नहिं तत्परेषाम् ॥

ठीक यही श्लोक शाही महल के दरवाजे पर लिखा था। यह सुनकर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ और उसके श्वसुर को छोड़ दिया, अब राजा ने दोनों लड़कियों की शादी प्राप्तव्यमर्थ के साथ करके, दहेज में अपना सारा राज्य दे दिया, क्योंकि राजा की केवल यही एक कन्या सन्तान थी। अब राजा एकान्त में बैठकर ईश्वर चिन्तन करने लगा, तदन्तर प्राप्तव्यमर्थ ने अपने माता-पिता को बुलाया और सौ रुपये की कीमत वाले श्लोक का महत्त्व दिखलाया, दोनों कन्याओं की एक पुरुष से शादी क्यों हुई, इसकी कथा कहते हैं :—

एक राजा की रानी और वज़ीर की स्त्री आपस में सहेली थीं, उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि जो हमारी सन्तान होगी वह भी इकट्ठी ही रहेगी, अगर तुमको लड़का और मेरे को लड़की पैदा होगी तो—तुमको लड़की व हमको लड़का पैदा होगा तो आपस में ही दोनों की शादी करादी जायेगी। अगर दोनों को कन्या पैदा होगी,तो दोनों को एक पति दिया जायेगा, अगर दोनों को पुत्र हुये तो आपस में दोनों वज़ीर राजा होकर रहेंगे, दैवगति से दोनों

को कन्यायें पैदा हुईं। इन कन्याओं के पिताओं ने सन्तों से पूछा यह दोनों लड़कियाँ किसको विवाहनी चाहिये, तब सन्तों ने यह श्लोक कहा—और राजा को कहा—शाही दरवाजे पर बहुतसी भाषाओं के अक्षरों में पदों को उलट-पुलट कर यह श्लोक लिख दो, जो कोई श्लोक पढ़ देगा उसको यह दोनों कन्या विवाह देना। इसलिये प्राप्तव्यमर्थ के यह श्लोक पढ़ने से दोनों कन्याओं की शादी उससे हो गई। प्राप्तव्यमर्थ के पुरुषार्थ बिना ही केवल प्रारब्धकर्म से तीनों कन्याओं की शादी उससे हो गई, इसलिये बुद्धिमान् पुरुष वर्तमानकाल में भी रागद्वेष हर्ष-शोक से रहित होकर प्रारब्धाधीन चेष्टा करते हैं इसलिये भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालों में विचार द्वारा सम रहना चाहिये। हर्ष शोक न करना चाहिये इसी-प्रकार का उपदेश नारद मुनि ने महाराजा युधिष्ठिर को दिया था, जिस समय विदुर जी कौरवों के माता-पिता धृतराष्ट्र गान्धारी को वैराग्य उपदेश करके बिना ही खबर किये वन को ले गये और महाराजा युधिष्ठिर नित्य कर्म से निवृत्त होकर देव मन्दिरों की यात्रा कर तथा गुरु को नमस्कार कर हर रोज अपने चाचा-चाची को आकर नमस्कार किया करते थे। उस दिन भी नमस्कार करने के लिये उनके घर आये जब चाचा-चाची घर में दिखाई

न पड़े तो रोने लगे और कहा हमने युद्ध में इनके सौ पुत्रों को और सब सम्बन्धियों को मारा है इस दोष से हमारे पास नहीं रहे। हमको पापी जानकर पता नहीं कहाँ चले गये एक तो नेत्र हीन हैं दूसरे वृद्ध हैं तीसरे पुत्र रहित हैं चौथे निर्धन हैं न मालुम उन्होंने अपने शरीर की क्या क्या दशा की होगी हमको धिक्कार है जो ऐसे दुःख काल में भी उनकी सेवा न की, ऐसे रुदन कर ही रहे थे तो नारद जी आगये, महाराजा युधिष्ठिर ने भ्राताओं सहित नारद जी की पूजा की तथा अपना दुःख सुनाया तब श्री नारदजी ने कहा तुम किसी बात की चिन्ता न करो, जगत् के पदार्थ आगमापाई हैं किसी काल में सुखदाई और किसी में दुःखदाई होते हैं। सब प्राणियों का संयोग वियोग कालाधीन है। इसलिये चिन्ता करनी व्यर्थ है और आपके चाचा-चाची विदुरजी सहित हरिद्वार सप्त सरोवर तीर्थ पर तपस्या कर रहे हैं सप्त सरोवर वह है जहाँ सप्त ऋषियों की प्रसन्नता के लिये ऋषियों के अग्र भाग में श्री गङ्गाजी सात धाराओं में चलती हैं वहाँ ऋषियों के उपदेश से उनका चित्त परम शान्ति को प्राप्त हुआ है। और उनको किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रही, अब तुम वहाँ मत जाओ क्योंकि तुम्हारे आने से उनकी समाधि में विघ्न पड़ेगा, आज से पांचवें दिन महाराजा

धृतराष्ट्र जी अपने शरीर को त्याग देंगे और उनकी स्त्री गान्धारी पति के साथ सति हो जावेगी और उनकी मृतक क्रिया करके विदुरजी तीर्थ यात्रा को चले जायेंगे इस प्रकार बीत चुकी बातों का शोक मत करो और भविष्य की बातों का भी शोक न करना तुम्हारे को—भविष्यत सुना देते हैं थोड़े दिनों में दुर्वासा मुनि के शाप से भगवान श्रीकृष्णजी यादवों का संहार कराकर आप भी अपने परम धाम को चले जावेंगे और अर्जुन् रोता हुआ वापस आवेगा और तुम्हारे को तरह तरह के अपशकुन मालूम होंगे परन्तु तुम धीरज रखना हर्ष शोक न करना। क्योंकि काल की प्रेरणा से यह सब काम हो रहा है और काल ने सभी को मारना है कोई भी स्थिर न रहेगा। इसलिये हर्ष-शोक न करना इतना कहकर नारद जी चले गये नारदजी के जाने के बाद अपशकुन होने लगा। अर्थात् बायें अङ्ग फड़कने लगे, श्वान और गीदड़ रोते हैं, गौवें और घोड़े नेत्रों से अश्रुधारा बहाते हैं। बादल रुधिर की वृष्टि करते हैं आकाश में तारागण आपस में टकराते हैं, बछड़े दूध नहीं पीते, देवताओं की मूर्ति को स्वेद पसीना आ रहा है। इतने में मलीन मुख किये अर्जुन ने आकर भगवान श्रीकृष्ण और सब यादवों की कथा सुनाई तब महाराज युधिष्ठिर ने कहा—नारद जी ने मुझे प्रथम ही

सब वृतान्त सुनाकर शोक रहित कर दिया है और यह दृढ़ निश्चय करा गये हैं। कालाधीन सब पदार्थों का संयोग वा वियोग होता है, बुद्धिमानों को इसलिये संयोग वियोग में सम रहना चाहिये इसलिये अब हम भी परिक्षित को राज्य देकर द्रौपदी सहित पाँचो पाण्डव हिमालय को चलें। दुनियां ने अपना जी कोई बहलाके मर गया। दिल वड्डियों में कोई उकताके मर गया। अकल भी अपने आपको समझाके मर गया। वे अकेले छाती पीटके गम खाके मर गये, सुख पाके मर गये, कोई दुःख पाके मर गये जीता रहा न कोई हर इक आके मरगये।

मरण न मूरत पूछिया पुछि तिथी न वार।
इकनी लदिया इक लद चले इकना वद्धे मार॥
इकना होई मारवती इकना होई सार।
लसकर सणे दमामिआं छुटे बंक दुआर॥

॥ गुरु प्रमाण॥ पृ० १२४७॥

४—अथ गृहस्थधर्म निरुपणम् गुणदोषौ

प्र. नं. १–मू–वयांसि पशवश्चैव भूतानां च जनाधिपः
गृहस्थैरेव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठो गृहाश्रमी॥१॥

भा०—गृहस्थ धर्म कहते हैं। पची, पशु, सर्व भूतों को गृहस्थाश्रम ही धारण करता है। इसी से गृहस्थ (ज्येष्ठ) सब आश्रमों में बड़ा है ॥१॥

मू०—न्यायार्जित धनस्तत्त्व ज्ञानिष्ठोऽतिथिप्रियः।
श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोपि विमुच्यते ॥२॥

भा०—शास्त्र की आज्ञानुसार विधि धर्म से जो धन पैदा करे अतिथि की सेवा करता हो, श्राद्ध करता हो, सत्य वादी हो यथार्थ तत्त्व (ब्रह्मज्ञान) में निष्ठा हो सो गृहस्थ में ही मुक्त होता है ॥२॥

मू०—यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितम् ॥३॥

भा०—जैसे सब नदी नद समुद्र में जाकर स्थिति पाते हैं ऐसे सभी आश्रमी गृहस्थी के आश्रय ही स्थिति पाते हैं ॥३॥

मू०—यस्मात् त्रयोप्याश्रमिणो दानेनान्नेन चान्वहम्।
गृहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठो गृहाश्रमी ॥४॥

भा० अन्नादि के देने से तीनों आश्रमों की गृहस्थी दिन-रात रक्षा करता है इसी से जेष्ठ है ॥४॥

मू०—ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिस्तथा।
एते गृहस्थ प्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥५॥

भा०—ब्रह्मचारी वानप्रस्थी यति ये सब आश्रम

गृहस्थाश्रम ही से हुए हैं ॥५॥

मू०—अस्ति पुत्रो वशे यस्य भृत्योभार्या तथैव च।
विभवेसति संतोषः स्वर्गस्थोऽसौ महीतले ॥६॥

भा०—पुत्र, स्त्री, नौकर गृह के वश में हैं, जितनी विभूति पास है उसी में संतोष है सो गृही पृथ्वी पर रहता हुआ भी स्वर्ग में रहता है ॥६॥

मू०—अतिथिर्बालकः पत्नी जननी जनकस्तथा।
पञ्चैते गृहिणा पोष्या इतिरेपि स्वशक्तितः ॥७॥

भा०—अतिथि, अभ्यागत, बालक, स्त्री, माता, पिता इनकी पालना करनी गृही को आवश्यक है और भी सब दीन दुखियों की यथा शक्ति हो सभी की रक्षा पालन अन्नादि से करे ॥७॥

मू०—मातरं पितरं पुत्रं दारानतिथिसोदरान्।
हित्वा गृही न भुँजीयात् एकाकी तु कदाचन ॥८॥

भा०—माता, पिता, पुत्र, स्त्री, भाई इन सबको छोड़ के गृही अकेला कभी नहीं खाय ॥८॥

मू०—गृहस्थं हि सदा देवाः पितरोऽतिथयस्तथा।
भृत्यश्चैवोपजीवन्ति तान्भरस्व महीपते ॥९॥

भा०—गृहस्थ से ही पितर, देवता, अतिथि, भृत्य, दीनों में सब सदा उपजीविका करते हैं, इसी से हे राजन् गृही इन सबका भरण पोषण करे ॥९॥

मू०—अतिथिः पूजितो यस्य गृहस्थस्य तु गच्छति।
नान्यस्तस्मात्परो धर्म्म इति प्राहुर्मनीषिणः ॥१०॥

भा०—ऋषि मुनि ऐसा कहते हैं कि जिस गृहस्थी के घर में अतिथि की सेवा होती है इससे परे और कोई धर्म गृहस्थी का नहीं है ॥१०॥

मू.—यदि रामा यदि च रमा यदि तनयो विनय धीगुणोपेतः।
तनये तनयोत्पतिः सुरवर नगरे किमाधिक्यम् ॥११॥

भा०—जिसके घर पतिव्रता स्त्री हो, विभूति भी अच्छी हो पुत्र भी विद्यागुण विनय से युक्त हो, पुत्र के भी पुत्र हों तो फिर स्वर्ग में क्या अधिकता है, यहां ही स्वर्ग है ॥११॥

मू०—सुविप्रपादोदक कर्दमानि सुवेदशास्त्र ध्वनि गर्जितानि।
स्वाहा स्वधाकार निरंतराणि स्वानन्द तुल्यानि-
गृहाणि तानि ॥१२॥

भा०—जिसके घर साधु ब्राह्मण के चरण धोये जाते हैं और नित्य वेद पाठ होता है, नित्य श्राद्ध हवन होता है सो घर आनन्दरूप देव भवन है ॥१२॥

मू०—स्वकर्म धर्माजित जीवितानां दारेषु वेरवेषुसदा रतानाम्।
जितेंद्रियाणामतिथि प्रियाणां गृहेपि मोक्षं पुरुषोत्तमानाम्
॥१३॥

भा०—जो अपने धर्म कर्म में नित्य तत्पर हैं जिसको

अपनी स्त्री में संतोष है अतिथि की सेवा करते हैं ऐसे उत्तम पुरुषों का घर में ही मोक्ष होता है ॥१३॥

मू॰ वनेपिदोषा प्रभवन्ति रागिणां गृहेषु
पञ्चेन्द्रिय निग्रहस्तपः ।
न कुत्सिते कर्मणियः प्रवर्तते निवृत्त रागस्य
गृहं तपोवनम् ॥१४॥

भा॰ रागी पुरुषों को वन में रहने से भी दोष बहुत होते हैं। जो इन्द्रियों को रोके रखते हैं वे घर में ही तप कर सकते हैं जो कुकर्म कोई नहीं करते वह घर में ही अनासक्त हे वे घरमें रहते ही तपोवन में रहते हैं ॥१४॥

मू॰—मानुष्यं वर वंश जन्म विभवो दीर्घायु रारोग्यता ।
सन्मित्रं सुसुनः सती प्रियतमा भक्तिश्च नारायणे ॥१५॥
विद्वत्वं सुजनत्वमिन्द्रय जयः सत्पात्र दाने रतिः ।
ते पुण्येन विना त्रयोदश गुणाः संसारिणाम् दुर्लभा ॥१६॥

भा॰—पुरुष शरीर उत्तम वंश, विभूति, आरोग्यता, बड़ी उमर, श्रेष्ठ मित्र, सुपुत्र, सती स्त्री, ईश्वर भक्ति विद्या सुष्टु बन्धु जितेन्द्रिय होकर दान में प्रीति महान् पुण्य के बिना ये तेरह गुण संसारियों को दुर्लभ है अर्थात् अति भाग्य से मिलते है ॥१५,१६॥

मू॰—माता यस्य गृहेनास्ति भार्याचाप्रिय वादिनी ।
अरण्यं ते न गन्तव्यम् यथारण्यं तथागृहम् ॥१७॥

भा०—माता जिसके घर में नहीं है और स्त्री घर में क्लेश कारक है उसको वन में नहीं जाना चाहिये, क्योंकि उसके लिये जंगल और घर एक समान है ॥१७॥

मू.—क्रोशंतः शिशिरः सदारिसदनम् पङ्कावृतश्चाङ्गणम्।
शय्यांदशवती च रुक्षमशनम् धूमेन पूर्णे गृहम् ॥१८॥
भार्य्या निष्ठुर भाषणी प्रभुरपि क्रोधेन पूर्णः सदा।
स्नानं शीतल वारिणा च सततं धिग्धिग्गृहस्थाश्रमम् ॥१९॥

भा०—जिस घर में भूखे बालक रोते हों अन्नजल का त्रास हो, शय्या भी अच्छी न हो, रूखा सूखा अन्न हो वा वासी हो धूम धूलि कीचड़ से भरा आँगन हो, स्त्री भी कलह करने वाली कठोर बोलने वाली हो, घर का स्वामी भी सदा क्रोधी हो, ऋण युक्त हो, गर्म जल भी घर में स्नान को न मिले, उस गृहस्थ को धिक्कार है, अर्थात् ऐसे घर से तो मांग के खाना या मरना ही अच्छा है ॥१८,१९॥

सो गृहिजो निग्रहो करै, जप तप संयम भिक्षा करे।
पुन दान का करे शरीर, सो गृही गङ्गा का नीर॥
यह घर साधु न सेविये हरि की पूजा नाहिं।
ते घर मरघट सारखे भूत बसे तिन मांहि॥ गुरु वाणी॥

कथा नं० १—इसमें एक कथा है एक महात्मा बड़े वीतराग किसी राजा के शहर में आगये, लोग उसके

सत्संग में बहुत जाया करते थे, राजा को भी सत्संग करने की इच्छा हुई और प्रतिदिन आने लगा, एक दिन हाथ जोड़कर प्रार्थना करने लगा, महाराज ऐसे कोई चार वचन सुनाओ जिनको धारण कर मैं इस लोक तथा परलोक को सुधार लूं, तब महात्मा ने एक श्लोक पढ़ा।

आगते स्वागतं सारं रात्रौ सारं च जागरणम्।
भोजने च घृतं सारं स्त्रिया सारं च ताड़नम्॥

अर्थ—अतिथि का सत्कार करना यह गृहस्थी का पहला श्रेष्ठ धर्म है, दूसरा रात्रि के पिछले पहर में जागना, तीसरा सात्विक भोजन करना क्योंकि शुष्क भोजन करने से घर में लड़ाई होती है, इसलिये शुष्क भोजन नहीं करना चाहिये, चतुर्थ अपनी स्त्री यदि हठ करे तो उसको ताड़न करना, ये चार वचन अमूल्य हैं इन चार उपदेशों के धारण करने से तुम्हारा कल्याण होगा, अब इन्हीं का विस्तार सुनाते हैं गृहस्थी के पास जब कोई अतिथि आजावे तो उसे परमेश्वर समझ कर पूजा करे क्योंकि वेद में लिखा है—अतिथि देवो भव। तैत्तिरीयोपनिषद्।

श्लो.—काष्टभार सहस्रेण घृत कुम्भ शतेनच।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्य होमो निरर्थकः॥१॥

अर्थ—भगवान वेदव्यास जी कहते हैं कि चाहे हजारों मन काष्ट के भारों से तथा सैकड़ों ही घृत के

कुम्भों से हवन किया जाय परन्तु जिसके घर से अतिथि आकर निराश लौट जाय उसके सब यज्ञ व्यर्थ हैं ॥१॥

अहन्य हनियो दद्यात् कपिलां द्वादशीः समाः।
मासि मासि च चत्रे ण यो यजेत सदानरः ॥२॥

अर्थ—प्रतिदिन जो कपिला गौवें दान करता है और प्रति मास जो यज्ञों से हवन करता है ॥२॥

श्लो.—गवां शत सहस्र च यो दद्यात् ज्येष्ठ पुष्करे।
नतद्धर्म तुल्यमतिथिर्यस्य न तुष्यति ॥३॥

अर्थ—सब से बड़ा जो पुष्कर राजतीर्थ है, वहाँ जाकर ज्येष्ठ के मास में हजार गौवें श्रृङ्गार सहित दान करता है उस पुण्य के तुल्य अतिथि को अन्न जल से प्रसन्न करने का पुण्य है ॥३॥

नयज्ञैर्दक्षिणा ध्यग्निर्वह्निषु शुश्रुपया तथा।
गृही स्वर्ग मवाप्नोति यथा चातिथि पूजनात् ॥४॥

अर्थ—दक्षिणा सहित यज्ञ करने से, अग्नि होत्र करने से तथा नाना प्रकार से वृद्धों की सेवा करने से गृहस्थी को ऐसा स्वर्ग नहीं मिलता जैसा कि अतिथि के पूजन से मिलता है ॥४॥

महाराजा विक्रम उज्जैन नगर का बड़ा प्रतापी और शूरवीर राजा हुआ है, उन्होंने भी एक दिन विचार किया कि मैंने ऐसा कौन सा पुण्य किया है

जिससे मैं ऐसा धर्मात्मा प्रतापी राजा बन गया, इसका विचार अवश्य करना चाहिये।

इसलिये उसने बड़े-बड़े ज्योतिषी विद्वान बुलाये और कहा—बताओ कि मैं किस पुण्य के प्रताप से राजा बना हूँ, आठ दिन के अन्दर इसका उत्तर न दोगे तो मैं आपको योग्य दण्ड दूंगा। तब ब्राह्मणों ने बड़े बड़े यत्न किये परन्तु पता नहीं लगा, अन्त में राजा के पुरोहित की कन्या ने अपने पिता को दुःखी देख कर कहा कि यदि राजा अकेला ही मेरे पास आवे तो मैं उसके प्रश्न का उत्तर दे सकती हूँ। राजा को पता लगा और उस कन्या के पास आया, कन्या ने राजा को कहा कि मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का सब वृतान्त जानती हूँ, परन्तु आपके निश्चय के लिये आपको एक महात्मा के पास भेजती हूँ।

यहाँ से अमुक दिशा में दश कोश दूर चले जाओ तो आपको एक महात्मा मिलेगा, उसकी निशानी यह है वह अन्न नहीं खाता केवल अंगार ही भक्षण करता है उसको मेरी ओर से नमस्कार करके अपना समाचार पूछना, राजा कन्या का वचन मानकर उस दिशा में चला गया और महात्मा का दर्शन किया जिसकी बड़ी २ जटायें थी, और अङ्गार भक्षण करता था उसको कन्या की ओर से नमस्कार कर तथा अपनी ओर से नमस्कार करके

बैठ गया और पूछने लगा मैंने किस पुण्य के प्रभाव से राज पदवी पाई है, उसने कहा मैं आपका सब हाल जानता हूँ परन्तु आपकी तसल्ली के लिए आपको एक महात्मा के पास भेजता हूँ यहाँ से दश कोश आगे जाओ वहाँ पर एक महात्मा मिलेगा जोकि केवल भस्म ही भक्षण करता है उसको मेरी नमस्कार कर अपना सब हाल उससे पूछना। तब राजा उस महात्मा के पास जाकर नमस्कार कर बैठ गया और अपना हाल पूछा उसने भी कहा कि हम तेरा सब हाल जानते हैं, परन्तु आपके संतोष के लिये फिर आगे भेजते हैं। यहां से दश कोश की दूरी पर एक राजा का शहर है, वहां राजा के घर लड़का पैदा हुआ है, वह दूध नहीं पीता तुम जब उसको दूध पिलाओगे तब वह बालक दूध पी लेगा, फिर आप उससे सब हाल पूछना वह सब हाल सुनायेगा राजा उसके कथनानुसार उस शहर में गया, उस राजा के घर पुत्र नहीं होता था और आखिर बहुत यत्नों से बालक हुआ भी परन्तु दूध नहीं पीता था तब राजा विक्रम ने उसको दूध पिलाया और अपना सब वृतान्त पूछा तब उस बालक ने कहा, कि महाराज! मैं और आप वे दोनों ऋषि एक निर्जन वन में चारों ही तपस्या कर रहे थे, और वह पुरोहित की कन्या एक वानप्रस्थ की

स्त्री थी. वहां हमारे पास ही गंगा के तीर पर रहती थी और हम चारों को प्रतिदिन दो दो रोटियां दे जाया करती थी। शेष हम फल कंदमूल खाकर निर्वाह करते थे जब बहुत समय तपस्या करते २ हो गया, तब विष्णु भगवान हम चारों के चित्त की मृदुता की परीक्षार्थ वृद्ध और भूखे ब्राह्मण का रूप धारण कर उस वन में आये, सबसे प्रथम वे अग्नि भक्षण करने वाले की कुटिया में पहुँचे और वह माई भी अभी रोटियां देकर गई ही थी, उस ब्राह्मण ने कहा कि मैं तीन दिन का भूखा हूँ इसलिये मेरे को भर पेट भोजन कराओ क्योंकि मैं एक वार ही भोजन करता हूँ। तपस्वी ने कहा कि मैं भी सारे दिन का भूखा हूँ, एक रोटी आप लेलो और आधी मेरे को देदो परन्तु ब्राह्मण ने नहीं माना फिर उसने कहा कि डेढ़ रोटी आप लेलो और आधी मेरे को देदो परन्तु उस अतिथि ने नहीं माना, तब उस तपस्वी ने क्रोधयुक्त होकर कहा अगर मैं आपको दोनों रोटियां देदूं तो क्या मैं अग्नि भक्षण करूं? तब अतिथि के स्वरूप में भगवान "तथास्तु" कहकर दूसरे तपस्वी के पास गये। उसने भी ऐसा ही कहा कि मैं दोनों रोटियां आपको देकर क्या मैं भस्म भक्षण करूँ? भगवान तथास्तु कह कर जब मेरे पास आए मैंने डेढ़ रोटी देने को कहा, वे न माने तब

मने भी कहा कि मैं मारा भोजन आपको देकर मर जाऊँ? तब वे—'तथास्तु' कहकर आगे चले गये। तब से लेकर मैं जन्मता मरता ही रहता हूँ फिर यह आपके पास आया, आपका चित्त बड़ा दयालु था इसलिये उनके कहने से प्रथम ही आसन पर बिठा कर दोनों रोटियां तथा फल फूल और आज्य (मट्ठे) का लोटा लाकर आगे रख दिया तब अतिथि के स्वरूप भगवान ने भोजन खाकर तृप्त हो वरदान दिया कि आपके एक जन्म और प्रतिबन्धक है, उसमें आप चक्रवर्ती प्रतापी धर्मात्मा और ज्ञानवान राजा होकर मुक्त हो जाओगे और इन तीनों तपस्वियों को हमने शाप दिया है। जब आप इस बात को भूल जाओगे तब इनके पास आप पूछने आवोगे तो इनके शाप की भी निवृत्ति हो जायगी और यह जो वानप्रस्थ की स्त्री है इसको भी एक जन्म प्रतिबन्धक है यह भी दूसरे जन्म में राजपुरोहित के घर में पैदा होकर, ज्ञानवती होकर मुक्त हो जायगी। हे महाराज! विक्रमादित्य जो हमने आपको कथा सुनाई है यही कथा वे दोनों ऋषि और कन्या भी सुनायेगी और उन ऋषियों को अपने राज्य में ले जाकर उनकी सेवा करनी, अब हम मुक्त हो गये और यह सारी राज सामग्री आदि की प्राप्ति केवल दो रोटियां खिलाने का फल है इसलिये गृहस्थाश्रम को अन्न दान

करना परमावश्यक है तथा यमदूतों ने एक राजा को अतिथि सत्कार के महात्म्य का उपदेश दिया।

श्लो०—ददस्वन्नं ददस्वन्नं ददस्वन्नं नराधिप।
कर्मभूमौ गतोभूयो यदि स्वर्गं त्वमिच्छसि॥१॥

अर्थ—हे राजन्! अन्न दान करो, रे—मृत्युलोक गया हुआ यदि स्वर्ग को चाहता है॥१॥

श्लो०—पानीयं प्रददेद् ग्रीष्मे हेमन्ते च तपोधनः।
अन्नं च सर्वदा दत्वा गच्छेन्न याम्य यातनाम्॥२॥

अर्थ—हे यशस्वी! गर्मी के दिनों में जल दान करो, शर्दी के दिनों में अन्न दान करो तब यमराज की ताड़ना से छूट जाओगे॥२॥

श्लो०—सर्वेषामेव भूतानामन्ने प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
तेनान्नादोविशां श्रेष्ठ प्राणदाता स्मृतोबुधैः॥३॥

अर्थ—सब भूतों के प्राण अन्न में स्थित हैं इसलिये हे राजन्! अन्न दान को प्राण दाता कहते हैं।॥३॥

श्लो०—ततश्च भारतेवर्षे राजा भवति धार्मिकः।
अन्नदो दीर्घायुश्च विद्यते सुखसम्पदाः॥

अर्थ—भारत वर्ष में राजा धर्मात्मा होता है अन्न के देने वाला दीर्घायु वाला और सुख सम्पन्न होता है। इसलिये गृहस्थाश्रम में प्रथम सार बात यह है कि आये हुये अतिथि का अन्नादि से सत्कार करना।

"आगते स्वागतं सारम् । रात्रौ सारं च जागृणम् ॥
रात्रि के पिछले पहर में जागना श्रेष्ठ है, उस समय को ब्रह्म मुहूर्त कहते हैं।

श्लो०—ब्रह्ममुहूर्ते बुद्ध्येत धर्मार्थानु चिन्तयेत् ।
काय क्लेशांश्च तन्मूलान् वेद तत्त्वार्थमेवच ॥१॥

अर्थ—मनुजी कहते हैं कि ब्रह्ममुहूर्त में जागना चाहिये और धर्म अर्थ का विचार करना चाहिये जो विचार शरीर के दुःखों को और उनके मूल कारण अज्ञान को नाश करता है और वेद तत्त्वार्थ महा वाक्यों का चिंतन करे ॥१॥

श्लो०—रात्रेः पश्चिम यामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः ।
स ब्रह्म इति विज्ञेयो विहीतः स प्रबोधने ॥२॥

अर्थ—रात्रि के चतुर्थ पहर का जो तृतीय मुहूर्त है अर्थात् कम से कम पांच घटिका रात्री रहती है उसको ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं, उस में जाग्रण करने की शास्त्र की आज्ञा है ॥२॥

१ श्लो०—ब्राह्मे मुहूर्ते या निद्रा सा पुण्य चय कारिणी ।
तां करोति द्विजा मोहात् पाद कृच्छ्रेण शुध्यति ॥

अर्थ—ब्रह्म मुहूर्त में जो निद्रा करनी है वह पुण्यों का नाश कर देती है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य प्रमाद से

यह पाप करता है, वह तीन दिन के उपवास से शुद्ध होता है ॥३॥

झालांगे उठ नाम जप निसि वासुर आराध ।
कारा तुझै न विआपई नानक मिटै उपाधि ॥ पृ. २५५
प्रातःकाल हरि नाम उचारी, ईत ऊत की ओट सवारी ।
गुरु सति गुर का जो सिख अखाए ।
सो भलके उठ हरि नाम धिआवै । गउड़ी वार म.४-३०५
फरीदा पिछली रात न जागिओ जीवंदड़ो मुइ ओह ।

इन प्रमाणों से सिद्ध हुआ कि पिछली रात्रि में जागना श्रेष्ठ है ।

"भोजने च घृतं सारं"

भोजन में घी डाल कर स्वादिष्ट बनाकर खाना श्रेष्ठ है । सामवेद छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है ।

श्लो०—अन्नमशितं त्रेधा विधीयते तस्य यः स्थविष्ठो धातुः ।
तत्पुरीषं भवति योमध्यमस्तन्मांसंयोऽणिष्ठ स्तन्मनः ॥

अर्थ—उद्यालक मुनि अपने पुत्र श्वेतकेतु को कहता है हे सौम्य ! खाया हुआ अन्न ? अन्दर जाकर तीन भागों में विभक्त हो जाता है । जो स्थूल भाग होता है, उसका विष्टा बनता है मध्य भाग का मांस बनता है और सूक्ष्म भाग मन को मिलता है ॥१॥

श्लो०–आपः पीतास्त्रेधा विधीयन्ते तासांयः स्थविष्ठो धातुः ।
तन्मूत्रंभवति योमध्यमस्तल्लोहितं योऽणिष्टः सप्राण : ॥२॥

अर्थ–ऐसे ही पिया हुआ जल भी तीन भागों में विभक्त हो जाता है। स्थूल भाग मूत्र बनता है मध्यम भाग रक्त बनता है और सूक्ष्म भाग प्राणों को मिलता है ॥२॥

अन्नमयं हि सौम्य मन आपो मयः प्राणस्तेजोमयी वागिति।
भूय एव मा भगवान्विज्ञापयत्विति तथा सौम्येति होवाच ॥

अर्थ–हे प्यारे ! यह मन अन्नमय है अर्थात् अन्न-स्वरूप है, जैसा अन्न वैसा मन, जल प्राण रूप है, जिह्वा तेज रूप है अर्थात् जितने तेजस्वी पदार्थ खाता है उतनी ही जिह्वा अच्छी रहेगी वेदों में ऐसा लिखा है।

आहार शुद्धौ सत्त्व शुद्धिः सत्त्व शुद्धौ ध्रुव स्मृतिः ।
स्मृति लाभे सर्वग्रन्थिनां विप्र मोक्षः ॥

अर्थ–आहार की शुद्धि से अन्तःकरण शुद्ध होता है अन्तःकरण की शुद्धि से परमात्मा-स्मृति होती है और परमात्मा-स्मृति से सब अध्यास और दुःखों की निवृत्ति हो जाती है, इसलिये आहार को शुद्ध रखना चाहिये।

"स्त्रियाः सारं च ताडनम्"

नेचेत् पति क्रूर दृष्टया श्रावयेन् नच दुर्वचः ।
नाप्रियं मनसा वापि चरेत् पत्यु पतिव्रता ॥

अर्थ—पतिव्रता स्त्री अपने पति को क्रूर दृष्टि से कभी न देखे और न कभी दुर्वचन कानों में श्रवण करावे और अपने मन से कभी भी अप्रिय न करे। पतिव्रता स्त्री अपने पति से अच्छा आचरण करे।

श्लो०—नास्ति भर्तृ समो नाथो नास्ति भर्तृ समं सुखम्।
विसृज्य धनं सर्वस्वं भर्ता वै शरणं स्त्रियः ॥१॥

अर्थ—पति के समान कोई स्वामी अर्थात् रक्षक नहीं और पति के समान कोई सुख नहीं, सर्वस्व धन को छोड़ कर स्त्रियां पति की ही शरण में रहें ॥१॥

श्लो०—छायेवानुगता स्वेच्छा सखीव हित कर्मसु।
दासी वा दिष्टकार्य्येषु भार्याभर्तुः सदा भवेत् ॥२॥

अर्थ—छाया के समान तो स्त्री अपने पति के साथ वर्ताव करे और सखियों की तरह उसके साथ प्रेम करे और कार्यों में दासी की तरह आज्ञा मानकर रहे और पति के अनुकूल रहे, यह स्त्रियों का धर्म है यदि स्त्री बातों को न मानकर हठ करे तो ऐसी स्त्री को ताड़ना ही श्रेष्ठ है ये चार वचन सन्तों ने राजा को सुनाये। राजा सुनकर घर पर आया और रानी को कहा कि मेरे को प्रातःकाल चार बजे उठाना क्योंकि मैं महात्मा का वचन सुनकर आया हूँ यह बात सुनकर रानी बड़ी प्रसन्न हुई क्योंकि यह बड़ी पतिव्रता थी, स्वयं प्रातःकाल उठती ही

थी स्नानादि क्रिया करके आगे भी कई बार जगाया करती थी, परन्तु राजा उठता नहीं था। रानी ने कहा कि मैं चार बजे अवश्य उठा दूंगी और आप उठकर ईश्वर का भजन करना आपके भजन करने मे मुझे भी लाभ है क्योंकि मैं आपकी अर्धाङ्गिनी हूँ। प्रातःकाल होते ही राजा को जगा दिया, परन्तु राजा को जागने का स्वभाव नहीं था उठकर फिर सो गया तो रानी ने कहा कि गुरुओं के वचनों को मानो। राजा ने कहा कि क्या करूँ मुझे जागने का अभ्यास नहीं? तब रानी ने कहा अच्छा सिपाहियों के कपडे पहन कर नगर में चक्कर लगाओ निद्रा खुल जायगी। तब राजा सिपाहियों के कपडे पहन कर नगर में गया, घूमता-घूमता क्या देखता है किएक गरीब की टूटी फूटी झोपडी है। उसमें एक पुरुष और उसकी स्त्री रहते है, दोनों में बहुत प्रेम है। वह स्त्री पतिव्रता थी। उसने प्रातःकाल उठकर स्नान कर पति को स्नान कराया। वस्त्र पहना कर चरणामृत लिया और पुष्पों की माला पहनाई पति जब सत्सङ्ग में गया तब माई चरखा कातने लगी, और राम राम का भजन करती हुई साथ साथ रोती भी थी, तब राजा देखकर बड़ा हैरान हुआ और सोचा कि माई को कोई दुःख होगा, पूछा तो माई ने जान लिया यह राजा है; परन्तु कहा कुच्छ

नहीं चुप रही राजा पुनः २ पूछता है माई! तू चरखा कातती है राम नाम जपती है और साथ ही रोती भी है, इसका क्या कारण है? तब माई बोली अपनी उपजीविका के लिये चरखा कातती हूँ क्योंकि जबसे मैं विवाही हूँ, तब से मैंने अपना पैसा पति को खिलाया है, परन्तु उसका पैसा नहीं खाया, क्योंकि पति कि सेवा करना मेरा धर्म है और मोक्ष के लिये राम का नाम जपती हूँ। रोती इसलिये हूँ कि यहाँ का राजा बड़ा धर्मात्मा है। वह आज से आठवें दिन में मर जायगा। तब राजा अपना मरना सुनकर भयभीत हो गया। सती से पूछा कि हे पतिव्रता स्त्री! राजा किस तरह मरेगा, तू कैसे जानती है सती ने कहा कि मैं पतिव्रत धर्म के प्रभाव से सब कुछ जानती हूँ। आठवें दिन यमदूत सर्प के रूप में आकर राजा को डसेगा, तब राजा चुप होगया और उसके घर का पता लिख कर ले गया, सब समाचार अपनी रानी तथा मन्त्री को सुनाया, तब रानी और मन्त्री ने बड़े-बड़े उपाय किये अनेक प्रकार के दान पुण्य भी कराये और राजा को भी महात्मा के वचन याद आगये—

"आगते स्वागतं सारम्"

मन्त्री से कहा कि जो सर्प हमको काटने आवेगा उसका सत्कार करना चाहिये, तब मन्त्री ने कहा कि महाराज!

अतिथि समझ कर यमरूप सर्प का सन्मान करना श्रेष्ठ है, क्योंकि "मनुस्मृति में भी लिखा है—

श्लो.—बालो वा यदिवा वृद्धो, युवा व गृह मागतः।
तस्य पूजा विधातव्या सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥१॥

अर्थ—बालक हो अथवा वृद्ध हो अथवा जवान हो, जो भी अपने घर आजाय उसको अतिथि समझकर पूजा करे क्योंकि अतिथि सबका पूज्य होता है।

श्लो.—चौरो वा यदिवा चाण्डालः शत्रुर्वापित घातकः।
वैश्य देवे तु सम्प्राप्ते सोऽतिथिः सर्व संमतः ॥२॥

अर्थ—चोर हो अथवा चाण्डाल हो वैरी हो अथवा माता पिता को मारने वाला हो वह भी यदि भोजन के समय घर में आजाय तो सर्वथा अभ्यागत माना जाता है, अभ्यागत का सत्कार न करने से बड़े २ दोष लगते हैं जसे कश्यप ऋषि की स्त्री अदिति ने जब कि सूर्यनारायण उसके गर्भ मे थे। अतिथि रूप से घर में आए बुध जी को भिक्षा नहीं दी तब बुध जी ने शाप दिया कि तू अतिथि सत्कार नहीं करती इसलिये तेरा गर्भ सूख जाय। यह कथा पुराणों में प्रसिद्ध है, तथा छाया स्वरूप माया ने अतिथि स्वरूप में आये हुए नारद जी का सत्कार नहीं किया तो नारदजी ने शाप दिया कि तू राक्षसी हो जा,

तब माया ने राक्षसी हो कर वृन्दा के स्वरूप को धारण किया, यह कथा भी पुराणों में प्रसिद्ध है इसलिये चाहे दुश्मन भी क्यों न हो परन्तु अतिथि स्वरूप में आए हुए का सत्कार अवश्य करना चाहिये। इसलिये तुम सर्प का सन्मान अवश्य करो तब राजा ने बाग में सीस महल बनाया और सर्प के लिये चारों द्वारों पर दूध तथा शर्बत के कुण्ड बनवाये और चन्दन के बहुत पेड लगाये। सर्प को प्रसन्न करने के लिये बीणा बजवाई और नमस्कार करने के लिये सेना मंगवाई, जब बारह बजे सर्प आया तो सब ने नमस्कार की जल के कुण्ड में स्नान कराया और दूध पिलाया तथा चन्दन के वृक्षों पर बैठा कर बीन बाजा श्रवण कराया। सर्प के रूप में यमदूत बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि मैं इसको मारूँगा तो कृतघ्न बनूंगा यद्यपि यमराज-जी तो आज्ञा इसको मारने की है, परन्तु मैं इसको अपनी आयु देकर वापिस जाऊँगा, सर्प राजा के पास आया तो राजा ने भी उठ कर सत्कार किया। सर्प ने कहा मैं तेरे सत्कार से बडा प्रसन्न हूँ तू डर मत मे एक बार धर्मराज की आज्ञा से तेरे को मारूँगा परन्तु फिर अपनी आयु देकर तुझे जीवित कर दूगा। ऐसा कह कर राजा को काट लिया, राजा मर गया तो उसी क्षण में अपनी पांच वर्ष की आयु देकर उसे पुनः जीवित

कर दिया। जैसे गुरु अमरदास जी ने अपनी आयु गुरु रामदास जी को देदी थी। उसी प्रकार यमदूत ने भी अपनी अवस्था देदी और कहा कि हम देवताओं के पाच वर्ष मनुष्यों के पिचहत्तर वर्ष के तुल्य हैं, अब तुम पिचहत्तर वर्ष हमारी अवस्था से राज करो। राजा ने तब प्रसन्न होकर अनेक प्रकार की सामग्री से सर्प का पूजन किया, सर्प ने प्रसन्न होकर दूसरी विद्या दी कि यावत् चराचर चींटी से ब्रह्मा पर्यन्त जीवों की भाषा तू समझ सकेगा परन्तु यह बात किसी से कहना नहीं, अपनी प्रिया रानी को भी न सुनाना यदि सुनाओगे तो तत्काल ही मर जाओगे ऐसा कहकर वह सर्प तो चला गया, राजा प्रसन्न चित्त हो अपने घर आया।

रानी से कहा कि महात्मा का दूसरा वचन भी अमूल्य है, फिर कुछ समय बीतने के बाद राजा को तीसरा वचन भी याद आया, परन्तु महात्मा ने साथ में यह भी कहा था कि घर में लड़ाई पड जायगी, अच्छा अगर रानी के साथ कदाचित लड़ाई हो भी गई कुछ हानि नहीं यह विचार कर रानी को कहा कि आज मैं बिल्कुल रूक्ष (खुश्क) भोजन करना चाहता हूँ। घृत का स्पर्श भी नहीं करना और वह भोजन तुम ही बनाना अन्य किसी को हाथ भी न लगाने देना, यह सुन कर रानी बड़ी

प्रसन्न हुई कि आज पतिदेव बड़े कृपालु हुए हैं जो कि स्वयं ही कह कर मेरे से सेवा ले रहे हैं, रानी ने भोजन बनाया और थाल परोस के राजा के सन्मुख रख दिया। राजा का नियम था कि भोजन का एक ग्रास प्रथम चींटियों के लिये बाहर निकाल कर रख देता था, जब चींटियां आईं तो रुद्र भोजन देख कर राजा की निन्दा करने लगीं और गालियां देने लगीं, राजा सुनकर हँस पड़ा तब रानी ने हँसने का कारण पूछा, तो राजा ने कहा कि मैं नहीं बतलाऊँगा, अगर बतलाया तो मेरी तत्काल ही मृत्यु हो जाएगी। रानी ने कहा गुप्त बात तो बतलानी ही क्या थी, आप अपना हँसना भी नहीं बतला सकते, इसलिये मैं भी फाँसी लगाकर मरती हूँ दोनों में बड़ा हठ होगया, आखिर स्त्री हठ बड़ा बलिष्ट होता है रानी मरने को तैयार हो गई, तब राजा ने कहा मेरे को गंगा पर ले चलो, मैं वहा पर तुम्हें हँसी का कारण बतला कर प्राण छोड दूंगा। मेरे शरीर को गंगा में प्रवाह कर देना तब रानी ने गंगा जाने की तैयारी कर ली, अन्य लोगों ने भी रानी को बहुत समझाया परन्तु रानी ने अपना हठ नहीं छोड़ा और गंगा जी की तरफ चल पड़े, जाते जाते रास्ते में रात्री पड़ गई, जंगल में एक कूप के किनारे तम्बू लगा लिये कूप के चारों तरफ जो हरा भरा घास था वह रात्रि में जल

भरने से कीचड़ से भर गया, प्रातःकाल अभी राजा चाय पी रहा था। इतने में एक गडरिया बकरियां लेकर कूप के पास आया तो सब बकरियां घास खाने लगीं, परन्तु एक बकरी ने घास न खायी बकरे ने उसको बहुत समझाया परन्तु उसने कहा कि मैं पैरों से मसले हुए घास को नहीं खाऊँगी, तब बकरे ने कहा और कौनसा घास खावेगी। उसने कहा कि कूप के अन्दर की ओर ईंटों में जो घास जमा हुआ है वह अगर लादो तो खालूँगी, बकरे ने घास लाने के लिये बहुत प्रयत्न किया, परन्तु कूप में गिरने के भय से घास को उखाड़ न सका बकरी को बहुत समझाया परन्तु उसने अपना हठ नहीं छोड़ा बकरे को बड़ा क्रोध आया और उसने कहा कि तू हठ छोड़ेगी या नहीं। बकरी ने कहा मैं पैरों से मसला हुआ और कीचड़ वाला घास नहीं खाऊँगी, तब बकरे ने सींगों तथा पैरों के प्रहारों से बकरी को मरण तुल्य बना दिया, तब बकरी ने कहा कि मैं पैरों से ममला हुआ और कीचड़ से सना हुआ ही जैसा दोगे वैसा ही खालूँगी परन्तु मुझे मारो मत मैंने अपना हठ छोड़ा और जो आज्ञा करोगे मैं अवश्य मानूंगी, परन्तु मुझे जान से मत मारना।" बकरे का यह न्याय देख कर तथा वचन सुनकर राजा को भी महात्मा के वचन याद आगये महात्माओं ने कहा था

कि हठ पर आई हुई स्त्री को ताडना ही श्रेष्ठ है तब राजा ने रानी को अपने पास बुलाया कि तू हठ नहीं छोडेगी, रानी ने कहा कि मरना स्वीकार परन्तु हठ छोडना स्वीकार नहीं, तब राजा को बडा क्रोध आया और उठकर रानी को प्रथम लात मुक्के से खूब पीटा फिर तलवार निकाल ली और कहा हठ छोडती है अथवा नहीं तब रानी कहने लगी कि मैंने हठ छोडा अब मुझे जान से मत मारो। आगे के लिये चाहे आप हमें या रोवें आपकी बातों में कभी बाधा न डालूंगी, तब राजा वापिस घर आगया इस प्रकार राजा ने महात्माओं के चारों वचनों की परीक्षा की वे चारों वचन अमूल्य सिद्ध हुए तब राजा ने महात्माओं को गुरु मानकर बडा पूजन किया इस-प्रकार गृहस्थाश्रम के धर्म श्रवण करके सुख और शान्ति को प्राप्त हुआ, इसलिये सर्व सज्जनों को चाहिये कि गृहस्थ धर्म को पालन करें और यथा योग्य शक्ति-अनुसार अपने धर्म पर तत्पर रहें —

सानन्द सदनं सुतास्तु सुधियः कान्ता प्रियालापिनी।
इच्छा पूर्तिधनं स्व योषितिरतिः स्वाज्ञापरा सेवकाः॥
आतिथ्यं शिव पूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्न पानं गृहे।
साधोः सङ्गमुपासते च सततं धन्योगृहस्थाश्रमः॥

अर्थ—यदि आनन्द समेत घर मिले और लड़के

पंडित हों स्त्री मधुर भाषिणी हो, इच्छा के अनुसार धन हो अपनी ही स्त्री में रति हो, आज्ञा पालक सेवक मिलें अतिथि की सेवा और शिव की पूजा प्रतिदिन हो, गृह में मीठा अन्न और जल मिले, सर्वदा साधु के सङ्ग को उपासता है वह गृहस्थाश्रम ही धन्य है ॥ चाणक्य ॥

५—※ अथ मानव जीवन ※

प्रमाण नं० १—बड़े भाग मानुष तन पावा ।
सुर दुर्लभ सद्ग्रन्थन गावा ॥
मानुष जन्म दुर्लभ है मिले न बारंबार ।
ज्यों वन फल पाके भूयै गिर है बहुर न लागे डार ॥ गुरुवा.

मू.—वाणी रसवती यस्य भार्या पुत्र वती सती ।
लक्ष्मीदान वती यस्य सफलं तस्य जीवितम् ॥१॥

भा०—वाणी जिसकी मीठी हो, पुत्रवती पतिव्रता स्त्री हो, विभूति होकर घर में दान हो, उस गृहस्थी का जीवन सफल है ॥१॥

मू०—धमार्थ काम मोक्षाणां यस्येकोऽपि न विद्यते ।
अजागल स्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥२॥

भा०—धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों में से जिसके पास एक भी नहीं है उसका जीवन व्यर्थ ही है, जैसे बकरी के गले में स्थन व्यर्थ हैं ॥२॥

मू०—दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यशः ।
विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः ॥३॥

भा०—जिसने दान से, तप से, शूरवीरता से जगत में यश नहीं फैलाया न कुछ विद्या व धन का ही लाभ किया है, वह पुरुष नहीं, उसे तो एक प्रकार से माता का मल ही समझो ॥३॥

मू०—स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य च जीवति ।
गुणधर्म विहीनो यो निष्फलं तस्य जीवितम् ॥४॥

भा०—जिसमें गुण हो या धर्म हो वही पुरुष जिन्दा है, गुण धर्म से रहित जीवन तो निष्फल है ॥४॥

मू०—स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।
परिवर्तिनि संसारे मृतः कोवा न जायते ॥५॥

भा०—इस संसार प्रवाह में आकर जन्म लेकर कौन नहीं मर गया, जन्मा वही है जिसके जन्म से ऊँची उत्तम गति उसके वंश की हो जाय ॥५॥

मू०—दानोपभोग रहिताः दिवसाः यस्य यांति वै ।
सलोहकार भस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ॥६॥

भा०—न दान दिया न कुछ सांसारिक सुख ही भोगा, जिसके दिन वृथा ही व्यतीत हुए, वह मनुष्य लोहार की धौंकनी के समान श्वास लेता हुआ भी मुर्दे के समान है ॥६॥

दृष्टान्त नं० १—जैसे एक राजा को कहीं से अमरफल प्राप्त हो गया था, परन्तु उसकी कदर न जानकर ऐसे ही फेंक दिया, फिर पश्चात्ताप करने लगा एक दिन वही राजा शिकार के लिये जङ्गल में गया, लौटते समय तोतों को पकड़े हुए एक व्याध को देखा, उन में एक तोता का राजा था, यह राजा तोतों के राजा को देख कर मोहित हो गया और व्याध से उसका मोल पूछा—तो उसने कहा कि तोता अपना आप ही मोल करेगा, तब तोते से पूछा कि तुम्हारा क्या दाम है, उसने कहा मैं अमूल्य हूँ परन्तु एक लाख रुपया इसको देदो, मैं आपको बहुत धर्मोपदेश तथा नीति का उपदेश सुनाऊँगा, राजा ने तोते को ले लिया और अपने कमरे में उसका पिंजरा टांग दिया, प्रातःकाल होते ही तोते ने राजा को जगा कर कहा उठो परमेश्वर का भजन करो मानुष जन्म सफल करो तथा अपने गुरु के पास जाओ दर्शन करो सत्सङ्ग करो, राजा आलस्य से उठता नहीं था। परन्तु तोते ने बहुत इतिहास सुनाये, सुनते-सुनते कुछ दिन बाद राजा की भगवान में श्रद्धा हो गई और अनन्य चित्त से सन्ध्या वन्दनादि नित्य नियम करने लगा, फिर तोते ने राजा से कहा न्याय ऐसा करना चाहिये जैसे दुण्डे असराज ने किया था, जिसका गुरु ग्रन्थ जी के आसा राग में उल्लेख आता है, राजा ने

पूछा उसने क्या न्याय किया था तोते ने कहा सुनोः—

एक राजा था उसकी दो रानीयां थीं, एक से एक पुत्र पैदा हुआ और दूसरी से चार पुत्र हुए, जब वह राज्य के योग्य हुए तो राजा ने आधा राज्य पहले लड़के को दे दिया और आधा राज्य दूसरी रानी के चार पुत्रों को दे दिया, तब उन चारों ने आपस में विचार किया, कि हम चारों को आधा राज्य और यह अकेला ही आधे राज्य का मालिक बन बैठा है, इसको किसी सघन जङ्गल में हाथ पांव काट कर फेंक दें और सारे राज्य को हम चारों ही भोगें ऐसा विचार कर उसको शिकार खेलने के लिये जङ्गल में ले गये, वहां उसके हाथ पांव काट कर निर्जन वन में एक कूप में फेंक दिया और घर में आकर उसकी माता तथा स्त्री से कह दिया कि असराज को सिंह खा गया है। हाथ पांव आदि अङ्ग दिखा कर निश्चय भी करा दिया और आप सुख पूर्वक चारों भाई राज्य करने लगे और उसी कूप पर कुछ दिन पीछे एक कुम्हार जल भरने को आया जब लोटा कूप में गेरा तो उस राजा ने लोटा पकड़ लिया और आवाज दी अपना सारा हाल सुनाया कुम्हार ने उसे कूप से निकाल लिया और अपने घर पर ले आया और उसकी मरहम पट्टी आदि सेवा करता रहा, उसी राज्य में एक भाई, और उसकी लड़की और

उसके लड़के की स्त्री रहती थी। ईश्वर इच्छा से वे दोनों एक ही दिन एक ही घड़ी में प्रसूत हुई माई की श्रुषा को लड़का पैदा हुआ और उसकी लड़की को कन्या पैदा हुई। स्त्रियों को अधिकतर श्रुषा से अपनी कन्या प्यारी होती है इस लिये उस वृद्धा ने लड़का उठा कर अपनी लड़की को गोद में रख दिया और कन्या उठाकर अपनी श्रुषा की गोद में रख दी तब वह उन से झगड़ने लगी कि मेरी सास ने मेरा लड़का उठाकर अपनी लड़की को दे दिया है। अधिक झगड़ा बढ़ जाने से उस देश के राजा के पास यह बात पहुँच गई, तब राजा ने सब प्रजा को आज्ञा दी कि प्रत्येक जाति पृथक् २ इस बात का विचार करें पहले ब्राह्मणों ने विचार किया फिर क्षत्रियों ने विचार किया परन्तु किसी से यह न्याय न हुआ, ऐसा करते २ एक दिन कुम्हारों का भी आ गया, तो उस दुण्डे असराज को पता लगा कि आज कुम्हारों ने इस बात का न्याय करना है तो उसने अपने कुम्हार को कहा कि मेरे को अच्छे २ कपड़े पहना कर ले चलो मैं यह न्याय करूँगा।

तब उसने अच्छे कपड़े पहना दिये राज सभा में पहुँचा दिया और असराज ने कहा कि मैं राजगद्दी पर बैठ कर न्याय करूँगा—तब राजा न्याय सुनने की इच्छा से राजगद्दी छोड़कर दूसरे आसन पर बैठ गया, और उसका

असिराज राजगद्दी पर बैठ गया और कर्मचारियों को कहा कि एक तराजू लाओ और दो गौएं लाओ जो कि अभी प्रसूत हुई हों, एक को बछड़ा पैदा हुआ हो, और दूसरी को बछड़ी पैदा हुई हो, और उनका दूध दुह कर अलग २ तोलो उनका वजन करो, जब दूध तोला गया तो बछड़े वाली गाय का दूध वजनदार निकला और बछड़ी वाली गाय का दूध वजन में कमती निकला, तब डुण्डे असिराज ने कहा इसी प्रकार इन दोनों स्त्रियों का दूध निकाल कर तोलो और मापो, मापने पर वृद्धा की श्रुपा का दूध वजनदार निकला और उसकी कन्या का दूध कम वजन वाला निकला, तब लड़का उसकी श्रुपा को दिया गया, और राज्य दण्ड का भय देकर सबसे पूछा कि सत्य २ कहो यह लडका किसका है। तब उन्होंने राज्यदंड से भयभीत होकर सत्य २ कह दिया कि यह लड़का इसी का है। इस न्याय को देखकर राजा सहित सब सभासद् प्रसन्न हुए और राजा ने उसको अपना मित्र बनाया उसका पूर्व का वृत्तान्त सुनकर उसके भाइयों से युद्ध करके आधा राज्य उसे दिला दिया, इसलिये हे राजन्! आप भी डुण्डा असराज की तरह न्याय करके अपने यश को बढ़ाओ, तब राजा तोते की सहायता से बड़ा न्यायकारी हो गया और देश देशान्तरों में उसका नाम प्रसिद्ध हो

गया उधर तोतों के राजा की प्रजा उसको ढूंढती हुई उसी राज्य में पहुँच गई और अपने राजा को अपना दुःख सुनाया और कहा कि हम भूखे हैं, तब तोतों के राजा ने आज्ञा देदी कि अमुक बाग में से फल खाओ, वह उपवन फलों से पूर्ण था तथा उसका कितने मीलों तक विस्तार था और माली को आज्ञा दी कि इनको कुछ न कहना। तोतों ने सब बाग उजाड़ दिया परन्तु राजा उस तोते पर प्रसन्न ही रहा फिर तोते ने अपनी प्रजा दिखाकर कहा कि मैं इनका राजा हूँ मेरे बिना ये सब बहुत दुःखी हैं, इसलिये मुझे एक मास की छुट्टी देदो मैं अपने पुत्र को राज्य दे आऊँ, राजा का तोते से प्रेम था उसको छोड़ता नहीं था और कहता था कि अगर तुम चले जाओगे तो फिर यहां कैसे आ सकते हो, तब तोते ने कहा कि मैं अवश्य आऊँगा यदि मैं न आऊँ तो जितने भी संसार में पाप हैं वे सब मेरे को लगें, तब राजा ने विश्वास करके एक मास का अवकाश दिया।

तोते ने जाकर अपने राज्य का पूरा पूरा इन्तजाम कर अपने पुत्र को राजगद्दी देदी, लौटते समय उस तोते को छोड़ने के लिये बहुत से तोते साथ आये तो रास्ते में अमर फल देखे। तोतों का राजा, इस राजा और रानी के लिए दो फल ले आया और उनके आगे रखकर नमस्कार की

तथा अमर फल के गुण सुनाए राजा बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु तोते की अनुपस्थिति में राजा के कर्मचारियों ने राजा को तोते के विरुद्ध संस्कार डाल दिये थे कि तोता अपने राज्य से लौट कर आया है और यह विषफल लाया है। आपको खिला कर मार देगा इन संस्कारों से राजा ने यह फल उस दिन न खाए एक कमरे में रख छोड़, रात्रि के समय एक सर्प भी अमर फल की सुगन्ध आ गई, वह आकर एक फल का थोड़ा भाग खाकर उस में अपना विष छोड़ गया। दूसरे दिन तोते ने देखा कि एक फल खाया हुआ पड़ा है, तब राजा से कहा कि यह फल सर्प का खाया हुआ है। इसलिए यह किसी को न खिलाना जो खायगा वह मर जायगा। यदि दूसरा फल खाओगे तो अमर हो जाओगे, परन्तु राजा को कर्मचारियों के संस्कार थे इसलिये उसने फाँसीदण्ड के योग्य एक अपराधी को सर्प का खाया हुआ फल खिलाया, फल खाकर वह शीघ्र ही मर गया, तब राजा को पूर्ण-विश्वास हो गया कि यह अवश्य ही विषफल है राजा ने कुपित होकर दूसरे फल को बाग में फेंक दिया कुछ समय के बाद उसका अंकुर उत्पन्न हो गया फिर बड़ा वृक्ष बन गया, और अमर फल देने लग पड़ा तब राजा ने माली को कहा कि इस वृक्ष के फलों को सम्भाल कर रखना।

जब पाशदण्ड के योग्य कोई अपराधी आयगा तो उसको यह फल खिलाएंगे परन्तु और किसी को इस वृक्ष के पास न जाने देना, अन्त में जब वह फल पक गये तब तोता पुनः पुनः कहने लगा कि हे राजन् ! आप यह फल खालो और अपनी रानी को भी खिला दो अजर-अमर हो जाओगे, और शरीर पहिले से अधिक सुन्दर तथा हृष्ट-पुष्ट हो जायगा। परन्तु राजा तोते के वचनों का अनादर करता हुआ उलटा द्वेष करने लगा, उस शहर में एक साहूकार की स्त्री जो कि बहुत वृद्धा थी, जिसके सात पुत्र थे और सब परिवार वाले थे, माई को वृद्धावस्था में अतिसार लग गये, पुत्र सेवा करते करते थकित हो गये, तो माई का बहुत अनादर करने लगे और माई ने भी विचार किया कि इस जीवन से मरना ही भला है, पड़ोसियों से कहा कि किसी प्रकार प्राणों को त्याग दूं तो अच्छा है। उन्हों ने कहा कि राजा के बाग में विषफल है उसको खाकर मर जाओ, माई अच्छे २ कपड़े पहन कर बाग में आगई और दो फल खाकर ऊपर कपड़ा ओढ़ कर सो गई, इतने में माली आया और देखा कि एक आदमी विषफल खाकर मरा पड़ा है। उसी समय माली ने जाकर राजा को सूचना दी, तब राजा को बड़ा क्रोध आया और झटपट तोते को मंगवाया और नोकरों को आज्ञा दी कि

कि इसको मार दो और विषवृक्ष को उखाड़ कर मिट्टी सहित दरिया में बहा दो तोते ने राजा को बहुत समझाया कि मेरे को न मारो और न इस वृक्ष को काटो फिर पीछे पश्चाताप करोगे और दो-चार, दृष्टान्त सुनाये परन्तु राजा ने नहीं माना तोते को मरवा दिया और अमृतवृक्ष कटवा-कर नदी में बहा दिया, पीछे सोई हुई माई को जगाया तो उसका दिव्य और सुन्दर स्वरूप बन गया, जैसे स्वर्ग की अप्सरा का होता है।

राजा देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और पूछा कि तू नाग कन्या तो नहीं? उसने कहा मैं अमुक साहूकार की स्त्री हूँ। अत्यन्त बीमार थी, इसलिये मैं दुःखी होकर मरने के लिये यहाँ आई थी, दो विषफल खाये हैं परन्तु मरने की जगह मैं नीरोग और अति सुन्दरी बन गई हूँ। ये तो अमरफल थे विषफल न थे। राजा उसके वचन सुनकर रोने लगा और पश्चाताप करने लगा और दरिया में दूर तक तलाश करवाई कि कोई अमरफल मिल जाए तो मैं खालूँ परन्तु कोई फल नहीं मिला और तोते के मरने का तो बहुत ही अफसोस किया। "दिये अमर फल डार" जिस तरह राजा ने अमर फल फैंक कर पश्चाताप किया तैसे ही मनुष्य जन्म को व्यर्थ गवां कर मनुष्य पश्चाताप करता है।

दुर्लभ जनम पुन फल पाइओ बिरथा जात अविवेके ॥

हे जीव! बड़े पुण्य से मनुष्य जन्म पाया है, अविवेक से यह व्यर्थ ही जा रहा है फिर पश्चाताप करेगा; पश्चाताप में तोतों के राजा ने एक राजा को चार दृष्टान्त सुनाये थे, वह यहाँ भी प्रमाण देकर सुनाते हैं। तोते ने कहा—हे राजन्! अविचार से मुझ को न मरवाओ और अमरफल के वृक्ष को मत कटवायो नहीं तो पीछे पश्चाताप करोगे ॥

प्र.नं. २—मू.—यस्य जीवन्ति धर्मेण पुत्र मित्राणि बान्धवाः
सफलं जीवनं तस्य स्वात्मार्थे को न जीवति ॥१॥

भा०—जिसके धर्म से पुत्र मित्र बन्धु बहुत से जीते हैं उसी का जीवन सफल है, अपने लिये तो कौन नहीं जीता है ॥१॥

मू०—दानं वित्ता दृतं वाचः कीर्तिधर्मो तथायुषः।
परोपकरणं काया दसारात्सारमा हरेत् ॥२॥

भा०—धन से दान और उमर से धर्म यश, शरीर से परोपकार, ये असार में से सार को ग्रहण करके अर्थात् धन, उमर, शरीर ये अनित्य होने से असार ही हैं सो इनमें सार, जो दान, धर्म, उपकार इनको कर ॥२॥

मू०—यस्मिञ्जीवति जीवन्ति बहवः सतु जीवति।
काकोपि किन्न कुरुते चंच्वास्वोदर पूरणम् ॥३॥

भा०—जिसके जीवन में बहुत से जीव सुख से जीते हैं वही पुरुष जीता है, अपने पेट भरने को तो कौवा भी बहुत चालाक है ॥३॥

मू०—परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
विपदस्तैव नश्यन्ति संपदः स्युः पदे-पदे ॥४॥

भा०—जिन पुरुषों के हृदय में परोपकार सदा ही जागता है उनकी विपदा आप ही नाश हो जाती है, सुख संपदा नित्य बढ़ती है ॥४॥

मू०—आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परंपरोपकारार्थं यो जीवति स जीवति ॥५॥

भा०—अपने लिये इस संसार में कौन पुरुष नहीं जीता विशेष कर जो परोपकार के लिए जीता है, वह ही जीता है ॥५॥

मू०—दधीचिनापुरागीतः श्लोकश्रश्रूयते भुवि।
सर्व धर्म मयः सारः सर्व धर्मज्ञ सम्मतः ॥६॥

भा०—सर्व धर्म का सार सर्व धर्मात्मा जनों के सम्मत दधीची ऋषि की पवित्र कथा पूर्व सुनी जाती है, संसार में जोकि दधीची ने अपना शरीर भी परोपकार में दे दिया था ॥६॥

कथा नं० २—जैसे एक राजा ने अपने हितकारी, श्येन "बाज" को मार कर पश्चाताप किया था, एक

राजा ने एक श्येन पाल रखा था, वह श्येन राजा की प्रत्येक समय रक्षा करता था। राजा भी जानता था कि श्येन मेरा रक्षक है, एक दिन वह राजा श्येन को लेकर शिकार खेलने गया तो बड़े सघन वन में चला गया, राजा को बड़ी प्यास लगी, और प्राण निकलने लगे जल कहीं पर मिला नहीं, फिर राजा ने देखा कि पहाड़ से एक-एक बूंद जल टपक रही है। राजा ने उस बूंद के नीचे पात्र रख दिया। जब बूंदों द्वारा वह पात्र भर गया और राजा पीने लगा तब बाज ने झड़प मार कर नीचे गिरा दिया, तब राजा को क्रोध आया परन्तु विचार से क्रोध को शान्त किया, और पात्र फिर बूंदों के नीचे रख दिया, जब दूसरी बार पात्र भर गया तो बाज ने फिर गिरा दिया, राजा को बड़ा क्रोध आया परन्तु विचार के बल से क्रोध शान्त किया, तीसरी बार फिर बूंदों के नीचे पात्र रखा पात्र भर जाने पर फिर बाज ने नीचे गिरा दिया, तब राजा को क्रोध आया और रोक न सका तलवार निकाल कर उस बाज को मार दिया, फिर राजा ने सोचा कि क्या कारण था क्यों इस जल को पीने नहीं देता था, तब क्या देखता है कि पहाड़ पर एक विषधर सर्प बैठा है उसके मुख से यह जल की बूंदें निकल रही हैं उसी का ही यह जल था—तब राजा

को बाज मारने का बड़ा पश्चाताप लगा, इसी प्रकार मनुष्य शरीर को व्यर्थ खोकर पश्चाताप होता है। दूसरी कथा—एक धनी ने एक कुत्ता पाल रखा था वह बड़ा समझ वाला आज्ञा पालने वाला और हितकारी था रात्रि को चोरों डाकुओं से—घर की रक्षा किया करता था, कुछ समय के बाद धनी निर्धन हो गया, दूसरे किसी सेठ ने उससे कर्जा लेना था, कर्जे में एक वर्ष के लिये उसने अपना कुत्ता दे दिया कि यह तुम्हारे जान-माल की रात्रि को चोरों तथा डाकुओं से रक्षा करेगा, और कुत्ते को समझा दिया कि एक वर्ष के लिये यही सेठ तेरा स्वामी है, इस लिए तू ईमानदारी से सेवा करना, कुत्ता सङ्केत समझकर सेठ के साथ चला गया और उसके माल की रक्षा करने लगा, एक दिन रात्रि को सेठ के घर पर बहुत चोर आगये कुत्ता उनको देख कर चुप रहा जब चोर चोरी का सब धन माल असबाब लेकर चले तब कुत्ता उनके पीछे-पीछे चल दिया, चोरों ने कहीं जङ्गल में गड़ा खोद कर माल को दबा दिया, कुत्ता अच्छी तरह देख कर और कोई चिन्ह करके अपने स्वामी के पास आ गया, और उसको साथ लेकर वह जगह खोद कर सारा माल निकाल दिया, तब वह सेठ कुत्ते पर बड़ा प्रसन्न हुआ, और कुत्ते को कहा कि बस तुमने मेरी सेवा पूरी करली है, अब तू

अपने मालिक के पास चला जा एक चिट्ठी लिख कर उसके गले में बांध दी। जब कुत्ता अपने मालिक के पास जा रहा था तो रास्ते में उसका पहला मालिक मिल गया, उसने समझा कि कुत्ता चोरी से भाग कर आया है, इसलिये उसने कुत्ते को गोली द्वारा दूर से ही मार दिया-फिर उसके पास आया देखा तो इसके गले में एक चिट्ठी बाँधी हुई है, उसको खोलकर पढ़ा तो उसमें लिखा था कि इस कुत्ते ने चोरों का चुराया हुआ हमारा लाखों रुपयों का धन ढूँढकर वापस दिलाया है इसलिए हम इसकी सेवा से बहुत प्रसन्न हैं आपके पास जाने की आज्ञा देदी है, यह पढ़ कर कुत्ते के मारने का बहुत परचाताप करने लगा, और उस कुत्ते की कराची से थोड़ी दूर पर पहाड़ के पास यादगार के लिये कब्र बनादी, जो अब तक कायम है, कुत्ता मारने वाले मनुष्य की तरह ये मनुष्य भी अपने जन्म को विषयों विकारों में खोकर परचाताप करते हैं।

एक माई ने अपने पुत्र के दिल बहलाने के लिए नेउले का बचा पाल रखा था, जो कि माई के पुत्र की प्रतिचण रचा भी करता था, एक दिन माई अपने पुत्र को हिंडोले में सुलाकर आप-जल भरने को गई, इतने में विषधर सर्प बालक को काटने लगा तो नेउले ने सर्प को मार दिया, इतने में माई भी जलकी

गागर लेकर आगई और नेउला भी अपनी वीरता दिखलाने के लिये, कि मैंने सर्प मार दिया है, माई के सन्मुख आया, माई ने समझा कि इसने मेरे बच्चे को मार दिया है, इसलिये इसका मुख रुधिर से भरा है, क्रोध में आकर नेउले को मार दिया, फिर अपने पुत्र के पास गई तो हिंडोले में झूलता हुआ प्रसन्न वदन देखा. और सांप के टुकड़े पड़े देखे तब उस माई ने समझा कि यह सर्प बालक को काटने आया था इस नेउले ने मेरे पुत्र की जान बचाई है। तब उस माई ने नेउले मारने का बड़ा पश्चाताप किया इसी प्रकार मनुष्य शरीर को भी निष्फल खोकर पीछे से पश्चाताप करना पड़ता है।

तोते ने सुनाया कि हल चलाते हुए एक जमींदार को खेत में से लालों की भरी हुई एक गागर मिल गई, उसने उन लालों को गोल २ पत्थर जानकर चिड़ियों से बाजरे के खेत की रक्षार्थ गिडपाल (गोफिया) में डालकर जोर से फैंकता रहा, आगे एक नदी बहती थी लाल उसमें गिरते गए जब सब लाल समाप्त होगए और एक लाल शेष रह गया, तब उसकी स्त्री रोटी लेकर आगई तो उसने वह पत्थर दिखाया कि देखो ये कैसा चमकता पत्थर है, उसकी स्त्री बड़ी चतुर थी उसने समझ लिया कि यह तो लाल है, एक साहूकार के पास बेचने

को ले गई, उसने सौ रुपया कहा फिर तीसरे ने दस-हजार मूल्य कहा, अन्त में एक जौहरी बच्चे के पास गई, उसने कहा दस मजदूरों को लगा कर जितना धन प्रातःकाल तक लेजा सको उतना तुम्हारा। परन्तु यह लाल हमारे को देदो, जमींदार की स्त्री ने वह लाल दे दिया और रुपयों सुवर्ण मुद्रिकाओं से अपना सारा मकान पूर्ण कर लिया, और अच्छे अच्छे बने बनाए बंगले खरीद लिए, उसका पति खेत की रक्षार्थ महीनों बाहर ही रहता था, उसको बड़ी धूम धाम से घर में ले आने के लिए गई तब उसके पति ने पूछा कि यह किसकी बग्घी है तब उसने कहा कि उस एक पत्थर के बेचने से इतने धन की प्राप्ति हुई है। तब उसने कहा कि मेरे पास तो इन पत्थरों की देग भरी हुई थी मैंने ऐसी अमूल्य वस्तु चिड़ियों को उड़ाते उड़ाते नदी में व्यर्थ फेंक दी ऐसे कहकर बड़ा पश्चाताप करने लगा, इसी प्रकार जीव को मनुष्य शरीर में अमूल्य अमूल्य लालरूप श्वास मिले हुए हैं, इनका महत्व न जानकर विषय विकार रूप नदी में फेंकता जा रहा है यदि एक श्वास भी दत्तचित्त होकर परमेश्वर के अर्थ लगा दे तो सबसे उत्कृष्ट आनन्द स्वरूप मुक्ति को प्राप्त हो जाता है।

अजामल को अन्तकाल में नारायण सुधि आई ।
जां गति को जोगीसुर बांछत सो गति छिन महि पाई ॥

इस प्रकार एक श्वास का महात्म्य देखकर मनुष्य पश्चात्ताप करता है कि मैंने सब अवस्था व्यर्थ ही गवांदी, "दिए अमर फल डार" यह रज्जबजी के छप्पय की पहली पंक्ति है, इसका अर्थ समाप्त करके अब—"तजे पारस चिंतामणि" इस पंक्ति का अर्थ कहते हैं ।

प्र. नं. ३—मू०—परोपकारः कर्तव्यः प्राणैः कण्ठ गतैरपि ।
परोपकारजं पुण्यं नस्यात् क्रतु शतैरपि ॥१॥

भा.—कण्ठ में प्राण भी आजावें तब भी परोपकार करना योग्य है, परोपकार जैसा पुण्य सैकड़ों यज्ञों से भी नहीं होता ।१।

मू०—रविश्चन्द्रो घना वृक्षाः नदी गावश्च सज्जनाः ।
एते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः ॥२॥

भा०—सूर्य, चन्द्रमा, बादल, वृक्ष, नदी, गौ, साधु, ये परमात्मा ने आदि युगों से परोपकार के लिए ही रचे हैं ॥२॥

मू०—तृणं चाहं वरंमन्ये नरादनुपकारिणः ।
घासोभूत्वा पशून्पाति भीरून्पाति रणांगणे ॥३॥

भा०—जो पुरुष परोपकार नहीं करता उलटा अपकार करता है उससे तो हम घास के पूलों को अच्छा मानते हैं, क्योंकि घास से तो पशुओं की रक्षा होती है और संग्राम में भीरु पुरुष पीछे छिप के बच रहते हैं ॥३॥

मू०–परोपकार शून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम् ।
धन्यास्ते पशवो येषा चर्माण्युपकरिष्यति ॥४॥

भा०–परोपकार से रहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार है, उससे तो पशु भी धन्य है जिनका चाम भी परोपकार में लग जाता है ॥४॥

मू०–चलं चित्तं चलं चित्तं चले जीवित यौवने।
चला चल मिद सर्वम् कीर्तिर्यस्य स जीवति ॥५॥

भा०–धन, शरीर, आयु और जवानी ये सब जो कुछ है, ये सब ही जाने वाले है । एक यश ही पीछे रहता है जिसका यश है, वे ही जीता है ॥५॥

पशु मिले चगयांईआं खर खारह अमृत दे।
नाम विहूणे आदमी ध्रगजीवन कर्म करे ॥

कथा न. ३–जैसे एक मूढ पुरुष ने पारस को पाकर उसका महत्व न जानकर पश्चाताप किया था, गगा के किनारे पर से एक मूढ़ को पारस मिल गया, परन्तु उसको यह पता नहीं था कि यह पारस है, एक जौहरी बच्चे ने उसके हाथ में पारस देख कर कहा कि यह पत्थर बेचना है. उसने कहा–हां–कितने पैसे लेगा, उसने कहा दस रुपये लूँगा, उसने झट बीस रुपये दे दिया, और वह पारस-पत्थर ले लिया, और एक दम दस-बीस मन लोहा मंगा-कर उस पारस के स्पर्श से स्वर्ण बनाकर देश-देशान्तरों

में भेजना शुरू किया, तब उस मूर्ख को पता लगा कि वह पत्थर तो पारस था, मेरे हाथ में भी आगया था, परन्तु अविवेक से कौड़िओं के मोल में खो दिया, ऐसा कहता हुआ पश्चात्ताप करने लगा, इसी प्रकार जीव मनुष्य शरीर रूप पारस को पाकर ईश्वर भक्ति के बिना विषयों में खोकर पश्चाताप करते हैं:–इसी तरह एक लकड़हारे को जंगल में से चिन्तामणि मिल गई थी, उसने चमकीला पत्थर जान कर उठा ली, परन्तु उसको यह पता नहीं था कि यह चिन्तामणि है, रास्ते में चलते हुए ने चिंतन किया कि धूप बहुत है, कहीं सघन वृक्ष मिले तो उसकी छाया में आराम कर लूं, चिन्तामणि के प्रभाव से कुछ दूरी पर एक वृक्ष बन गया, फिर उसकी छाया में बैठ कर चिंतन करने लगा, कि यहां बहुत सुन्दर खुला मैदान है, इस में बंगला बन जाये तो अच्छा है, इतने में एक बंगला बन गया और आकाश वाणी हुई कि ये सब तेरे लिये हैं, फिर उसने कहा कि यहाँ शहर बन जाय तो अच्छा है, तो उसी वक्त गन्धर्व नगर की तरह बड़ा भारी सुन्दर शहर बस गया। फिर उसने विचार किया कि अपने पितरों के निमित्त श्राद्धों में ब्राह्मणों को भोजन खिलाना चाहिए, इतने में बहुत वेदपाठी ब्राह्मण आगये, और भोजन बन कर तैयार हो गया,

भण्डारा वर्तने लगा, कौवे बहुत इकट्ठे हो कॉव २ करने लगे तब उसने कौओं को हटाने के लिए जेब से चिन्तामणि निकाल कर बल पूर्वक फेंक दी तो उसी क्षण में वे—पुरी, ब्राह्मण भोजन, इत्यादि सब ठाठ बाट नष्ट हो गया जैसे प्रथम लकड़ियों का भार सिर पर था और कड़ी धूप थी वैसे ही फिर हो गया आकाश वाणी हुई कि यह चिन्तामणि का ही प्रभाव था, तब वह लकड़हारा उसको इधर उधर ढूँढने लगा परन्तु वह नहीं मिली और पश्चाताप करता हुआ लकड़ियों को लेकर चल पड़ा, इसी तरह मनुष्य शरीर रूप चिन्तामणि है—इस में भोग तथा मोक्ष दोनों मिल सकते हैं। जैसे अन्तकाल में जो भी चिन्तन करता है, वही उसको प्राप्त हो जाता है, इसलिए यह चिन्तामणि है। पुरुष रतन गुण गण को सदन पुनः पौरुष को आयतन परम प्रवीण है। भोग मोक्ष को भंडार सारी धरा को सींगार जड़ा जड़ को सरदार चारु लसलीन है।

हरि मंदर एह शरीर है गिआनि रतन प्रगट होई।
मनमुख मूल न जाणनी माणसि हरि मंदिर न होई॥

इसलिये मनुष्य शरीर को गवां कर यह जीव पश्चाताप करता है। ॥ प्रभाति म. ३-१३४६ ॥

मूल—कामधेनु तरु कल्प काट आवे सो कहां बन।

जैसे एक पुरुष को बन में कामधेनु गौ मिल गई,

वह उसको घर में ले आया परन्तु उसको यह पहचान नहीं थी कि यह कामधेनु है और एक निर्धन ब्राह्मण शास्त्र में लिखे हुए कामधेनु के लक्षण जानता था—उसने पहचान ली कि यह कामधेनु है, तो ब्राह्मण ने वह मोल लेली और उसकी सेवा करके अनेक प्रकार के मनोवांछित पदार्थ लेकर बड़ा धनाढ्य हो गया और राजाओं से पूज्य हो गया, जब उस मूढ़ को पता चला तब पश्चाताप करने लगा, ऐसे ही मनुष्य जन्म कामधेनु के तुल्य है इसको व्यर्थ गवांकर पश्चाताप करते हैं। एक मूढ़ लुहार ने कल्प वृक्ष और चन्दन के वन को काट कर फिर पश्चाताप किया था, एक मूर्ख लुहार वन में लकड़ियां काट कर कोयले बनाता था, उनको बेचकर अपना निर्वाह करता था और लकड़ियां लेने जाते समय अपने खाने के लिये भोजन तथा पीने के लिये जल साथ में ले जाता था एक दिन शिकार खेलता हुआ एक राजा वहां आ गया, वह भूख तथा प्यास से व्याकुल था उस लोहार ने राजा को सन्मान पूर्वक बैठाया अपना रूखा सूखा भोजन खिला कर पानी पिलाया जिससे राजा के प्राण बच गये तब राजा ने प्रसन्न होकर अपना सुरक्षित चन्दन का बाग जिसमें एक कल्प वृक्ष भी था उस लोहार को दे दिया और समझा दिया कि ये चन्दन के वृक्ष हैं और यह

कल्प वृक्ष है, तुमने इनसे लाभ उठाना परन्तु उस मूर्ख ने समझा नहीं प्रथम उस कल्प वृक्ष को काट कर अपने परशु आदि हथियारों के दस्ते बनाये और फिर चन्दन के वृक्षों को काट कर कोयले बनाकर बाजार में बेच देता था उससे अपनी आजीविका कमाता था तब राजा उस पर बड़ा नाराज हुआ और कहा अरे मूर्ख ? यह कल्प वृक्ष था जिसको काटकर तुमने हथियारों के दस्ते बना लिये हैं इसके नीचे बैठ कर जिस वस्तु की तू कल्पना करता वह तेरे को प्राप्त हो जाती। और जिसके तूने कोयले बनाकर बेच डाले हैं वह चन्दन का बाग था जो कि तोलों के भाव बाजार में बिकता है, जो कि एक २ वृक्ष हजारों रुपयों का था इस प्रकार राजा के वचन सुनकर उस मूर्ख लोहार ने जैसे पश्चाताप किया उसी तरह यह जीव मनुष्य जन्म को व्यर्थ खोकर पश्चाताप करता है।

मूल—गुरु संजीवन छाड पाड पौरस सिर काटहि।

अर्थ—जैसे एक वैश्य ने अपने गुरु से संजीवनी विद्या न लेकर पौरस मूर्ति लेली, फिर उसी मूर्ति का शिर काट कर बड़ा पश्चाताप किया।

एक महात्मा गंगा किनारे रहते थे जो कि बड़े वीतराग विद्वान् और ब्रह्मनिष्ठ थे, एक वैश्य ने महात्माजी को सेवा से प्रसन्न किया महात्माजी ने वैश्य से कहा कि

मेरे पास एक संजीवनी विद्या है जो कि मृतक शरीर को जीवित कर देती है और दूसरी पौरुष मूर्ति है जो कि सुवर्ण की बनी हुई है, उसके अंग रात्रि को पूजा करके काट दो तो प्रातःकाल वैसे ही अंग फिर निकल आते हैं, इन दोनों में से एक अपनी इच्छानुसार लेले, मूढ़ बुद्धि वैश्य ने संजीवनी विद्या को छोड़ कर लालचवश सुवर्ण मय पौरुष की मूर्ति लेली, और उसके प्रति रात्रि को अंग काट काट कर बेच देता था थोड़े दिनों में ही बड़ा धनाढ्य हो गया, एक रात्रि उसने सोचा कि इस मूर्ति के सिर मे सुवर्ण अधिक है, इसको भी काट लें गुरु के वचन भूल गया और मूर्ति का सिर काट दिया वह लुप्त हो गई, तब वह वैश्य पश्चाताप करने लगा।

मूल–ज्ञान रसायन त्याग वीर बहुते वित वारद।

अर्थ–चार गुरु भाईयो ने गुरू जी से रसायन विद्या न लेकर अधिक धन वाली चार वस्तुएं ले ली और रास्ते में बांटने लगे तो विवाद हो गया, झगड़े का न्याय कराते हुए चारों वस्तुओं को खोकर पश्चाताप करने लगे, नर्मदा के किनारे पर एक सिद्ध पुरुष रहते थे, जिन्हों के पास आत्मज्ञान रूप रसायन थी, तथा चार और वस्तुयें भी मन्त्र बल से सिद्ध कर रक्खी थी, एक गोदड़ी थी जो वस्तु उससे मांगते थे वह उसमें से निकल आती थी,

दूसरी उसके पास छोटी सी देग थी, जिस में से आठो-पहर छत्तीस प्रकार के भोजन निकलते थे और कभी खाली नहीं होती थी। तीसरी एक चरण पादुकाओं की जोड़ी थी, उस पर पांव रखते ही जहां चाहो वहां पहुँचा देती थी और चौथा उनके पास एक डंडा था—जो कि आज्ञा करते ही शत्रुओं की सेना को मार भगा देता था, उस महात्मा के चार चेले थे उन्हों ने सेवा करके अपने गुरु को प्रसन्न किया तब गुरु जी ने बोला तुम लोग या तो आत्मज्ञान लेलो नहीं तो यह गोदड़ी आदि चारों चीजें हैं उनको आपस में बाट लो, तब चेलों ने आत्मज्ञान न लेकर वह चारों चीजें लेलीं, अपने घर को चल पड़े रास्ते में उन चीजों को बाटने लगे तो विवाद हो गया, इतने में उनका झगड़ा सुनकर एक चतुर वैश्य वहाँ आगया। उन्होंने उससे प्रार्थना की कि हम चारों को यथायोग्य चारों चीजें बाट दो वैश्य ने कहा कि मैं चारों दिशाओं में चार तीर फेंकता हूँ जो दौड़ कर पहले तीर को ले आएगा उसको उत्तम वस्तु मिलेगी, उन्होंने यह बात स्वीकार करली तो बनिये ने चारों दिशाओं में चार तीर फेंके जब वह तीर लेने चले गये तब वैश्य ने चरण पादुकाओं पर सवार होकर दूसरी तीनों चीजें उठाकर अपने घर जाने का संकल्प किया—तब झट सैकड़ों कोस

दूर स्थित अपने घर में पहुंच गया और वे चारों गुरु-भाई आकर देखने लगे, न वे चारों वस्तुएँ हैं और न वह चतुर वैश्य ही है। तब वे चारों बहुत पश्चाताप करने लगे, इसी प्रकार चार अवस्थाओं वाले पुरुष उत्तम शरीर को खो कर पश्चाताप करते हैं।

प्र. नं. ४—मू०—सज्जनाः परोपकारं शूरा शस्त्रं धनं कृपणः।
कुलवत्यो मन्दाक्षम् प्राणात्ययेऽप्यमुञ्चन्ति ॥१॥

भा०—साधुजन परोपकार को, शूरवीर अपने हाथ से शस्त्र को, कृपण (सुम) अपने धन को, पतिव्रता स्त्री अपने व्रत को मरने तक नहीं छोड़ते ॥१॥

मू०—पिबन्तिनद्यः स्वयमेवनाम्भः स्वयंन
खादन्ति फलानिवृक्षाः।
नादन्ति सस्यं खलु वारि वाहाः परोपकाराय-
सतांविभूतयः ॥२॥

भा०—नदी अपने जल को आप नहीं पीती, वृक्ष अपने फल को आप नहीं खाते, औरों के लिये ही हैं, बादल खेती को आप नहीं खाते औरों के लिए ही पालते हैं, इसी प्रकार मनुष्यों की विभूति भी परोपकार के लिए ही होती है ॥२॥

कर्णस्त्वचं शिबीर मांसं जीवं जीमुत वाहनः।
ददौ दधीची रस्थीनी किमदेयं महात्मनाम ॥महाभारत॥

श्लो.—श्रोत्रं श्रुते नैवतु कुंडलेन दानेन पाणिर्नतु कंकणेन ।
विभातिकायः खलु सज्जनानां परोपकारेण न चंदनेन ॥४॥

भा०—कान जैसे वेद के सुनने से शोभा देते हैं, वैसे कुंडलों से नहीं, हाथ जैसे दान से शोभा पाता है, वैसा कंकणों से नहीं, शरीर भी सज्जनों का चन्दन के लेप या शृङ्गार से ऐसा नहीं सजता जैसा परोपकार से सजता है ॥४॥

मू०—अचिन्तरूपो भगवान्निरञ्जनो-
विश्वंभरो ज्योतिमयश्चिदात्मा ।
न शोधितो येन हृदिक्षणंनो वृथागतं-
तस्य नरस्य जीवितम् ॥५॥

भा०—जिसका स्वरूप विचार से परे सूक्ष्म है ऐश्वर्यवान है, अविद्या से रहित ज्ञान प्रकाश रूप है, ऐसे परमेश्वर को जिसने अपने हृदय में ध्यान द्वारा नहीं विचारा उसका जीवन वृथा है ॥५॥

मूल—चक्र चक्वै ते गया छाप सुलेमा खोईए ।

कथा नं० ४—अजमेर शहर में बकरियां चराने वाला एक अयाली रहता था, वह जंगलों तथा पहाड़ों में बकरियां चराया करता था, उस पहाड़ में एक गुफा थी, जिस में एक महात्मा रहता था, ईश्वर की प्रेरणा से उन में से एक बकरी प्रतिदिन महात्मा की गुफा में आती थी

और महात्माजी उसका दूध दुह कर पी लेते थे, फिर वह बकरी उन बकरियों में आकर मिल जाती थी। इस प्रकार बहुत दिन व्यतीत हो गये, परन्तु गडरियें को कुछ पता नहीं लगा कि इसका दूध कौन निकाल लेता है, एक दिन वह बकरी के पीछे २ ही घूमता रहा तो देखा कि बकरी महात्मा की गुफा में जाती है, वह गडरिया भी बकरी के पीछे २ उसी गुफा में महात्मा जी के पास पहुँच गया, और नमस्कार करके बड़े प्रेम से बकरी का दूध निकाल कर पिलाया, महात्माजी उसकी श्रद्धा भक्ति पर बड़े प्रसन्न हो गये। एक चक्र उसको दिया और कहा कि तू इस चक्र के प्रभाव से चक्रवर्ती राजा बनेगा, परन्तु प्रतिज्ञा यह है कि इस चक्र की वार्ता किसी को सुनाना नहीं, यदि सुनाएगा तो चक्र लोप हो जायगा और तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा, तो गडरियें ने चक्र के प्रभाव से अजमेर के राजा के साथ युद्ध करके विजय पाली, आप राजा बन गया, और अपना नाम अजयपाल प्रसिद्ध किया, चक्र के प्रभाव से सब देशान्तरीय राजा उस से डरते थे, उसका तेज पृथवी मण्डल में फैल गया था और उधर रावण भी बड़ा प्रतापी राजा था, उसने अपनी स्त्री मन्दोदरी से कहा कि मेरे तुल्य बलवान त्रिलोकी में कोई राजा नहीं, अब मैं समुद्र से तलवार के जोर से रास्ता

लूँगा, इसको अपनी आज्ञा में चलाऊँगा। मन्दोदरी ने कहा कि आप से भी अधिक बलवान् बहुत राजे हैं। जिन का गुप्त चक्र चल रहा है, मन्दोदरी के कहने पर भी रावण ने नहीं माना, तब उस समय नरचटिक (चिडा) अपनी स्त्री चिडिया से काम चेष्टा कर रहा था, मन्दोदरी ने रावण से कहा कि आप अपनी आज्ञा से अथवा अपनी शपथ से इनको काम चेष्टा से रोको, यदि यह आपकी आज्ञा मानकर उस काम चेष्टा को छोड़ देगा तो समुद्र भी आपकी आज्ञा मान लेगा, रावण ने क्रोध में आकर उस चटक को आज्ञा करी तथा अपनी शपथ दी परन्तु वह न रुका तब मन्दोदरी ने अजयपाल की शपथ दी तब भी वह काम चेष्टा से न रुका तो उसी क्षण में आकाश से एक चक्र गिरा और चटक का शिर काटकर चला गया, तब मन्दोदरी ने रावण को कहा कि यदि आप अपना हठ अजयपाल की शपथ पर भी न छोडोगे तो आपका भी शिर कट जाएगा, अजयपाल के चक्र से सब जीव डरते हैं इस प्रकार अजयपाल का चक्र के प्रभाव से बहुत दिनों तक प्रताप बना रहा। एक दिन इसकी रानी ने अपने पति से चक्र मिलने का कारण पूछा वह राजा महात्मा के वचन भूलकर रानी को चक्र मिलने का सब वृतान्त सुनाता गया जब सारा वृतान्त सुना चुका तो चक्र लुप्त हो गया,

तब राजा अजयपाल बहुत पश्चाताप करने लगा और इसी शोक से मर गया। इसी तरह मनुष्यजन्म को खोकर अज्ञानी जीव पश्चाताप करता है।

मूल-"छाप सुलेमा खोई ऐ"

मुसलमानों का एक हजरत सुलेमान बड़ा शक्ति वाला राजा हुआ है, उसके हाथ में मन्त्रों से सिद्ध की हुई एक अंगूठी थी जिसके प्रभाव से वह राज्य सुख भोगता था और परियों से अपनी पालकी उठवा कर सब जगह विचरता था। एक समय समुद्र के किनारे परियों की पालकी में बैठकर शहर का भ्रमण कर रहा था, घूमते हुए ने तो एक भींवर की कन्या देखी जो बड़ी कुरुपा काली थी और उसके शरीर से दुर्गन्धी आती थी, सुलेमान उसको देखकर अभिमान से कहने लगा कि या खुदा ऐसी कुरुपा तूने क्यों पैदा की है, जिसके शरीर से अति दुर्गन्धि आ रही है, इसके शरीर से मिलाप कोई पशु ही करेगा, इतना कह कर आगे चल पड़ा, एक नदी के किनारे जल पीने का संकल्प किया तो परियों ने पालकी उतार दी, सुलेमान नीचे उतर कर नदी में हाथ धोने लगा तो उसकी वह मन्त्रित अंगूठी नदी में गिर गई और मछली ने निगल ली और पानी में दूर चली गई, अंगूठी के चले जाने पर वे परियें भी लुप्त हो गई, सुलेमान शाम तक नदी में

अंगूठी को ढूँढता रहा परन्तु मिली ही नहीं. सर्दी के दिन थे इस लिए उसको सर्दी ने व्याकुल करा, तब वह शहर में गया । और एक भटियारी की भट्ठी पर बैठकर अग्नि तापने लगा और गिरे हुए दाने बीनकर खाने लगा भठयारी ने उसको गरीब कङ्गाल समझकर अग्नि जलाने की आज्ञा दी, तब वह उसकी आज्ञानुसार अग्नि जलाने लग पड़ा, जब भठियारी घर जाने लगी तब सुलेमान ने प्रार्थना की कि सर्दी के दिन हैं मुझे रहने के लिये कोई स्थान दो । तब भठियारी ने उसको अपने घर लेजा कर कुछ भोजन खिलाया भोजन पाकर भठियारी का उपकार मानकर उसको धन्यवाद देने लगा भठियारी ने उसको सुपात्र देखकर उस अपनी कुरूपा कन्या के साथ इसकी शादी कर दी, शादी हो जाने के पीछे उसको वह बात याद आगई कि मैंने कहा था कि इसके साथ कोई पशु ही शादी करेगा, खुदा ने मेरा अभिमान तोड़ने के लिये मेरे साथ इसकी शादी करदी तब गरीबी दशा में उसके साथ रहता रहा । जब कुछ समय व्यतीत हो गया तब एक झींवर के जाल में जिसने अंगूठी निगली थी वही मछली फंस गई और झींवर से सुलेमान की स्त्री ने मोल लेली और उसका पेट चीरने पर बीच से अंगूठी निकली उसको देखकर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने पति को दिखाई.

सुलेमान जिसके लिए रात दिन चिन्ता ग्रसित रहता था। वह अगूठी को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ, और अपनी स्त्री को कहा कि यह अंगूठी ददो, म तुझे हर समय प्रसन्न रखूगा, इस प्रतिज्ञा पर उसने अगूठी देदी, तो सुलेमान ने अगूठी मन्त्रित करके अगूली में पहन ली तब वे ही परिया पालकी लेकर आगई उस पर अपनी सुरूपा स्त्री को बिठला कर दिव्य भोगों को भोगने लगा जैसे अंगूठी खोकर सुलेमान ने पश्चाताप किया था। इसी प्रकार —

मूल—"मानुषा देही हरि विमुख रज्जब ह्वान सु रोइये"

अर्थ—रज्जबदास जी कहते हैं ऐसे उत्तम मनुष्य शरीर को पाकर जो पुरुष हरि से विमुख रहते हैं वह अन्त में दुःखी होते हैं और पश्चाताप करते हैं, इस लिये मनुष्य को आत्मा अनात्मा का विचार करना चाहिये तथा परिक्षा करनी चाहिये जैसे हंस दूध की परिक्षा करता है।

अरस—मति मराल मधुरिखि नारिबन रायसु आनह।
देस कबूतर काम पख पत्री पर आनह॥

अर्थ—हंस की बुद्धि देखो दूध से पानी को अलग कर देता है और शहद की मक्खी की बुद्धि देखो कि सम्पूर्ण वनस्पतियों में से "सुवारि" मधु "आनह" निकाल लेती है, तथा कबूतर उत्तम पक्षी का काम देखो जो कि पंखो से उड़कर अपने स्वामी से पत्र लेकर उसके घर

पहुँचा देता है। ऐसे ही मनुष्य को उत्तम शरीर की परीक्षा करनी चाहिये।

मूल—चंदन जाय पनग, स्वाति ऋतु सीप सु लोडे।
अजा न बैठे कूप, रुख रैणी कर जोडे॥

अर्थ—जैसे सर्प बिना देखे ही अपनी बुद्धि से चन्दन के पास पहुच जाता है और सीपी जैसे अनन्त बूंदों को त्याग कर स्वाति बूंद को चाहती है। बकरी इतनी बुद्धि रखती है कि दबे हुए कूप पर नहीं बैठती जैसे रात्रि समय में सीरस का वृक्ष हाथ जोड़ कर अपने स्वामी ईश्वर के आगे प्रार्थना करता है।

मूल—आदम सनाश परख मनुष्य, स्वान व्रत दिन ठानिया।
रज्जब मानुप देह धिग, आतम राम न जानिया॥

अर्थ—"आदम सनाश" एक पक्षी है उसका पक्षु मनुष्यादि जाती का निर्णय करता है, अर्थात् नेत्रों के आगे रखकर देखने से मनुष्य की प्रकृति प्रकट कर देता है और कुत्ता रविवार एकादशी का व्रत रखता है, उस दिन खाता पीता नहीं, श्री रज्जब जी कहते हैं केवल उन मनुष्यों को ही धिक्कार है जो आत्मस्वरूप ब्रह्म को नहीं पहिचानते॥

आदम सनाश पक्षी का दृष्टान्तः—एक महात्मा श्री गंगाजी के किनारे पर निवास करते थे, उन्हों ने अपने

एक शिष्य को योग्य पुरुष बना दिया था. एक दिन शिष्य ने अपने गुरुजी से प्रार्थना की कि हे भगवन्! मेरे को कोई शिक्षा दो तब गुरुजी ने कहा मैंने तुमको मनुष्य बना दिया है। इससे बढ़ कर और क्या शिक्षा चाहता है। शिष्य ने कहा कि महाराज! मनुष्य तो मैं पहले ही हूँ, आपने मेरे को क्या मनुष्य बनाया है तब उसके गुरु ने कहा कि इस बात का उत्तर अमुक पहाड़ पर रहने वाला आदम सनाश नाम वाला पक्षी देगा, तू उस के पास चला जा, गुरुजी ने उस पक्षी की सब पहचान बतादी। तब उस शिष्य ने पहाड़ पर जाकर आदम सनाश पक्षी को देख अपने गुरु की सब कथा उसको सुनाई तब उस पक्षी ने शिष्य को अपना पंख दिया और कहा कि इसको अपने नेत्रों के आगे रखकर दर्पण की तरह देखले, जब उसने देखा तो अपने आपको मनुष्य ही देखा, फिर उसको कहा कि इस पङ्ख को ले जाओ राज-सभा में जाकर देखना जब वह राज सभा में ले आया तो राजा से लेकर सब प्रजा के लोग पशुरूप में दीखने लगे, केवल एक ब्रह्मनिष्ठ जोकि राजगुरू था उसको मनुष्य देखा, और लोगों से भी सुना कि केवल एक वही महात्मा है और सब रिशवत के लेने वाले पशु हैं, इस प्रकार पक्षियों में भी ऐसी परीक्षा करने वाली बुद्धि होती है।

प्र. नं. ५–मू–समाधिहंत्री जन मोहार्यन्त्री-
धर्मकुमन्त्री कपटस्यतन्त्री।
सत्कर्महन्त्री कलिताचयेन वृथागतं
तस्य नरस्य जीवितम् ॥१॥

भा०–समाधि में विघ्न करने वाली, पुरुषों को मोहने वाली, धर्म में कुमन्त्री, कपटी के यन्त्र, सत्कर्म का नाश करने वाली, ऐसे अवगुणों के पात्र स्त्री में जो पुरुष फंसा रहता है, ईश्वर से विमुख आयु खो रहा है, उसका जीवन वृथा है ॥१॥

मू०–इदं शरीरं परमार्थसाधनम् धर्मैकहेतुं बहुपुण्यलब्धम्। लब्ध्वापियोनोनिदधीतधर्मं वृथागतं तस्यनरस्यजीवितम्।२।

अर्थ–यह पुरुष शरीर परमार्थ का साधन है, धर्म का कारण है। बहुत पुण्य कर्मों से प्राप्त हुआ है, इस शरीर को पाकर भी जो अपने कर्तव्य रूप धर्म को न समझे उस पुरुष का जीवन वृथा है ॥२॥

मू–तपोभिरुग्रैरपि दुर्लभांनृणां सत्संगति पुण्यवशादुपेत्ययः। नोद्धारयेत्संसृतितःस्वमात्महो वृथागतंतस्यनरस्यजीवितम्।३।

भा०–महान् तप से भी दुर्लभ पुरुष शरीर, फिर सत्संग तो उससे भी महान तप का फल इसको किसी पुण्य के प्रभाव से प्राप्त होकर भी जो अपना उद्धार न कर लेवे तो उसका जीना वृथा ही है ॥३॥

आवन आए सिसटि महि बिन बूझे पशु ढोर।
नानक गुरुमुख सो बुझै जांके भाग मथोर॥
आत्म रस जहिं जाणिआ हरिरंग सहजे माण।
नानक धन धन धन जन आए ते परवाण।गउ.।२४१।

मानुस जनम पुन कर पाइआ।
बिन नांवे ध्रिग २ बिरथा जाई। राग गुजरी म.४–४९३

चिरंकाल पाई दुरलभ देह। नाम विहूणी होई खेह॥
पशु प्रेत मुगध ते बुरी। तिसहि न बुझे जिन एह सिरी॥
॥राम कली म. ५–८९० ॥

गुरु सेवा ते भगति कमाई। तब इह मानस देही पाई।
इस देही कउ सिम रहिदेव। सो देही भज हरि की सेव।
भजहु गोबिंद भूलि मत जाहु। मानस जनम का एही लाहु।
। भैरऊ कबीर जी. ११५६।

लख चउरासीह जोनि सबाई। मानुस कउ प्रभु दीई वडिआई।
इस पउड़ी ते जो नर चूकै सो आई जाई दुख पाइदा॥
॥ मारु. सो. म. ५–१०७५ ॥

दीए अमर फल डार तजे पारस चिंतामणि।
कामधेनु तरु कल्प काट आवे सु कहां वन॥
गुरु संजीवन आइ पौरस गिर काटहि।
ज्ञान रसायन त्याग चीर बहुते चित बांटहि॥

चक्र चकवैते गया छाप सुलेमा खोईऐ।
मानुष देह हरि विमुख रजब हान सुरोईऐ॥

परन्तु जिस पुरुष के आत्मा की परीक्षा करने वाली बुद्धि नहीं वह पशु ही है, जैसे गुरुजी लिखते हैं:—

आवन आए स्रिसटि महि बिनु बूझे पशु ढोर।
ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।
सब जन्म तिना का सफल है जिन हरि के नाम की लागी भूखा
॥ वड हंस. पृ. ५८८ ॥

आतम रस जिह जानिआ हररंग सहजे मान।
नानक धन धन धन जन आए ते परवान॥
॥ गउड़ी बावन अखरी पृ० ५२५२ ॥

छपय—जत विन योगी अफल अफल भोगे विन माया।
जल विन सरवर अफल अफल तरुवर विन छाया।
शशि विन रजनी अफल २ दीपक विन मन्दिर।
नर विन नारी अफल २ गुण विन सब सुन्दर।
दो०—नारायण के भगत विन राजा प्रजा अफल।
तत्ववेता तिहु लोक में राम-रटह ते नर सफल॥

मू०—गुरु सेवा ते भगति कमाई। तब इह मानस देही पाई॥

अर्थ—गुरु की सेवा कर जब भक्ति कमाई जाय तब मनुष्य देह पाई हुई सफल है, क्योंकि गुरु सेवा से गुरु में जो गुण वा विद्या होती है वह प्राप्त हो जाती है।

कथा नं. ५—जैसे एक शहर के दो ब्राह्मणों के दो लड़के काशी में विद्या पढ़ने के लिये गए एक तो गुरु-सेवा करने में और दूसरा पढ़ने में तत्पर हो गया। ऐसा करते २ उनको बारह वर्ष व्यतीत हो गये, एक दिन उन्होंने सम्मति की कि अब घर चलना चाहिए। तब गुरु सेवा करने वाले ब्रह्मचारी ने नम्रता पूर्वक दंडवत प्रणाम करके गुरु जी से आज्ञा ली वे सर्वसिद्धि सम्पन्न थे, उन्होंने अपने सेवक ब्रह्मचारी को प्रसन्न होकर वर दिया कि तुम्हें सब पदार्थ हस्तकमलवत् अपरोक्ष होंगे क्योंकि तूने हमको सेवा से प्रसन्न किया है और सेवा करने से ही दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द स्वरूप परमात्मा की प्राप्ति होती है। इस प्रकार गुरुजी ने उसे समझाया आज्ञा दी पीठ पर हाथ रखा और दूसरे ब्रह्मचारी ने विद्वता के अभिमान से दण्डवत प्रणाम भी नहीं की जब वह घर को चल पड़े तो विद्वान् बालक ने गुरु-भक्त को बहुत ताड़ना की और कहा अरे मूर्ख तू बारह वर्ष में क्या विद्या पढ़ कर चला है तू अपने सम्बन्धियों को क्या पढ़ कर सुनाएगा, ऐसे अनेक दुर्वचन कहे परन्तु गुरु भक्त शान्ति पूर्वक उसके कटु वचन सहन करता गया, चलते-चलते एक शहर में पहुँच गये, वहाँ पर कुछ दिन रहकर आराम किया, उस शहर में एक सभा होने वाली

थी जिसमें बड़े २ विद्वान बुलाये थे और इन दोनों को निमन्त्रण दिया गया, सब विद्वानों का आपस में शास्त्रार्थ हुआ परन्तु सब विषयों में गुरुभक्त की जय हुई, सब विद्वानों ने उसको पूर्ण विद्वान समझ कर जय माला पहना कर पूजन किया क्योंकि गुरु की सेवा से सब शास्त्रों का गुह्यार्थ स्फुरण हो जाते हैं जैसे गुरु रामदास जी ने गुरु सेवा से अकबर बादशाह की सभा में सब ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के साथ शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की थी। यह प्रसङ्ग सूर्य प्रकाश की पहली रास अंशु (४४) चवा-लीस में लिखी है, जब इसप्रकार गुरु भक्त की जय हुई तथा बहुत मान प्रतिष्ठा हुई तब दूसरा पढ़ा हुआ बालक उससे ईर्षा करने लगा और उसे मारने का विचार कर लिया, जब उस शहर से चल पड़े तो रास्ते में एक बड़े भारी जङ्गल में रात्रि पड़ गई, जब गुरु भक्त सो गया तब वह पढ़ा हुआ ब्राह्मण उसकी छाती पर पांव रखकर और केशों को पकड़ कर तलवार से गर्दन काटने लगा, गुरु-भक्त ने उसे बहुत समझाया परन्तु वह नहीं माना, तब उसने कहा कि जब मेरा पिता मेरा समाचार पूछे तो तुम "अपर शिखा" इतना पद कह देना। उसने कहा हां कह दूंगा, ऐसा कहकर गुरुभक्त को मार दिया। उसके घर आकर उसके पिता को कह दिया कि तेरा पुत्र मर गया

है और मरते समय तेरे लिये "अपर शिखा" कहता था, इसका अर्थ तुम विचार लो, उसका पिता राजा के पास गया और कहा कि आपकी सभा में बड़े बड़े विद्वान् हैं, मेरे को "अपर शिखा" का अर्थ सुनायें? राजा ने सब विद्वान् ब्राह्मणों को "अपर शिखा शब्द" का अर्थ करने को कहा परन्तु किसी को इसका अर्थ नहीं आया तब राजा ने आठ दिन का अवकाश देकर कहा कि आठ दिन में इसका अर्थ न सुनाओगे तो कत्ल कर दिये जाओगे, तब सब ब्राह्मण इस पद का अर्थ विचारने लगे परन्तु किसी की बुद्धि में नहीं आया। ऐसे ही सात दिन बीत गए तो एक वररुची नाम वाला पंडित उदासीन होकर जङ्गल में एक वट वृक्ष के नीचे जाकर रात्रि में पड़ गया और पद के अर्थ का विचार करने लगा परन्तु बुद्धि में नहीं बैठा तब चित्त में बड़ा दुःख हुआ और नींद नहीं आई। जब आधी रात हुई तो उस वृक्ष पर रहने वाले भूत और भूतनी आपस में बातें करने लगे—भूतनी गर्भवती थी उसने भूत से कहा कि मेरे को मनुष्य का मांस खाने की इच्छा है मैंने इस इच्छा को रोकने का बहुत प्रयत्न किया परन्तु यह रुकती नहीं, इसलिये मुझे मनुष्य का मांस अवश्य खिलाओ, तब भूतने अपनी स्त्री को कहा कि कल प्रातःकाल राजा बहुत ब्राह्मणों को मारेगा जोकि

पवित्र आत्मा तथा विद्वान होंगे, उनका मांस लाकर तुमको खिलाऊँगा, उसने कहा कि राजा ब्राह्मणों को क्यों मारेगा, भूत ने कहा राजा ने एक पद का अर्थ पूछा है— वह अर्थ किसी को आयेगा नहीं तब राजा सबको मार देगा—

अनेन तव पुत्रस्या प्रसुप्तस्या वनान्तरे।
शिखामारुह्य पादेन खड्गेन निहतं शिरः॥

भूतनी ने कहा कि वह कौनसे पद का अर्थ है, आप जानते हो तो मेरे को सुनाओ, भूत ने कहा कि पद तो "अपर शिखा" है परन्तु उसके चार पाद बनाकर अर्थ करना है पहला 'अ' दूसरा 'प्र' तीसरा 'शि' चौथा 'ख'— 'अ' का अर्थ है अनेन तव पुत्रस्य 'प्र' का अर्थ सारे वनान्तरे 'श' का अर्थ शिखा मारुह्य पादेन 'ख' का अर्थ खड्गेन निहतं शिरः॥ सारे श्लोक का अर्थ यह हुआ, कि मरते समय गुरु भक्त यह कह गया है कि हे पिता ! इस पुरुष ने वन में सोये हुए तुम्हारे पुत्र की शिखा को पाँव से दबाकर तलवार से शिर काट दिया है। इस प्रकार गुरु भक्त ने मरने का वृतान्त अपने पिता को कहला भेजा, उस दृष्टकूट का अर्थ किसी को मालूम नहीं है. मेरे को ही गुरु कृपा से मालूम है कि मैं ही उठाकर उसके गुरु के पास ले गया था और गुरुजी ने संजीवनी

विद्या से उसको जीवित कर दिया है अब वह आनन्द-मङ्गल से वहां रहता है, यह अर्थ वट के वृक्ष के नीचे बैठा हुआ वररुचि सुन रहा था। प्रातःकाल होते ही राजा की सभा में जाकर अर्थ सुना दिया। फिर राजा ने उस मारने वाले बालक से पूछा तो उसने सब वृतान्त कह दिया, राजा ने उस बालक को देश से निकाल दिया तब वह बालक भी रात्रि में उसी पेड़ के नीचे चला गया, आधी रात को भूतनी ने भूत से पूछा कि आज मांस क्यों नहीं लाये। भूत ने कहा कि हमारे अर्थ को वररुचि पंडित सुनता रहा उसने जाकर सभा में सुना दिया राजा ने ब्राह्मणों को छोड़ दिया है, तब भूतनी ने कहा कि और कोई प्रसङ्ग सुनाओ तो भूतने कहा कि रात्रि को नहीं सुनाना चाहिये।

श्लो०—दिने निरीक्ष्य वक्तव्यं रात्रौ नैव नैव च।
धूर्ताः विचरन्ति सर्वत्र वटे वररुचिर्यथा॥

अर्थ—दिन में भी इधर उधर देखकर बात करनी चाहिये और रात्रि को तो बिल्कुल न करे क्योंकि धूर्त सब जगह विचरते रहते हैं जैसे कल रात्रि वट के नीचे वररुचि पंडित रहा था। पहिले देखलें कोई धूर्त तो नीचे नहीं जब देखा वहीं गुरुभक्त को मारने वाला ब्राह्मण बालक बैठा है तब भूत ने उसे दुष्ट जानकर मार दिया उसी का

माम अपनी स्त्री को खिलाया, इस प्रकार गुरु सेवा के बिना उस ब्राह्मण के पुत्र का जन्म व्यर्थ ही चला गया।

प्र. न. ६—दुर्लभं त्रयमेवैतद् देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः ॥

झूडा तन सांचाकर मान्यो ज्यों सुपना रै नाई।
मानस जन्म अमोलक पायो वृथा काहे गवांयो ॥
नर अचेत पापते डररे
दीन दयाल सकल भय भंजन। सरन ताहे तू पर रे॥
ए शरीरा मेरेया हरि तुम महि जोत रखी तां
तू जगमहि आया।
ए शरीरा मेरेया इस जग महि आये कै
क्या तुद कर्म कमाया॥
दुर्लभ देह पाये मानुस की वृथा जन्म सरावै।
रतन जन्म अपनों तै हारियो गोविन्द गति नहिं जानी॥
इस धरती महे तेरी सिकदारी सगल जीन तेरी पनहारी।
भइ प्राप्त मानुस देहुरीआ,गोविन्द मिलण की,इह तेरी वरिआ॥
अवर काज तेरे कितेन काम,मिल साधु-संगत भज केवल नाम।
लख चौरासी भर्मदया दुर्लभ जन्म पायो।
नानक नाम समाल तू तेरा सो दिन नेडा आयो॥
तन चेतन चेतन हेतु दियो, नर भोगन हेतु न देव दियो।
इति हेतु जनोतुम भोग तजो तन मानस में नित राम भजो॥

सफल जन्म सफल ताका संग जाके मन लागा हरि रंग ।
जो प्राणी गोविन्द ध्यावै पड़िया अनपड़िया परम गत पावै ॥
मानस देह बहुर नहिं पावे, कुछ उपाय मुक्त का कर रे ।
मानस जन्म अकार्थ खोवत लाज न लोग हसन की ॥
साधो इहतन मिथ्या जानो, या भीतर जो राम बसत है,
साचो ताहे पछानो ॥

मानुस को जन्म लीन स्मरन नहिं निमख कीन ।
दारा सुख भयो दीन पगहू परी बेड़ी ॥
फिरत फिरत बहुते युग हारियो, मानस देह लही ।
मानस देह पाये पद हरि भज नानक बात बताई ॥
दुर्लभ देह पाइ वड़भागी, नाम न जपहे ते आत्मघाती ।
मानस जन्म दुर्लभ गुरुमुख पाया,
मन तन भये चलंभ जिन गुरुमुख ध्याया ॥
दुर्लभ देह सवार जाहे न दर्गहे हार ।
सो जीविया जिस मन वस्या सोये, नानक और न जीवे कोय ।
अब न भजस भजस कब भाई, आवे अंत न भज्यो जाई ॥
एक भगत भगवान, जह प्रानी के नाहि मन ।
जैसे सूकर-स्वान, नानक मानो ताहे तन ॥
स्वामी को गृही ज्यों सदा, स्वान तजत नहिं नित ।
नानक इह विधि हरि भजो, इक मन होये इक चित ॥
राम नाम तत करो विचार, दुर्लभ देह का करो उधार ।

जीवना में जीवन पाया, जीवन पद निर्वाण, मचा सिमगिये ॥
मानुष जन्म पाये पद हरि भज। यह गुरु ज्ञान बताई ॥
॥ उपरोक्त गुरुदेव वाणी ॥

६– ※ नाम माला ※

प्र. नं. १–एकंकारा एक पसारा, एके अपर अपारा।
एक विसथीरन एकु संपूरन एके प्राण अधारा॥
जलि थलि महियलि पूरिआ स्वामी सिरजन हार।
अनिक भांति होइ पसरिया नानक एकंकार॥
हरि जीउ सदा धिआई तूं गुरुमुख एकंकार।
गुण गोपाल गावहु नित सखी हो, सगल मनोरथ पाए राम॥
सफल जनम होआ मिल साधु, एकंकार धिआए राम।
निरंकार आकार आप, निरगुण सरगुण एक,
एकहि एक वखाननो, नानक एक अनेक॥
सरगुण निरगुण निरंकार सुन समाधी आप।
आपन कीआ नानका, आपे ही फिर जाप॥
ओंकारि ब्रह्मा उतपति। ओंकारि कीआ जिन चिति॥
ओंकारि सैल जुग भए। ओंकारि वेद निरमए॥
ओंकारि शब्द उधरे। ओंकारि गुरमुख तरे॥
ओनम अखर सुणहु वीचार। ओनम अखर त्रिभवण सार॥

ओंकार एको गरि रहिया। मम एकस माहि समावैगो॥ एको रूप एको बहुरंगी। सभएकत वचन चलावैगो॥ गुरुमुखि एको एक पछाता। गुरुमुख होइ लखावैगो॥ गुरुमुखि आई मिले निज महिली। अनहद शब्द बजावैगो॥ नानक सोहं हंसा जप जापहु, त्रिभवन तिसै समाही॥ सोई सो जाकी है जाप। सतजुग हंस अवतार धर सोहं-

ब्रह्म न दूजा पावे॥

हरि के नाम असंख्य अगम हहि, अगम २ हर राइआ। गुणी ज्ञानी सुरति बहु कीनी, इक तिल नहीं कीमति पाइआ॥ कोटि नाम जाकी कीमति नाहि। अनेक असंख्य नाम हरि तेरे, न जाही जिह्वा इत गनणे॥ नानक नाम निरंजन जपीये मिल सतगुर सुख पाइआ॥ नानक नाम निरंजन गाइये पाइये सुख निधाना॥ नाम निरंजन उचरां पतसिउ घरि जाई। जपि मन सति नाम सदा सति नाम॥ किरतम नाम कथे तेरे जिह्वा सति नाम तेरा परा पुरबला। नमस्कार गुरुदेव को सति नाम जिस मंत्र सुणाइआ। तथा कलिजुग वाचे तारिआ सतिनाम पढ़ मन्त्र सुणाइआ॥ सति नाम का चक्र फिराइसा॥ तथा–सति नाम गुरमन्त्र द्रिढाइआ॥ कलिजुग माहि रामनाम उरधार, कलिजुग महि राम नाम है सार॥ मन मेरे राम नाम जपि जाप। समसे ऊचराम परगास,

निस वासुर जपि नानक दास ॥
राम नाम जप गुरमुख जीयडे एहु परम तत वीचारा है।
हरि हरि नाम सदा जप जापि सदा सखाई हरि हरि नाम॥
हरि का नाम जपहु मेरे मीता, इहै सार सुख पूरा ॥

कथा नं० १-इत्यादि अनन्त नाम गुरु साहबजी ने लिखे हैं वे इसलिये लिखे हैं कि अनन्त पुरुष हैं और अनन्त ही-नाम हैं, जिस पुरुष की जिस नाम में रुची हो जावे वेही नाम उसको संसार सागर से पार कर देगा जैसे नदी वा समुद्र में अनेक नौकायें होती हैं जिस नाव पर चढ़ेंगे वही नाव उसको पार कर देगी। वैसे ही अधिकारी जिस नाम को श्रद्धा से हृदय में धारण कर लेगा वही नाम संसार समुद्र से पार कर देगा। सगुण या निर्गुण के जितने नाम हैं उनका नामी एक है।

निर्गुण आप सरगुण भी वोही, कलाधारि जिन सगली मोही ॥

उत्तम अधिकारी के लिये निर्गुण नामी का ज्ञान अर्थात् अभेद चिंतन रूपी नाम का जप है मध्यम के लिये ध्यान अर्थात् प्रतीक सम्पत्त अहंग्रह ध्यान के अर्थ हैं, कनिष्ठ अधिकारियों के लिये स्मरण अर्थात् जिह्वा से जाप, हृदय जपनी और अजपाजाप यह तीनों जाप नाम के अर्थ हैं और इन तीन युक्तियों में ही नवधा भक्ति आ जायेगी, भक्ति प्रथम दो प्रकार की है एक परा भक्ति

दूसरी अपरा (अनन्य एक रस भक्ति) वाला एक ज्ञानी ही हो सकता है दूसरा नहीं यह बात आगे प्रतिपादन करेंगे और दूसरी अपरा भक्ति अर्थात् विरक्त भक्ति, इसके अधिकारी जिज्ञासु अर्थार्थी आर्त भक्त हैं। नवधा भक्ति के उत्तम मध्यम कनिष्ठ तीन प्रकार के अधिकारी हैं, तीन अधिकारियों के भेद से सत्ताईस भक्ति कहलाती हैं। फिर तीन गुणों के भेद से, सात्विक, राजस, तामस से ८१ प्रकार की भक्ति होती है परन्तु मुख्य नव भेद से भक्ति है इसलिये नवधा भक्ति प्रसिद्ध है।

दर्शन ध्यान संस्पर्शेर्मत्स्यी कूर्मी च पक्षणी।
शिशु पाल्यते नित्यं तथा सज्जन संगति:॥

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

अर्थ—भगवान् के नामों को हर समय सुनना यह श्रवण भक्ति है, जिह्वा से भगवत् नाम उच्चारण करते रहना यह दूसरी कीर्तन भक्ति है, हृदय में याद करना यह तीसरी स्मरण भक्ति है। चरण दबाते रहना यह चौथी पाद सेवन भक्ति कहलाती है। भगवान् का नाना प्रकार की सामग्री से पूजन करना यह पांचवीं पूजन भक्ति कहलाती है भगवान को सर्व रूप जानकर नमस्कार करना

अथवा मन्दिरों में नमस्कार करना यह छठी वंदन भक्ति है। दास्य भाव अर्थात् अपने को दास और भगवान् को स्वामी जानकर सेवा करनी यह सातवीं दास्य भक्ति कहलाती है, भगवान् को ही प्रिय समझना दूसरों से प्रेम न करना यह आठवी सख्य भक्ति कहलाती है। भगवान् को सर्वस्व अर्पण कर शरणागत होना यह नवमी आत्म-निवेदन भक्ति है यह नव प्रकार की भक्ति स्मरण भक्ति के अन्तरगत है—अर्थात् भगवान् के भक्त भगवान् का ऐसे स्मरण करते रहते हैं, जिस तरह क्रौंच पक्षी अपने बच्चों को सैंकड़ों कोष दूर जाने पर भी स्मरण करती रहती है। और दूसरी ध्यान रूप भक्ति में कच्छप का दृष्टान्त है, जैसे कच्छप स्त्री अपने अंडों को बाहर रेती में रख आती है आप जल में रहती है वहां बैठी ही ध्यान से अपने बच्चों का पालन करती है। और तीसरी ज्ञान-भक्ति में हंस का दृष्टान्त देते हैं जैसे हंस दूध और जल को अलग कर सकता है तैसे ज्ञानी आत्मा को अलग कर के अनात्मा को छोड़ आत्मा में हर समय लीन रहते है। परमेश्वर को प्रेम प्यारा है आचरण जाति-गुणादि प्यारे नहीं हैं।

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का।
का जातिर्विदुरस्य यादवपतेः उग्रस्य किं पौरुषम्॥

कुब्जायाः किन्नामरूपमधिकं किन्तत्सुदाम्नो धनम्।
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैः भक्ति प्रियो माधवः॥

व्याध का क्या आचरण था? कुछ भी नहीं। परन्तु भगवान की कृपा से संसार समुद्र से पार हो गया।

"बाल्मिक सुपचारो तरिओ बधिक तरे विचारे"
'पांच वर्ष को अनाथ ध्रु व बारिक हरि सिमरत अमर अटारे'

और गजेन्द्र में क्या विद्या थी? कुछ भी नहीं, हरिनाम स्मरण कर ग्राह से छूट गया। विदुर की कोई जाति नहीं थी–भगवान ने दुर्योधन के सब पदार्थ छोड़कर विदुर घर बिना नमक का शाक खालिया। उग्रसेन का क्या पुरुषार्थ था जो जेल के सीकचों में बन्द था, परन्तु भगवत् स्मरण से निष्कण्टक राज्य मिल गया और कुब्जा का कौनसा सुन्दर रूप था? कुछ भी नहीं। परन्तु भगवान की कृपा से सुन्दर रूपवती तथा भगवान की ही पटरानी बन गई। सुदामा के पास क्या धन था? दरिद्री ही तो था–परन्तु भगवान की अनुग्रह से उसका दरिद्र दूर हो गया।

ईश्वर तो प्रेम का पुजारी है।

किसी एक भक्त ने परम प्रेम पूर्वक "गपौड़" इस नाम से भगवान् को याद किया, भगवान् उसपर प्रसन्न हो गये और उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया जिस की कथा

यह है—एक जाट का लड़का जङ्गल में गौवें चराता था वहाँ पर एक तालाब था, दोपहर को वहां पर गौवों को छाया में बैठा देता और आप वहीं पर बैठकर बुरे-बुरे गाने गाया करता था, उस तालाब पर एक महात्माजी रहते थे, उन्होंने बालक को बुला कर कहा तू भगवान का नाम गोपाल २ जपाकर गन्दे गाने गाना छोड़ दे, क्योंकि गोपाल भी गौयें चराता है तुम्हारा भाई है। बालक ने कहा—अच्छा महाराज ! उस रोज से वह बालक गोपाल २ नाम का अभ्यास करने लगा, रात को घर में गया और सो गया, सवेरे उठा तो गोपाल नाम भूल गया, वन में तालाब पर गया तो वह महात्मा भी वहां से चले गये थे, बालक को बड़ा पश्चाताप लगा, क्या करूँ मुझे परमेश्वर का नाम जो महात्माजी ने बताया था भूल गया, हाय २ करके रोने लगा, फिर थोड़ी देर बाद मन में चिन्तन कर कहने लगा कि "ग" अक्षर पर नाम था, याद करते २ कहने लगा, हां याद आगया "गपौड़, गपौड़" यही नाम महात्माजी बता गये हैं। उस दिन से गपौड़ नाम का अभ्यास करने लगा, परन्तु अन्तर्यामी भगवान् बालक पर बहुत प्रसन्न हो गये कि यह मेरा गुप्त नाम प्रकट करने लगा है। एक दिन उसी तालाब पर एक और महात्मा आगये उन्होंने उस बालक से

कहा कि यह क्या कहता है, यह–भगवान का नाम नहीं भगवान का नाम तो गोपाल है। महात्मा जी का वाक्य सुन कर बालक का प्रेम टूट गया, तब वह न तो गपौड़ कहे न गोपाल ही कहे। वह दुविधा में पड़ गया, भगवान महात्माजी से नाराज हो गये, स्वप्न में महात्मा जी को कहा कि मुझे प्रेम प्रिय है कोई किसी भी नाम से पुकारे प्रेम पूर्ण होना चाहिए, यह "गपौड़" नाम मेरी माता यशोदा का रक्खा हुआ है, इसलिए यह नाम मुझे अत्यन्त प्रिय है। एक बार मैंने बाल्यावस्था में मिट्टी खा ली थी, दूसरे ग्वाल बालों के शिकायत करने पर यशोदा मैया ने मुझ से पूछा तूने मिट्टी कहां से खाई है, मैंने कहा नहीं—तब मैया ने कहा मुंह खोलो मैंने मुंह खोला तो मुँह में मिट्टी थी, तब माता ने कहा तू! गपौड़ गप लगाता है, मैंने मिट्टी नहीं खाई, उसी समय मुँह में सारा ब्रह्माण्ड माता को दिखाया था, तब से मेरा गपौड़ नाम है और मुझे यह माता जी का रखा हुआ नाम अत्यन्त प्रिय है।

भगवान् ने महात्मा जी से स्वप्न में कहा कि तब तुमसे प्रसन्न होऊँगा जब तुम उस प्रेमी बालक भक्त से कहो मेरा गपौड़ नाम जपा करे। तब महात्मा जी ने बालक को बुलाकर कहा—तू गपौड़ नाम जपा कर

भगवान तेरे पर प्रसन्न हैं, तुम्हें दर्शन देंगे, जब बालक ने यथार्थ यह नाम प्रेम से कहा—तब भगवान् ने प्रसन्न होकर दर्शन दिया और उसे मुक्त कर दिया।

प्रमाण नं० २—गोविन्द गोविन्द कहे दिन राती। गोविन्द नाम जपंति मिलि साधु संगाहि, नानक से प्राणी सुख वासनह॥ नाम कहत गोविंद का सूची भई रसना। रसना नाम जपत गोपाल॥ मुकंद मुकंद जपो संसार। जप मुकंद मस्तक नीसानं॥ वे मुहताजा वेपरवाहु, नानकदास कहो गुरु वाहु॥ वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीओ। कवल नैन मधुर बैन कोटि सैन संग सोभ कहत मा जसोद जिनहि दही भात खाहे जीओ। देखि रूप अति अनूप मोह महा मगभई। किंकनी शब्द झनत्कार खेल पाहि जीउ। काल कलम हुकुम हाथ कहु कौन मेट सके॥ ईसबंम ज्ञान ध्यान धरत हीए चाहि जीउ। सति साच श्री निवास आदि पुरुष सदा तुही, वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीओ। राम नाम परमधाम सुधबुध निर्विकार, वेसुमार सरबर को काहि जीओ॥ सुथिर चित भगत हित भेख धरिओ हरनाखस हरियो नख विदार जीओ। शंख, चक्र, गदा, पद्म आपि आप कीओ छदम। अपरंपर पारब्रह्म लखै कौन ताहि जीओ। सति साच श्री निवास आदि पुरुख सदा तूही वाहिगुरु वाहिगुरु वाहिगुरु वाहि जीओ॥

सतगुरु पुरख दयाल होइ नाहिगुरु मंत्र मन्त्र सुणाइया।

दो०—निरगुण सरगुण नाम जो नाहि गुरु तिन मेरू।
सब ते ऊँचा जाणिए लेव न कीजै देरु॥

चौ.—अखर मधुर मनोहर चार। चार वेद के जानहु सार॥
चार वरण को हरण विकार। चार जो आश्रम सुख दआर॥
चार मुक्त के एह दर चार। किधो विसनु के है भुज चार॥
चार उपदेश चर जे चार। चार अवस्था में सुखकार॥

दो०—नृप विवेक के सेन मो सैनापति यह चार।
मोह कटक को जीत के छिन महि लवत मार॥

चौ०—प्रेम भगत के भूषण चार लखन ग्रान को लोचन चार।
चार पदारथ के दातार, चार जुग तिन म गतिकार॥
भगत कंठ आभरण सुचार, जहि छव दानों लोक उचार।
चार वरण रो धरम अधार चार वरण उर करि न विसार॥
जीव परमात्म मेल के किधो दुभाषी चार।
गाहिक जे अपवर्ग के भले दलाल वीचार॥
भव वंधन के आमय को आखें भेखज चार।
अघ तमको सम भानु के देत सपद उदार॥

चौ०—व वा वासुदेव ते लीनो। हरि हिमन ते हाहा चीनों॥
ग गा गोविन्द ते लिय जानो। रा रा रामचन्द्र मन मानो॥
चतुर वरण को एक बनाया, फलदायक यह अधिक सुहाया।
चतुर नाम सिमरन को एकू, उरधारे जिस होत विवेकू॥

विश्वेशं विश्व मित्युक्तं संपुटे विश्व भूषणम् ।
विश्व बोध स्वयं ब्रह्म प्रणवादि नमाम्यहम् ॥

अर्थ—ओंकार का आदि सारे विश्व का ईश्वर है और विश्व स्वरूप इस नाम से कहा गया है और विश्व के भीतर, विश्व का भूषण, स्वरूप का प्रकाशक, जो स्वयं ब्रह्म है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ ।

वर्णावर्ण विहीनं च वेद सार प्रवर्तकम् ।
विश्व वर्ग महीधीशं वकारं तं नमाम्यहम् ॥

अर्थ—वर्ण, अवर्ण से रहित वेदसार का प्रवर्तक विश्व समुदाय का अधिष्ठान ऐसे वकार नाम वाले विष्णु को मैं नमस्कार करता हूँ ।

हरि हरादि स्वयं ब्रह्म हंस बोध प्रकाशकम् ।
हसखमल वर्ण बीजं हकारं तंनमाम्यहम् ॥

अर्थ—हरिहर अर्थात् विष्णु महादेवादि स्वयं ब्रह्म हैं और शुद्ध बोध का प्रकाश करने वाले हैं और "ह" प्रसिद्ध "स" स्वतः सिद्ध "ख" आकाशवत् पूर्ण "म" माया "ल" लीन हो, जिसमें हस्तामलक अर्थात् हाथ में आंवले की तरह अपरोक्ष स्वरूप और सारे सृष्टि का बीज स्वरूप जो हकार उसको मैं नमस्कार करता हूँ ।

ज्ञानार्कं गिराधीशं गोऽतीतं स्वच्छ साक्षिणम् ।
गमागम विहीनाय गकारं तं नमाम्यहम् ॥

अर्थ—ज्ञान का सूर्य रूप वाणी का आधार मन इन्द्रियों का अविषय शुद्ध सर्व का साक्षी स्वरूप आने-जाने से रहित सारे परिपूर्ण गकार अक्षर वाले में गोविन्द स्वरूप को नमस्कार करता हूँ।

राम बीजं सुरेश्वरं देव दैत्याभिवंदितम्।
सर्वाश्रय सर्वशक्ति रकारं तं नमाम्यहम्॥

अर्थ—राम बीज वाला देवताओं का ईश्वर देवताओं और दैत्यों करके नमस्कार के योग्य सर्वाधार सर्व शक्ति वाला जो रकार अक्षर वाला राम उसको मैं नमस्कार करता हूँ।

इत्येवं हि महावर्णां भावयेद्यः मुहुर्मुहुः।
चतुर्वर्ग फलं प्राप्ति सिद्ध एव न संशयः॥

अर्थ—इस प्रकार महान् अक्षरों वाला जो वाहिगुरु नाम है, उसको बारम्बार चिंतन करने से और उसके सिद्ध हो जाने पर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, इन चारों फलों की प्राप्ति होती है, इसमें सन्देह नहीं।

चारों अक्षर एक कर वाहिगुरु जप मन्त्र जपावै।

कथा नं० २—इसी तरह एक भक्त ने 'परे परे' यह नाम प्रेम से जपा था। उसकी यह कथा है, एक अन्जान सीधा सादा श्रद्धालु महात्मा गुरुजी के पास आया और कहा कि मुझे भगवान का दर्शन कराओ, महात्माजी ने

कहा–दो वर्ष सेवा कर, वह सेवा में लग गया, तो दो वर्ष में उसका चित्त शुद्ध होगया तब महात्माजी ने उससे कहा–सवेरे आना तुमको नाम जाप बताऊँगा, उसको जपना तुम्हें भगवान् दर्शन देंगे। दूसरे दिन सवेरे ही किसी राजा ने महात्माजी के दर्शनार्थ आना था राजा की तरफ से बिछाइयें बिछी थी, उसी वक्त यह भोला-भाला प्रेमी भी मिट्टी से भरे नग्न पाँव से चला आ रहा था, प्रेम में मस्त था बिछायों की तरफ ध्यान नहीं दिया महात्माजी ने दूर से ही उसको कहा परे-परे, तो उसने वही गुरु मन्त्र समझ लिया उसी का जाप करने लगा। प्रेम में मग्न होकर दिन-रात निरंतर यही नाम जपा करे–उसका चित्त शुद्ध हो गया, भगवान ने दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया। एक दिन उस महात्मा को तीस कोस की दूरी पर कोई काम पड गया, उसी चेले को बुलाया और कहा कि तीस कोस की दूरी पर यह काम है, कर आ चिट्ठी देदी और कहा कि इसका उत्तर लेते आना वह सत्य वचन कहकर चल पड़ा। रास्ते में उसे भगवान मिल गये, कहा कि भजन कर, मैं यह काम कर आता हूँ। हे भक्त तू जिसका परे-परे नाम जपता है, वो मैं हूँ तू यहाँ बैठ मैं अभी वापस आता हूँ, भक्त बहुत प्रसन्न हुआ, भगवान् तत्क्षण वह काम करके आ गये और उस भक्त को कहा–

जाओ यह चिट्ठी गुरुजी को दे देना, जब चिट्ठी लाकर गुरुजी को दी, तब उनको आश्चर्य हो गया, कहने लगे तू इतनी जल्दी वापस भी आ गया, तब उसने कहा—मेरा परे-परे भगवान काम कर आया है मैंने कुछ नहीं किया, गुरु जी ने कहा उसको यहां ले आओ, तब भक्त भगवान् को ले आया, महात्मा जी ने भगवान से कहा आपका परे-परे नाम कैसे पड़ गया, भगवान ने कहा—यह नाम वेद में है।

श्लो.–इन्द्रियेभ्यः पराह्यर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु पराबुद्धिर्बुद्धे रात्मामहान्परः॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परा।
पुरुषान्नपरं किंचित्साकाष्ठा सा परागतिः॥

अर्थ—इन्द्रियों से परे अर्थ (शब्दादि विषय) हैं, विषयों से परे मन, मन से परे बुद्धि है, बुद्धि से परे महतत्व, महतत्व से परे, माया और माया से परे परमात्मा है। परमात्मा से परे कुछ नहीं, परे का अर्थ है, उत्कृष्ट, अन्दर सूक्ष्म, प्रिय, इस तरह सबसे परे मै हूँ मेरा नाम परे-परे है। इस तरह शिष्य ने गुरु को भी तार दिया।

प्र. नं० ३–नाम निरञ्जन नीर नारायण, रसना-सिमरत पाप पलायण।
नारायण सभ मांहि निवास नारायण घटघट प्रगास॥

नारायण कहिते नरक न जाय नारायण सेव सगल फल पाये।
नारायण मन मांहि आधार नारायण बोहिथ संसार ॥
नारायण कहित जम भागपलायण नारायणदन्त भाने डायण।
नारायण मद-मद बखसिंद नारायण कीने सुख आनन्द ॥
नारायण प्रगट कीनो परताप नारायण संत को माई बाप।
नारायण साधु संग नारायण बारम्बार नारायण गायण ॥
बसत अगोचर गुरु मिल लही नारायण ओट नानकदास गही।

अचुत पार ब्रह्म परमेश्वर अतरजामी मधुसूदन।
दामोदर स्वामी। ऋषीकेश गोवर्धनधारी ॥

मुरली मनोहर हरि रंगा। मोहन माधव कृष्ण मुरारे। जगदीश्वर हरि जीओ असुर संहारे। जगजीवन अविनाशी ठाकुर, घट-घट वासी है संगा ॥ धरणी धर ईश नरसिंह नारायण। दाड़ा अग्रे प्रथम धरापण ॥ बावन रूप कीया तुध करते सब ही सेती है चंगा। श्री रामचन्द्र जिस रूप न रेखिया, बनवाली चक्रपाणि दरस अनुपिया। सहस नेत्र मूरत है सहसा, इक दाता सब है मंगा। भगत वछल अनाथहि नाथे। गोपीनाथ सगल है साथे, वासुदेव निरंजन दाते बरन न साकउ गुण अंगा ॥

मुकुन्द मनोहर लक्ष्मी नारायण। द्रौपती लज्जा निवारि उधारण, कमलाकंत करहि कुंतूहल अनंद विनोदी निहसंगा। अमोघ दर्शन आजूनी शम्भो। अकाल मूरति जिसु कदे

नाही सों। अविनासी अविगत अगोचर, सभ किछु तुम्ही है लगा। श्री रंग वैकुन्ठ के वासी। मछ कछ कूर्म आगिआ औतगामी। निराहारी निरवैर समाइआ। धारि खेल चतुरभुज कहाया। सावलि सुरत रूप बनावहि वेणु सुनत सब मोहैगा, वनमाला विभूषण कमलनैन। सुन्दर कुण्डल मुकुट वैन। शंख चक्र गदा है धारी महासारथी सतसंगा। पीत पीताम्बर त्रिभुवन धर्णी। जगन्नाथ गोपाल मुख भणी। सारङ्गधर भगवान बीठला मैं गणात न आवै सरबंगा। निहकंटक निह केवल कहीअै। धनंजै जलि थलि है महीअै। मृत्यु लोक पाताल समीपत स्थिरस्थान जिस है अभगा। नाम जपत कोटि शूर उजारा। राम नाम की गत नही जानी कैसे उतरस पारा। राम जपो जी ऐसे ऐसे ध्रुव प्रहाद जपयो हरि जैसे॥

न च दुर्लभं धनं रूपं न च दुर्लभं स्वर्ग राजनह।
न च दुर्लभं भोजनं व्यंजनं न च दुर्लभं स्वच्छम्बरह॥
न च दुर्लभं सुत मित्र भ्रात बान्धवं न च दुर्लभो वनिता विलास। न च दुर्लभं विद्याप्रवीणं न च दुर्लभंचन्न चञ्चलः।
दुर्लभं एक भगवान् नामह नानक लभ्ध्वं साधुसङ्गःकृपाप्रभम्॥
कहो नानक सोई नर सुखीआ रामनाम गुण गावै॥
वेद पुराण जास गुण गावत ताको नाम हीये मो धररे।
पावन नाम जगत में हरिको सिमर २ कसमल सब हर रे॥

जबही सरन गही कृपानिधि गज ग्राह ते छूटा।
महिमा नाम कहां लौ बरनौ राम कहित बन्धन ते टूटा॥
अजामिल पापी जगजाने निमख माहे निसतारा।
नानक कहित चेत चिन्तामनि तै भी उतरहि पारा॥
नाम सङ्ग मन प्रीत न लाय कोटि कर्म कर्ता नरक जाये।
धरजियरे एक टेक तूँ लाहे बड़ानी आस।
नानक नाम ध्याइये कार्य आवे राम॥
राम नाम उर में गहियो जाके सम नहीं कोय।
जह सिमरत संकट मिटै दर्श तुम्हारो होय॥
जन्म जन्म का संशय चूका रतन नाम जब पाया।
राम सिमर राम सिमर इहै तेरे काज है॥
हरि को नाम सदा सुखदाई जाको सिमर अजामल उधरियो।
गनका हूँ गति पाई। पांचाली को राज सभा महि राम-नाम सुध आई। ताको दुःख हर्यो करुणामय अपनी पैज बढ़ाई॥ जिना न विसरे नाम से किने हिया भेद न जानो मूल सांईजेहिया, विन नामै यम दण्ड सहै मर जन्मै बारम्बार॥
सर्व धर्म महिं श्रेष्ठ धर्म, हरि को नाम जप निर्मल कर्म।
नानक नाम मिले वड़िआई एहूं उपर कर्म नाहीं।
सर्व धर्म मानो तह किये जह प्रभु कीर्त गाई॥
जिनी नाम ध्याया गये मसक्त घाल,
नानक ते मुख उजले केती छुटी नाल।

साचे नाम की तिल विडियाई,
आख थके कीमत नहीं पाई ॥
पुण्य दान न तुल कृया, हर सर्व पापा हन्त जीओ।
रिन वन्ता नानक सिमर जीवाँ, जन्म मरन रहत जीओ॥
जन नानक कोटन में कोउ, भजन राम को पावे।
नानक मुक्ति ताहे तुम मानो, जह घट राम समावे॥
इक टू जीभो लख होहे, लख होवहे लख वीस।
लख लख गेड़ा आखिये एक नाम जगदीश॥

कथा न. ३—दक्षिण देश में गुरु रामदास के शिष्य केशवदास आठ वर्ष के बालक थे उसके गुरुजी उसे ठाकुर सेवा का भार सौंप कर आप अमरनाथ की यात्रा करने चले गये, केशवदास ने प्रेम से भगवान् को प्रसन्न कर लिया, भगवान उसका दिया हुआ भोग साक्षात् होकर खाते थे, दो महीने तक रात दिन निरन्तर सेवा करने से भक्त थक कर बीमार पड़ गया, उस भक्त से भगवान राम, चारों भाइयों—सीता जी हनुमान् जी सहित भोजन पाया करते थे, उस बालक भक्त को उन सबका भोजन बनाना, माग कर लाना, दूध दुहना, गौओं के लिये घास ले आना आदि बहुत काम करना पड़ता था, इसी से बीमार पड़ गया, बीमार होने के कारण एक दिन उससे सेवा न हो सकी। तब भगवान् राम ने अपने

भाइयों को भेजा कि भक्त को बुला लाओ, वह बुला लाए भगवान राम ने उस बालक भक्त से पूछा आज क्यों नहीं भोजन खिलाया, तब आगे से उस बालक भक्त ने कहा कि यह तीन चार हट्टे कट्टे काम क्यों नहीं करते सारा दिन मुझे ही काम में लगाए रखते हो। तब भगवान राम ने भक्त के प्रेमाधीन होकर भाइयों से सब काम लिया, सीता जी ने रसोई बनवाई, भक्त को खिलाई आप खाई, जब उसके गुरुजी आये तब भगवान ने उससे कहा तुम्हारे शिष्य ने हमारे इन भाइयों तथा सीताजी से काम लिया है, एक मेरे से काम नहीं लिया। मैं भी डरता था कहीं मुझे भी काम में न लगा दे, इस तरह भगवान प्रेम के आधीन हैं उन्हें प्रेम ही प्रिय वस्तु है, गुण, आयु, आचारादि पर प्रसन्न नहीं होते।

सिमरहो एक निरंजन सोऊ। जाते बिरथा जात न कोऊ॥
रे चित चेति चेत अचेत। काहे न बालमिक ही देख॥
किस जाति ते किह पदहि अमरियो राम भगति विसेख॥
॥ केदारा रविदास॥

प्र. नं. ४—राम-राम संग कर ब्योहार,
राम राम राम प्राण अधार।
राम राम राम कीर्तन गाये, रमत राम सबरहो समाय॥
संत जना मिल बोलहो राम, सबते निर्मल पूरन काम।

राम राम धन संच भंडार, राम राम राम कर व्यहार ॥
राम राम बीसर नहीं जाय, कर कृपा गुरु दिया बताये ।
राम राम राम सदा सहाय, राम राम राम लिव लाये ।
राम राम जप निर्मल भये, जन्म जन्म के किल विख गये ॥
रमत राम जन्म मर्न निवारे, उचरत राम भय पार उतारे ।
सब ते ऊँच राम प्रगास, निस वासर जप नानक दास ॥
वेद पुरान स्मृति सुधाचर, कीने राम नाम इक आखर ।
किनका एक जिसजी वसावे, ताकी महिमा गनी ना आवे ॥
जह मात पिता सुत मीत न भाई, मन ऊहां नाम तेरे संग सहाई ।
जह महा भयानक दूत जम दलै, तहे केवल नाम संग तेरै चलै ॥
जह मुसकल होवै अतिभारी, हरि को नाम खिन माहे उधारी ।
गुरु मुख नाम जपहु मन मेरे, नानक पावहु सुख घनेरे ॥
सगल सृष्टि को राजा दुखीआ, हरिकानाम जपतहोवे सुखीया ।
लाख करोरि बन्धन परै, हरि का नाम जपत निसतरै ॥
अनिक माया रंग तिख न बुझावै,
हरि का नाम जपत आघावै ।
जह मार्ग इहो जात अकेला,
तह हरि नाम संग होत सुहेला ॥
ऐसा नाम मन सदा ध्याइयै,
नानक गुरमुख परम गत पाइयै ।
कबीर लूटना है वो लूट लै, राम नाम की लूट ॥

फिर पाछे पछतायगा, जब प्राण जायेंगे छूट ॥
कबीर सो मुख धन है, जह मुख निकसे राम ।
देही किसकी बापरी, पवित्र होयगो ग्राम ॥
स्वपने हूँ बर्रायके, जह मुख निक्से राम ।
ताके पग की पानही, मेरे तन को चाम ॥
वृधभयो सूझै नहीं, काल पहुच्यो आन ।
कहु नानक नर बावरे, क्यों न भजे भगवान ॥
राम नाम उर में गहियो, जाके सम नहीं कोय ।
जह सिमर्त सकट- मिटे, दर्श तुम्हारो होय ॥
कौन को कलक रहियो, रामनाम लेत ही ।
पतित पावन भये, राम कहित ही ॥
रामनाम मन वेधिया, अवर के करीं विचार ॥

वाराणसी तप करे, उल्ट तीर्थ मरे, अग्नि रहे काया-कल्प कीजे । अश्वमेध यज्ञ कीज, सोना गर्भ दान दीजे, राम नाम सर तौन पूजे ॥ अश्व दान गज दान, सैय्या, नारी, भूमिदान, ऐसो दान नित्य नित्य ही कीजै, नाम बराबर तो न पूजे ॥

कथा. नं. ४–एक निर्धन विधवा माई थी जिस के एक ही पुत्र था । वह सन्तो के सत्संग में हमेशा आया करती थी, और सन्तों की सेवा किया करती थी, निर्धन इतनी थी, कि लोगों का आटा पीस कर अपना निर्वाह करती

थी। अपने पुत्र को भी नहीं पाल सकती थी, उसका कोई रक्षक भी न था और सन्तों के पास आने जाने से सेवा करने में बहुत दिन व्यतीत हो गये तो सन्तों ने उसको परमात्म भक्ति दृढ़ करा दी। माई स्वास २ में परमेश्वर को याद करती थी, अन्त में वह आनन्द चित्त वाली हो गई, उसका पुत्र जब बड़ा हुआ तब जङ्गल से काष्ट काट कर ले आता था उसे बेचकर अपना निर्वाह करता था। लड़के को सन्तों ने एक जाप भी बतलाया था, दिन का अधिक समय वह लड़का जाप करने में लगाया करता था, शेष समय में लकड़ियाँ काट कर लाता था और अपना निर्वाह करता था। माता के साथ जाकर सन्तों की सेवा करता था, एक दिन वह लड़का लकड़ियां लेने गया तो गर्मी के दिन थे उस देश का राजा अपने वजीरों तथा ज्योतिषियों सहित सायंकाल के समय में हवा खाने के लिये एक मैदान में जा रहा था। वह मैदान जहां कि लड़का काष्ट काट रहा था, उसके पास था, ज्योतिषी जी राजा की आज्ञा लेकर शौच होने के लिये जा रहे थे, रास्ते में वह लड़का देखा तो ज्योतिषी जी हैरान होकर कहने लगे, "हरि की गति नहीं कोऊ जाने" क्योंकि यह गरीब अति निर्धन है और तीन दिन के अन्दर इसको राज सिंहासन मिलना है। राज कन्या के साथ शादी होगी, वह कैसे

होगी, ऐसा विचार कर बालक से पूछता है कि तुम्हारे पास कुछ धन है, या घर भी सुन्दर है, भ्रातादि सम्बन्धी कितने हैं, तब लड़का कहने लगा कि हम निर्धन हैं, टूटी हुई झोंपड़ी है, माता के सिवाय और कोई सम्बन्धी भी नहीं। तब वह बड़ा हैरान हुआ, इतने में राजा ने ज्योतिषी जी को याद किया कि अब तक क्यों नहीं आये, तब वजीर ने अंगुली निर्देश से कहा कि वो खड़ा है, लड़के के साथ बात-चीत कर रहा है। राजा ने कहा कि उसको बुलाओ, वजीर ने उसको बुलाया, तो राजा ने पूछा कि लड़के के साथ क्या बात-चीत कर रहे थे, तब ज्योतिषी जी कहने लगे कि परमेश्वर की लीला को देखकर हैरान हो रहा हूँ, परन्तु कुछ कह नहीं सकता, परमेश्वर क्या नहीं कर सकता? भाव यह है कि सब कुछ कर सकता है, तब राजा हैरान होकर बोला, ज्योतिषी जी? कहो तो सही, ऐसी क्या बात है? तब ज्योतिषी जी कहने लगे, कि मैं आप से डरता हूँ, कदाचित आप कोप न करें। तो राजा ने कहा कि नहीं-नहीं मैं आप पर कभी कोप न करूँगा, राजा के अधिक कहने पर ज्योतिषी डरता २ कहने लगा कि महाराज इस बालक की रेखा देख कर मैं हैरान हो रहा हूँ। तीन दिन के अन्दर यह बालक आपका दामाद बनेगा और राज्य सिंहासन पर बैठेगा

परन्तु निर्धन है और सिवाय इसकी माता के अन्य कोई इसका सम्बन्धी भी नहीं, इसकी माता पीसना पीस कर और यह लड़का लकड़ियां ले जाकर दोनों अपना निर्वाह करते हैं। यह बात सुनकर राजा बड़ा दुःखी हुआ और कहने लगा कि ब्रह्मा को कौन बुद्धिमान कहेगा, जो कि राजा की कन्या का सम्बन्ध अति निर्धन बालक के साथ लिख दिया है। इस तरह वेद शास्त्र भी किसी बुद्धिमान के बनाये हुये मालूम नहीं पड़ते, मैं अभी इस लड़के को कत्ल कर देता हूँ। फिर देखूँ यह किस तरह मेरा दामाद बनता है, ऐसा कहकर तलवार लेकर लड़के को मारने दौड़ा, तब वजीर ने पकड़ लिया और कहा कि हे राजन्! यदि विना अपराध बालक को मारोगे, तो आप की निंदा होगी। इसलिये हम इस पर अपराध ठहराते हैं, अपराधी होने पर कलको मरवा देंगे।

ऐसा कहकर लड़के को बुलाया और पूछा कि तू कब से इस सरकारी जंगल से लकड़ी तोड़ रहा है। तब लड़के ने कहा—कि महाराज दो साल से। तब वजीर कहने लगा, कि यह सरकारी खास जंगल है, और तुमने विना पूछे दो वर्ष लकड़ियां काटी हैं, इसलिये तेरे पर पचीस मोहरों का राज्य दण्ड लगाया जाता है। यदि प्रातःकाल पचीस मोहरें न लाकर देगा, तो तुझको कत्ल

कर दिया जायगा, ऐसा कहकर बालक को हथकड़ी लगवा कर उसकी माता के पास भेजा। इसके बाद राजा वजीर और ज्योतिषी भी उसके घर आये और देखा कि ठीक ही, बड़े निर्धन हैं, कपड़े फटे हुये हैं, और झोंपड़ी टूटी हुई है। राजा साहब ऐसी दशा को देखकर अधिक कुपित हुये और हुक्म दिया कि अगर प्रातःकाल राजदण्ड न दोगे तो लड़के को कत्ल कर दिया जावेगा, राजा का ऐसा हुक्म सुनकर बालक तथा माता को बड़ा दुःख हुआ अन्न जल छोड़ दिया, माता घर-घर में सब लोगों से पुत्र के छुड़ाने के लिये सहायता माँगने लगी, परन्तु किसी ने सहायता न की प्रत्युत सब लोग माई को ताड़ने लगे, और बुरे भले शब्द कहने लगे कि—पहले अपने लड़के को क्यों नहीं समझाया वह क्यों सरकारी जङ्गल से लकड़िया काटता रहा। अब माई को कोई आश्रय न रहा, आशा-रहित होकर सन्तो की शरण में गई तब सन्तो ने माई को आश्वासन दिया कि भय न कर ईश्वर को याद कर, जैसे द्रौपदी ने चीर हरण समय सभा में भगवान को याद किया था, तो भगवान ने उसकी सहायता की। जैसे ग्राह से पकड़े हुये गज ने पुकार की तो भगवान ने उसको ग्राह से छुड़ाया, इस प्रकार जिन-जिन भक्तो पर आपत्ति पड़ी वे भगवान को याद करने से ही आपत्ति से मुक्त हुये हैं,

जिस तरह प्रह्लाद की भगवान ने रक्षा की थी, उसी तरह तुम्हारी रक्षा भी करेंगे, तू कोई चिन्ता न कर, माई का कुछ सन्तोष हुआ परन्तु, सिपाहियों की ताडना से माई का धैर्य टूट गया, क्योंकि सिपाही पचास मोहरें मागते थे और माई को एक मोहर की भी कहीं से मिलने की आशा न थी, फिर माई सन्तो के पास गई, सन्तों ने श्री राग की पौडियाँ सुनाई।

"जाको मुमकल अति बनै ढोई कोई न देय।
चिति आवै उस पार ब्रह्म तो निश्चल होवे राज॥

इस लिये तुम अपने लडके सहित जाकर ईश्वर-चिन्तन करो। माई सन्तों के वचन मे विश्राम करती हुई एकान्त में लडके सहित ईश्वर चिन्तन में लग गई, परन्तु पुत्र की चिन्ता म फिर मन उत्थान हो जाया करे तब माई को व्याकुल देख कर आकाश वाणी हुई कि सन्तो के वचन में विश्राम कर, तेरे को भय न होगा तेरा भला ही होगा। अब माई को पूर्ण निश्चय हो गया, परन्तु बालक को अभी धैर्य न हुआ और कहने लगा माता, म कल को मर जाऊँगा और मनुष्य जन्म मेरा ऐसा ही निष्फल चला जायगा, माता ने कहा नहीं नहीं तुम्हारा ईश्वर रक्षक है। तू कल को राजा बनेगा सन्तों के वचन अटल ह, तब लडके को कुछ धैर्य हुआ, प्रात-काल होते

ही राजा ने पुलिस भेजी उन्हों ने आकर माई की झोंपडी को चारो तरफ से घेर लिया और माई को कहा कि जल्दी पचास (५०) मोहरें लाओ नहीं तो तुम्हारा लडका कत्ल हो जायगा, यह बात सुनकर माई अपनी झोपडी में गई तो क्या देखती है कि चतुर्भुज स्वरूप धारण कर भगवान खड़े हैं, माई ने भगवान के चरणों पर प्रेम और श्रद्धा पूर्वक नमस्कार की और अपना दु ख सुनाया। तब भगवान ने उसको दो थैलियाँ लालों की दी और कहा कि राजा को देकर अपना बच्चा छुडा ले, तब माई बडी प्रसन्न हुई। उसमें से पच्चीस लाल सिपाहियों को दे दिये और अपना लडका छुडा लिया। सिपाही "लाल" लेकर राजा के पास पहुँचे तब राजा ने जौहरियों को बुलाया और उनकी कीमत पूछी तो उन्होंने कहा कि ये लाल अमोल है तुम्हारा सारा राज्य भी इनकी कीमत के बराबर नहीं। तो राजा सुनकर हैरान हुआ कि बाहर से देखने में तो गरीब मालूम होते है। मेरे से भी अधिक अमोल लाल इनके पास है ये तो बडे सेठ हैं वजीर को बुलाकर कहा कि जल्दी मेरी लड़की की सगाई उस लडके के साथ करदो, वज़ीर ने जाकर माई को कहा—परन्तु माई ने मना कर दी तब राजा और रानी अपनी लडकी को साथ लेकर उसी समय माई के चरणों में पड गये और माई को प्रसन्न

किया और उसी दिन माई के लड़के के साथ अपनी लड़की की शादी करदी। माई ने राजा को दो थैलियां लालों की दिखलाई तो राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। माई को पुत्र सहित अपने महलों में ले गया और अपने दामाद को राजगद्दी देदी। आप ईश्वर चिंतन करने लगा, इसी प्रकार—सधन कसाई ने भी आपत्ति काल में ईश्वर का स्मरण किया परमेश्वर ने उसकी रक्षा की।

इन्द्र उवाच—

प्रमाण नं. ५—नारायणो नाम नरो नारायण
प्रसिद्ध चोरः कथितः पृथिव्याम्।
अनेक जन्मार्जित पापसञ्चयं
हरत्यशेषं स्मृतमात्र एव यः ॥१॥

अर्थ—इन्द्र ने कहा—नारायण का नाम पृथ्वी में सब चोरों से प्रबल बतलाया गया है। क्योंकि वह अनेक जन्मों के संचित किये हुये पाप समूह को केवल स्मरण मात्र से ही चुरा लेता है अनेक (जन्मार्जित पाप चौरम्, चौराग्रगण्यम् पुरुषं नमामि) ॥१॥

ईश्वर उवाच—

सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति पुत्रक ॥२॥

ईश्वर ने कहा—हे पुत्र! नारायण शब्द का एक बार

उच्चारण करने से गंगा इत्यादि सब तीर्थों में तीन सौ कल्प तक स्नान करने का फल होता है ॥२॥

याप्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनु धारिणी ।
त्वदनु स्मरणादेव हृदयादप सर्पति ॥३॥

हे देव! अविवेकियों की जो विषयों में प्रीति होती है वह आपके स्मरण मात्र से हृदय से भाग जाती है ॥३॥

गौतम उवाच—

गो कोटि दानं ग्रहणेषु काशी प्रयाग गंगा युत कल्प वासः ।
यज्ञायुतं मेरु सुवर्ण दानं गोविन्द नाम स्मरणेन तुल्यम् ॥४॥

गौतम ने कहा—करोड़ों गौओं का दान, ग्रहण में काशी स्नान, दस हजार वर्ष तक प्रयाग—वास, तथा दस हजार यज्ञ और पर्वत के बराबर स्वर्ण दान यह सब मिलकर गोविन्द नाम के केवल एक बार उच्चारण करने के बराबर है ॥४॥

अग्नि उवाच—

गोविन्देति सदा स्नानं गोविन्देति सदाजपः ।
गोविन्देति सदा ध्यानं सदा गोविन्द कीर्तनम् ॥५॥

अग्नि ने कहा—गोविन्द नाम स्मरण ही सदा स्नान है, गोविन्द ही सदा जप है, गोविन्द नाम ही सदा ध्यान है और वही सदा कीर्तन है ॥५॥

त्र्यक्षरं परमं ब्रह्म गोविन्द त्र्यक्षरं परम्।
तस्मा दुच्चरितं येन ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥६॥

'गोविन्द' नाम के तीनों अक्षर परम ब्रह्म स्वरूप हैं जिसने इन तीन अक्षरों का उच्चारण किया वह ब्रह्म ही में लय हो जायेगा ॥६॥

श्री बादरायणि उवाच—

अच्युतः कल्पवृक्षोऽसावनन्तः कामधेनवः।
चिन्तामणिस्तु गोविन्दो हरेर्नाम विचिन्तयेत् ॥७॥

श्री बादरायणी ने कहा—अच्युत नाम ही कल्पवृक्ष है और वही अनन्त नाम कामधेनु है। गोविन्द नाम ही चिंतामणि है (अतएव) हरिनाम का ही चिंतन करना चाहिये ॥७॥

विदुर उवाच—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गति रन्यथा ॥८॥

हे कृष्ण! यह मङ्गल नाम जिसकी वाणी से निकलता है उसके करोड़ों महापातक तुरन्त ही नाश हो जाते हैं ॥८॥ ॥ पाण्डव गीता ॥

नृप कन्या के कारने इक भय्या भेष धारी।
कामार्थी स्वार्थी वांकी पैज सवारी॥

तव गुन कहां जगत गुरो जो कर्म न नासै ।
सिंह शरणकत जाईये जो जंबुक ग्रासै ॥
एक बूंद जल कारने चात्रक दुःख पावै ।
प्राण गये सागर मिले फुन काम न आवै ॥
प्राण जो थाके थिर नहीं कैसे बिरमावो ।
बूड़ मूए नौका मिले कहो काहि चढ़ावहो ॥
मैं नाहीं कछु हौं नहीं किछु आहि न मोरा ।
औसर लजा राख लेहो सधना जन तोरा ॥गु.वा.॥

कथा नं० ५—सधना कसाई बकरे मार कर मांस बेचा करता था। एक दिन दशमी "तिथि" की रात्रि में राजा को मांस की जरूरत पड़ गई उसने नौकरों द्वारा सधन को कहला भेजा कि "पावभर" मांस अभी दो—तब सधन ने विचार किया कि कल सुबह तो एकादशी है, मांस विकेगा नहीं और परसों तक वासी होकर विगड़ जायेगा कोई लेगा नहीं व्यर्थ ही चला जायेगा इसलिये बकरे के अण्डकोष का मांस राजा को भेज दूं फिर द्वादशी को इसी को मार कर मांस बेच दूंगा, ऐसा विचार करके, बकरे के अण्डकोष काटने लगा, तब बकरा हंसने लगा, तब सधन ने कहा कि हंसते क्यों हो तब बकरे ने कहा कि पहले हमारा तुम्हारा शिर काटने का वैर तो था ही तू हमारा शिर काटता था दूसरे जन्म में तुम्हारा शिर मैं

काटता था अन तू यह नया रिवाज चलाने लगा है।

तू मेरे अंडकोष काटेगा तो मैं तीन दिन तड़फता रहूँगा। फिर इसी प्रकार मैं तेरे अण्डकोश काटूँगा तो तुझको भी मेरी तरह तीन दिन तक तड़फना पड़ेगा, बकरे की ऐसी बात सुनकर सधन कसाई ने उस ही दिन से, बकरे मारने छोड़ दिये परन्तु दूसरी जगह से मांस लेकर बेचा करता था, एक दिन उसको कहीं से शालिग्राम मिल गया सधन को यह पता नहीं था कि शालिग्राम विष्णु की मूर्ति होती है, वह उससे मांस तौला करे किसी को न्यूनाधिक मांस न दिया करे, पूरा तौल कर दिया करे, तो उसकी सत्य की कमाई से हाथ पवित्र हो गये, उन पवित्र हाथों से जब भगवान् को बाट समझ कर उठाता था तो भगवान प्रसन्न रहते थे, एक दिन बाजार में जाते २ एक साधु ने सधन को मांस तौलने की तराजू में शालिग्राम को देखा तो गुस्से में आकर साधु ने कहा अरे भगवान की मूर्ति से मांस तौलता है। तब सधन ने क्षमा मांगी कि मेरे को पता न था और पूछा कि अब क्या करूँ, तो सन्त ने कहा कि शालिग्राम मेरे को दे दे मैं स्नान करा कर पूजा किया करूँगा सधन ने अपने भोले भाले स्वभाव से शालिग्राम साधु को दे दिया, जब साधु स्नान कराकर पूजा करने लगा तब भगवान ने उस

साधु का गला पकड़ लिया और कहा कि तुमने मेरे भक्त से मेरा वियोग करा दिया है। मैं तेरे पास रह कर प्रसन्न नहीं हूँ मैं सधन के पास रहकर ही प्रसन्न हूँ भगवान के ऐसे वचन सुनकर वह साधु शालिग्राम को लेकर सधन के पास आया और सब कथा सुनाई। तब से सधन सब काम छोड़कर शालिग्राम की पूजा करने लगा। यह बात सारे शहर में प्रसिद्ध हो गई। तब सब लोग सधन को भक्त समझ कर सन्मान करने लगे। तब सधन भी अपना देश छोड़कर श्री प्रयागराज आकर भगवान की पूजा और भजन करने लगा। भक्ति के प्रभाव से वहा भी सधन का नाम विख्यात हो गया। बहुत दूर दूर से लोग आकर दर्शन किया करें और धन्यवाद देकर चले जाया करें। सधन का ऐसा सत्कार देखकर, प्रयागराज के पण्डे ईर्षा लगे। उसी समय एक राजा किला बनवा रहा था, वह गिर जाता था, राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा, उन ज्योतिषियों ने ईर्षा वश कहा कि यदि जाति का कसाई हो, प्रतिष्ठावान हो सधन नाम हो, ऐसा आदमी किले की नींव में दिया जावे। तो वह किला संपूर्ण होगा, तो राजा ने कहा, कि ऐसे आदमी की आप ही तलाश करें। तब पंडित झटपट सधन को पकड़ लाये और नींव में चिना दिया, जब गले तक चिना गया तब

सधन ने प्रार्थना के रूप में यह शब्द उच्चारण किया, पहली पंक्ति के उच्चारण से भगवान ने उत्तर दिया कि धैर्य कर मैं तेरी रक्षा करूँगा। दूसरी और तीसरी पंक्ति पढ़ने पर फिर भगवान ने धैर्य दिया जब चौथी पंक्ति पढ़ी तो किले की ईंट-ईंट उड़ गई। कुछ तो पण्डों को और कुछ राजा को लगी कितनों के शिर फूट गये, तब राजा और ब्राह्मण भक्त के चरणों में गिरे और क्षमा मांगी, तब राजा ने धन पदार्थ देकर भक्त की सेवा की।

भृगु उवाच—

प्र. नं. ६—नामैव तव गोविन्द नामतत्त्वः शताऽधिकम्।
दददत्युच्चारणान्मुक्तिर्भवानष्टाङ्ग योगतः॥

भृगु ने कहा—हे गोविन्द! आपका नाम ही आप से सौ गुना अधिक है। (राम ते अधिक राम कर नामा) कारण कि आप तो अष्टाङ्ग योग से मुक्ति देते हैं परन्तु आपका नाम केवल स्मरण से ही मुक्ति देता है॥

परमेश्वर उवाच—

सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षर द्वयम्।
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति॥

पुलस्त्य उवाच—

हे जिह्वे रससारज्ञे सर्वदा मधुर प्रिये।
नारायणाख्यपीयूषं पिब जिह्वे निरन्तरम्॥

पुलस्त्य ने कहा–हे रस के सार को जानने वाली तथा मीठी वस्तुओं को चाहने वाली जीभ तू निरन्तर नारायण नामामृत को पिया कर ॥

अच्युतानन्त गोविन्द नामोच्चारण भेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ॥

धन्वन्तरि ने कहा—मैं सत्य कहता हूँ कि अच्युत अनन्त और गोविन्द नाम का उच्चारण करना ही औषधि है इसी से सब रोग नाश हो जाते है ॥

अगस्त्य उवाच—

निमिषं निमिषार्द्धंवा प्राणिनां विष्णु चिन्तनम् ।
तत्र तत्र कुरुक्षेत्रं प्रयागो नैमिषं वरम् ॥

अगस्त्य ने कहा–एक पल अथवा आधे पल विष्णु का चिन्तन करना ही मनुष्यों के लिये कुरुक्षेत्र, प्रयाग और नैमिषारण्य तीर्थ है ॥

शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि यो जपेत् प्रणवं सदा ।
न स लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥
ॐ हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
इति षोडशकं नाम्नां कलि कल्मष नाशनम् ।
नातः परतरोपायः सर्व वेदेषु दृश्यते ॥
कलि संतरणो–१ नारद ने ब्रह्मा को कहा है ॥

हरि के नाम बिना जग धंधा। बिन हरि नाम न सुध होई॥
बिन हरि नाम बिरथा जग जीवन हरि बिन निहफल मेक घरी।
बिन हरि नाम न काल टरै। हरि नाम बिना सब झूठा॥
हरि के नाम बिना दुख पावै।

एकस हरि के नाम बिन बाघे जमपुर जाहे॥

कथा नं. ६—भक्त भगवान को प्रार्थना से कहते हैं कि हे भगवन्! आपने एक भेषधारी, कामार्थी और स्वार्थी की रक्षा की थी। जिसका मित्र बढ़ई था वह कामी, स्वार्थी राजा की कन्या पर मोहित था, उस कन्या की प्रतिज्ञा थी कि मैं श्याम सुन्दर चतुर्भुज भगवान के साथ शादी करूँगी। राजा ने उस कन्या के लिये एकान्त में महल बनवा दिया, वह कन्या वहीं पर भगवान की मूर्ति का पूजन किया करती थी, यह बात देश देशान्तरों में प्रसिद्ध हो गई। सुनार के लड़के का श्याम सुन्दर रूप तो था ही तो उसके मित्र बढ़ई ने कहा कि मैं तेरे को काठ की दो भुजायें बना देता हूँ, और कला का गरुड़ बना देता हूँ, तू आधी रात को जाकर उस कन्या के साथ गन्धर्व विवाह कर लेना जब सब सामान तैयार हो गया, तब वह लड़का विष्णु भगवान् बनकर, गरुड़ पर चढ़ कर आधी-रात को कन्या के महल में गया और कहा कि मैं तेरे को दर्शन देने को आया हूँ, अब तू मेरे से गन्धर्व विवाह

करले। तब लड़की ने उसे भगवान समझ कर उसकी आरती की और गन्धर्व विवाह कर लिया फिर नकली विष्णु स्वरूप सुनार ने लड़की से कहा, कि मैं रात्रि में ही आया करूँगा, और मनुष्य स्वरूप में दो भुजायें से जैसे—श्री रामावतार और श्री कृष्णावतार थे—वैसे ही मैं रहा करूँगा। तब कन्या ने कहा कि अच्छा परन्तु दर्शन अवश्य दिया करो इसी तरह रात्रि में आया करो और प्रातःकाल होने पर चले जाया करो, तब कन्या ने अपने पिता को सुनाया कि भगवान मेरे पास रोज आते हैं और मैं उनके साथ, गन्धर्व विवाह कर लिया है राजा सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। फिर कहने लगा कि जब विष्णु-भगवान जी मेरे दामाद बन गये हैं तो मेरे को क्या चिन्ता है इसलिये अपनी सब सेना हटा दी तब एक उसके शत्रु राजा ने उसपर चढ़ाई कर दी। राजा ने अपनी कन्या को कहा कि भगवान को कहो कि मेरी रक्षा करें तब कन्या ने भगवान से उसकी प्रार्थना की, तब वह सुनार भगवान विष्णु से प्रार्थना करने लगा, कि हे भगवन्! मैंने आपका भेष बनाया है अब आप इस भेष की लज्जा रखो मैं कोई विष्णु नहीं—यह प्रार्थना सुनकर भगवान्-विष्णु ने स्वयं युद्ध करके शत्रु राजा से जय कराई और भेषधारी भक्त की लज्जा रखी थी, वैसे ही मेरी भी लज्जा

रखो। जब सधन ने यह प्रार्थना कि तो भगवान् कहने लगे कि तुम्हारे को कर्म फल भोगना पड़ेगा, मेरी शरण लेने पर भी निवृत्त न होगा, तब सधन भक्त कहने लगा कि हे जगत गुरु परमेश्वर! अगर कर्म न मिटेंगे तो आपका मेरे पर क्या उपकार हुआ, अर्थात् आपकी शरण में आने का मेरे को क्या लाभ हुआ। सिंह की शरण में जाने से क्या लाभ, यदि सिंह के पास रहते हुये भी गीदड़ खा जाये, फिर आकाशवाणी हुई कि थोड़ा सा धैर्य कर, तेरे को अनन्त पदार्थों का लाभ होगा, तब भक्त कहने लगा कि चात्रिक (पपीहा) एक बूँद के लिये बोला करता है। पहले तो एक बूँद भी न मिले यदि प्राणान्त होने पर उसे समुद्र मिल जाय तो किसी काम में नहीं आवा। फिर भगवान ने कहा—कि धैर्य करो, तो भक्त ने कहा कि मेरे प्राण थकित हो गये हैं और शरीर शिथिल हो गया है। धैर्य किस प्रकार करूँ फिर भगवान ने कहा कि तेरे को संसार सागर से तारेंगे तब भक्त ने कहा डूब जाने पर यदि नौका मिलेगी तो किसे तारोगे, भगवान ने कहा कि तेरे में अभिमान है, तो भक्त ने कहा मैं कुछ चीज नहीं और न मेरी कोई चीज है, अतः मेरी रक्षा करो तब भगवान ने आकर उसकी रक्षा की इस प्रकार भगवान को जो श्रद्धा प्रेम और भक्ति पूर्वक जहां भी याद करता है वहीं पर भगवान उसकी सहायता करते हैं।

७—❋ नाम भक्ति महिमा ❋

प्र. नं. १–चौ.–बंदौ राम नाम रघुवर के।
हेतु कृसानु भानु हिमकर के॥
बिधि हरिहर मय वेद प्रान सो।
अगुन अनुपम गुण निधान सो॥

भा०–में श्री रघुनाथ जी के नाम "राम" की वंदना करता हूँ जो कृशानु (अग्नि) सूर्य और हिमकर (चन्द्रमा) का हेतु अर्थात् 'र' 'आ' और 'म' रूप से बीज है। वह राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप है। वह वेदों का प्राण है, निर्गुण उपमा रहित और सद्गुणों का भण्डार है।

चौ०–महा मंत्र जोइ जपत महेसू। काशी मुक्ति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गण राऊ। प्रथम पूजियत नाम प्रभाऊ॥

भा०–जो महा मंत्र है जिसे महेश्वर श्री शिवजी जपते हैं और उनके द्वारा जिसका उपदेश काशी में मुक्ति का कारण है। तथा जिसकी महिमा को गणेश जी जानते हैं। सो इस राम नाम के प्रभाव से ही पहले पूजे जाते हैं।

चौ.–जान आदिकविनाम प्रतापू। भयउशुद्ध करिउल्टाजापू॥
सहस्र नाम सम सुनि शिव बानी। जपि जेई पियसंग भवानी॥

भा०–आदि कवि श्री वाल्मीकि जी राम नाम के प्रताप को जानते हैं जो उल्टा नाम (मरा, मरा) जप कर

पवित्र हो गये। श्री शिवजी के इस वचन को सुन कर कि एक राम नाम सहस्र नाम के समान है पार्वती जी सदा अपने पति शिवजी के साथ राम नाम का जप करती रहती है।

चौ.–हर्षे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषण तिय भूषन तीको।
नाम प्रभाउ जान शिव नीको। काल-कूट फल दीन्ह अमी को॥

भा०–नाम के प्रति पार्वती जी के हृदय की ऐसी प्रीति देख कर श्री शिवजी हर्षित हो गये और उन्हों ने स्त्रियों में भूषण रूप पतिव्रताओं में शिरोमणि पार्वतीजी को अपना भूषण बना लिया। उन्हें अपने अंग में धारण करके अर्द्धाङ्गिनी बना लिया। नाम के प्रभाव को श्री शिवजी भली भांति जानते हैं। जिस प्रभाव के कारण काल-कूट जहर ने उनको अमृत का फल दिया।

दो.–वर्षा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन युग, सावन भादौं मास॥

भा०–श्री रघुनाथजी की भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसी-दासजी कहते हैं कि उत्तम सेवक गण, धान हैं और राम नाम के दो सुन्दर अक्षर सावन भादौं के महीने हैं।

चौ.-आखर मधुर मनोहर दोऊ। वरन विलोचन जन प्रिय जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सब काहू। लोक लाहु परलोक निबाहू॥

भा०–दोनों अक्षर मधुर और मनोहर हैं जो वर्णमाला

रूपी शरीर के नेत्र है। भक्तों के जीवन है तथा स्मरण करने में सबके लिए सुलभ और सुख देने वाले हैं। और जो इस लोक में लाभ और परलोक में निर्वाह करते हैं। (अर्थात् भगवान के दिव्य धाम में दिव्य देह से भगवत् सेवा में नियुक्त रखते हैं)।

कथा नं० १—एक वेणु नाम वाला बड़ा भारी पापी राजा था, उसको मुनियों ने किसी दोष वश शाप देकर मार दिया फिर उसकी भुजाओं के मन्थन से पृथु राजा प्रगट हुआ, ब्रह्माजी ने उसको राज्य सिंहासन पर बैठाया। यह बड़ा प्रतापी राजा हुआ है, इसने कई अश्वमेध यज्ञ किए। जिनको देख कर इन्द्र डर गया। और दो बार यज्ञ वाला घोड़ा चुरा लिया, तब राजा पृथु ने इन्द्र को भस्म करने के लिए बाण अभिमंत्रित कर चलाया तब ब्रह्माजी ने इन्द्र की प्रार्थना से राजा को समझाया कि यज्ञ करने से तुमको जो इन्द्र पदवी मिलेगी वह अनित्य है और राक्षसों का हर समय भय बना रहता है। इसलिए तुम यज्ञ छोड़कर हरि भक्ति रूपी सुधारस पान करो। तब ब्रह्मा की आज्ञा मानकर यज्ञ करना छोड़ कर हरि भक्ति करने लगा। राजा की अनन्य भक्ति से भगवान ने साक्षात् दर्शन दिया। और राजा को कहा कि "वरं ब्रूहि" तब पृथु ने कहा—मेरे को आप के समग्र गुण श्रवण करने

की इच्छा है। और दो कानो से तृप्ति नही होती। इसलिए आप मेरे को दस हजार कान लगा दो। आपके हर एक गुण श्रवण कर तृप्त हो जाऊँ। प्रमाणः—

न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुज सवऽमहत्मात्र हृदयात् मुखच्युतो विध्यत स्वकर्णयुत मेष मे वरः॥ श्रीमद् भागवत स्कं० ४।२०॥

अर्थ—पृथु जी कहने लगे, हे नाथ! महात्माओं के हृदय रूपी मुख से निकला हुआ आपके चरण कमल का मकरन्दरूपी यश श्रवणादि सुख जिन लोगों को प्राप्त नहीं हैं उनको मैं नहीं चाहता। तो भगवान ने कहा—कि फिर क्या चाहता है। पृथु ने कहा कि आप का यश श्रवण करने के लिए दस हजार श्रोत्र (कान) मागता हूँ। तब भगवान कहने लगे कि दस हजार कानों वाला तो कोई आदमी ही नहीं। कोई और वर मांग ले तब पृथु ने कहा मेरा वर तो यही है। और वर की मुझे इच्छा ही नहीं। तब भगवान ने पृथु पर प्रसन्न होकर तथास्तु कहा।

इस प्रकार-श्रवण भक्ति में पृथु राजा की सबसे प्रथम गणना है। गुरु ग्रन्थ साहिब में लिखा है कि एक करोड कान किसी भक्त ने मागे हैं:—कोटि करन दीजहिं प्रभु प्रीतम' हरि गुण सुणअहि अबिनाशी राम। सुणि सुणि इहुमन निरमल होवै, कटिए जम की फांसी राम।

इस प्रकार श्रवण भक्ति और उसका फल शास्त्रकारों ने अनन्त प्रकार का कथन किया है।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति, श्रुत्वा पापं परित्यजेत्।
श्रुत्वा निवर्तते मोहः श्रुत्वा ज्ञानामृतं लभेत्॥

भा०—सुनने से धर्म को जानता है सुनने से पाप को छोड़ता है, श्रवण करने से ही मोह नाश होता है और श्रवण से ही ज्ञानामृत मिलता है।

नीचोऽपि श्रवणेनाशु श्रेष्ठं च प्रतिपद्यते।
श्रेष्ठोऽपि नीचतां याति रहित श्रवणेन च॥

भा०—नीच पुरुष भी सुनने से शीघ्र श्रेष्ठता को प्राप्त हो जाता है। और यदि श्रद्धा से रहित होवे तो श्रेष्ठ पुरुष भी नीचता को प्राप्त हो जाता है।

"श्रुत्वा मोक्ष मवाप्नुयात्"

श्रवण करने से पुरुष सालोकादि चार मुक्तियों को प्राप्त हो जाता है। जैसे पृथु राजा श्रवण करता हुआ ब्रह्म को प्राप्त हुआ। और कोई गुरु द्वारा वेदान्त वाक्यों का श्रवण करके विदेह मुक्ति को प्राप्त होते हैं। जैसे खट्वाङ्ग राजा जब स्वर्ग में देवताओं की सहायता के लिये गया था और अपने बाहुबल से सब दैत्यों को मार कर इन्द्र की विजय करा दी, तब उस राजा पर इन्द्र बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि वर मांगो। जो

आपकी इच्छा हो वह स्वर्ग का पदार्थ ले लो। तब खट्वांग ने कहा कि पहले मेरी आयु बताओ कि कितनी बाकी रहती है फिर मैं वर मांगूगा। राजा खट्वांग के वचन सुनकर इन्द्र ने कहा कि आपकी दो मुहूर्त अर्थात् चार घडी आयु है, तब उसने कहा कि मैं किसी विषय का सुख तथा स्वर्गीय पदार्थ की इच्छा नहीं करता। केवल मेरी विदेह मुक्ति हो जाय, यही चाहता हूँ। मेरे को जल्दी आत्मस्मरण कराइये। तब इन्द्र ने कहा कि आत्मज्ञान मर्त्यलोक में ही हो सकता है। स्वर्ग में नहीं। फिर इन्द्र ने कहा नेत्र बन्द करो। तत्पश्चात् वे दोनों ही मर्त्यलोक अयोध्या पुरी में पहुचे। और राजा ने अपने पुत्र को कहा कि यह राज तुम संभालो और मैं आत्मस्मरण करता हू। एक घड़ी के आत्मस्मरण से उसको आत्मज्ञान होगया। क्योंकि एकाग्र चित से स्मरण करता था।

प्रमाण–एक चित जिन एक छिन धिआयो।
काल फांस के बीच न आयो॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ ते आध।
भगतन सेती गोमटे, जो कीनों सो लाभ॥

इन प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि एकाग्र चित्त वाले को एक घड़ी में ही ज्ञान हो जाता है। राजा

खट्वांग को तो मरणकाल में सर्व वस्तुओं से वैराग्य होकर शुद्ध और एकाग्र मन होने के कारण एक घड़ी में ही ज्ञान हो गया। एक घड़ी मनन अर्थात् निष्ठा में लगाई और अपने को ब्रह्म स्वरूप से चिन्तन किया। चतुर्थ घड़ी में शरीर छूट गया.। और विदेह मुक्त हो गया। ये शान्ति ब्रह्म को प्राप्त हुए पुरुष की स्थिति है। इसको प्राप्त होकर फिर मोहत नहीं होता'। और वंह मरण काल में भी इस निष्ठा में स्थित होकर सुख स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है। जैसे खट्वांग राजा मरणकाल में इन्द्र द्वारा सुन कर इस निष्ठा को प्राप्त हुआ।

खट्वाङ्ग राजा अन्तकाल में देवताओं द्वारा आत्मा को जानकर विदेह मुक्ति को प्राप्त हो गया मुक्त पुरुष आप भी संसार समुद्र से पार हो जाता है और दूसरों का उद्धार करता है। श्री मद्‌भागवत में श्री शुकदेव स्वामी राजा परिक्षित को कह रहे हैं कि खट्वाङ्ग राजा मुहूर्त में अर्थात् दो घड़ी में सब पदार्थों को त्याग कर मुक्त हो गया था। तुमको तो सात दिन का अवकाश मिला है। .इसलिए सबका त्याग कर तू भी मुक्त हो जा। खट्वाङ्ग राजा अपनी आयु का अन्त जानकर एक मुहूर्त में सब को त्याग कर हरि की अभय पदवी को प्राप्त हुआ।

प्र. नं. २—चौ.—कहत सुनत सुमिरत सुठिनीके।

राम लखन सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज संघाती॥

भा०—ये कहने सुनने और स्मरण करने में बहुत ही अच्छे सुन्दर और मधुर हैं। तुलसीदास को तो श्रीराम और लक्ष्मण के समान प्यारे हैं। इनका ("र" और "म" का) अलग अलग वर्णन करने में प्रीति बिलगाती है। अर्थात् बीज मंत्र की दृष्टि से इनके उच्चारण अर्थ और फल में भिन्नता दीख पड़ती है। परन्तु हैं ये जीव और ब्रह्म के समान स्वभाव से ही साथ रहने वाले सदा एक रूप एक रस।

चौ०—नर नारायण सरिस सुभ्राता।
जग पालक बिशेष जन त्राता॥
भगति सु तिय कल कर्ण विभूषण।
जग हित हेतु विमल विधु पूषण॥

भा०—ये दोनों अक्षर नर नारायण के समान सुन्दर भाई हैं। ये जगत का पालन और विशेष रूप से भक्तों की रक्षा करने वाले हैं। ये भक्ति रूपिणी सुन्दर स्त्री के कानों के सुन्दर आभूषण कर्णफूल हैं और जगत के हित के लिए निर्मल चन्द्रमा और सूर्य हैं।

चौ०—स्वाद तोष सम सुगति सुधा के।
कमठ शेष समधर वसुधा के॥

जन मन मंजु कंज मधुकर से ।
जीह यशोमति हरि हलधर से ॥

भा०—ये सुन्दर गति मोक्ष रूपी अमृत के स्वाद और तृप्ति के समान हैं। कच्छप और शेष जी के समान पृथ्वी के धारण करने वाले हैं। भक्तों के मन रूपी सुन्दर कमल में विहार करने वाले भौंरों के समान हैं और जीभ रूपी यशोदा जी के लिए श्रीकृष्ण और बलराम जी के समान आनन्द देने वाले हैं।

दो०—एक छत्र एक मुकुट मनि, सब वर्णन पर जोय।
तुलसी रघुवर नाम के, वर्ण विराजत दोय ॥

भा०—तुलसीदास जी कहते हैं, रघुनाथ जी के नाम के दोनों अक्षर बड़ी शोभा देते हैं जिनमें से (रकार) छत्र रूप रेफ से और दूसरा (मकार) मुकुट मणि (अनुस्वार) रूप से सब अक्षरों के ऊपर है ॥

चौ०—समुझत सरिस नाम अरु नामी ।
प्रीति परस्पर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईश उपाधी ।
अकथ अनादि सु सामुझि साधी ॥

भा०—समझने में नाम नामी दोनों एक से हैं। किन्तु दोनों में परस्पर स्वामी और सेवक के समान प्रीति है (अर्थात् नाम और नामी में पूर्ण एकता होने पर भी जैसे

स्वामी के पीछे सेवक चलता है उसी प्रकार नाम के पीछे नामी चलते हैं। प्रभु श्रीराम जी अपने राम नाम का ही अनुगमन करते हैं। नाम लेते ही वहां आ जाते हैं। नाम और रूप दोनों ईश्वर की उपाधि हैं। ये भगवान के नाम और रूप दोनों अनिर्वचनीय हैं अनादि हैं और सुन्दर (शुद्ध भक्ति युक्त) बुद्धि से ही इनका दिव्य अविनाशी रूप जानने में आता है।

कथा नं. २–कीर्तन भक्ति अर्थात् मुख से परमेश्वर के नामों का उच्चारण करना अथवा दो चार मिलकर सितार आदि वाद्य लेकर भगवान के गुण गायन कर के रात्रि जागरण करना उसका नाम कीर्तन भक्ति है। यह भक्ति बड़े बड़े पापियों को भी मुक्त कर देने वाली है।

हरि हरि करत पूतना तरी, बाल घातिनी कपटहिं भरी॥
सुआ पढ़ावत गणिका तरी, सो हरि नैनों की पुतरी।
सिमरत द्रुपदसुता उधरी, गौतम सती शिला निस्तरी॥

इस तरह कितनी ही पापात्मा स्त्रियां भी उस कीर्तन भक्ति द्वारा तर गई हैं। इसकी सब कथाऐं भागवत रामायण महाभारत आदिकों में प्रसिद्ध हैं। और अनन्त नीच जाति वाले शूद्र भी इस भक्ति द्वारा संसार समुद्र से पार हो गए हैं।

१–वाल्मीक सुपचारों तर्यो, बधिक तरे विचारे।

२–पतित उधारण पारब्रह्म, संत वेद कहंदा।
३–नीच जाति हर जपत्या उत्तम पदवी पाये।
४–ब्राह्मण वैश्य शूद्र और खत्री, डोम चण्डाल मलेच्छ मन सोये। है पुनीत भगवन्त भजन ते आप तरे, तारे कुल दोये।

अजामिल जैसे पापी जो कि एक बार पुत्र निमित्त ईश्वर का नाम लेने से मुक्त हो गये।

पुत्र हेतु नारायण कह्यो, जम कंकर मार बिदारे।
अजामिल को अंतकाल में, नारायण सुधि आई॥
जा गति को योगीश्वर बाचत, सो गति छिन में पाई।
अजामिल पापी जग जाने, निमिष माहिं निस्तारा॥

और भक्ति कौस्तुभ के प्रथम अध्याय में लिखते हैं तथा भागवत पुराण के छठे स्कन्ध अध्याय ३ में भी लिखते हैं।

एतावताऽलमघ निर्हरणाय पुँसा सङ्कीर्तनं भगवतो गुण कर्म नाम्नाम्। विक्रस्य पुत्रमघवान्यदजामिलोऽपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम्॥

नामोच्चारण माहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्र काः
अजामिलोऽपि ये नैव मृत्यु पाशाद मुच्यत॥

अर्थ—हे पुत्रो! हरि के नाम का महात्म्य देखो जिस नाम के प्रभाव से अजामिल भी मृत्यु के पास से मुक्त

हो गया–यह नाम ही पुरुषों के पाप निवृत्त में समर्थ है। देखो महापापी अजामिल पुत्र नाम से नारायण को बुलाता हुआ मर गया और मुक्ति को प्राप्त हो गया। इसलिए ऐसे नाम जपने वाले के पास न जाना अगर जाओगे तो हम तुम दोनों दुखी हो जायेंगे।

गुरु प्र.–जहि साधु गोविन्द भजन कीर्तन नानक नीति।
या हौं यां तू याहि छुटहि निकट न जाई अहु दूत॥
गौड़ी बावन अखरी म. ५-२५६॥

इस वचन का भाव यह है कि धर्मराज अपने दूतों को कह रहे हैं कि जहाँ श्रेष्ठ गुणों वाले साधु लोग बैठे हों अथवा जिन स्थानों में प्रति दिन भक्ति या कीर्तन होता हो वहाँ अगर कोई महा पापी भी मरता हो तो उसको लेने के लिये तुम मत जाना। यदि जाओगे तो हम और तुम दोनो ही न छूटेंगे और दण्ड के भागी हो जायेंगे।

प्रमाण.–न देव सिद्ध परि गीत पवित्र गाथा।
ये साधवः सम दृशो भगवत् प्रपन्ना॥
ताननोप सीदत्त हरे गदयाऽभि गुप्तान्।
नैषां वयं नच वयः प्रभवाय दण्डे॥

अर्थ०–जो साधु लोग समदर्शी ईश्वर परायण हैं। वे देवता और देव सिद्धियों के बराबर हैं। जिनके पवित्र वचन हैं उनके समीप न जाना। जो गुप्त रीति से नाम

उच्चारण करते हैं। उनको न मैं न काल ही दण्ड दे सकता है। यह सुनकर दूतों ने कहा कि दण्ड देने के योग्य कौन है तब यमराज कहने लगा—

श्लो०—जिह्वा न वक्ति भगवद् गुण नाम धेयम्।
चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम्॥
कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदाऽपि।
तानानयध्वम सतोऽकृत विष्णु कृत्यान्॥

अर्थ—हे यम दूतो! तुम तिनको ले आओ जिनकी जिह्वा भगवान के नाम तथा गुणों को नहीं उच्चारण करती और जिनका चित्त भगवान के चरण कमलों का स्मरण नहीं करता। और जिसका शिर एक बार भी भगवान के अग्रभाग में नहीं झुकता। तिन असत्य वादी और भगवान से विमुखों को तुम ले आना। तथा ऐसे पुरुषों के सब अवयव निष्फल हैं। यह वार्ता रामायण और भागवत में लिखी है।

चौ०—जिन हरि कथा सुनहि नहीं काना,
श्रवण रंध्र अहि भवन समाना।
नयनन सन्त दरस नहिं देखा,
लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुमरि सम तूला,
जे न नमत गुरु हरि पद मूला॥

जिन हरि भक्ति हृदय नहीं आनी,
जीवन शव समान ते प्रानी ॥
जे नहिं करहिं राम गुण गाना,
जीह सो दादुर जीह समाना ॥
कुलिश कठोर निठुर सोइ छाती,
सुनि हरि चरित न जो हरखाती ॥
गिरिजा सुनहु राम की लीला,
सुरहित दनुज विमोहन शीला ॥

अर्थ०—परमात्म भक्ति के बिना पुरुष नीच पशुओं के बराबर हैं। अर्थात् कुत्ते ग्रामीण सुअर ऊष्ट्र और गधे के बराबर हैं। और जिन्होने कानों द्वारा भगवान विष्णु के नाम नहीं सुने उनके कान सर्प के बिल के समान व्यर्थ हैं। और जिनकी जिह्वा परमेश्वर के गुणों का गायन नहीं करती वह दुष्ट जिह्वा नहीं, प्रत्युत दादुर की जिह्वा के बराबर है। जिसका शिर भगवान को और सन्तों को नहीं नमता वह वस्त्र, भूषण, मुकुट युक्त हुआ भी केवल भार रूप ही है। जिसके हाथ सन्त सेवा से शून्य हैं। स्वर्ण कंकण युक्त भी मृतक के तुल्य हैं। और जिसके नेत्र भगवान् और सन्तों के दर्शन नहीं करते वे पूछ चन्दों के बराबर जड़ हैं। और जो पाद भगवान के मंदिर में नहीं जाते और सन्तों के पास और तीर्थ यात्रा में

चल कर नहीं जाते वे पाद वृक्षों की जड के बराबर हैं। और जो भगवान के चरणों को कभी स्पर्श नहीं करता वह मनुष्य जीवित भी शव के तुल्य है। तथा जिसका हृदय भगवान के गुण श्रवण करके प्रसन्न नहीं होता वह हृदय पत्थर की तरह कठोर है। वह पुरुष मृतक के तुल्य है। और परमेश्वर के गुण श्रवण करके जिसका हृदय प्रफुल्लित नहीं हुआ और नेत्र सजल रोम हर्ष युक्त नहीं हुए उसके सब अंग मृतक के बराबर निष्फल हैं।

जो पुरुष ईश्वर चिन्तन नहीं करते वे पशुओं के समान है उनका जीना, श्वास लेना, खाना और निद्रादिक करना सब व्यर्थ है। वृक्ष क्या चिरकाल नहीं जीते, धौंकनी क्या श्वास नहीं लेती, ग्रामीण पशु क्या खान-पान मल विसर्जन आदि नहीं करते।

नैण न देखहीं साधु से नैण बिहालिया।
करन न सुनही नाद करन मुँद घालिया॥
रसना जपे न नाम तिल तिल करि काटिए।
हरि हां जब बिसरै गोविन्द राय दिनो दिन घटिऐ॥

फुन्हे म. ५–१३६२

इस प्रकार भक्ति हीन के सब अंगों का शास्त्रकारों ने निषेध किया है और कीर्तन भक्ति का महात्म्य सर्व-साधनों से श्रेष्ठ है।

नानक रहै सुन रे मना, कर कीर्तन होइ उधार । गऊडी ।
हरि कीरति साधु सगत है, सिरि करमन के करमा ॥
दो०—आराध बोलध कथन पुनः कीर्तन गावन भाख।
और उच्चारणादि ले, सब कीरति में राख ॥
१. आरख—आखा जीवा विसरे मर जाऊँ ।
आखणि अउखा साचा नाऊ। आरख वाला स्यिा वेचारा ॥
सिफती भरे तेरे भडारा ।
२. बोलख—बोलहु जस जिह्वा दिन राति । गउड़ी ।
बोलहु राम करै निस्तारा, गुरु प्रसाद रतन हरि लाभै
मिटै अगिआन होइ उजियारा । आसा० म० ४, ८००॥
बोलि हरिनाम सफल सा घरी ।
गुरु उपदेसि सब दुख पर हरी । भैरऊ म. ४ ६६८ ।
नवे छिद्र स्रवहि अपवित्रा, बोलि हरि नाम पवित्र सभि किता॥
। पारु० म. ४. ६६८ ।
कीरति प्रभु की गावो मेरी रसना ॥कानडा ॥
भगत तेरै मन भावद, दरि सोहनि कीर्ति गावद ।
कबीर केसो केसो कूकिये न सोईए असार ।
रात दिवस के कूकने कबहूँ कि सुनै पुकार। श्री कबीर १२७६
अर्थ—भगवान के दर्शन करके भक्त गद्‌-गद् कठ होकर
चरणों में लिपट गया भगवान ने कहा कि मैं तुम पर
बड़ा प्रसन्न हूँ इस लिए तू वर माग । अर्थात् पुत्र, स्त्री,

धन-धान्य राज जिस चीज की इच्छा हो वह माग ले, भक्त ने कहा क्या मागूं—"छिनु थिर न रहाई'।

देखत नैन चल्यो जग जाई ॥

प्र. नं. ३—चौ०—को बड छोट कहत अपराधू।

सुनि गुन भेद समुझिहहि साधू ॥

देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ज्ञान नहिं नाम बिहीना॥

भा०—इन नाम और रूप में कौन बड़ा है कौन छोटा है यह कहना तो अपराध है। इनके गुणों का तारतम्य (कमी वेशी) सुनकर साधु पुरुष स्वयं ही समझ लेंगे। रूप नाम के अधीन देखे जाते हैं नाम के बिना रूप का ज्ञान नहीं हो सकता।

चौ०—रूप विशेष नाम बिनु जानें।

करतल गत न परहिं पहिचाने ॥

सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे।

आवत हृदय स्नेह विशेषे ॥

भा०—कोई सा विशेष रूप बिना उसका नाम जाने हथेली पर रक्खा हुआ भी पहचाना नहीं जा सकता और रूप के बिना देखे भी नाम का स्मरण किया जाय तो विशेष प्रेम के साथ वह रूप हृदय में आ जाता है।

चौ०—नाम रूप गति अकथ कहानी।

समुझत सुखद न परति बखानी।

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी।

उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी ॥

भा०—नाम और रूप के गति की कहानी (विशेषता की कथा) अकथनीय है, वह समझने में सुखदायक है परन्तु उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। निर्गुण और सगुन के बीच में नाम सुन्दर साक्षी है और दोनों का यथार्थ ज्ञान कराने वाला चतुर दुभाषिया है।

दो०—राम नाम मणि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।

तुलसी भीतर बाहिरेहु, जौं चाहेसि उजियार ॥२१॥

भा०—तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तू भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला चाहता है तो मुख द्वार की जीह रूपी देहली पर राम नाम रूप मणि दीपक को रख ॥२१॥

चौ०—नाम जीह जपि जागहिं जोगी।

बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥

ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा।

अकथ अनामय नाम न रूपा ॥

भा०—ब्रह्मा के बनाये हुए प्रपंच (दृश्य जगत) से भली भाँति छूटे हुए वैराग्यवान् मुक्त योगी पुरुष इस नाम को ही जीभ से जपते हुए तत्त्वज्ञान रूपी दिन में जागते हैं। और नाम तथा रूप से रहित अनुपम अनिर्वचनीय

अनामय ब्रह्म सुख अनुभव करते हैं।

चौ०—जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ।
नाम जीह जपि जानहि तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए।
होहिं सिद्ध अणिमादिक पाए॥

भा०—जो परमात्मा के गूढ़ रहस्य को (यथार्थ महिमा को) जानना चाहते हैं वे (जिज्ञासु) भी नाम को जीभ से जप कर उसे जान लेते हैं। लौकिक सिद्धियों के चाहने वाले अर्थार्थी साधक लौ लगा कर नाम का जप करते हैं और अणिमादि आठों सिद्धियों को पाकर सिद्ध हो जाते हैं॥२॥

चौ०—जपहिं नाम जन आरत भारी।
मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी॥
राम भगत जग चारि प्रकारा।
सुकृति चारिऊ अनघ उदारा॥३॥

भा०—संकट से घबड़ाये हुए आर्तभक्त नाम जप करते हैं तो उनके बड़े भारी बुरे बुरे संकट मिट जाते हैं और वे सुखी हो जाते हैं। जगत में चार प्रकार के (१--अर्थार्थी, धनादि के चाह से भजने वाले, २—आर्त, संकट की निवृत्ति के लिए भजने वाले, ३—जिज्ञासु, भगवान को जानने की इच्छा से भजने वाले। ४—ज्ञानी, भगवान को तत्त्व से

जानकर स्वभाविक ही प्रेम से भजने वाले) राम भक्त हैं। और चारों ही पुण्य आत्मा पाप रहित और उदार हैं॥३॥

चौ०—चहुँ चतुर कहुँ नाम अधारा।
ज्ञानी, प्रभुहिं विशेष पियारा॥
चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊँ।
कलि विशेष नहिं आनउपाऊँ॥

भा०—चारों ही चतुर भक्तों को नाम का ही आधार है। इनमें ज्ञानी भक्त प्रभु को विशेष प्रिय है। यों तो चारों युगों में चारों ही वेदों में नाम का प्रभाव है। परन्तु कलियुग में विशेष रूप से है। इसमें तो नाम को छोड़कर दूसरा कोई उपाय ही नहीं है।

कथा नं० ३—न पुत्र दाराम् न गृहान् न बन्धून् याचे, न च उच्चैःकुलवर्तमानान्। भक्ति हरेः त्वम् च चरणारविन्दे। तदेतन् मे अस्तु तव प्रसादात्॥ भक्ति रसाय॥

अर्थ—हे हरे मैं स्त्री पुत्र बन्धु घर उच्चकुल धन नहीं मांगता, केवल आपके चरणारविन्द की भक्ति मेरे को आपकी कृपा से होवे। क्योंकि बिना आपकी कृपा के किसी को भी अभी तक भक्ति नहीं मिली। तब भगवान कहने लगे कि जैसी भक्ति चाहता है वैसी मांग ले, भगत ने कहा कि कीर्तन भक्ति दीजिये। परन्तु मेरी एक जिह्वा आप ही के अनन्त नाम उच्चारण कर थकित हो जाती है।

और चित्त तृप्त नहीं होता। इसलिए दो जिह्वायें दें। जिससे आप का नाम उच्चारण करता रहूँ। तब भगवान ने कहा तथास्तु। तो भगत के मुँह में दो जिह्वा हो गई। दोनों से नाम जपने पर भी चित्त तृप्त नहीं हुआ। तब पहले से भी अधिक दुःखी हो भगवान को याद किया। भगवान फिर प्रगट होगये और कहा क्या चाहता है। तब भगत ने कहा जिह्वा चाहता हूँ। भगवान ने कहा कि दो जिह्वा तो तुम्हारे पास है। प्रेमी ने कहा भगवन दो से मेरी तृप्ती नहीं होती। तो भगवान बोले कि कितनी जिह्वायें चाहिए, भगत ने कहा कि एक लाख।

कर कृपा मेरे प्रीतम स्वामी, नेत्र देखें दरश तेरा राम।
लाख जिह्वा देहु मेरे प्यारे, मुख हर-हर आराधे मेरा राम॥
हरी अराधे यम पंथ साधे, दुःख न व्यापे कोई।
जल थल महियल पूरन स्वामी, यत् देखा तत सोई॥
॥ सुही महला ५।पृष्ट ७८० ॥

तब भगवान कहने लगे कि तेरी लाखही जिह्वा होंगी भगत लाख जिह्वाओं से नाम जपने लगा। परन्तु फिर भी तृप्ति नहीं हुई। फिर भगवान को याद किया, भगवान उसके प्रेम में बँधे हुए आगये। और कहा कि क्या चाहता है। भगत ने कहा कि बीस लाख जिह्वा चाहता हूँ परन्तु एक-एक जिह्वा लाख-लाख ईश्वर नाम उच्चारण

करे। प्रमाण—

इकदू जीभौ लख होहिं, लख होवहिं लख वीस।
लख-लख गेड़ा आखीअहिं एक नाम जगदीश॥
॥ जपु जी साहिब ३॥

अर्थ—भगवान ने कहा, अच्छा ऐसा ही होगा—परन्तु भक्त को फिर तृप्ति नहीं हुई। तब भगवान को फिर याद किया तो भगवान आगये और कहा कि क्या चाहता है। तब भगत ने कहा:—

श्लोक—श्री नन्दात्मज भक्त वत्सल हरे मे प्रार्थना वैशृणु। ब्रह्माण्डानि मुखानि मे प्रति प्रति दिनं यावन्ति तेलोमसु॥ हे कृष्ण इति वदन्तुताः प्रति मुखं जिह्वाश्च मे तावती। स्युर्दानमिदं देहि तथास्त्वित्युक्तवान्। गुरु मुख रोम रोम हरि धिआवै॥

जिह्वा एक होय लख कोटी लख कोटी २ धिआवैगो।
नानक नावै की मन-सुख मन त्रिपतै हरिरस खाइ॥

अर्थ—हे श्री नन्द जी के नन्दन। हे भक्तवत्सल। मेरी यह अन्तिम प्रार्थना है श्रवण करो। मेरे को यह वरदान दो। भगवान ने पूछा क्या? तब भक्त ने कहा कि मेरे को इतने मुख दो और एक एक मुख में उतनी ही जिह्वायें दो और एक एक जिह्वा से उतने ही अपने नाम का उच्चारण करवाओ। भगवान ने कहा मेरे एक-

एक रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड हैं तब भक्त ने कहा मेरे शरीर में कोटि कोटि मुख हो जावें और एक एक मुख में कोटि २ जिह्वा हो जावें और कोटि कोटि नामों के कई चक्कर लगावें। यह मैं आप से वरदान मांगता हूँ। श्री भगवान ने कहा अच्छा ऐसा ही होगा परन्तु तीन दिन के अन्दर ही तुम्हारा शरीर छूट जावेगा इस प्रकार वह भक्त तीन दिन राम नाम का रस लेकर विदेह मुक्त हुआ। देहपात से पहिले श्री भगवान ने आकर भक्त से कहा कि चार प्रकार की मुक्ति में से जो आपकी इच्छा हो वह लेलो। परन्तु भक्त ने नहीं माना। क्योंकि भक्त निष्काम होते हैं भगवान से अनित्य सुख को (विषय सुख को) लेना नहीं चाहते। इस प्रकार भक्तों के लक्षण श्री भागवत में कपिल मुनि जी ने अपनी माता देवहूति को कहे हैं:—

श्लो.—मद्गुणः श्रुति मात्रेण मयि सर्व गुणाशये।
मनो गति रविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसोऽम्बुधौ॥११॥
लक्षणं भक्ति योगस्य निर्गुणस्य ह्युदा हृतम्।
अहैतुक्यं व्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे॥१२॥
सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्यैकत्वम् युतः।
दीय मानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवने जनाः॥१३॥
स एव भक्ति योगाख्य, आत्यन्तिक उदाहृतः।
ये नाति व्रज्य त्रिगुणंमद्भावयोपपद्यते॥१४॥

अर्थ—कपिल मुनि जी अपनी माता देवहूति को कहते हैं कि जो भगत परमात्मा के गुण सर्व मात्र से गुणों की खान मेरे में निरंतर मन की वृत्ति लगाते हैं, जैसा गंगाजी का प्रवाह निरंतर समुद्र में प्रवेश करता है। ऐसे जिन की वृत्ति मेरे में लीन होती है वे भक्त कहलाते हैं, यह लक्षण निर्गुण भक्ति के कथन किये हैं। जो पुरुषोत्तम भगवान में निष्काम भक्ति करते हैं। भक्तों को चार प्रकार की मुक्ति की कामना तो क्या होती थी बल्कि दी हुई चार प्रकार की मुक्तियां अर्थात् सालोक्य सारूप्य सामीप्य सायुज्य इन्हें भी नहीं लेते। किन्तु मेरी ही भक्ति मांगते हैं। इसलिये यह अत्यन्त भक्तियोग कहा जाता है। जिस भक्ति योग से त्रैगुण्यात्मक माया को त्याग कर मेरे शुद्ध-सच्चिदानन्द स्वरूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार कीर्तन भक्ति का स्वरूप शास्त्रकारों ने लिखा है।

जानत है महिमा अहिसेस, सु नामहि की प्रताप बड़ाई।
कानन सैलनि सो अवनि, प्रसनहिं लियो जिन सीस उठाई॥
नाम महातम शंकर जानत, कण्ठहलाहल लीन पचाई।
आतमभू मन रीति पछानत, जा बल सो प्रपंच उपाई॥

इस प्रकार नाम का महातम्य सब ही कहते हैं परन्तु नाम का मूल्य किसी ने नहीं कहा क्योंकि नाम अमूल्य-वस्तु है।

बहु शास्त्र बहु स्मृतियाँ पेखे सर्व ढंढोल।
पूजसि नाहिं हरि हरे नानक नाम अमोल॥
उठत बैठत सोवत नाम। कहु नानक जन के सदकाम॥
किनका एक जिसु जीय बसावै। ताकी महिमा गनी न आवै॥
प्र. नं. ४—दो.—सकल कामना हीन जे, राम भक्ति रसलीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृदे, तिन्हहु किये मन मीन॥

भा०—जो सब प्रकार की भोग और मोह की कामनाओं से रहित और श्री रामभक्ति के रस में लीन हैं उन्होंने भी नाम के सुन्दर प्रेम रूपी अमृत के सरोवर में अपने मन को मछली बना रखा है। (अर्थात् वे नाम रूपी सुधा का निरन्तर आस्वादन करते रहते हैं। क्षणभर भी उससे अलग होना नहीं चाहते॥२२॥

चौ०—अगुन सगुन दोऊ ब्रह्म स्वरूपा।
अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड़ नाम दुहूते। किए जेहि जुग निज-बस-निज बूते॥

भा०—निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। ये दोनों ही अकथनीय अथाह अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति में नाम इन दोनों से बड़ा है जिसने अपने बल से दोनों को अपने वश में कर रखा है।

चौ०—प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जनकी।
कहऊँ प्रतीति प्रीति रुचि मन की।

एक दारु गत देखिय एकू । पावक सम जुग ब्रह्म विवेकू ॥
उभय अगम जुग सुगम नामते । कहेऊँ नाम बड़ ब्रह्म राम ते ॥
व्यापक एक ब्रह्म अविनाशी । सत चेतन घन आनन्द राशी ॥

भा०—सज्जन गण इस बात को मुझ दास की ढिठाई या केवल काव्योक्ति न समझें । मैं अपने मन के विश्वास प्रेम और रुचि की बात कहता हूँ । (निर्गुण और सगुण) दोनों प्रकार के ब्रह्म का ज्ञान अग्नि के समान है । जो काष्ठ के अन्दर है परन्तु दीखती नहीं । और सगुण उस प्रकट अप्रकट के भेद से भिन्न मालूम होती है । इसी प्रकार निर्गुण और सगुण तत्त्वतः एकही हैं । इतना होने पर भी दोनों ही जानने में बड़े कठिन हैं । परन्तु नाम से दोनों ही सुगम हो जाते हैं । इसी से मैंने नाम को (निर्गुण) ब्रह्म से और (सगुण) राम से बड़ा कहा है । ब्रह्म व्यापक है एक है अविनाशी सत्ता चैतन्य और आनन्द की घन राशि है।

चौ.–अस प्रभु हृदय अछत अविकारी ।
सकल जीव जग दीन दुखारी ॥
नाम निरूपन नाम जतन ते । सोऊ प्रगटत जिमिमोल रतन ते ।

भा०–ऐसे विकार रहित प्रभु के हृदय में रहते भी जगत के सब जीव दीन और दुखी हैं । नाम का निरूपण करके नाम के यथार्थ स्वरूप महिमा रहस्य और प्रभाव

को जानकर) नाम का जतन करने से (श्रद्धा पूर्वक नाम जप रूपी साधन करने से) वही ब्रह्म ऐसे प्रकट हो जाता है जैसे रतन के जानने से उसका मूल्य।

दो०—निर्गुण से एहि भांति बड़, नाम प्रभाव अपार।
कहऊँ नाम बड राम ते, निज विचार अनुसार॥

भा०—इस प्रकार निर्गुण से नाम का प्रभाव अत्यन्त बड़ा है। सब अपने विचार के अनुसार कहता हूँ कि नाम सगुण राम से भी बड़ा है।

कथा न. ४—दो.—अधिक बड़ानत आपते, जन महिमा रघुवीर।
सवरी पग के परस ते, शुद्ध भयो सर नीर॥

अर्थ—जब श्री रामचन्द्रजी महाराज पम्पा सरोवर पर पहुँचे तब ऋषियों ने उससे प्रार्थना की कि महाराज पम्पा सरोवर में कीड़े पड गये हैं आप अपने चरण स्पर्श कर के जल शुद्ध कर दीजिये। तब श्री रामचन्द्र जी कहने लगे कि जिनके चित्त में रागद्वेष नहीं उनके चरणों में यह शक्ति है और उनके ही चरण धो के जल में पाने से जल शुद्ध होगा।

स्वामी से सेवक बड़ा चारों युग प्रमाण।
सेतु बांध रघुवर गये फांद गयो हनुमान॥

हनुमान जब गिरि धरयो गिरधर कह न कोय।
तासे जिनका हरि भयो गिरधर २ होय॥

भा०—चाहे आप मेरे चरण धोकर जल में डालें परन्तु सरोवर का जल शुद्ध नहीं होगा। इस प्रकार कह कर श्री रामचन्द्र जी ने अपने चरण धुलाये और वह जल सरोवर में डालने से सरोवर शुद्ध न हुआ फिर श्री लक्ष्मण जी के चरण धुला कर सरोवर में डाला परन्तु फिर भी जल शुद्ध नहीं हुआ। फिर सब ऋषियों के चरणों का जल डालने से भी सरोवर के कृमि दूर न हुए तब श्री रामचन्द्र जी कहने लगे कि हमारा रावण के साथ लक्ष्मण का मेघनाद के साथ और तुम लोगों का सबरी के साथ द्वेष है। इसलिए जल शुद्ध नहीं हुआ। परन्तु भिलनी का किसी के साथ द्वेष नहीं है।

इसलिये उसके चरण धोकर जल डालने से कृमि दूर होंगे। जब भिलनी के चरण धोकर जल डाला तब पम्पा सरोवर का जल शुद्ध और निर्मल हो गया। इस प्रकार श्री रामचन्द्र जी ने पाद सेवन रूप भक्ति का महात्म्य दिखलाया। जब श्री रामचन्द्र जी, महाराज विश्वामित्र का यज्ञ संपूर्ण करके और विश्वामित्र को राजा जनक की तरफ से निमंत्रण आने पर विश्वामित्र जी के साथ श्री रामचन्द्र जी रास्ते में जा रहे थे तो गंगा के किनारे पर गौतम जी के आश्रम पर शिला रूप से पड़ी हुई अहिल्या को चरणस्पर्श से शापान्त किया। वह

दिव्य स्वरूप धारण कर स्तुति करती हुई स्वर्ग को चली गई। यह दशा देख कर मल्लाह ने भी श्री रामचन्द्र जी को चरण धोये बिना नाव में चढ़ने न दिया। क्योंकि उसके हृदय में चरण धोने का भाव भरा हुआ था।

प्रमाणः—चरण साधु के धोय धोय पिऊ,

अरपि साधु कउ अपना जिउ॥ गौड़ी सुखमनी म. ५पृ.२८३

श्लो.—भक्ति द्रोह करा ये च, ते सीदन्ति जगत् त्रये।
दुर्वासा दुःख मापन्नः पुरा भक्ति विनिन्दकः॥
ये मे भक्त जनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद् भक्तानाञ्च ये भक्ताः ते मे भक्त तमा मताः॥
॥ भक्ति कौस्तुभ अ. ५।४३।४४ ॥

अर्थ—जो भक्त से द्रोह करता है वह तीनों लोकों में दुःख पाता है—जैसे भक्त अम्बरीष के साथ द्रोह करने से दुर्वासा दुःख को प्राप्त हुआ था।

, हे अर्जुन! जो मेरी भक्ति करते हैं और साधु-सन्तों की निन्दा करते हैं वे मेरे भक्त नहीं हैं। जो मेरे भक्तों के भी भक्त हैं वे उत्तम भक्त हैं। राजा अम्बरीष बाल्या-वस्था से ही श्री कृष्णचन्द्र जी और रुक्मणी जी का पूजन करता था। उसकी एक सौ रानियाँ थीं परन्तु ठाकुर पूजा से उसको अवकाश ही नहीं मिलता था। जो कि रानियों से बात चीत न करके सारा दिन हरि सेवा में ही लगाया

करता था और अपने हाथ से मन्दिर की सफाई करता था। उन रानियों में से एक प्रतीची नाम राजा की कन्या हरि भक्ति करती थी उसने प्रतिज्ञा की थी कि मै राजा अम्बरीष के साथ ही विवाह कराऊँगी और किसी से न कराऊँगी। उसके पिता ने राजा के पास एक ब्राह्मण को भेजा कि हमारी लड़की से विवाह करलो राजा अम्बरीष ने कहा कि मेरे पास तो सौ रानियां हैं मेरे को हरि सेवा से अवकाश नहीं मिलता इसलिए मेरी शादी करने की इच्छा नहीं। ब्राह्मण ने जाकर कन्या को कहा कि वह नहीं मानता तब कन्या ने पिता को कहा कि एक बार फिर ब्राह्मण को राजा के पास भेजो यदि वह मेरे साथ विवाह करलें तो अच्छा है। नही तो मैं अपना शरीर त्याग दूँगी। फिर ब्राह्मण ने आकर राजा अम्बरीष को कहा कि उस कन्या ने प्रतिज्ञा की है अगर आप उसके साथ विवाह नहीं करोगे, तो वह शरीर छोड़ देगी। राजा ने कहा अच्छा मैं विवाह करने स्वयं तो नहीं आऊँगा। क्योंकि मेरे को हरि पूजन से अवकाश नहीं इसलिए यह मेरी तलवार ले जाओ और उसके साथ ही शादी करा लाओ। जब वह कन्या शादी कर अम्बरीष के महलों में आई तब राजा ने उसको दर्शन भी नहीं दिया, नवविवाहिता रानी ने विचार किया कि किस तरह

राजा के दर्शन करुँ ? पहर रात्री रहते ब्रह्ममुहूर्त में राजा स्नान करके अपने हाथों से प्रतिदिन ठाकुरजी का मन्दिर साफ किया करता था। इसी समय उस रानी ने अवकाश पाकर जबकि राजा स्नान को जाते, तब महारानी स्नान करके मन्दिर को स्वयं साफ कर दिया करे और पूजा की सब सामग्री इकट्ठी करके राजा के आने से प्रथम ही चली जाया करे।

जब राजा स्नान करके आता तो मन्दिर की सफाई तथा पूजा की सब सामग्री देख कर आश्चर्यचकित होता था कि मेरे से पूर्व ही आकर कौन भक्त पूजा कर जाता है। ऐसा विचार कर इस बात का पता लगाने के लिए एक दिन छिप कर बैठ गया। इतने में वह रानी आकर ठाकुरजी की प्रेम से सेवा करने लगी तो राजा ने उससे पूछा कि तू कौन है ? तो उसने कहा मैं आपकी नव-विवाहिता रानी हूँ आपके दर्शन की अभिलाषा कर यहां आई हूँ। राजा उस पर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि मेरा प्रतिदिन आकर दर्शन करो। परन्तु मुझे तुम्हारे पास आने का अवकाश, नहीं और तुम भगवान का पूजन करने के लिए दूसरा मन्दिर बनवालो। इस मन्दिर में मैं ही पूजन करूँगा। महाराज की आज्ञा पाकर रानी ने दूसरा मन्दिर बनवाया उसमें राधाकृष्ण की मूर्ति स्थापित

की, रानी आप वीणा लेकर ठाकुरजी के सामने गायन तथा नृत्य किया करती और भगवान के भोग के लिए हलवाई लगवा कर दिन भर पकवान तैयार कराया करती थी। सारे शहर में डोंडी पिटवा दी कि शहर का कोई पुरुष भूखा न रहे सब कोई ठाकुर के प्रसाद का भोजन करें। इस अन्नक्षेत्र तथा ईश्वर की भक्ति के प्रभाव से रानी का यश सारे शहर में फैल गया। तब राजा भी अपनी रानी का यश सुनकर एक दिन अपनी रानी का प्रेम देखने के लिए उनके मन्दिर में गया और देखा कि रानी ठाकुर जी के आगे वीणा लेकर प्रेम में बड़ी मग्न हो, भगवान का यश गा रही है। राजा यह देख कर अति प्रसन्न हुआ और रानी के सम्मुख गया तब रानी अपने पतिदेव के चरणों में गिर पड़ी। राजा ने उसे प्रेम से उठा कर कहा, कि अगर मेरी आज्ञा मानो तो जैसे पहले प्रेम से गायन करती थी, वैसे ही वीणा बजाकर फिर गायन करो। अपने पतिदेव की आज्ञा मान कर रानी फिर पहले की भाँति प्रेम से भगवान के यश को गाने लगी। तब राजा भी प्रेम में मग्न हो भगवान का यश गाने लगा। इस प्रकार राजा और रानी दोनों रात दिन ठाकुर जी के आगे गायन करने लगे। राजा सब राज काज भूल गया, सारे शहर में किंवदन्ति फैल गई, कि

राजा अपनी नव-विवाहित रानी पर प्रसन्न होकर रात दिन उसी के पास रहता है। तब अन्य सौ रानियों ने विचार किया कि हम भी अपना २ ठाकुर मन्दिर बनवाएँ और उसमें मूर्ति स्थापित कर उनके आगे गायन तथा नृत्य करें तो पतिदेव हमारे पर भी प्रसन्न हो कर दर्शन देंगे। परस्पर यह विचार करके उन सौ रानियों ने भी अलग २ सौ मन्दिर बनवाए और हाथों में वीणा लेकर प्रेम सहित यश गान करने लगीं तब राजा उन पर भी प्रसन्न हुआ और सबको दर्शन देने लगा। इस प्रकार राजा तथा एक सौ एक रानियाँ रात-दिन हरि भक्ति में तल्लीन रहा करती थीं। राजकाज का कुछ पता नहीं कि क्या हो रहा है तब भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी कि भक्त तो मेरे परायण हो रहा है और तुम उसका मन राजकार्य सम्भालो। सुदर्शन चक्र भगवान की आज्ञा मानकर अम्बरीष राजा के राज्य की रक्षा करने लगा। जब बहुत काल व्यतीत होगया तब एक दिन कार्तिक मास की एकादशी आई, तब राजा ने व्रत रक्खा और द्वादशी को प्रातःकाल छ अरब गौओं को अलंकृत करके ब्राह्मणों को दान दिया इतने में दुर्वासा ऋषि आ पहुँचे, राजा अम्बरीष यह सूचना पाते शीघ्र ही उनके पास गया और नमस्कार करके सेवा पूछी, तब दुर्वासा ने कहा कि हम

भूखे हैं भोजन करेंगे। राजा ने कहा कि भोजन तैयार है। आप अभी चलकर भोजन कीजिये, तब दुर्वासा ने कहा कि हम स्नान संध्या करके भोजन करेंगे तो राजा ने प्रार्थना की महाराज जल्दी आना, क्योंकि द्वादशी उदय तिथि केवल दो घडी है और मुझे द्वादशी में व्रत उपार्जन करना है इस प्रकार बहुत प्रार्थना से दुर्वासा जी को कहा अब दुर्वासा ऋषि स्नान को गए तो बहुत देर लगादी, वापस नहीं आए तब राजा को दोनों तरफ से भय हुआ, यहाँ तो मुनिजी का शाप और उधर व्रत का भंग ब्राह्मणों को बुला कर अपना संदेह सुनाया तब ब्राह्मणों ने कहा कि ठाकुर जी का चरणामृत लेकर व्रत उपार्जन करलो इसमें कुछ दोष नहीं। तब राजा ने चरणामृत लेकर व्रत उपार्जन किया और दुर्वासा ऋषि की प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु दुर्वासा ऋषि मध्याह्नकाल में आये जब उनको पता लगा कि हमारे को निमन्त्रण देकर हमसे पूर्व ही ठाकुर जी का चरणामृत ले चुका है, तब दुर्वासा ऋषि क्रोध करता हुआ कहने लगा कि कहां है राजा अम्बरीष? इस प्रकार क्रोध करके राजा के पीछे दौड़ा तब सारे नगर में हाहाकार हो गया तब राजा की रक्षा के लिए भगवान ने सुदर्शन चक्र मुनि के पीछे छोड़ा।

मुनि इस सुदर्शन चक्र के तेज को न सहन कर सका

मन्दिर मन्दिर में छिपता रहा परन्तु चक्र ने पीछा न छोड़ा फिर वह डर कर समुद्र में प्रवेश कर गया परन्तु वहाँ पर भी चक्र पीछे-पीछे ही रहा फिर इन्द्रादि सप्त लोकों में गया वहाँ भी सुदर्शन चक्र ने पीछा नहीं छोडा तब दुर्वासा-ऋषि ब्रह्मलोक में गया ब्रह्माजी ने दूर से ही देख कर दरवाजे बन्द कर लिए और कहा कि जा २ तू तो भक्त विरोधी है इसलिए तेरी रक्षा के लिए मैं समर्थ नहीं हूँ वहाँ से लौट कर कैलाश में शिवजी की शरण में गया कि अपना अंश जान कर रक्षा करेंगे तो शिवजी के पास जाकर "पाहिमाम, पाहिमाम" कहने लगा तब शिवजी ने कहा— शिव उवाच—

शिव कह निकर निकर इतते,
जाओ जाओ आयो मुनि जितते।
रक्षा करण मोर गति नाहिं,
साधु विरोधी कुशल कहु काही॥
यह कैलाश भस्म है जै है,
गणन सहित मोहि चक्र जरै है।
तब मुनि कहियो बहुरि शिर नाई,
नहि रचहु तो कहहु उपाई॥
कहयो शम्भु वैकुण्ठहि जाहु,
रक्षण करे रमा कर नाहु।

शंभु वचन सुन भग्यो मुनीसा,
गयो वैकुण्ठ जहाँ जगदीशा ॥
गिरो पाहि कहि चरनन मूला,
होहु नाथ मो पर अनुकूला ।
दो०—मैं जान्यो नहिं रावरे दासन को प्रभाव ।
तांते अब नहि देखियत अपनो कहूँ बचाव ॥

अर्थ—इस प्रकार दुर्वासा मुनि शिवजी के पास से विष्णु जी की शरण में गया, उन्होंने भी कहा कि मैं भक्तों के वश हूँ । इसलिए भक्त को जाकर प्रसन्न करो तब सुदर्शन चक्र तुम्हारा पीछा छोड़ेगा, दुर्वासा मुनि ने भयभीत होकर भक्त अम्बरीष से अपना अपराध क्षमा कराया तथा उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर सुदर्शन चक्र से मुक्त हुआ ।

प्र. नं. ५—चौ.—राम भगत हित नर तनु धारी।
सहि संकट किय साधु सुखारी ॥
नाम सप्रेम जपत अनयासा ।
भगत होहि मुद मंगल वासा ॥

भा०—श्री रामचन्द्र जी ने भक्तों के हित के लिए मनुष्य शरीर धारण करके स्वयं कष्ट सह कर साधुओं को सुखी किया परन्तु भक्तगण प्रेम के साथ नाम का जप करते हुए सहज ही में आनन्द और कल्याण के घर हो जाते हैं ।

चौ.—राम एक तापस तिय तारी ।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी ॥
ऋषि हित राम सुकेतु सुता की।
सहित सेन सुत कीन्ह निवारी ॥
सहित दोष दु:ख दास दुराशा ।
दलइ नाम जिमि रवि निशि नाशा ॥
भजेउ राम आप भव चापू ।
भव भय भजन नाम प्रतापू ॥

भा०—श्री राम जी ने एक तपस्वी की स्त्री (अहिल्या) को ही तारा, परन्तु नाम ने करोड़ों दुष्टों की बिगड़ी बुद्धि को सुधार दिया। श्री राम जी ने ऋषि विश्वामित्र के हित के लिए एक सुकेतु यक्ष की कन्या ताड़का की सेना और पुत्र (सुबाहु) सहित समाप्ति की। परन्तु नाम अपने भक्तों के दोष दु:ख और दुराशाओं का इस तरह नाश कर देता है। जैसे सूर्य रात्रि का। श्री राम जी ने तो स्वयं शिवजी के धनुष को तोड़ा, परन्तु नाम का प्रताप ही संसार के भयों का नाश करने वाला है।

चौ.—दण्डक वन प्रभु कीन्ह सुहावन ।
जन मन अमित नाम किय पावन ॥

निशिचर निकर दले रघुनंदन ।
नाम सकल कलि कलुष निकंदन ॥

भा०– प्रभु श्री रामजी ने भयानक दण्डक वन को सुहावना बनाया, परन्तु नाम ने असंख्य मनुष्यों के मन को पवित्र कर दिया । श्री रघुनाथ जी ने राक्षसों के समूह को मारा । परन्तु नाम तो कलियुग के सारे पापों की जड़ उखाड़ने वाला है ।

दो०–सबरी गीध सु सेवकनि, सुगति दीन्ह रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥

भ०–श्री रघुनाथ जी ने तो सबरी जटायु आदि उत्तम सेवकों को ही मुक्ति दी । परन्तु नाम ने अगनित दुष्टों का उद्धार किया नाम के गुणों की कथा वेदों में प्रसिद्ध है ।

चौ.–राम सुकंठ विभीषण दोऊ ।
राखे शरन जान सब कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक निवाजे ।
लोक वेद वर विरद विरांजे ॥

भा०–श्री रामजी ने सुग्रीव और विभीषण दोनों को ही अपनी शरण में रखा, यह सब कोई जानते हैं परन्तु नाम ने अनेक गरीबों पर कृपा की है । नाम का यह सुन्दर विरद लोक और वेद में विशेष रूप से प्रकाशित है ।

चौ०–राम भालु कपि कटक बटोरा ।

सेतु हेतु श्रम कीन्ह न थोरा ॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं ।
करहु विचार सुजन मन माहीं ॥

भा०–श्री रामजी ने तो भालु और बन्दरों का सेना एकत्र की और समुद्र पर पुल बांधने को थोडा परिश्रम नहीं किया, परन्तु नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है। सज्जनगण मन में विचार कीजिए कि दोनों में कौन बड़ा है।

श्लो.–नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ॥ (नारद पुराण)

गीता–अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भ परित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

अर्थ–और जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर-भीतर से शुद्ध और चतुर है अर्थात् जिस काम के लिए आया था उसको पूरा कर चुका है एवं पक्षपात से रहित और दुखों से छूटा है वह सर्व आरम्भों का त्यागी अर्थात् मन वाणी और शरीर द्वारा प्रारब्ध से होने वाले सम्पूर्ण स्वाभाविक कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्यागी, मेरा भक्त मेरे को प्रिय है ॥ गी०अ० १२ ॥

अनन्याश्चिन्तयन्तोमां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम् ॥ गी० अ०९ ॥

अर्थ–और जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्त जन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य एकी भाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योग क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अर्थ–तथा हे अर्जुन मेरे पूजन में यह सुगमता भी है कि पत्र, पुष्प, फल जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वे पत्र पुष्पादिक मैं सगुण रूप से प्रकट होकर प्रीति सहित खाता हूँ। अ० ६।

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपिस्युःपापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथाशूद्रास्तेऽपियान्ति परांगतिम्॥

अर्थ–क्योंकि हे अर्जुन स्त्री वैश्य और शूद्रादिक तथा पाप योनि वाले भी जो कोई होवे, वे भी मेरे शरण होकर तो परम गति को ही प्राप्त होते हैं। अ० ६।

दृष्टान्त नं. ५–मार्कण्डेय ऋषि एक राजा के पुत्र थे प्रथम उस राजा के घर सन्तान न होती थी। बड़े यत्नों से एक पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजा ने ज्योतिषियों द्वारा उनकी जन्म पत्रिका बनवाई और उसका फल पूछा तो उन्होंने

कहा कि यह दशवाँ वर्ष लगते ही मर जायगा यह सुनकर राजा और रानी ने पुत्र के साथ प्रेम करना छोड़ दिया क्योंकि प्रेमी का वियोग दुखप्रद होता है जिससे प्रेम होता है उसके वियुक्त हो जाने पर उदासीन दशा हो जाती है। इसलिए शहर के बाहर एक क़िले में दाई द्वारा उस लड़के का पालन-पोषण होता रहा। दाई बड़े प्रेम से उसका पालन करती रही जब बालक आठ वर्ष का हुआ तब दाई राजकुमार के मोह से तथा मरने के भय से व्याकुल हो गई उसे देखकर राजकुमार ने कारण पूछा तब दाई ने कहा तुम्हारे माता पिता तुम्हारे मरने की वजह से तेरे में मोह नहीं करते। परन्तु मैं जो तुमको पालने वाली धात्री हूँ मेरे को मोह हो गया है तू दसवें वर्ष लगते ही मर जायेगा इस लिए मैं रोती हूं। तब राजकुमार ने कहा कि मैं किसी प्रकार जीवित रह सकता हूँ। यह धात्री कभी कभी महात्माओं की संगत में जाया करती थी उसने कथा में सुना था कि ब्रह्म वेत्ता की शरण में जाने से दंडवत-प्रणाम करने से लौकिक सुख और दीर्घायु प्राप्त होती है तब उस धात्री ने दीर्घायु का यही उपाय राजकुमार को बतलाया। राजकुमार कहने लगा मुझे किसी महात्मा के पास ले चलो। तब धात्री ने कहा कि मैं तुम्हारे माता पिता से डरती हूँ। इसलिए मैं कहीं

ले जा नहीं सकती राजकुमार यह सुन कर चुप हो गया प्रातःकाल होते ही किले की दीवार के ऊपर से छलाँग मार कर, एक वन में महात्माओं की मण्डली बैठी थी वहाँ पहुँच गया और प्रत्येक महात्मा के चरणों में दंडवत प्रणाम की जब तक प्रत्येक महात्मा ने आशीर्वाद न दिया तब तक चरणों में से न उठा। सब महात्माओं ने कहा उठो बच्चा चिरंजीव हो। तब राजकुमार कहने लगा कि महाराज मेरी आयु तो कुल नौ वर्ष की है। थोड़े ही दिन शेष रहे हैं और महात्माओं के वचन अटल होते हैं।

"साधु वचन अटलाधा"

महात्मा ने कहा कि हे पुत्र ! तू चिन्ता मत कर। हमारे आशीर्वाद से तू चिरंजीवी होगा। जब ६ वर्ष पूरे होकर दसवाँ वर्ष आरम्भ हुआ, तो यमराज उसको मारने के लिए आया। तब महात्माओं ने राजकुमार को शिव-लिङ्ग के साथ लिपटा दिया। काल से भयभीत होकर बालक ने शिवजी की आराधना की। तब शिवजी वहाँ से प्रकट हुए और त्रिशूल लेकर यमराज को मारने लगे। तब यमराज हाथ जोड़ कर खड़ा हुआ और प्रार्थना की कि जो आपकी आज्ञा हो वैसे करूँ। महादेव जी कहने लगे कि इसको सन्तों ने चिरंजीवी बना दिया है। सन्तों के वचन अटल होते हैं। इसलिए तू इस बालक को न मार।

यह चिरंजीवी ही रहेगा तब काल भगवान ने उसे छोड़ दिया। जब उसके मरने का समय बीत गया। तो शिव भगवान लुप्त हो गए। तब महात्माओं के पास आकर बालक ने सब को नमस्कार किया। तो महात्माओं ने आज्ञा दी अब तू राजकार्य को सँभाल, परन्तु बालक ने कहा मैं आपकी चरण सेवा में रहूंगा। महात्माओं ने कहा अच्छा–परन्तु प्रथम अपने माता पिता को जाकर दर्शन दे आओ फिर आकर हमारी सेवा में रहना तब राजकुमार महात्माओं की आज्ञा मान कर अपने माता-पिता के पास गया और महात्माओं को दण्डवत् प्रणाम करने का फल सुनाया, फिर अपने माता पिता को प्रसन्न कर तथा आज्ञा लेकर महात्माओं के पास गया और नमस्कार भक्ति अनन्य चित्त से करता रहा।

मारकण्डे ते को अधिकाई। जिन त्रणधर मूंड वलाए॥

इस राजकुमार का महात्माओं की शरण में आने से मारकण्डे नाम रक्खा गया था इस प्रकार की अन्य भी कथाएँ हैं जैसे लोमश त्रिकाली ऋषि वाकैदालभ्य ऋषि के आशीर्वाद से चिरंजीवी हो गए। वे कथायें पुराणों में प्रसिद्ध हैं।

प्र. नं. ६–चौ.–राम सकुल रन रावन मारा।
सिय सहित निज पुर पगु धारा॥

राजा राम अवध रजधानी।
गावत गुन सुरमुनि वर बानी॥
सेवक सुमिरत नाम सप्रीती।
बिनु श्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगन सुख अपने।
नाम प्रसाद सोच नहिं सपने॥

भा०—श्री राम चन्द्र जी ने कुटुंब सहित रावण को युद्ध में मारा, तब सीता सहित उन्होंने अपने नगर (अयोध्या) में प्रवेश किया। राम राजा हुए अवध उनकी राजधानी हुई। देवता और मुनि सुन्दर वाणी से जिनके गुण गाते है। परन्तु सेवक (भक्त) प्रेम पूर्वक नाम के स्मरण मात्र से बिना परिश्रम मोह की प्रबल सेना को जीत कर प्रेम में मग्न हुए अपने ही सुख में बिचरते हैं नाम के प्रसाद से उन्हें सुपने में भी कोई चिन्ता नहीं सताती।

दो०—ब्रह्म राम ते नाम बड़, वर दायक वर दानि।
राम चरित शत कोटि महँ, लिय महेश जिय जानि॥

भा०—इस प्रकार नाम निर्गुण ब्रह्म और सगुण राम दोनों से बड़ा है। यह वरदान देने वालों को भी वर देने वाला है। श्री शिवजी ने अपने हृदय में यह-जानकर ही सौ करोड़ राम चरित्र में से इस राम नाम को सार रूप से चुन कर ग्रहण किया है।

चौ०—नाम प्रसाद शंभु अविनाशी।
साजु अमंगल मंगल राशी॥
सुक सनकादि सिद्ध मुनि योगी।
नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी॥

भा०—नाम ही के प्रसाद से शिवजी अविनाशी हैं और अमंगल वेष वाले होने पर भी मंगल की राशी हैं। शुकदेव जी और सनकादि सिद्ध मुनि योगी गण नाम के ही प्रसाद से ब्रह्मानन्द को भोगते हैं।

चौ०—नारद जानेउ नाम प्रतापू।
जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥
नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू।
भगति शिरोमनि भे प्रहलादू॥

भा०—नारद जी ने नाम के प्रताप को जाना है। हरि सारे संसार को प्यारे हैं। हरि को हर प्यारे हैं। और आप (श्री नारद जी) हरि और हर दोनों को प्रिय हैं। नाम के जपने से प्रभु ने कृपा की जिससे प्रह्लाद भक्त शिरोमणि हो गये।

चौ०—ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पायऊ अचल अनुपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू।
अपने वश करि राखे रामू॥

भा०—ध्रुवजी ने ग्लानि से (विमाता के वचनों से दुःखी होकर मकाम भाव से) हरि नाम को जपा था और उसके प्रताप से अचल अनुपम स्थान ध्रुव लोक प्राप्त किया। हनुमान जी ने पवित्र नाम का स्मरण करके रामजी को अपने वश में कर रखा है।

चौ०—अपितु अजामिल गज गणिकाऊ।
भये मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई।
राम न सकहिं नाम गुण गाई॥

भा०—नीच अजामिल गज और गणिका (वेश्या) भी श्री हरि के नाम के प्रभाव से मुक्त होगये। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ। राम भी नाम के गुणों को नहीं वर्णन कर सकते।

कथा नं० ६—एक समय अर्जुन अश्वमेध यज्ञ के लिए घोड़े का रक्षक बन कर पीछे-पीछे जा रहा था रास्ते में भगवान कृष्णचन्द्र जी मिले और विचार किया कि अर्जुन के मन में विरक्ति पैदा करनी चाहिये, ऐसा विचार कर भगवान अर्जुन को समुद्र पार एक निर्जन टापू में ले गए वहाँ अर्जुन ने एक अद्भुत मुनि को देखा जो कि एक वृक्ष के नीचे पत्रों पर लोट रहा था। ऐसे मुनि के दर्शन कर अर्जुन का मन द्रवीभूत हो गया और हाथ

जोड़ ,कर प्रार्थना की, कि हे मुने? यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं कुछ पूछूँ? मुनि ने कहा पूछो—अर्जुन ने कहा कि हे मुन आपके पास कोई वस्त्र नहीं, पात्र नहीं और कुछ खाने-पीने की सामग्री भी नहीं है यदि आज्ञा हो तो सब सामान यहाँ पर भेज दू आपके रहने के लिए कोई कुटिया नहीं यदि आज्ञा हो तो कुटिया भी बनवा दू बड़ी तेज धूप पड़ती है कुटिया बन जाने से सुख रहेगा। बकदालभ्य मुनि ने कहा, हमें किसी वस्तु की जरूरत नहीं और थोड़े से जीवन के लिए कुटिया क्या बनवानी है। चार दिन का जीवन बिताना है। सो बीत जायगा तब अर्जुन ने पूछा महाराज आपकी आयु कितनी है? मुनि ने कहा कि म क्या बताऊँ। कितनी ही सृष्टिया देख चुका हूँ और अनेक बार तुमको महाभारत का युद्ध करते देखा है कितनी ही बार भगवान कृष्णचन्द्र के साथ तुमको देखा है मेरे सामने कितनी ही बार सृष्टि उलट-पलट हुई है इस प्रकार जब अर्जुन ने ऋषि के वैराग्य पूरित वचन सुने तो अर्जुन के मन में वैराग्य हो गया, हम लोग थोड़े से जीवन के लिए कितने बड़े बड़े अनर्थ करते हैं भोगों में आसक्त है बकदालभ्य लोमश आदि ऋषि भी अपने बड़े वृद्ध आचार्य पुरुषों की शुभाशीर्वाद से चिरजीव हो गए इसलिए अनन्तानन्त परमेश्वर के नामोच्चारण कर

नमस्कार करनी चाहिये यदि परमात्मा देव को प्रतिदिन नमस्कार न करेगा तो बड़ी हानी को प्राप्त होगा। इसमें तो क्या कहना है। किसी महात्मा को, ब्राह्मण को, वृद्ध पुरुष को गौ को नमस्कार न करने से अत्यन्त हानि होती है। जिस तरह एक कथा है कि:—

एक काल में विष्णु भगवान ब्रह्मलोक में गए। ब्रह्मा जी तथा चारों वेदों ने उठ कर उनको नमस्कार नहीं किया, भगवान ने उन्हें शाप दिया कि जाओ तुम कलियुग में अज्ञानी बन कर विचरो जब श्री गुरुनानकदेव जी की गद्दी पर पञ्चम गुरु श्री गुरु अर्जुन देव जी बैठेंगे वे अपने गुरुओं की वाणी का संग्रह कर एक ग्रन्थ की रचना करेंगे तुम भी भट्ट ब्राह्मणों का स्वरूप धार कर उन गुरुओं की स्तुति करना। तब तुम्हारे शाप का अन्त होगा, तब प्रत्येक वेद ने अपने-अपने चार-चार स्वरूप धारण कर लिए इस प्रकार चार वेदों ने सोलह स्वरूप धारण कर लिए, सत्रहवाँ ब्रह्माजी ने भिखारी ब्राह्मण का रूप धारण कर लिया यह १७ भट्ट अमृतसर पुरी में रामसर नाम वाले सरोवर पर पहुँच कर श्री गुरु अर्जुन देव के सम्मुख श्री गुरु नानक देव जी से लेकर पञ्चम गुरु अर्जुन देव पर्यन्त गुरुओं की स्तुति की तब उनके शाप का अन्त हुआ विष्णु भगवान को नमस्कार न करने से

अहंकारी होने से ब्रह्मानी सहित चारों वेदों को यह शाप हुआ और उसका फल भोगना पडा। इसी तरह जब दक्ष प्रजापति जी ब्रह्मलोक में गए तब सभासदों ने उठ कर उनको नमस्कार नहीं किया और स्वागत् भी नहीं किया उसी सभा में शिवजी बैठे थे उन्होंने भी उठ कर अपने श्वसुर को नमस्कार नहीं किया उस दिन से दक्ष ने यज्ञ में से शिवजी का भाग निकालना छोड दिया, सती जी ने यज्ञ में शिवजी का भाग नहीं देखा, तब पिताजी के गृह पर अपने आपको योगाग्नि से जला दिया तथा यज्ञ में बैठे हुए सब देवताओं को यथोचित् दण्ड मिला।

आगे कथा तो बडी है परन्तु साराश यह है कि प्रजापति को नमस्कार नहीं किया इसलिए परस्पर द्वेष बढ गया और बहुत क्लेश हुआ, राजा दिलीप ने स्वर्ग से आते समय कामधेनु गौ की पुत्री को नमस्कार नहीं किया तब गौ ने शाप दिया कि जिस पुत्र की खुशी में तू जा रहा है आओ तुम्हारे गृह में पुत्र ही नहीं होगा फिर वशिष्ठ मुनि की आज्ञा से कामधेनु की पुत्री नन्दिनी की एक वर्ष पर्यन्त सेवा की तब उसने प्रसन्न हो कर वर दिया कि तुम्हारे गृह में पुत्र होगा। इन कथाओं से सिद्ध हुआ कि नमस्कार करने से लाभ है और न करने से बडी हानि होती है। फरीद साहिब ने भी एक दिन अपने

गुरुजी को नमस्कार नहीं की थी, तब उन पर गुरु नाराज हो गए थे इसी से अपना सिर काटने लगा था। इसलिए नवधा भक्ति करनी चाहिये।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोस्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्म निवेदनम्॥

अर्थ—भगवान के नामों को हर समय सुनना यह श्रवण भक्ति है। जिह्वा से भगवत् नाम उच्चारण करते रहना यह दूसरी कीर्तन भक्ति है चरण दबाते रहना यह चौथी पाद सेवन भक्ति कहलाती है। नाना प्रकार की सामग्री से भगवान का पूजन करना यह पांचवीं पूजन-भक्ति कहलाती है। भगवान को सर्व रूप जानकर नमस्कार करना अथवा मन्दिरों में नमस्कार करना यह छटी वंदना-भक्ति है। दास्यभाव अर्थात् अपने को दास और भगवान को स्वामी जानकर सेवा करनी यह सातवीं दास्य भक्ति कहलाती है भगवान को ही प्रिय समझना दूसरों से प्रेम न करना यह आठवीं सख्य भक्ति कहलाती है।

भगवान को सर्वस्व अर्पण कर शरणागत होना यह नवमी आत्म निवेदक भक्ति कहलाती है यह नव प्रकार की भक्ति स्मरण भक्ति के अन्तरगत है अर्थात् भगवान के भक्त भगवान को ऐसे स्मरण करते रहते हैं जैसे कौंच पक्षी अपने बच्चों को सैंकड़ों कोश दूर जाने पर भी

स्मरण करती रहती है और दूसरी ध्यान रूप भक्ति में कच्छप का दृष्टान्त है जैसे कच्छप स्त्री अपने अण्डों को बाहर रेती में रख आती है आप जल में रहती है वहाँ बैठी ही ध्यान से अपने बच्चों का पालन करती है। और तीसरी ज्ञान भक्ति में हंस का दृष्टान्त देते हैं जैसे हंस दूध और जल को अलग कर सकता है। ज्ञानी आत्मा अनात्मा को अलग करके अनात्मा को छोड़ आत्मा में हर समय लीन रहते हैं।

प्र. नं.७–सपिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स सदीश्वरः।
यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिं च कारयेत्॥
। ब्रह्म. वै. पु. खं. १ अ. १३।

निज कर देखयो जगत में को काहु को नाहिं।
नानक थिर हरि भक्ति है तिह राखो मन माहिं॥ गुरु वाणी॥

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषोत्र जातिनामाश्रमादयः।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेवहिकारणम्॥
॥ अध्यात्म रामायण काण्ड ३ सर्ग १०॥

भगति करे पाताल में प्रकट होय आकाश।
रज्जब तीनों लोक में छिपे न हरि को दास॥ रज्जब वाणी॥

बुद्धि बड़ी चतुराई बड़ी तन में ममता अग्नि ना लपटी है।
नाम बड़ो धनधाम बड़ो करतूत बड़ी जग में प्रगटी है॥
रूप बाज द्वार मानुष हजार इन्द्र समान से कौन घटी है।

ने सब विष्णु की भक्ति विनामानो सुन्दर
नारी की नाक कटी है ॥ सुन्दर विलास ॥

गीता—सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढ निश्चयः ।
मय्यर्पित मनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

अर्थ—तथा जो ध्यान योग में युक्त हुआ निरन्तर लाभ हानि में संतुष्ट है, मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश में किये हुए मेरे में दृढ़ निश्चय वाला है मेरे में अर्पण किए हुए मन बुद्धि वाला भक्त मेरे को प्रिय है।

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न कांक्षति ।
शुभाशुभ परित्यागी भक्ति मान्यः स मे प्रियः ॥

अर्थ—और जो न कभी हर्षित होता है न द्वेष करता है न शोच करता है न कामना करता है तथा जो शुभ और अशुभ सम्पूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है। वह भक्तियुक्त पुरुष मेरे को प्रिय है। अ० १२ श्लो० १७।

गीता—तुल्य निन्दा स्तुतिर्मौनी संतुष्टोयेनकेनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति मान्मे प्रियो नरः ॥

अर्थ—जो निन्दा स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है अर्थात् ईश्वर के स्वरूप का निरन्तर मनन करने वाला है एवं जिस किसी प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने में सदा ही सन्तुष्ट है और रहने के स्थान

में ममता से रहित है वह स्थिर बुद्धि वाला, भक्तिमान पुरुष मेरे को प्रिय है। अ० १२।

गीता—ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

अर्थ—जो मेरे परायण हुए अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति एवं सबका आत्मरूप तथा सब से परे परमपूज्य समझकर विशुद्ध प्रेम से मेरी प्राप्ति के लिए तत्पर हुए श्रद्धायुक्त पुरुष, ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं वे भक्त मेरे को अतिशय प्रिय हैं।

दो.—नाम राम को कल्प तरु, कलि कल्यान निवास।
जो सुमिरत भयो भांग ते, तुलसी तुलसीदास॥

भा०—कलियुग में राम का नाम कल्पतरु (मन चाहा पदार्थ देने वाला) और कल्याण का निवास (मुक्ति का घर) है। जिसको स्मरण करने से भांग सा (निकृष्ट) तुलसीदास तुलसी के समान पवित्र हो गया।

चौ.—चहुं जुग तीनिकाल तिहुँ लोका।
भए नाम जपि जीव बिसोका।
बेद पुरान संत मत एहू।
सकल सुकृत फल राम सनेहू॥

भा०—केवल कलियुग की ही बात नहीं है चारों युगों

में तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम को जप कर जीव शोक रहित हुए हैं। वेद पुराण और संतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल श्री राम जी में या राम नाम में प्रेम होना है।

चौ.—ध्यान प्रथम जुग मख विधि दूजे।
द्वापर परि पोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

भा०—पहले (सत्य) युग में ध्यान से दूसरे (त्रेता) में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान प्रसन्न होते हैं। परन्तु कलियुग केवल पाप की जड़ और मलिन है। इसमें मनुष्यों का मन पाप रूपी समुद्र में मछली बना हुआ है अर्थात् पाप से कभी अलग होना ही नहीं चाहता। इससे ध्यान यज्ञ पूजन नहीं बन सकते॥

चौ.—नाम काम तरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता॥

भा०—ऐसे कराल (कलियुग के) काल में तो नाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण करते ही संसार के सब जञ्जालों को नाश कर देने वाला है। कलियुग में यह राम

में तीनों कालों में और तीनों लोकों में नाम को जप कर जीव शोक रहित हुए हैं। वेद पुराण और संतों का मत यही है कि समस्त पुण्यों का फल श्री राम जी में या राम नाम में प्रेम होना है।

चौ.—ध्यान प्रथम जुग मख विधि दूजे।
द्वापर परि पोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना।
पाप पयोनिधि जन मन मीना॥

भा०—पहले (सत्य) युग में ध्यान से दूसरे (त्रेता) में यज्ञ से और द्वापर में पूजन से भगवान प्रसन्न होते हैं। परन्तु कलियुग केवल पाप की जड़ और मलिन है। इसमें मनुष्यों का मन पाप रुपी समुद्र में मछली बना हुआ है अर्थात् पाप से कभी अलग होना ही नहीं चाहता। इससे ध्यान यज्ञ पूजन नहीं बन सकते॥

चौ.—नाम काम तरु काल कराला।
सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता।
हित परलोक लोक पितु माता॥

भा०—ऐसे कराल (कलियुग के) काल में तो नाम ही कल्पवृक्ष है जो स्मरण करते ही संसार के सब जंजालों को नाश कर देने वाला है। कलियुग में यह राम

नाम मनोवांच्छित फल देने वाला है। परलोक का परम हितैषी और इस लोक का माता पिता है। अर्थात् परलोक में भगवान का परम धाम देता है और इस लोक में माता पिता के समान सब प्रकार से पालन और रक्षण करता है।

कथा नं०.७—पाण्डवों को महाभारत में ब्राह्मण मारे जाने से अर्थात् द्रोणाचार्य कृपाचार्यादि ब्राह्मण और भीष्मपितामहादि दादा—मारे जाने से पाप की शङ्का हुई। भगवान को कहा कि हम ब्रह्म हत्यारे और कुल घातक हैं। भगवान ने उनकी ब्रह्महत्या दूर करने के लिये अश्वमेध यज्ञ कराया। यज्ञ समाप्त हो जाने पर ब्रह्म भोज करने की आज्ञा दी कि ब्राह्मणों को भोजन कराओ और निमन्त्रित करके एक घण्टा रख दिया कि सन्तोषी समदर्शी साधु ब्राह्मणों के भोजन कराने के पुण्य से घण्टा बजे यह उस घण्टे में भाव रखा गया। भगवान् कृष्णजी ने चरण धोने की और जूठी पत्तलें उठाने की सेवा की।

ऐसे अनेक साधु ब्राह्मणों को भोजन खिलाने पर भी जब घण्टा अच्छी तरह न बजा तो सब को शोक हुआ कि हमारा यज्ञ सफल न हुआ। तब भगवान कहने लगे कि धैर्य करो। कोई समदर्शी महात्मा भोजन के बिना

भूखा रह गया होगा। जब तक उसको भोजन न कराओगे तब तक तुम्हारा घण्टा न बजेगा। अन्वेषण करने पर पता चला कि वाल्मीक चण्डाल यज्ञ में नहीं आया। उसको लेने के लिए भीमसेन को भेजा। परन्तु उसने बड़ी नम्रता से भीमसेन को कहा कि हम तो चण्डाल हैं। आपकी जूठी पत्तल उठा कर खाने वाले हैं। आसन पर बैठ कर पैर धुला कर हम कैसे भोजन कर सकते हैं। इस प्रकार की अनेक युक्तियाँ सुनाकर भीमसेन को लौटा दिया। तब द्रौपदी को भगवान ने भेजा कि तुम जाकर प्रार्थना से ले आओ। उनके आने पर और प्रसन्न होकर भोजन करने से ही घण्टा बजेगा। द्रौपदी गई, उसको भी यही उत्तर दिया कि हम जूठी पत्तल उठा कर खाने वाले हैं। बैठ कर कैसे खा सकते हैं। जब द्रौपदी ने प्रेम किया और हठ की, तब उसकी बुद्धि की परीक्षा के लिए कहा कि मैं तब चलूंगा जब भोजन और दक्षिणा में अपने अश्वमेध यज्ञ का फल दोगी, यह सुनकर द्रौपदी ने प्रसन्न होकर कहा कि महाराज? मैंने कथा में ऐसा श्रवण किया है कि समदर्शी ब्रह्मवेत्ता महात्मा के पास पैदल जाने से एक-एक कदम उठाने पर अश्वमेध यज्ञ का फल मिलता है, मैं आपके पास अनेक कदम पैदल आई हूँ। अनेक यज्ञों का फल जो मिलेगा उसमें से एक यज्ञ का फल

आपको दे दूँगी। आप अवश्य चलिए। द्रोपदी का सच्चा प्रेम देखकर महात्मा जी चले आये भगवान सहित पाण्डवों ने महात्मा का बड़ा सत्कार किया और स्तुति करके कहा कि महाराज हमारा यज्ञ सफल करो, ऐसी अनेक प्रार्थनायें कीं और आसन बिछा कर बैठाया।

जब द्रोपदी ने छत्तीस प्रकार के भोजन परोस कर वाल्मीक जी के आगे थाल रख कर अलग-अलग भोजनों के नाम लिए यह खट्टा यह मीठा है यह नमकीन यह चटपटा है इत्यादि सबके नाम कहे और प्रार्थना की कि इनका अलग-अलग रस लो और तृप्ति से भोजन करो। उन्होंने भोजन को अच्छी तरह से देख लिया फिर सब भोजन को मिला कर आठ ग्रासों में सब का सब भोजन खा लिया। द्रोपदी देख ग्लानिकर, मन में कहने लगी फिर भी चण्डाल का चण्डाल ही रहा अगर उत्तम जाति का होता तो अलग २ रस लेता और मेरे भोजन बनाने के परिश्रम को सफल करता मैंने बड़े यत्न से भोजन बनाये थे परन्तु इस उसने सब भोजन मिला कर मेरी सेवा निष्फल करदी और ऐसी ग्लानि की, तब घण्टा बड़े मध्यम स्वर से बजा तब पाण्डवों को बड़ा दुःख हुआ और भगवान् से कहा कि महाराज अब घण्टा क्यों नहीं बजा तब भगवान कहने लगे इसमें द्रोपदी ने यज्ञवेला पर

ग्लानि की है इस लिए पुण्य क्षीण हो गये हैं और घण्टा नहीं बजा अब कल फिर अधिक प्रेम लगा कर भोजन तैयार करो और आज से भी अधिक रस बनाओ, तब घण्टा बजेगा। फिर दूसरे दिन के लिए वाल्मीक जी को निमन्त्रण दिया और बड़े प्रेम से लाकर भोजन करवाया कोई ग्लानि नहीं की तब जोर से घण्टा बजा और आकाश वाणी हुई कि अब तुम्हारा यज्ञ सफल हुआ, पाण्डव बड़े प्रसन्न हुए भगवान ने विचार किया कि घण्टा बजने का कारण अभी भी पाण्डवों सहित द्रौपदी को मालूम नहीं पड़ा, इनको वाल्मीक द्वारा घण्टा बजने का कारण बता देना चाहिये तब भगवान श्री कृष्ण जी द्रौपदी और पाँचों पाण्डवों के समक्ष वाल्मीक जी से कहने लगे कि महाराज द्रौपदी के दिल में शङ्का है कि भोजन आपने मिलाकर क्यों खाया अलग-अलग रस आपने क्यों नहीं लिया आप विस्तार पूर्वक इस का भाव द्रौपदी को श्रवण कराओ तब वाल्मीक कहने लगे कि हे भगवान् श्री कृष्ण जी आप तो सर्वज्ञ हो मेरे हृदय के सब भाव जानते हो परन्तु आपकी आज्ञा मान कर मैं द्रौपदी को सुनाता हूँ, हे द्रौपदी! मैंने भोजन आपके यज्ञ सफल करने के लिए और घण्टा बजवाने के लिए मिलाया था अगर मैं भोजन मिला कर न खाता तो आपका यज्ञ सफल

न होता और न घण्टा ही बजता क्योंकि भगवान् ने यह संकल्प ही किया था कि जो वेदों के तीनों काण्डों का अर्थात कर्म काण्ड, उपासना काण्ड तथा ज्ञान काण्ड इन तीनों का धर्म रख कर भोजन करेगा उसके खाने से घण्टा बजेगा और किसी के खाने से न बजेगा, जब अनेक ऋषि मुनि ब्राह्मण लोग भोजन करने बैठे तो किसी ने एक काण्ड का भाव किसी ने दो काण्ड का भाव रख कर भोजन किया परन्तु तीन काण्ड का भाव रख कर किसी ने भोजन न किया अतः घण्टा न बजा और मैं तीनों काण्डों का भाव रख कर भोजन किया करता हूँ इस बात को भगवान तो जानते थे इसलिए मेरे को भोजन कराने के लिए आपको प्रेरणा की आप मेरे को ले आये और भोजन कराया परन्तु हे द्रोपदी तुमने ग्लानि की। इस लिये घण्टा न बजा और भगवान् के कहने से दुबारा ग्लानि रहित होकर भोजन खिलाया तब आपका घण्टा बजा। घण्टा बजने के लिए ही मैंने भोजन मिलाये थे। भोजन में वेदों के तीनों काण्डों का भाव रख कर भोजन किया था। वे जैसे हैं श्रवण कर पहले वेद का कर्म काण्ड रखा, वेद में वर्णाश्रम के धर्म लिखे हैं आश्रम धर्मों में चारों आश्रमियों के लिए गिनती के ग्रास लिखे हैं अर्थात पहला आश्रम

ब्रह्मचर्य है वह बत्तीस ग्रास करे, जितना अन्न मुंह में सरलता से समा जाय उसको ग्रास कहते हैं।

दूसरा गृहस्थाश्रम है उसके लिए चौबीस ग्रास भोजन लिखा है और तीसरा आश्रम वानप्रस्थ है उसके लिए सोलह ग्रास भोजन की वेद भगवान् की आज्ञा है। चतुर्थ संन्यास आश्रम है संन्यासी को आठ ग्रास भोजन करने की आज्ञा है मैं इस कर्मकाण्ड का पालन करता हुआ आठ ही ग्रास करता हूँ।

श्लो०—अष्टौ ग्रासा मुनेर्भक्ष्याः षोडशारण्यवासिनाम्।
चतुर्विंशतिर्गृहस्थानां द्वात्रिंशद् ब्रह्मचारिणाम्॥

अर्थ—मुनि को अर्थात् आश्रम "सन्यासी" को आठ ग्रास ही भोजन करना चाहिये, वानप्रस्थी को सोलह ग्रास गृहस्थी को चौबीस ग्रास और ब्रह्मचारी को बत्तीस ग्रास भोजन करना चाहिये यह वेद शास्त्र की आज्ञा है।

अगर मैं तुम्हारे परोसे हुए छत्तीस प्रकार के भोजन को अलग २ छत्तीस ग्रासों में खाता तो घण्टा किस प्रकार बजता क्योंकि छत्तीस ग्रास खाने की आज्ञा किसी आश्रम को भी नहीं है। ब्रह्मचर्याश्रम को भी बत्तीस ग्रासों की आज्ञा शास्त्र देता है। परन्तु छत्तीस की नहीं—इसलिए छत्तीस प्रकार के भोजन छत्तीस ग्रासों में करने वालों ने अपना धर्म तो नष्ट किया ही किन्तु भोजन खिलाने वाले

दाता के पुण्य को भी अर्थात् तुम्हारे पुण्य को भी नष्ट किया। इसलिए पुण्य क्षीण होने से घण्टा न बजा अगर मैं भी इसी प्रकार भोजन करता तो मेरे खाने से घण्टा न बजता और तुम्हारा यज्ञ सफल नहीं होता। तुम्हारे यज्ञ को सफल करने के लिए ही मैंने अपनी रसना का स्वाद दूर करके भोजन को मिलाकर आठ ही ग्रासों में खाया। इस प्रकार कर्म काण्ड का भाव मैंने भोजन में रखा अब दूसरा उपासना काण्ड अर्थात् ईश्वर भक्ति का-भाव भी रख कर भोजन किया है शास्त्र में लिखा है कि भगवान के भोग लगाये बिना जो मनुष्य भोजन करता है या जल पीता है वह अन्न नहीं खाता है मानो विष्ठा खाता है और जल नहीं पीता मानों मूत्र पीता है।

अन्नं विष्ठा जलं मूत्रं यद्विष्णोर्न निवेदितम्।
वैष्णवाश्च न खादन्ति नैवेद्य भोजिनः सदा॥

भगवान विष्णु के भोग लगाये बिना अन्न विष्ठा के तुल्य है। जल मूत्र के बराबर है वैष्णव लोग जो सदैव भगवान को भोग लगा कर खाने वाले हैं ऐसे भोजन को नहीं खाते। मैं भी भगवान को भोग लगाये बिना कभी नहीं खाता जब मैं भोजन करने बैठता हूँ तो अपने आठों ग्रासों में प्रथम ग्रास भगवान को भोग लगाता हूँ। बाकी सात ग्रास भगवान का प्रसाद समझ कर खा लेता

हूँ। भगवान का हृदय में ध्यान कर पहला ग्रास जब मैं अर्पण करने लगा तो छत्तीस प्रकार के भोजन परोसे देखे मैंने एक चीज से एक ग्रास का भोग लगाना चाहा तो झट हृदय में संकल्प हुआ शायद भगवान को दूसरा रस प्रिय हो फिर दूसरे रस में हाथ डाला तो ख्याल किया शायद तीसरा रस प्रिय हो। इसी प्रकार सब रसों में संशय हुआ कुछ निश्चित न कर सका कि भगवान को कौन रस प्रिय है तब मैंने सब रस मिलाये, सब रसों का भोग भगवान को लगाया और भगवान का शेष समझ कर सात ग्रास मैंने खा लिए अगर ऐसा न करता तो तुम्हारा घण्टा न बजता इसलिए भी मैंने भोजन मिलाया था और तीसरे ज्ञानकाण्ड के भाव से भी भोजन किया। ज्ञान नाम सबमें ब्रह्म दृष्टि करने का है।

नीच-नीच सब तर गये सन्त चरन लवलीन।
जाति पाति के अभिमान ते डूबे बहुत कुलीन॥

प्र. नं. ८—चौ.—नहिं कलि कर्म न भगति बिबेकू।
राम नाम अवलंबन एकू॥
कालनेमि कलि कपट निधानू।
नाम सुमति समरथ हनुमानू॥

गा०—कलियुग में न कर्म है न भक्ति और न ज्ञान ही है। राम नाम ही एक आधार है। कपट की खान

कलियुग रूपी काल नेमि के मारने के लिए राम नाम ही बुद्धिमान और समर्थ श्री हनुमान जी है।

दो०—राम नाम नर केशरी, कनक कशिपु कलि काल।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुर साल॥

भा०—राम नाम श्री नरसिंह भगवान है। कलियुग हिरण्यकश्यप है और जप करने वाले जन प्रहलाद के समान हैं। यह राम नाम देवताओं के शत्रु कलियुग रूपी दैत्य को मार कर जप करने वालों की रक्षा करेगा।

चौ०—भाव कुभाव अनख आलस हूँ।
नाम जपत मंगल दिशि दसहूँ॥
सुमिरि सो राम नाम गुन गाथा।
करउँ नाइ रघुनाथहिं माथा॥

भा०—अच्छे भाव (प्रेम) से बुरे भाव (वैर) से क्रोध से या आलस्य से किसी तरह से भी नाम जपने से दशों दिशाओं में कल्याण होता है। उसी (परम कल्याण-कारी) राम नाम का स्मरण करके और श्री रघुनाथ जी को मस्तक नवा कर मैं रामजी के गुणों का वर्णन करता हूँ।

कथा० नं० ८—नामदेव भक्त के लिए जब भगवान ने देहरा मन्दिर फेर दिया था तब उनको अभिमान हो गया था। और बहत्तर बार उनको सगुण मूर्ति भगवान का दर्शन हुआ था। तब उनको अभिमान हो गया था

कि मेरे समान कोई भगवान का प्रिय भक्त नहीं। नामदेव जी भगवान को कहने लगे कि महाराज आप सच कहियेगा—आपको मेरे से भी अधिक प्रिय कोई भक्त है, तब दुबारा भगवान ने उसका मान रखने के लिए कहा कि तेरे से अधिक कोई प्रिय नहीं, तीसरी बार पूछने पर भगवान ने उसका अभिमान तोड़ने के लिए कहा कि तेरे से एक रङ्का बङ्का भक्त अधिक प्रिय है और दिन रात उसके ही पास रहता हूँ। तेरे को तो कभी कभी दर्शन देता हूँ। तब नामदेव जी रङ्का बङ्का को देखने के लिए उनके घर गये तो क्या देखा कि टूटी खाट और फूटी हुई पुरानी झोंपड़ी अत्यन्त गरीबी का सामान देखकर सोचा कि यहां सारा दिन कैसे भगवान रहते होंगे।

शायद यह रङ्के बङ्के का घर नहीं होगा, आते जाते पुरुषों से पूछा रङ्के बङ्के का घर यही है, तब अन्दर एक कन्या हल्दी पीस रही थी, उसने कहा—आओ यही रङ्के बङ्के का घर है। नामदेव अन्दर गया तो लड़की ने सत्कार पूर्वक बैठाया। नामदेव ने पूछा कि भगवान रात-दिन यहीं रहते हैं तो उस कन्या ने उत्तर दिया हांजी यहीं रहते हैं। नामदेव ने कहा अब कहां गए हैं तब लड़की ने कहा अभी बाहर निकले हैं थोड़ी देर में आजावेंगे फिर पूछा कि रङ्का बङ्का कहा है। तो उसने

कहा अपनी आजीविका के हेतु लकड़ियाँ लेने गये हैं। फिर पूछा कि तू क्या कर रही है तो लड़की ने कहा कि हल्दी पीस रही हूँ। भक्त ने पूछा—किस लिए? उसने कहा—भगवान के लिए फिर पूछा कि भगवान को क्या हुआ है? लड़की ने कहा—कि सकामी धैर्य्य रहित चण चण में सुखी दुःखी रहने वाला एक नया भक्त छींगा है मन्दिर में आरती के समय झाँझों की जगह जूता बजाया इससे उसको पंडितों ने मारा तब रोने लगा और भगवान को उलाहणे देने लगा। मन्दिर के पीछे जाकर बैठ गया तब भगवान ने उसको खुश करने के लिए देहुरा फेर कर दर्शन दिया। परन्तु देव मन्दिर फेरने से भगवान के कन्धों में चोट आ गई और दर्द हुआ। नामदेव ने भगवान का ख्याल भी न किया उलटा अभिमान करता है कि मेरे जैसा कोई प्रिय भक्त नहीं है प्रिय तो वह होता है जो भगवान में प्यार करे नामे का प्यार तो भगवान् में है नहीं कुछ सुख दुःख पूछता नहीं भगवान दयालु है बिना मतलब सबके काम करते हैं, नामे को अपना दुःख सुनाया ही नहीं अगर सुनाते भी तो क्या नामे ने कोई औषधी करनी थी? जब भगवान देहुरा फेर कर यहाँ आये तो हमने कँधा छिला हुआ देखा और पूछा कि भ्राता जी यह

क्या हुआ तब भगवान कहने लगे—कि बहिन जी नामदेव के लिए देहुरा फेरा था उससे कँधा छिल गया है बड़ा दर्द हो रहा है मैंने रात्रि भर तेल की मालिश की और कितनी ही औषधियों कीं, तब उनको नींद आई इस ही खाट पर सो रहे थे, अभी उठकर बाहर गये हैं अब मैं हल्दी पीस रही हूँ । आने पर लगा दूँगी इतने में भगवान भी आकर उस टूटी खाट पर बैठ गए और कहने लगे कि बहिन जी बड़ा दर्द हो रहा है तब मैंने हल्दी आदि चीजों का लेप किया सेक देकर पट्टी बाँधी नामा भक्त देख कर हैरान हो गया सब अभिमान टूट गया। भगवान के चरणों में गिर पड़ा और क्षमा माँगी और कहने लगा कि आप अपने प्यारे रङ्का बङ्का के दर्शन कराओ तब, भगवान कहने लगे चलो वे जंगल में लकड़ियाँ काटते होंगे, उस दिशा को गए तो दूर से रङ्का बङ्का को आते देखा, भगवान् ने कहा देखो वह रङ्का बङ्का है। तब नामदेव जी ने कहा कि महाराज ऐसे भक्तों को धन देकर सुखी क्यों नहीं रखते ? भगवान ने कहा वह धन चाहते ही नहीं। माया को भक्ति में विघ्नकारी समझते हैं। मैंने बहुत बार कहा लेकिन उलटे रोते हैं अन्न जल छोड़ देते हैं। नामे ने कहा मेरे सामने धन दो देखूँ कि किस तरह रोते हैं। नामदेव

की बातें सुनकर भगवान ने कहा कि इस दोष का भागी तू होवेगा उसने कहा अच्छा मैं ही हो जाऊँगा तब भगवान ने कहा कि यह हीरे जवाहरात की थैली रास्ते में रख दो नामदेव ने लाकर रखदी। फिर भगवान और नामदेव छिप कर बैठ गए आगे रङ्का था पीछे पीछे बङ्का आ रहा था जब रंका थैली के पास पहुँचा तो देख कर डर गया और रोने लगा तथा उस थैली को पाँव से मिट्टी डाल कर ढक दिया और रोता हुआ आगे चला। बंके ने दूर से देखा भाई उस जगह क्यों खडा हुआ है दौडकर भाई को मिला और पूछा वहाँ क्यों खड़े थे, रंके ने कहा कि हमारे मारने के लिए रास्ते में नागन पड़ी है मेरे को काटने लगी थी अर्थात् मैं उनको उठाने लगा था, किन्तु बच गया। फिर मैंने विचार किया कि बंके को न काटे इसलिए खडा होकर मायारूपी नागिन पर मिट्टी डालने लगा, तब बंका रोने लगा, रंके ने कहा तू क्यों रोता है। तूने न तो देखी न तेरे को काटा ही, फिर तेरे रोने का क्या कारण है? तब बंका कहने लगा, कि मैं तुम्हारे लिए रोता हूँ। कि तुम्हारी ब्रह्माकार वृत्ति रुक कर मायाकार क्यों होगई और माया वृत्ति पर मिट्टी क्यों डाली? परमेश्वर से इतना विमुख क्यों हुआ।

"सन्त न छोड़े सन्तई जो कोटिक मिलहिं असन्त"

मैं सोचता था कि मेरा भाई सन्त है, परन्तु माया पर दृष्टि करके कंगाल ही रहा इसलिये मैं रोता हूँ। तब रंका अधिक रोने लगा। बंके ने कहा कि मेरी माता ने मेरा नाम ही रंका अर्थात् कंगाल रखा है। तब दोनों रोते रोते कहने लगे कि हमने भगवान को कई बार कहा है कि हमको माया का दर्शन न कराओ भगवान फिर २ दर्शन कराता है अच्छा आज हम भी भोजन नहीं करेंगे। ऐसा कह कर आगे चल पड़े। नामदेव और भगवान सुन रहे थे नामदेव सुन कर बड़ा दुःखी हुआ और वह भी भगवान का अनन्य भक्त बन गया। वह भक्त भी मध्य कोटि में है एक से दूसरा चढ़ चढ़ कर है।

कथा नं० ६—"हँसतो जाई सु रोवत आवै", जैसे कि यादव छप्पन करोड़ होने पर अभिमानी हो गए थे। सबके साथ हँसी मखौल किया करते थे। एक दिन दुर्वासा जी की हँसी करने के लिए जामवन्ती के पुत्र साम्ब जो बड़ा सुन्दर था स्त्रियों के कपड़े पहिना कर और उसके पेट के ऊपर बहुत कपड़े लपेट कर एवं उसके साथ दूसरे लड़के भी स्त्रियों का स्वरूप धारण कर हँसी करने के लिए दुर्वासा जी के पास जाकर कहने लगे कि महाराज यह स्त्री गर्भवती है और आपसे पूछने में लज्जा करती है।

इसलिए हम इसके लिए पूछती हैं कि इससे क्या उत्पन्न होगा तो दुर्वासा ने भगवान् श्री कृष्णजी के पुत्रों को अभिमानी देख कर और ऋषि मुनियों की हँसी करते देख, कहने लगे कि इसके गर्भ से यादवों के कुल का नाश करने वाला एक मूशल (लोहे का टुकड़ा) निकलेगा।

ऐसा क्रोधमय वचन सुनकर बालक डर गए और साम्ब के पेट के ऊपर बन्धे हुए कपडे खोले तो बरावर एक मूसल को देख कर रोने लगे और भगवान कृष्ण कहने लगे कि ईश्वर इच्छा ऐसी ही थी अब सब यादवों का नाश होगा इस लोहे के मूसल को पीस कर समुद्र में गिरादो उन्होंने पीस कर गिरा दिया एक छोटा सा टुकड़ा जो पीसने से बाकी रहा उसको मछली ने निगल लिया वह मछली धीवर ने पकड़ ली, उस मछली को चीरने से लोहे का टुकड़ा निकला उसको धीवर ने अपने बाण की मुखी पर लगाया और वह बाण श्री कृष्ण जी को लगा जिससे भगवान ने अपना शरीर छोड़ दिया और बाकी यादवों ने जो समुद्र में चूरा करके फेंका था उसमें तीक्ष्ण धारा वाली घास उत्पन्न होगयी।

जब यादव प्रभास क्षेत्र में गए तो मदिरा पीकर उसी तीक्ष्ण धारा वाले घास को उखाड २ कर आपस में लड कर मर गए । इस तरह सारे यादव हँसते २

दुर्वासा ऋषि के पास गए और वहाँ से रोते हुए आए थे। इसलिए सुख दुःख ईश्वर आधीन जान कर हर्ष शोक न करना चाहिए।

अगर परमेश्वर की इच्छा हो तो बसते हुए ग्रामों को उजाड़ देता है और उजड़े हुए शहरों को फिर बसा देता है। जैसे दशम गुरु जी के दोनों साहबजादे ईंटों में चुने गये थे जब दशम गुरु जी को खबर हुई तो शाप दिया कि सरहन्द शहर उजड जायेगा। वह बड़ा भारी शहर था कई कोसों में बसा था- तो बन्दे बहादुर ने आकर उजाड़ दिया, ईंट ईंट अलग कर तोड़ दिया और मालवे देश उजाड और जंगल था जब दशम गुरुजी मालवे में गये है और सरदार दूलासिंह ने बड़ी सेवा करके प्रसन्न किया तो गुरुजी प्रसन्न होकर कहने लगे कि हे दूले देख कैसा पानी चमक रहा है, लहरें चल रही हैं। दूले ने कहा कि महाराज ! यहाँ तो मृग तृष्णा का जल रेते में प्रतीत होता है। यह तो थल ही थल है फिर महाराज जी ने कहा कि दूले ! देख कैसे आम अनार लटक रहे हैं ? तो दूले ने कहा कि महाराज ? यह तो कीकरों के वृक्ष हैं। गुरुजी कहने लगे कि दूले ने वचन लौटाया है, हो तो सब कुछ अभी जाना था, परन्तु अब कुछ समय के बाद आम अनार आदि सब यहां ही पैदा होंगे। वह मालवा

उजाड़ जङ्गल था अब बडा आबाद होकर बस रहा है। इसी तरह जब गुरु नानक देव जी अमीनाबाद गये हैं और मर्दाने को भूख लगी तब मर्दाना भोजन के लिए शहर में आ गया, वहाँ पठानों के घर शादी थी, शराब पीकर बड़े मस्त हो रहे थे। मर्दाने ने भोजन मांगा उन्होंने भोजन तो क्या देना था उलटा मर्दाने को पकड़ कर बहुत मारा और तिरस्कार किया। तब मर्दाना रोता हुआ गुरुजी के पास आया। गुरुजी ने कोप करके पठानों के प्रति शाप दे दिया।

इस प्रकार परमेश्वर की इच्छा हो तो बसते हुओं को उजाड़ सकता है और उजड़े हुओं को बसा सकता है। सब कुछ परमेश्वर के आधीन है परन्तु जो परमेश्वर की आज्ञा में प्रसन्न रहता है वही जीवन मुक्त और सचा भक्त कहलाता है।

मू०—मोक्षकारणसामग्र्यां भक्तिरेव गारीयसी।
स्वस्वरूपानुसन्धानं भक्तिरित्यभिधियते॥

अर्थ—विवेक चूड़ामणी में मोक्ष के कारण साधनों में भक्ति को ही मुख्य माना है कैसी है वह भक्ति सो कहते हैं स्वात्मास्वरूप ब्रह्म के विचार करने का नाम भक्ति है।

मू०—संकीर्ण योनयः पूता ये भक्ता मधुसूदने।
म्लेच्छ तुल्याः कुलीनास्ते ये न भक्ता जनार्दने॥

न कांक्षे विजयं राम न च दारा सुखादिकम् ।
भक्तिमेव सदा कांक्षे त्वयिवन्ध विमोचनीम् ॥

कथा नं. १०—अधम ते अधम अधम अति नारी ।
तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता ।
मानऊ एक भगति कर नाता ॥

अर्थ—जो अधम से अधम हैं, स्त्रियाँ उनमें भी अधम हैं और उनमें भी हे पाप नाशन ! मैं मन्दबुद्धि हूँ श्री रघुनाथ जी ने कहा हे भामिनि ! मेरी बात सुन—मैं तो केवल एक भक्ति का ही सम्बन्ध मानता हूँ ॥१॥

जाति पाति कुल धर्म बड़ाई धनबल परिजन गुन चतुराई ।
भक्ति हीन नर सोहई कैसा, बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥

अर्थ—जाति, पाति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब गुण और चतुरता इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जल हीन बादल (शोभाहीन) दिखाई पड़ता है ॥२॥

नवधा भक्ति कहउँ तोहि पाहीं, सावधान सुनु धरू मन माहीं ।
प्रथम भक्ति संतन्ह कर संगा, दूसरि रतिमम कथा प्रसंगा ॥

अर्थ—मैं तुझ से अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ तू सावधान होकर सुन और धारण कर । पहली भक्ति

है सन्तों का सत्संग। दूसरी भक्ति है मेरी कथा प्रसंग में प्रेम ॥ ३ ॥

दो०—गुरपद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करई कपट तजि गान॥

अर्थ—तीसरी भक्ति है अभिमान रहित हो कर गुरु के चरण कमलों की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोड़ कर मेरे गुण समूहों का गान करें ॥४॥

चौ०—मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो वेद प्रकाशा॥
छठ दम सील बिरति बहुकरमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

अर्थ—मेरे (राम) मन्त्र का जाप और मुझ में दृढ़ विश्वास यह पाँचवी भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों का निग्रह शील (अच्छा स्वभाव या चरित्र) बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों का धर्म (आचरण) में लगे रहना ॥५॥

सातव सम मोहि मय जग देखा,
मोते सन्त अधिक करि लेखा।
आठव जथा लाभ सन्तोषा,
सपनेहुँ नहि देखई परदोषा॥

अर्थ—सातवीं भक्ति है जगत भर को समभाव से

मुझ में ओत प्रोत (राम मय) देखना और सन्तों को मुझ से भी अधिक करके मानना। आठवीं भक्ति है जो कुछ भी मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वप्न में भी पराये दोषों को न देखना ॥६॥

नवम सरल सब सन छल हीना,
मम भरोस हियँ हरष न दीना।
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई,
नारि पुरुष सचराचर कोई ॥

नवीं भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित वर्ताव करना, हृदय में मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था में हर्ष और दैन्य (विषाद) का न होना। इन नवों में से जिनकी एक भी भक्ति होती है, वह स्त्री, पुरुष, जड़ चेतन कोई भी हो ॥ ७॥

सोई अतिसय प्रिय भामिनि मोरे,
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे।
जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई,
तो कहुँ आजु सुलभ भई सोई ॥

अर्थ—हे भामिनि मुझे वही अत्यन्त प्रिय है। फिर तुझ में तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ़ है। अतएव जो गति योगियों को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी है।

जाति हीन अध जन्म महि, मुक्त कीन्द असनारी।
मद्दा मंद मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारी॥
पाति साही भगत जना को दितीअन, सिर छतु सचा हरि बणाय। । वार बड हंस म० ३ पृ० ६०।
भगत जना को राखदा अपणी किरपा धारि।
हलति पलति मुख ऊजले साचे के गुण सारि। सिरीराग म.५ पृ६
भगत वछलु हरि विरदु है हरि लाज रखाइआ।
जनु नानकु शरणागती हरि नाम तराइआ। आसा म.४पृ.४४६
दूत दुशमन सभि तुझते निवरहे प्रगट प्रतापु तुमारा।
जो जो तुमरे भगत दुखाए ओहु ततकाल तुम मारा॥
घनासरी म० ४-६८१

ना तु आवहि वसि बहुतु घिणावणे,
ना तू आवहि वसि वेद पढावणे।
ना तू आवहि वसि तीरथि नाईऐ,
ना तू आवहि वसि धरति धाईऐ॥
ना तू आवहि वसि कितै सिआणपै,
ना तू आवहि वसि बहुता दान देय।
सभको तेरै वसि अगम अगोचरा,
तू भगता कै वसि भगता ताणुतेरा॥
(रामकली वार म० ५ पृ० ६६२)

चारि मुक्ति चारै सिद्धि मिलिकै,

दुलह प्रभु की सरनि परिओ ।
मुक्ति भईओ चौहूँ जुग जानिओं,
जस कीर्ति माथे (छत) धरिओ ॥
रामागय जपत को को न तरिओं,
गुरु उपदेश साधु की संगति भगतु २,
तांको नामु परिओ ॥ रहाऊ ॥
संख, चक्र, माला तिलकु बिराजित,
देखि प्रताप जमु डरिओ ।
निरभउ भए राम बल गरजित,
जन्म मरण संताप हरियो ॥
अम्बरीष को दीओ अभै पदु राजु भमीखन अधिक करिओ।
नवनिधि ठाकुरी दई सुदामे धुअ अटलु अजहु न टरिओ॥
भगत हेति मारिओ हरनाकस नरसिंघ रूप होइ देह धरिओ।
नामा कहि भगति बसि केसव अजहूँ बलि के दुआर खरो॥
। रागमारू नामदेव १२०५ ।
सुधि साखी मन जपि पिआर।
अजामलु उधरिआ कहि एक बार॥
बालमीकै होवा साधु संगु ।
ध्रुव कौ मिलिया हरि निसंग।
तेरिआ संता जाचौं चरन रेन। ले मस्तक लावउ
करि कृपा देन, गनिका उधरी हरि कहै तोत। गजेन्द्र

धियाइओ हरि किओ मोख, विप्र सुदामे दालत भंज।
रे मन तूँ भी भजु गोविन्द। वधिक उधारिओ खमि प्रहार,
कुबिजाउधरि अंगुष्ट धार विदुर उधारिओ दासत भाई।
रे मन तू भी हरि धिआई। प्रहलाद रखी हरि पैज आप।
वस्त्र छीनत द्रोपदी राखी लाज। जिन २ सेविआ अन्तवार।
रे मन सेवितूँ परहि पार। धनै सेविया वाल बुद्धि।
त्रिलोचन गुरू मिली भई सिधि। वेणी को गुरू कियो
प्रगासु, रे मन तू भी होहि दासु॥ जैदेव तिआगिओ
अहंमेव. नाई उधरियो सैन सेव। मन डिग न डोले कहूँ
जाये, मन तूँ भी तरसहि सरणि पाये। जिह अनुग्रह
ठाकुरि कीओ आपि, से तैं लीने भगत राखि॥ तिनका
गुण अवगुण न विचारियो कोये। इह विधि देखि मन लगा सेव।
कबीर धियाइयो एक रंग। नामदेव हरि जीऊ बसहि संग।
रविदास धिआए प्रभु अनूप। गुरू नानकदेव गोबिन्दरूप।

। बसन्त म० ५ पृ० ११९२।

खटु कर्म कुल - संजुगत है हरि भक्ति हिरदे नाहि।
चरणारविन्द न कथा भावे सुपच तुलि समानि॥
रे चित्त चेति चेत अचेत। काहे न बालमिकहि देख।
किस जाति ते किह पदहि अमरिओ राम भगति बिसेख॥
सुआन शत्रु अजात सबते क्रिशना लावे हेतु।
लोग बपुरा किआ सराहै तीन लोक प्रवेस॥

अजामल पिंगला लुभतु कुँचरु गए हरि के पास।
ऐसे दुरमति निमतरे तू किऊ न तरहि रविदास॥
(केदारा रविदास पृ० १२४)

चौ०—जे असि भगति जानि परिहरहीं।
केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी।
खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥

अर्थ—जो भक्ति की ऐसी महिमा जानकर भी उसे छोड़ देते हैं और केवल ज्ञान के लिए श्रम साधन करते हैं वे मूर्ख घर पर खड़ी हुई कामधेनु को छोड़ कर दूध के लिए मदार के पेड़ को खोजते फिरते हैं।

चौ०—सुनु खगेश हरिभक्ति बिहाई।
जो सुख चाहहि आन उपाई॥
ते शठ महा सिन्धु बिनु तरनी।
पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥

अर्थ—हे पक्षिराज सुनिये जो लोग श्री हरि की भक्ति को छोड़ कर दूसरे उपायों से सुख चाहते हैं, वे मूर्ख और जड़ करनी वाले (अभागे) बिना ही जहाज के तैरकर महा समुद्र के पार जाना चाहते हैं।

चौ०—सुनि भुशुण्डि के वचन भवानी।
बोलेऊ गरुड़ हरषि मृदुबानी॥

तव प्रसाद प्रभु मम उर माहीं ।
संसय सोक मोह भ्रम नाहीं ॥

अर्थ—शिव जी कहते हैं हे भवानी, भुशुण्डी के वचन सुन कर गरुड़ जी हर्षित होकर कोमल वाणी से बोले ! हे प्रभो, आपके प्रसाद से मेरे हृदय में अब सन्देह शोक मोह और भ्रम कुछ भी नहीं रहे ।

कथा नं. ११–चौ.–सुनेऊ पुनीत राम गुन ग्रामा ।
तुम्हरी कृपा लहेहुँ विश्रामा ॥
एक बात प्रभु पूँछहुँ तोही ।
कहहु बुझाई कृपानिधि मोही ॥

अर्थ—मैंने आपकी कृपा से श्री रामचन्द्र जी के पवित्र गुण समूह को सुना और शान्ति प्राप्त की । हे प्रभो अब मैं आपसे एक बात और पूछता हूँ । हे कृपा-सागर मुझे समझा कर कहिये ।

चौ०—कहहिं संत मुनि वेद पुराना ।
नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना ॥
सोई मुनि तुम्ह सन कहेउ गुसाईं ।
नहिं आदरेहुँ भगति की नाईं ॥

सन्त, मुनि, वेद, और पुराण यह कहते हैं कि ज्ञान के समान दुर्लभ कुछ नहीं है । हे स्वामी, वही ज्ञान मुनि

ने आपसे कहा परन्तु आपने भक्ति के समान उसका आदर नहीं किया।

चौ०—ग्यानहि भगतिहि अन्तरकेता।
सकल कहहु प्रभु कृपा निकेता॥
सुनि उरगारि वचन सुख माना।
सादर बोलेउ काग सुजाना॥

अर्थ—हे कृपा के धाम, हे प्रभो ज्ञान और भक्ति में कितना अन्तर है। यह सब मुझसे कहिये। गरुड़ जी के वचन सुनकर सुजान काकभुशुण्डि जी ने सुख माना और आदर के साथ कहा।

चौ०—भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा।
उभय हरहिं भव संभव खेदा॥
नाथ मुनीश कहहिं कछु अन्तर।
सावधान सो सुन विहंगवर॥

अर्थ—भक्ति और ज्ञान में कुछ भी भेद नहीं है दोनों ही संसार में उत्पन्न क्लेशों को हर लेते हैं। हे नाथ! मुनीश्वर इनमें कुछ अन्तर बताते हैं। हे पक्षि श्रेष्ठ उसे सावधान होकर सुनिये।

चौ०—इहाँ न पच्छपातकछु राखहुँ।
वेद पुराण सन्त मत भाषहुँ॥

मोह न नारि नारि के रूपा ।
पन्नगारि यह रीति अनूपा ॥

अर्थ—यहाँ मैं कुछ पक्षपात नहीं रखता । वेद पुराण और सन्तों का (सिद्धान्त) भी कहता हूँ । हे गरुड़ ! यह अनुपम (विलक्षण) रीति है कि एक स्त्री के रूप पर दूसरी स्त्री मोहित नहीं होती ।

चौ०—माया भगति सुनहु तुम दोऊ ।
नारि वर्ग जान सब कोऊ ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी ।
माया खलु नर्तकी विचारी ॥

अर्थ—आप सुनिये, माया और भक्ति—ये दोनों ही स्त्रीवर्ग की हैं । यह सब कोई जानते हैं । फिर श्री रघुवीर को भक्ति प्यारी है । माया तो निश्चय ही नाचने वाली (नटनी मात्र) है ।

चौ०—भगतिहि सानुकूल रघुराया ।
ताते तेहि डरपति अति माया ॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी ।
बसइ जासु उर सदा अबाधी ॥

अर्थ—श्री रघुनाथ जी भक्ति के विशेष अनुकूल रहते हैं । इससे माया उससे अत्यन्त डरती रहती है। जिसके हृदय में उपमारहित और उपाधिरहित (विशुद्ध)

राम भक्ति सदा बिना किसी बाधा (रोक टोक) के रहती है ।

चौ०—जेहि बिलोकि माया सकुचाई ।
करि न सकई कछु निज प्रभुताई ॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी ।
जाचहिं भगति सकल सुख खानी ॥

अर्थ—उसे देख कर माया सकुचा जाती है । उस पर वह अपनी प्रभुता कुछ भी नहीं कर सकती । ऐसा विचार कर ही जो विज्ञानी मुनि हैं वे भी सब सुखों की खानी भक्ती की ही याचना करते हैं ।

दो०—भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्हि महा ऋषि शाप ।
मुनि दुर्लभ वर पायउँ, देखहु भजन प्रताप ॥

अर्थ—मैं हठ करके भक्ति पथ पर अड़ा रहा जिससे महर्षि लोमश ने मुझे शाप दिया परन्तु उसका फल यह हुआ कि जो मुनियों को भी दुर्लभ था (है), वह वरदान मैंने पाया । भजन का प्रताप तो देखिये ॥ ८८ ॥

दोहा—औरउ ग्यान भगति कर भेद सुनहु सु प्रबीन ।
जो सुन होई रामपद प्रीति सदा अबि छीन ॥

अर्थ हे सु चतुर गरुड़ जी, ज्ञान और भक्ति का और भी भेद सुनिये । जिसके सुनने से राम जी के चरणों में सदा अविच्छिन्न (एक तार) प्रेम हो जाता है ।

इस प्रकार पहले पार्वती जी श्रोता हुई जहाँ से यह रामायण चली। जब दूसरी बार अमर कथा महादेव जी ने पार्वती को सुनाई। पार्वती जी को नींद आगई और तोता कथा सुनता रहा वही शुकदेव स्वामी हुए हैं। जो सन्यासियों के मुख्य आचार्य और परम विरक्त हुए है।

जिनसे राजा परीक्षित सात दिन में श्रीमद्भागवत् सुन कर मुक्त हो गया यह सब पार्वती जी का उपकार है और तीसरी बार समुद्र के तीर पर पार्वती जी ने महादेव जी से योगाभ्यास की कुछ बातें पूछीं तो महादेव जी ने पार्वती जी को योगाभ्यास की अनेक युक्तियां सुनाई सुनते सुनते पार्वती की नींद आगई और एक मच्छ यह युक्तियाँ सुनता रहा। पार्वती जी उस मच्छ पर बड़ी प्रसन्न हुई और महादेव जी से प्रार्थना की, कि इसको मनुष्य बना कर कोई उच्च पदवी दो।

तब शिव जी ने प्रसन्न होकर मच्छ को नाथ सम्प्रदाय का आचार्य मत्स्येन्द्रनाथ बनाया जो गोरखनाथ आदी चौरासी सिद्धों के गुरु हुए है। यह भी पार्वती जी का उपकार है। इस प्रकार प्रथम श्रोता पार्वती जी हुई और महादेव जी से राम चरित्र कागभुशुंडि जी ने सुना।

सोई शिव कागभुशुण्डिहि दीना, रामभगत अधिकारी चीन्हा॥

तु० कृ० रा०

धन्नेजट ने सुना था कि हमारे में नीच कुल वाले दो दो कौड़ी के आदमी हरि भक्ति के प्रभाव से लाखों के हो गए हैं। जैसे नामदेव का प्रसंग—धन्ने ने सुना था कि छिंबा जाति का नामदेव पंढरपुर शहर का रहने वाला था उसको बाल्यावस्था में ही परमेश्वर का दर्शन हुआ और वह दो कौड़ी का छींबा लाखों का बन गया।

कथा नं० १२—एक दिन नामदेव का नाना जिस का नाम ज्ञानदेव था अथवा (वामदेव) भी था उसने ठाकुर रक्खे थे प्रतिदिन पूजन करता और भोग लगाता था। एक दिन किसी काम के लिए उसको दूर जाना पड़ गया और नामदेव को बुला कर कहा कि दो दिन तुम ठाकुर जी का पूजन करना और भोग लगाना। कपिला गौ का दूध पिलाना मैं भी दो दिन में वापस आजाऊँगा। नामदेव ने कहा कि मैं प्रेम से पूजा करूँगा। यह कह उसका नाना काम के लिए अन्य ग्राम में चला गया। नामदेव जी कपिला गौ को दुह कर दूध ले आया और प्रार्थना करने लगा।

दूध पीओ गोविन्दे राय। दूध पीओ मेरो मन पती आय।
नाहीं तो घर को बाप रिसाय ॥ भगउ नामदेव पृ० ११६३

दूध गरम करके केसर, मिश्री आदि डाल कर पीने योग्य बना कर भगवान् के आगे नमस्कार प्रार्थना करता है।

परन्तु भगवान् ने दूध न पिया क्योंकि पहले भी न पीते थे किन्तु इस बालक नामदेव को पता न था। वह बहुत रोने लगा और कहा कि आप दूध क्यों नहीं पीते मेरे में कोई त्रुटि हो तो बताओ मैं उसको दूर करूँ अगर दूध न पीओगे तो मेरा नाना नाराज होकर मेरे को मारेगा ऐसे प्रेम में आकर अनेक बार कहा परन्तु भगवान न बोले और न दूध ही पिया तब तो नामदेव बार २ प्रार्थना करने लगा, हे भगवान आप बोलते क्यों नहीं। परन्तु भगवान फिर भी न बोले नामदेव सारे दिन भूखा रहा और विचार किया कि भगवान् ने जब भोग नहीं लगाया तो मैं कैसे खालूं। इस प्रकार भूखा रोता रहा और भगवान के आगे प्रार्थना करता रहा। फिर नामदेव जी को याद आया कि मैंने तो स्नान नहीं किया और न बरतन ही माँजे हैं। इसलिए भगवान् भोजन नहीं खाते हैं। हे भगवान्! यह मेरा अपराध क्षमा करो दूसरे दिन स्नान करके अच्छी तरह बर्तनों को साफ कर फिर दूध गरम करके मीठा डालकर ले आया और कहा कि हे भगवान्! आप कल के भूखे हो अब तो दूध पीलो। सोइन कटोरी अमृत भरी। लै नामे हरि आगे धरी।

जब फिर भी भगवान ने दूध न पिया तो नामदेव और अधिक रोने लगा, रोने की आवाज सुन कर लोगों ने

बहुत समझाया कि ठाकुर जी दूध नहीं पीते हैं सब पुजारी लोग ठाकुरों के आगे पदार्थ रख कर परदा करके फिर उठा लेते हैं। केवल दृष्टि भोग लगता है इसलिए तू भी ठाकुर जी को दिखा कर दूध पीले, तेरा नाना भी इसी तरह किया करता है इस प्रकार बहुत मनुष्यों ने नामदेव को समझाया परन्तु नामदेव जी ने कहा कि यह मेरी दूध पिलाने की प्रथम ही सेवा है अगर अब न पिलाया तो फिर कब पिलाऊँगा अब तो मेरी यह प्रतिज्ञा है अगर ठाकुर जी दूध न पीयेंगे तो मैं शरीर छोड़ दूँगा। भगवान-भक्त की सच्ची प्रीति देख कर हँस पड़े।

"एक भक्त मेरे हिर्दे बसे, नामे देख नारायण हँसे"

भगवान को हँसते देख कर नामदेव भगवान के चरणों में लिपट गया और रोने लगा। "शिशु बल रोदन रूठ" इसलिये प्रेम में आकर रोने लगा तो भगवान ने उसको गोद में बैठा लिया और दूध पी लिया तथा नामदेव को भी दूध दिया।

दूध पीआय भगत घर गया, नामे हरि का दर्शन भया॥

नामदेव को फिर एक बार दर्शन हुआ तब तो नामदेव का परमेश्वर में और भी अधिक प्रेम हो गया सब काम छोड़ कर परमेश्वर के ध्यान में मग्न रहे तब लोगों ने बहुत कहा कि तू यह कर्म कर, यह कर्म कर, परन्तु नामदेव जी

ईश्वर नाम तुल्य और किसी को न मानते हुए नरक निषेध करते हैं ।

श्लोक–पृथ्वीशेष धृता माशम्भु मुकुटे कैलाशगामी प्यसौ ।
कैलाशोऽपि दशाननेन तुलितो बद्धो प्यसौ बालिना ॥
बालिराघव विष्णुना युधिजितो विष्णुः मतौ मानसे ।
तस्मात् विष्णु परायणो गुरुतरो नान्योस्ति लोकत्रये ॥

उस समय का एक सुलेमान मुसलमान राजा था, उसकी कपिला गौ मर गई तो काजियों ने ईर्षा करके कहा कि हिन्दू नामदेव छीपे ने एक ब्राह्मणी के लड़के को जीवित किया था क्या राजा की गौ को जीवित न करेगा ।

नामदेव जी को पकड़ कर बादशाह के सामने ले गए बादशाह ने उसको कारागार में डालकर कहा कि या तो गौ जिला दो नहीं तो मुसलमान बनो अगर ऐसा न करोगे तो तुम्हें जान से मार दिया जायेगा । नामदेव जी ने न तो गौ को जीवित किया और न मुसलमान ही बनना चाहा तब बादशाह ने अहँकार में आकर मस्त हाथी को नामदेव के पीछे दौड़ाया परन्तु वह हाथी भक्त जी को बारम्बार सलाम करने लगा और भय से पीछे ही भाग गया । महावत ने अनेक यत्न किये परन्तु हाथी उधर गया ही नहीं । उसी समय नामदेव की माता रोने लगी और कहने लगी कि हे पुत्र तू मुसलमान ही बन जा

क्योंकि मैं तेरा दर्शन तो करती रहूँगी यह सुन कर नामदेव जी ने कहा कि तू मेरे को धर्म से विमुख करना चाहती है। इसलिये तू मेरी माता नहीं। जब नामदेव जी पर हाथी दौड़ाने का हुक्म हो गया। तब नामदेव जी के भक्तों ने बादशाह से कहा। नामदेव जी के बराबर तोल कर सुवर्ण ले लो और नामदेव जी को छोड़ दो परन्तु बादशाह ने स्वीकार न किया और कहा कि आठ घड़ी के अन्दर मैं इसको अवश्य मरवा दूंगा। जब सात घड़ी बीत चुकी और एक घड़ी शेष रही तो नामदेव के मन में संकल्प हुआ कि भक्तों की रक्षा के लिए अभी तक भगवान् आये नहीं।

इतने में पक्षों का शब्द सुनाई दिया गरुड़ पर चढ़े भगवान् आते दिखाई दिये, नामदेव को धैर्य दिया और कहा कि नामदेव अगर तू कहे तो बादशाह को राज्य के सहित नष्ट करदूं अथवा मरी हुई गौ को जीवित करदूं। तब नामदेव जी ने कहा कि भगवन गौ को जीवित कर दीजिये। तब भगवान ने गौ जीवित कर दी। बादशाह ने उसका दूध निकलवा कर पिया, ऐसा सामर्थ्यवान देख कर बादशाह ने नामदेव जी को अपना गुरु बनाया तब नामदेव जी का पहले से भी अधिक प्रताप बढ़ गया और अपने भक्तों सहित संसार समुद्र से पार हो गये। यह

कथा भक्त नामदेव जी ने स्वयं अपनी वाणी में इस प्रकार से प्रकट की है।

इस प्रकार की नामदेव की कथा सुनकर धन्ना भक्त भक्ति में लग गया फिर नामदेव जी की ईश्वर नाम में सब साधनों से अधिक श्रद्धा सुनी जैसे गौंड राग में नामदेव ने लिखा है।

इस प्रकार नामदेव की ईश्वर नाम में प्रीति सुनकर धन्ने भक्त ने मन में विचार किया कि तेरे से नीच जाति वाले संसार समुद्र से पार हो जाते हैं क्या तू ईश्वर स्मरण कर संसार समुद्र से पार न हो सकेगा ? फिर कबीर जी का यश सुना।

कथा नं २३—बुनना तनना त्यागि कै प्रीति चरन कबिरा।
नीच कुला जोलाहरा भइओ गुनीय गहिरा ॥

इस प्रकार कबीर जी की कथा सुनी कि काशी में बड़े प्रसिद्ध तपस्वी रामानन्द जी रहते थे उनके पास एक दिन एक ब्राह्मण बालविधवा कन्या को साथ लेकर आया नमस्कार की और स्वामीजी से कहा कि इस कन्या पर कृपा करो। इसकी आयु सुख से व्यतीत होवे तब स्वामी रामनन्द के मुख से निकल गया कि हे पुत्री तू पुत्र-वती हो, तब कन्या रोने लगी कि मैं विधवा हूँ, आपने

मेरे को यह कैसा वर दे दिया। तो स्वामी रामानन्द जी कहने लगे. अब तो वचन हो गया ऐसा ही होगा परन्तु ईश्वर का अंश, कुल को तारने वाला तुम्हारे पुत्र जन्मेगा तू कोई चिन्ता न कर तब कन्या देश छोड़ कर विदेश में रहने लगी और जब स्वामी रामानन्द जी के वचन से पुत्र पैदा हुआ तब इन्हीं के आश्रम में उस लड़के को छोड़ गई स्वामी रामानन्द जी समाधि में स्थित थे। एक जुलाहा तथा उसकी स्त्री रास्ते में चले जा रहे थे उनको बालक के रोने की आवाज सुनाई दी उनके कोई सन्तान न थी इसलिए उस बालक को उठाया अपना पुत्र बना कर पालन किया, जब बड़ा हुआ तो तनने बुनने का काम सिखाया। और शादी भी करदी। परन्तु कबीर जी का चित्त सांसारिक व्यवहारों से उदासीन रहता था, तथा ईश्वर भजन मे हर समय लगा रहता था इस लिए घर के कार्य पर विशेष ध्यान नहीं देते थे, सन्तों की सेवा में अधिक रुचि रखते थे अतः माता हर समय कबीर पर अप्रसन्न रहती थी।

कबीर जी अपनी माता को समझा रहे है कि परमात्मा की भक्ति के बिना कुल की मात-पिता तथा बालक के जीवन की शास्त्रों में निन्दा लिखी है।

कबीर जी ने इस प्रकार माता जी को समझा कर अपने भक्ति में लगाया कबीर जी का यश सुनकर काशी

निरामी ब्राह्मण सहन न कर सके। इसलिए कबीर के साथ ईर्षा करने लगे और अपने मन में यह विचारा कि किसी तरह से कबीर की निन्दा हो जाय। इसी उद्देश्य से उन लोगों ने काशी में ढिंढोरा पिटवाया कि कबीर के घर कल को बड़ा भारी यज्ञ है सब लोग वहीं भोजन करें और ब्राह्मणों को एक एक मुद्रिका मोहर) दक्षिणा में दी जायेगी। दूसरे दिन सहस्त्रों की गिनती में ब्राह्मण और साधु कबीर जी के घर पहुंच गए। कबीरजी सबको भोजन खिलाने म अपने को असमर्थ देख कर घर छोड़ कर भाग गए। तब श्री नारायण और लक्ष्मी जी ने स्वयं कबीर और लोई के रूप में आकर भण्डारे का सब काम पूर्ण किया। छत्तीस प्रकार के भोजन सबको प्रसन्नता पूर्वक खिलाए और एक २ मोहर ब्राह्मणों को दक्षिणा में दी। तब सब धन्य कबीर धन्य कबीर कहते २ जाते थे। तो वन में छिपे हुए कबीर ने लोगों से पूछा कि कहां से भोजन खाये हो तब उन्होंने कहा कबीर के घर जाओ वहां बड़ा यज्ञ हो रहा है और छत्तीस प्रकार के भोजन मिल रहे हैं। तब कबीर जी ने घर आकर भगवान का दर्शन पाया और पहिले से भी अधिक भगवान में प्रीति हो गई।

एक दिन एक दूती गाना—सब छोड़ेंगे, तथा हरामी,

से निराश हो कर कुष्ट को दूर करने के लिए कबीर जी के पास आया। कबीर जी उस समय कहीं गए हुए थे तब राजा ने कबीर जी की स्त्री लोई से बड़ी प्रार्थना की और प्रतिज्ञा की कि अगर मेरा कुष्ट दूर न होगा तो मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगा तथा तुम्हारे द्वार पर ही पड़ा रहूँगा तब लोई ने लाचार होकर उस राजा से तीन बार राम कहला कर तथा जल के छींटे देकर उसको राजी कर दिया क्योंकि परमेश्वर के नाम में पाप दूर करने की महान् शक्ति है।

यह वचन स्मरण कर तब लोई जी ने राजा को नाम का महात्म्य सुनाया और आंखों से दिखाया। राजा की बड़ी श्रद्धा हो गई और उनका शिष्य बन गया। कहने लगा भगवान के प्यारे भक्त और सन्तों के यहां लक्षण सुनते थे वैसे ही देख लिये।

यह वचन स्मरण कर राजा सदैव के लिए सन्तों का सेवक बन गया और कबीर जी का यश गाने लगा जब कबीर जी वापस आये और पता लगा कि लोई ने तीन बार राम नाम कहाकर राजा का कुष्ट दूर किया है तब लोई से नाराज हो गए और पीठ फेर कर बैठ गए। तब लोई ने अपने पति को नाराज देख कर चरणों में पड़ कर अपने अपराध की क्षमा मांगी और विनती करनेलगी।

लोई ने बार बार क्षमा माँगी तो कबीर जी कहने लगे कि तुमने तीन बार राम नाम क्यों कहलाया एक बार राम नाम कहने से क्या कुष्ट दूर नहीं हो सकता था तब लोई कहने लगी हे भगवन् आपकी शरण में होकर फिर दुखी होवे यह मैं योग्य न समझ कर तीन बार राम नाम कहला कर उस राजा के सब रोग दूर कर दिए। एक बार राम नाम के कहने से उसका कुष्ट दूर किया दूसरी बार राम नाम कहला कर कुष्ट जनक पापों को दूर किया, तीसरी बार राम नाम कहला कर सर्व पापों और जन्म मरण का कारण अज्ञान निवृत किया। हे भगवन्! इसलिए तीन बार राम नाम कहलाया, यह भावपूर्ण वार्ता सुन कर कबीर जी बड़े प्रसन्न हुए इस प्रकार के आश्चर्य प्रसङ्ग कबीर जी और लोई जी के धन्ने भक्त ने सुने और ईश्वर की भक्ति में तत्पर हो गए फिर उसने रविदास भक्त के गुण श्रवण किये।

रविदास भक्त की कथा इस प्रकार है। पूर्व जन्म में रविदास जी श्री स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे और सात घरों से सूखे सीधे की भिक्षा माँग कर स्वामी रामानन्द जी को भोजन बनाकर खिलाया करते थे, एक दिन वर्षा अधिक थी, और गलियों में कीचड़ भी अधिक था, इनको भिक्षा में जाते हुए एक वैश्य ने प्रार्थना की कि

आज जितने सीधे की आपको जरूरत है उतना ही सीधा हमारे यहाँ से ले जाओ।

वैश्य के वचन सुनकर वह ब्रह्मचारी वहाँ से ही सीधा (आटा दाल) आदि ले आया और भोजन बना कर स्वामी जी को खिला दिया जब स्वामी रामानन्द जी समाधि स्थित हुए तो मन में चमारों जैसे भाव उत्पन्न होने लगे तब ब्रह्मचारी को बुलाया और पूछा अन्न कहाँ से लाया था तो उसने कहा कि अमुक वैश्य से लाया था। उस वैश्य से पूछा कि यह अन्न कैसा था तो उसने कहा कि महाराज एक चमार हमारे से कोई चीज ले गया उसके बदले वह आटा दे गया था अतः यह आटा चमार के घर का था। तब स्वामी रामानन्द ने क्रोध में आकर कहा कि तूने हमारे ब्रह्म अभ्यास में बाधा डाली है जा तू मर कर चमार हो जा। तब वह मर कर चमार होगया परन्तु पूर्व जन्म के शुभ संस्कारों से पिछले जन्म की सब बातें उनको ज्ञात रहीं, इसलिए वह माता के स्तन का दूध न पिये तब माता-पिता बड़े दुःखी हुए उनको स्वप्न हुआ कि स्वामी रामानन्द जी इसको दूध पिलायेंगे तब वह बच्चे को लेकर स्वामी रामानन्द के पास पहुँचे। स्वामी जी ने योग बल से देखा—यह वही ब्रह्मचारी है ऐसा पहिचान कर उसके कान में गुरुमन्त्र सुनाया और दूध

पान की आज्ञा दी तब वह बालक दूध पीने लगा और बचपन से ही ईश्वर भक्ति में मगन हो गया। जब बड़े हुए तो काशी से बाहर कुटिया बनाकर रहने लगे और अपना काम जूता बनाना आदि करते थे। ठाकुर पूजा और सत्सग भी करते थे। तब भगवान पूजा की जगह कभी रुपये कभी मोहरें रख जाते किन्तु रविदास जी उन पर हाथ भी न लगाते। जब भगवान ने अच्छी प्रकार परीक्षा कर ली कि यह लक्ष्मी का भक्त नहीं हमारा ही अनन्य भक्त है। भगवान ने चतुर्भुज रूप में दर्श दिया और कहा कि इस धन से यात्रियों के लिए धर्मशाला बनादो और अतिथियों की सेवा में लगादो। तब रविदास ने भगवान की आज्ञा मान कर वैसा ही किया, सारा दिन भगवान के प्रेम में मस्त रहते थे। रविदास का नाम ईश्वर भक्ति के प्रभाव से बहुत विख्यात हो गया।

कथा नं० १४—एक दिन एक ब्राह्मण ने आकर कहा अथवा किसी जगह ऐसा भी लिखा है कि एक शेख ने आकर कहा—महाराज हमें भी प्रेम का रंग दीजिये। उस समय रविदास जी जिस कुण्ड में चर्म धोया जाता था उसका पानी चर्म के पात्र से निकाल रहे थे। शेख के वचन सुन करके श्री रविदास जी ने कहा कि ले तू भी प्रेम का रङ्ग लेले। ऐसा कह कर चर्म के पात्र से निकाल कर

उसी कुण्ड वाला पानी उसकी अञ्जली में डाल दिया। तब उसको बहुत ग्लानि हुई और कुर्ते में छिपाकर उस जल को फेंक दिया परन्तु कुर्ते में दाग लग गए, घर में जाकर उस कुर्ते को उतार कर नौकरानी को दे दिया कहा कि इसको खूब अच्छी तरह-धोकर दाग उतार दो। नौकरानी के सोडा सज्जी लगाने पर भी वह दाग न छूटा। तब वह कुर्ते को दांतों से खूब दबाकर के और चूस-चूस कर उसका दाग उतारने लगी जब उस दाग का कुछ-कुछ रस अन्दर जाने पर उसमें अनेक शक्तियां आगईं तब मालकिन ने दासी से पूछा कि यह सिद्धि तुम्हारे को कहाँ से प्राप्त हुई है तो दासी ने कहा कि दाग को उतारने के लिए यह कुरता मुख में पाकर खूब चबाया उसका रस मुख द्वारा मेरे अन्दर चला गया बस उस दाग की ही कृपा है। यह आश्चर्यमय कौतुक देख कर शेखजी पुनः रविदास के पास आए और विनती की कि महाराज प्रेम का रङ्ग प्रदान कीजिये पहले तो मैं अज्ञान से पृथ्वी पर फेंक दिया था। यह सुनकर श्री रविदास जी कहने लगे कि वह समय वही था अब वह समय मिलना असम्भव है क्योंकि उस समय भगवान श्री कृष्णचन्द्र जी गोपियों के साथ होली खेल रहे थे और मैं भगवान की पिचकारियों में रङ्ग भर कर देता था आपको भी उसी में से पानी

दिया था। इसलिए अब वह समय मिलना कठिन है परन्तु शेष जी की बहुत प्रार्थना करने पर श्री रविदास जी महाराज ने अपने दयालु स्वभाव से ईश्वर भक्ति का प्रेम देकर कृतार्थ कर दिया। उस दिन से रविदास जी का नाम देश देशान्तरों में प्रसिद्ध हो गया।

॥ भक्त रविदास जी की दूसरी कथा ॥

एक ब्राह्मण काशी को जा रहा था रास्ते में रविदासजी की धर्मशाला में १ रात्रि रहा। रविदास जी ने उसका जूता टूटा हुआ देखा तो प्रार्थना की कि महाराज! यह जूता छोड दो आप नया जूता पहिन लो तब ब्राह्मण नहीं माना फिर रविदास ने कहा कि लाओ इसकी मरम्मत करदूँ। ब्राह्मण फिर भी न माना रविदास जी की बहुत प्रार्थना करने पर ब्राह्मण ने कहा कि हमारे से एक दमडी लेगा तो फिर हम जूता ठीक करायेंगे तो रविदास जी ने दमडी लेकर जूता गाँठ दिया और फिर पूछा कि कहाँ जाओगे? ब्राह्मण ने कहा काशी जाऊँगा। रविदास जी ने कहा अच्छा यही दमडी श्री गंगा जी को मेरी तरफ से भेंट चढ़ा देना, परन्तु यदि हाथ निकाल कर प्रेम से ले तो देना नहीं तो मत देना। ब्राह्मण ने कहा अच्छा ऐसा ही करूँगा। जब वह ब्राह्मण काशी पहुँचा और श्री गङ्गा जी को दमडी देते समय कहा कि हे मात गंगे! यह दमडी रवि

दास भक्त ने आपको भेंट भेजी है और उसने कहा था कि अगर हाथ निकाल कर लेवें तो देना नहीं तो मत देना गङ्गा जी ने उसी समय हाथ निकाला ब्राह्मण ने वह दमड़ी उसके हाथ पर रखदी गङ्गा जी ने ब्राह्मण के सामने ही मुख में डाल ली और कहा कि भक्त रविदास को मेरी तरफ से नमस्कार करना और कहना कि यह दासी सेवा के लिए तय्यार है और यह लो कंगन रविदास जी को भेंट देना वह ब्राह्मण कंगन लेकर घर को चला आया तब उसका चित्त लोभ के वशीभूत होकर बदल गया उस की स्त्री ने बहुत समझाया कि किसी की अमानत को गुम करना अच्छा नहीं परन्तु वह लोभ के पंजे से न छूट सका अन्त में वह कंगन राजा के पास बेचा। राजा ने अपनी पटरानी को पहिनाया तब रानी ने रात्रि के समय अपनी कंगन वाली भुजा को देखा तो वह दिव्य भूषण से प्रकाशित थी और दूसरी भुजा भूषण से शून्य प्रकाश रहित थी। रानी खिन्न मन हो गई और राजा से कहा कि इसके साथ का दूसरा भी कंगन मँगवादो तब राजा ने उस ब्राह्मण को बुलवाया और कहा कि पहिले जैसा एक कंगन और ला दो, क़ीमत अपनी इच्छानुसार ले लो। तब ब्राह्मण ने कहा कि यह कंगन श्री गङ्गा जी ने मेरे को रविदास चमार के लिए दिया था मैंने उसको बताया नहीं

चोरी से तुम्हारे पास ले आया फिर राजा ने गङ्गा जी के पास जाकर बहुत स्तोत्र पढ़े परन्तु गङ्गा जी ने कुछ भी नहीं दिया तब उस ब्राह्मण को साथ लेकर राजा रविदास जी के पास आया और कंगन के लिए प्रार्थना की तब रविदास जी ने कहा कि जितनी इच्छा हो उतने कंगन ले लो। रविदास जी जिस पत्थर पर जूते बनाया करते थे उस शिला को अलग हटा कर गंगा जी का आवाहन कर कहा कि राजा को कंगन दो तब वहां से ही श्री गंगा जी एक एक लहर के साथ बहुत से कंगन बाहर फेंकने लगी तो राजा और ब्राह्मण देख कर बड़े चकित हुए और रविदास जी के चरणों में पड़े वह राजा रविदास जी का शिष्य बन गया और स्तुति की कि हरि भक्त सन्त महात्मा राजाधिराज होते हैं। मैं कंगाल तो आपका भिखारी हूँ, तब रविदास जी ने कहा कि यह सब ईश्वर नाम का महत्व है। आप भी ईश्वर नाम स्मरण करके महान् बन सकते हैं।

कथा नं० १५—इस प्रकार रविदास जी का नाम बहुत प्रसिद्ध हो गया कितने ही राजा-रानी शिष्य बन गए। एक झाली नाम वाली रानी काशी स्नान करने आई। रविदास जी का नाम श्रवण कर दर्शन करने आई। रविदास जी के अमृत रूप वचन सुन कर चित शान्त होगया और परम श्रद्धा हो गई। रविदास जी से प्रार्थना की

कि मुझे शिष्या बनाओ। परन्तु रविदास जी ने बहुत कहा कि मैं चमार हूँ तुम क्षत्राणी हो इसलिए किसी ब्राह्मण की शिष्या बनो परन्तु झाली रानी ने बहुत हठ किया और प्रतिज्ञा की कि आपको गुरु बनाये बिना मैं अन्न जल ग्रहण न करूँगी। फिर रविदास जी ने कहा अपने से उत्तम जाति वाले को ही गुरु बनाना चाहिये। झाली रानी बड़ी विचार शील थी उसने कहा कि गुरु बनाने में जाति का कोई नियम नहीं, गुरु ब्रह्मज्ञानी होना चाहिये यही एक नियम गुरु बनाने में है। जैसे शुकदेव स्वामी जी ने ब्राह्मण और संन्यासी होने पर भी क्षत्री, फिर गृहस्थी राजा जनक को गुरु बनाया और दो बार ब्रह्मवेत्ता जनक पर ग्लानि करने से आठ कलायें वैराग्य की घट गई। वैराग्य की एक कला भी बड़े भाग्य से प्राप्त होती है। जब ऐसी आठ कलायें घट गई, तब शुकदेव जी में कोई विरक्ति की दमक न रही। उनके पिता व्यास भगवान यह चरित्र देख कर पुत्र निमित्त शोक करने लगे। शुकदेव जी को बहुत- समझाया परन्तु वह न समझा आखिर श्री नारद जी आए और शुकदेव जी के सन्मुख मजदूर के स्वरूप में नदी- में रेत डाल कर पुल बाँधने लगे, यह वृतान्त देख कर शुकदेवजी नारदजी को न पहचान कर इस प्रकार कटु वचन बोले, अरे मूर्ख ! तू क्या कर रहा

है ? नारद कहने लगा मैं पुल बाँध रहा हूँ। शुकदेव जी ने कहा अरे मूर्ख कहीं रेत से भी पुल बाधा जाता है तब नारद जी ने कहा अरे महामूर्ख ब्रह्मवेत्ता ! गुरु में ग्लानि करने वाले को भी कभी ज्ञान हुआ है क्या चित्त को शान्ति हुई है ? मेरी तो केवल रेत की टोकरी ही गई है नदी का रेता नदी ही में पड गया परन्तु ब्रह्मवेत्ता श्री राजा जनक जी में ग्लानि करने से तुम्हारी आठ कलायें वैराग्य की नष्ट हो गई है। इसलिये तू मेरे से भी अधिक महामूर्ख है। नारद जी के ऐसे वचन सुनकर शुकदेव जी उनके पवित्र चरणों में गिर पडे तब नारद जी ने अपना वास्तविक स्वरूप दिखा कर उपदेश किया कि ब्रह्मवेत्ता चाहे अपने से नीच जाति ही क्यों न हो तो भी उनमें ग्लानि न करनी चाहिये। प्रत्युत उन से उपदेश लेकर अपना मोक्ष रूप कार्य करना चाहिये। शुकदेव और राजा जनक के दृष्टान्त के बाद और भी बहुत से उदाहरण देते हैं। जैसे-ब्रह्मा जी कमल से और व्यास जी मछोदरी से पैदा हुए हैं फिर भी ब्रह्मवेत्ता होने से सबके गुरु और पूज्य बने और जैसे केशर वा फूल कीचड से पैदा होते हैं फिर भी केसर से तिलक दिया जाता है और फूल सिर पर चढ़ाये जाते हैं। कस्तूरी मृग की नाभि से निकलती है जो कि एक अशुद्ध वस्तु होती है उसको पुण्य कार्यों में

और पवित्र समझ कर मन्त्रों यन्त्रों में, अष्टगन्ध आदिकों में डालते हैं और सब देवताओं पर चढ़ाई जाती है। उसका कोई दोष नहीं मानता। चन्दन का वृक्ष जो कि आकार में छोटा होता है परन्तु अपनी सुगन्धी से सब वृक्षों को शीतल कर देता है परन्तु बाँस बड़प्पन के अभिमान से सुगन्धि को ग्रहण नहीं करता। अतः चन्दन का सहगामी होने पर भी चन्दन स्वरूप नहीं होता। जैसे ही चन्दन की तरह भक्त और महात्मा लोग भी उपदेश रुपी सुगन्धि से सब को चन्दन अर्थात् मुक्त कर देते हैं। जैसे नीच वर्णों से भी घी, मक्खन दूध लेकर खा लेते हैं परन्तु कोई विचार नहीं करते, रेशम के कीड़ों को मारकर उसको सुधार कर वस्त्र बनाते हैं और सब लोग जप तप आदि कर्मों में पवित्र जानकर ओढ़ते हैं। जैसे कुम्हार मिट्टी के कसोरे आदि बनाते हैं उनसे सब लोग बड़ी २ पंक्तियों में मट्ठा आदि पीते हैं कोई भी संकोच नहीं करते वैसे ही ब्रह्मवेत्ता की जाति का कोई विचार नहीं करना चाहिये। इस प्रकार युक्ति तथा नम्रता के वचन कहकर रविदास जी को प्रसन्न किया और रविदास जी ने उसको उत्तम अधिकारिणी समझ कर अपनी चरण सेविका बनाया।

रानी ने रविदास जी के अमृत रूपी वचनों द्वारा

अपना चित्त शान्त किया फिर कुछ दिन रहकर काशी की यात्रा करके आज्ञा लेकर अपनी राजधानी में गईं। वहाँ अपने पति को सब समाचार सुनाया तो राजा को भी बहुत श्रद्धा होगई फिर पति को प्रेरणा की कि महाराज! रविदास जी को अपनी राजधानी में बुलाओ सत्संग करें। राजा ने रानी के वचनानुसार अपने मन्त्रियों को भेजा कि रविदास जी को नम्रता पूर्वक प्रसन्न कर धूम धाम के साथ राजधानी में ले आओ। मन्त्रियों ने बड़ी नम्रता से रविदास जी को प्रसन्न कर बड़ी धूम धाम के साथ अपनी राजधानी में ले आये। रविदास जी का सत्संग सुनकर सबका चित्त शान्त हुआ। रानी ने लाखों रुपया लगाकर अपने गुरु रविदास जी के नाम पर यज्ञ और भण्डारा कराया। सब देशों के पंडित बुलाये और कहला भेजा कि एक एक मोहर दक्षिणा में दी जावेगी, तो लाखों ब्राह्मण इकट्ठे हो गये यज्ञ के बाद जब भण्डारा तैयार हो गया तब पंक्तियाँ लगाई गयीं। किन्तु जाति अभिमानी ब्राह्मणों ने सबको भड़का दिया कि चमार के चेले राजा-रानी का भोजन हमें खाना योग्य नहीं। पंक्ति में से सब ब्राह्मण उठ खड़े हुए और कहा कि हम चमार के शिष्यों का भोजन नहीं करेंगे। अगर मन्दिर में चमार के हाथ का ठाकुर जी खालेंगे तो हम भी खालेंगे नहीं तो हम

नहीं खायेंगे। तब राजा रानी ने कहा अच्छा तुम ठाकुर जी को भोग लगाओ और हमारे गुरुजी भोग लगाते हैं देखें किसका भोजन ठाकुर जी खाते हैं।

तब ब्राह्मणों ने भी ठाकुर जी के लिए अपना अपना अलग अलग भोजन बना कर भोग लगाया तो ठाकुर जी ने किसी का भी भोजन न खाया। सब के भोजन वैसे ही पड़े रहे तब रविदास जी को कहा गया कि आप ठाकुर जी को भोग लगाओ। तो रविदास जी ने प्रेम के अटपटे वचन कह कर ठाकुर जी को प्रसन्न किया। तो ठाकुर जी भक्त के प्रेम में मग्न होकर भोजन खाने लगे। जिस तरह भीलनी के बेर श्री रामचन्द्र जी ने खाये थे, उसी प्रकार भगवान रविदास का भोजन खा कर बड़े प्रसन्न हुए। तब सब ब्राह्मण लज्जित होगए और अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण होने पर सब ब्राह्मण पंक्ति में बैठ कर भोजन करने लगे। तो ठाकुर जी ने एक और अद्भुत लीला की कि प्रत्येक ब्राह्मणों के बीच में एक एक रविदास बनकर बैठ गए। अनन्त ब्राह्मणों के बीच में अनन्त रविदास बैठ कर भोजन करने लगे तब ब्राह्मणों का अहंकार निवृत्त हुआ। तो सब ब्राह्मणों ने रविदास जी को ईश्वर स्वरूप जानकर प्रणाम किया। तब रविदास ने कहा मैं तो चमार हूं, यह मेरा प्रताप नहीं, यह सब ईश्वर नाम का प्रताप

है। बड़ों के संग से नीच और छोटी वस्तुएँ भी पूज्य हो जाती है।

कथा नं० १६—रविदास की इस प्रकार की कथाएँ सुनकर धन्ने जट्ट को भक्ति करने का उत्साह उत्पन्न हुआ, तथा 'सैन नाई" की कथाएँ श्रवण की। जैसे पूर्व देश में बांध बगड नगर में सैन नाई रहता था और सवा पहर समाधि में स्थित रहने का जिसका नियम था। बाद में साधु सेवा करनी फिर राजा रामसिंह जो कबीर जी का शिष्य था उसकी तेलमालिश करनी, क्योंकि राजा को कोई व्याधि लगी हुई थी। इसलिए नित्य मालिश कराता फिर सत्संग में चला जाता था। कबीर जी के सत्संग से सैन भक्त की परमात्मा में प्रीति प्रतिदिन बढ़ती गई और कबीर जी ने अपना गुरु भाई अर्थात् श्री रामानन्द जी का शिष्य बनाया। एक दिन सैन भक्त के पास सन्तों की मण्डली आई तो भक्त उनकी जलपानादि सेवा में लग गया फिर सत्संग में चला गया। उसका वहीं पर चित्त लग गया और राजा के पास जाने का ख्याल ही न रहा। जब सन्त भोजन पाकर चले गए तो दोपहर के बाद सैन भक्त को ख्याल हुआ कि मैं आज राजा के पास नहीं गया। अतः राजा मेरे पर नाराज होगा। तब जल्दी जल्दी राजद्वार में गया और राजा को कहना ही

चाहता था कि मेरे मे आज आया नहीं गया यह अपराध क्षमा करें। राजा ने पहिले ही दूर से देख कर बुला लिया। अपनी पोशाक उतार कर उसके गले में पहिना दी और कहा कि आज तुमने मेरी बहुत अच्छी मालिश की है। जिस से मे बिल्कुल राजी हो गया हूँ। सैन ने कहा महाराज! आज तो में आया ही नहीं। राजा ने कहा अभी तो तू गया है, तब सैन ने जाना कि मेरे स्वरूप में भगवान् ही सेवा कर गये हैं। उस दिन से सब काम छोड़ सैन नाई भक्ति में तत्पर हो गये। इस प्रकार सैन नाई को परमेश्वर का परम भक्त समझ कर राजा ने सत्कार किया और सैन भी परमेश्वर की भक्ति में लीन होगया। इस प्रकार की कथाएँ सुनकर धन्ने भक्त ने मन में विचार किया कि हे मन नामदेव छींबा, कबीर जुलाहा, रविदास चमार और सैननाई ये सब नीच जाति वाले थे परन्तु नाम के महात्म्य से पूज्य हो गए और संसार समुद्र से पार हो गये। तू तो वैश्यों से भी श्रेष्ठ है—क्षत्री जाट है। क्या तू नाम जप कर न तरेगा? अवश्य तरेगा। अब धन्ने भक्त की कथा कहते हैं—धन्ना भक्त जाट जमींदारों में पैदा हुआ था। इसके ग्राम में सन्त बहुत रहा करते थे। इनके माता पिता भी सत्संगी थे, यह भी माता पिता के साथ सन्तों के पास जाया

करता बड़े ध्यान और प्रेम पूर्वक कथा सुना करता था। भक्तों की कथायें सुनकर इसके चित्तमें भक्ति करने का सकल्प हुआ। वन में अपने घर की गौयें चराने जाया करता था, उसी वन में नदी के किनारे भक्त त्रिलोचन जी स्नान कर ठाकुर पूजा किया करते थे। यह भी दूर से खड़ा नित्य पूजा करते देखता था। एक दिन ठाकुर पूजा करने का मन में दृढ़ संकल्प हुआ। त्रिलोचन भक्त जी के पास जाकर कहने लगा, कि मेरे को भी ठाकुर दो तो म भी पूजा किया करूँ! त्रिलोचन जी ने मना किया जब सबसे उत्तम कपिला गौ त्रिलोचन को दूध पीने के लिए दी और कहा कि और भी आपकी सेवा करूँगा परन्तु मेरे को ठाकुर देदो। तब धन्ने का प्रेम तथा सेवा देख एक बड़ा पत्थर दे कर त्रिलोचन ने कहा कि यह सबसे बड़ा ठाकुर है। प्रातःकाल स्नानादि क्रिया से निवृत होकर इस प्रकार से पूजन किया करना। तब धन्ने ने कहा कि बहुत अच्छा जैसे आप कहते हैं वैसे ही करूँगा, ठाकुर लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ। धन्ना ठाकुर जी को घर पर ले आया। लिपे पुते एक पवित्र स्थान पर उनकी स्थापना की और स्नान करके ठाकुर जी को स्नान कराया, वस्त्रा-भूषण पहनायें। पूजन की सामग्री से पूजन किया फिर दस बजे के बाद साग, रोटी, दाल, मक्खन आदि

ठाकुर जी के आगे रख कर पर्दा लगा दिया सोचा कि ठाकुर जी परदे में खायेंगे।

कुछ देरी के बाद ख्याल किया कि ठाकुर जी खा चुके होंगे। डरते डरते परदा उठाकर देखा तो भोजन उसी तरह पड़ा है, ठाकुर जी ने खाया नहीं? फिर परदा कर दिया थोड़ी देर के बाद फिर देखा तो भोजन वैसे ही पड़ा है। अब धन्ना विनय पूर्वक कहने लगा कि हे भगवन्! भोजन न खाने का क्या कारण है? अगर कोई अपराध हो तो क्षमा करें और अपना नवीन दास समझ कर मेरी त्रुटियां बतावें, परन्तु कुछ आवाज न आई तो रोने लगा। लोगों ने समझाया परन्तु न माना और कहा कि अब तो मेरा जीवन मरण ठाकुर जी के अधीन है। अगर ठाकुरजी खायेंगे तो मैं खाऊँगा। इस प्रकार दो दिन बीत गए परन्तु ठाकुर जी ने भोजन न किया। जब धन्ना वन में जाकर लकड़ियां इकट्ठी कर जलने लगा तब भगवान् ने स्वामी रामानन्द जी को प्रेरणा की कि धन्ना भक्त को समझाओ। जलने की तैयारी कर ही रहा था, उसी समय रामानन्द जी भी पहुँच गए और बहुत अच्छी तरह समझाया कि आत्म हत्या करना महान पाप है और मर कर अधगति को प्राप्त होता है। स्वामी रामानन्द जी के यह वचन सुन कर धन्ने को श्रद्धा उत्पन्न हुई और कहा

कि महाराज मेरे को अपना शिष्य बनाओ। तब स्वामी रामानन्द जी ने निर्गुण ब्रह्म का उपदेश किया और ब्रह्म ज्ञानी बना दिया। परन्तु धना भक्त ने जो प्रण किया था कि भगवान को खिलाकर मैं भोजन खाऊँगा, इस हठ को नहीं छोड़ा। तब भगवान् ने प्रत्यक्ष हो कर दर्शन दिया और कहा कि आत्मघात करना अच्छा नहीं, हम तुम्हारा भोजन खायेंगे। धन्ना ने कहा आप प्रतिदिन हमारे से हठ करेंगे इसी से मरना ही अच्छा है। तब भगवान उसको प्रेम से मनाने लगे कि हम तुम्हारे से हठ नहीं करेंगे तुम्हारे साथ ही रहेंगे और खेती बाड़ी का काम भी साथ में करायेंगे, पर तुम आत्म हत्या मत करो। अब धन्ना ठाकुर जी के साथ घर आया। भगवान को रोटी खिलाई और आप भी खाई। अब ठाकुर को साथ लेकर खेती-बाड़ी का सब काम स्वयं करने लगा और अपने आप को छुट्टी करके घर में बैठा दिया। भगवान धन्ने के साथ मिलकर कभी हल जोतते हैं कभी घटी यन्त्र (हरहट) चलाते हैं। कभी केदार (क्यारियों) में छोड़ते हैं। ऐसे भक्त के सब काम करते हैं। एक दिन त्रिलोचन भक्त धन्ना जी को मिले और पूछा कि ठाकुर जी की पूजा तो करता है किन्तु भोग लगाता है कि नहीं? धन्ना कहने लगा कि आपके दिए हुए ठाकुर जी दो दिन तो हमारे से नाराज रहे।

खाया पिया कुछ भी नहीं, जब मैं मरने लगा तो भगवान ने आकर मेरे को समझाया कि अब मैं तुम्हारे से नहीं रूठूँगा। तब से तो खाते पीते और खेती बाड़ी का काम भी करते हैं। यह सब वृतान्त सुनकर भक्त त्रिलोचन चकित हो कर कहने लगा कि काम भी करते हैं? क्या यह बात सत्य है? तब धन्ने ने कहा—हाँ हल जोतते हैं, हरहट चलाते हैं और खेतों में पानी लगाते हैं। धन्ने की ऐसी बात सुन कर भक्त त्रिलोचन जी ने कहा कि मेरे को भी दर्शन कराओ। तब धन्ने ने कहा चलो—ऐसा कह कर हरहट पर ले आया, परन्तु भगवान ने उसको दर्शन न दिया। धन्ने ने कहा कि यह मेरे गुरुदेव हैं इनको अवश्य दर्शन दीजिये। तब भगवान ने दर्शन दिया और कहा मैं भक्तों के आधीन हूँ यह भोलाभाला हमारा भक्त है। 'भोले भाव मिले रघुराया' ऐसा सुनकर भोले भाव वाले धन्ने जट ने भक्ति द्वारा परमात्मा का दर्शन किया।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

अर्थ—हे पुरुष! शास्त्र और महात्माओं के वचनों को सुन कर ही पुरुष धर्माधर्म को जानता है। श्रवण से दुर्मति को त्याग देता है। और श्रवण से ही ज्ञान तथा मोक्ष को प्राप्त होता है।

नवधाभक्ति—श्री विष्णोः श्रवणे परिक्षिदभवत् वैयासकि कीर्तने प्रह्लाद स्मरणे तदन्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने। अक्रूरस्त्वाभिवन्दने कपिपतिर्दास्येऽथसख्येऽर्जुनः सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत् कृष्णाप्तिरेषां परम्॥ भा० ५-४७।

१—श्रवणभक्ति—परीक्षित राजा ने की है।
२—कीर्तन भक्ति—शुकदेव जी ने की है।
३.—स्मरण भक्ति—प्रह्लाद जी ने की है।
४.—पाद सेवन भक्ति—लक्ष्मी ने की है।
५.—पूजन भक्ति—पृथु राजा ने की है।
६.—वन्दना भक्ति—अक्रूर जी ने की है।
७.—दास भक्ति—हनुमान जी ने की है।
८.—सखा भक्ति—अर्जुन ने की है।
९.—सर्वस्व आत्म समर्पण भक्ति—राजा बली ने की है।

८— ❀ दान महिमा ❀

पिछली राती जागणा नाम दान इसनान द्रिढाए,
मिठा बोलण निव चलण हथहु देके भला मनाए,
थोडा सवणा खावणा थोडा बोलण गुरमति पाए,
घाल खाय सुकृत करै वड़ा होइ न आप गणाए,
साधु संगति मिल गावंदे रात दिहँ नित चल चल जाए,

सबद सुरति परचा करै सतिगुरु परचै मन परचाए,
आसा विच निरास वलाए, वार भाई गुरदास २८ पउड़ी १५

गुरमुख नाम दान इसनान (रामकली सिद्ध गोष्ट)
गुरमुख लोग प्रातः काल उठ कर स्नान तथा दान करते हैं और नाम जपते हैं, दान भी प्रातः काल का ही होता है इसलिए दान अवश्य करना चाहिये जैसे गुरु जी लिखते हैं।

खट घाल किछु हाथों देई। नानक राह पछाणै सेई।
पुन दान का करै शरीर। सो गिरही गंगा का नीर॥

फरीद जी—मीठा बोलै निव चलै हाथों भी कुछ देय।
रब तिन्हा की बुकली जंगल किआ ढूँडेइ॥

श्लोक—दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुख मश्नुते।
इहामुत्र च दानेन पूज्यो भवति मानवः॥

श्लो.—शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पंडितः।
वक्ता दश सहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥

अर्थ—दान से स्वर्ग प्राप्त होता है, दान से सुख भोगता है। इस लोक और परलोक में भी दान से मनुष्य पूज्य होता है॥१॥

सैंकड़ों में कोई एक शूरवीर होता है और हजारों में से कोई एक पंडित होता है हजारों में से कोई एक वक्ता होता है। परन्तु इन सब में से दानी पुरुष हो अथवा न

है। इसमें सन्देह ही है। भगवान कृष्णचन्द्र ने कर्ण के मूर्छित होते समय अर्जुन को कहा कि आज दान का सूर्य अस्त हो जायगा। अर्जुन ने कहा क्यों? भगवान बोले कर्ण जैसा दानी संसार भर में कोई नहीं है। कर्ण की प्रशंसा सुनकर अर्जुन को ईर्षा हुई। कहा कि मैं कर्ण के दान को देखना चाहता हूँ। तब भगवान बोले हम दोनों ब्राह्मण का रूप धारण कर कर्ण के पास चलें दोनों ब्राह्मण के रूप में कर्ण के पास गए और कहने लगे।

कर्ण कर्ण महावीर सदा दाताऽसि भूतले।
प्राप्य विष्णोः प्रसादत्त्वं वरं प्रापयथेप्सितम्॥

महाभारत अध्याय ६६ कर्ण पर्व श्लो० २३

ब्राह्मणोवाच—आध्यादिना शरीरेण मनसा निर्धनेन च।
याचकोऽहं त्वीयप्राप्तस्त्वं जीव शरदां शतम्॥

अर्थः—हे कर्ण! पृथ्वी मंडल में दाता तू ही है परमेश्वर की कृपा का पात्र तू है; हमारे को दान देकर वांछित वर को प्राप्त हो। ब्राह्मण ने कहा मैं आधि-व्याधि रोगों से पीड़ित हूँ तथा निर्धन होने से दुःखी हूँ। याचक बनकर तेरे पास आया हूँ, तू मेरे को दान देकर सौ वर्ष जीता रहो॥ २४॥

लक्ष्मी विष्णु के पास चली जायेगी और राज्य युधिष्ठिर के पास चला जायेगा, हे कर्ण तेरे स्वर्ग चले

जाने पर याचक लोग कहाँ जायेंगे। मेरी कन्या विवाह के योग्य हो गयी है। किन्तु मेरे पास धन कुछ भी नहीं है मैं तेरे पास आया हूँ और तेरे से बहुत स्वर्ण माँगता हूँ। मैं याचक हूँ परमात्मा किसी को याचक कुल में पैदा न करे। याचक के जन्म से तो वन में पक्षी का जन्म श्रेष्ठ है पर्वत के ऊपर घास बनना श्रेष्ठ है। याचक की, माता पुत्र रहित रह जाय यह श्रेष्ठ है परन्तु याचक कुल का जन्म श्रेष्ठ नहीं। अर्थात् माँगने वाले का जन्म श्रेष्ठ नहीं क्योंकि माँगने वाला सब से हल्का होता है जैसे लिखा है कि तृण से भी हल्की रुई होती है किन्तु रुई से भी याचक हल्का होता है।

शंका—वायु ने याचक को उड़ाया क्यों नहीं ?

समाधान—वायु डरता है कि मेरे से भी कुछ माँग न ले माँगने वाले सेसब डरते हैं इसलिए वायु भी पास नहीं आता याचक के चिन्ह ऐसे होते हैं कि माँगते समय शरीर संकुचित तथा वाणी दीन हो जाती है। कण्ठ से टूटे-फूटे शब्द निकलते हैं, कंठ रुक जाता है पसीने से शरीर पानी-पानी हो जाता है और मरते समय जो चिन्ह होते हैं वही चिन्ह याचक के हो जाते हैं। हे कर्ण ! ऐसा याचक होकर मैं तेरे पास आया हूँ और इस दरिद्र को अब तक किसी ने दग्ध नहीं किया लिखा भी है कि महादेव जी

ने पाँच बाणों वाले कामदेव को दग्ध किया वह भी अच्छा नहीं किया जैसे अर्जुन ने खाण्डव वन को दग्ध किया जो दिव्य वृक्षों से भूषित था। वह भी उसने अच्छा नहीं किया परन्तु किसी शूरवीर ने दरिद्र जो कि लोगों को तपाने वाला है उसको नहीं जलाया यह शोक है।

कर्ण उवाच—इति तस्य वच श्रुत्वा कर्णःप्रोवाच तं द्विजम्।
इमाम वस्थां प्राप्तोऽहं स्थितोऽस्मि धरणीतले॥
अधुना चात्र वित्तंमे समीपे नास्ति किंचन।

अर्थ——यह वचन सुन कर्ण बोला हे ब्राह्मणों में श्रेष्ठ मैं इस अवस्था को प्राप्त हो और पृथ्वी पर पडा हूँ। मेरे पास धन नहीं अतः मैं असमर्थ हूँ।

विप्रउवाच—काले वर्षति मेघेहि वृक्षाः काले फलन्तिहि।
भूमिर्हि फलति काले गावः काले दुहन्ति च॥
सर्वं फलंति कालेहि कर्णः फलति सर्वदा।
इति ख्यातिं समा श्रुत्यद्यागतस्तव संनिधौ॥
सर्वदा सर्वदाताऽसि सर्वदा समयस्त्वयि।
अस्माकं कर्म दौर्बल्यात् कर्णोऽपि जडतांगतः।

अर्थ——समय पर बादल बरसता है वृक्ष समय पर ही फलते है, भूमि भी समय पर फल देती है और गौवें भी समय पर ही दुही जाती है। सब वस्तुएँ समय पर फलती है परन्तु हे कर्ण तू सर्वदा फलता है

तेरी ख्याति सुनकर मैं तेरे पास आया हूँ। सदा सब कुछ देने वाला तू है और तेरे पास सब समय है परन्तु हमारा कर्म दुर्बल होने से कर्ण भी हमारे लिए कंजूस हो गया है। देखो सामने दाँतों में स्वर्ण दीखता है यह वचन सुनकर कर्ण ने कहा हाँ हाँ मेरे दान्तों में सुवर्ण है? अब याद आगया।

कर्णोवाच—मम भार सुवर्णस्य दन्ताः बद्धास्तुहीरकैः।
पातयित्वा तु तान् सर्वान्गृहाणत्वं द्विजोत्तम्॥

अर्थ—कर्ण कहता है, मेरे दाँतों में स्वर्ण तथा हीरे जड़े हुए हैं आप इनको पत्थर से तोड़ कर बड़ी खुशी से लेलो तब ब्राह्मण ने कहा।

विप्रोवाच—वृद्धोऽहं नैवशक्तोस्मि दन्तान पातयितुंचते।

अर्थ—मैं वृद्ध तेरे दाँतों को तोड़ने में असमर्थ हूँ। तब कर्ण ने कहा।

कर्णोवाच—पाषाणं देहि मे नाथ येनोत्पाट्य ददामिते।

अर्थ—हे नाथ! मेरे को पत्थर उठा कर दो मैं अपने आप दाँत तोड़ देता हूँ।

विप्रोवाच—पाषाणमपि दातु ते न शक्तोऽस्मि कदाचनः।

अर्थ—ब्राह्मण ने कहा—कि मैं तेरे को पत्थर देने में भी असमर्थ हूँ।

वैशंपायनोवाच–तादृशोपि तदा कर्णो गतःपाषाणसन्निधौ।
गृहीत्वा तत्र पाषाणं नानाभिन्न करेण वै॥
यावद्दाति दंतान् वै पातयित्वार्क नन्दनः।
हरिः स्व रूपमास्थाय करे धृत्वाप्युवाच ह॥
भो भो कर्ण महावीर त्वत्समो नास्ति भूतले।
यत्त्वयाचरितं कर्म तेन तुष्टोऽस्मि सांप्रतम्॥
वरं ब्रूहि महा प्राज्ञयत्ते मनसि रोचते।

अर्थ–वैशम्पायन जी कहते हैं–पृथ्वी पर गिरा हुआ भी कर्ण सरकता-सरकता पत्थर के पास चला गया और पत्थर को उठाकर जिसके हाथों की अँगुलियाँ कटी हुई हैं धीरे-धीरे पत्थर दाँतों पर चलाने लगा। तो ब्राह्मण वेष में हरि ने प्रकट होकर कर्ण का हाथ पकड़ लिया और कहा कि हे कर्ण! हे महावीर! तेरे समान भूतल में कोई दानी नहीं। मरते समय भी दाँत तोड़ कर दान देने लगा है; इससे मैं अति प्रसन्न हूँ। अब तू मनवांछित वर मांग।

कर्ण उवाच–विप्रार्थे हि धनं क्षीणं स्वदारागतयौवनम्।
स्वामि कार्ये गतान् प्राणान् देहि मे मधुसूदन॥
पात्रे दानं मतिः कृष्णे मरणं जाह्नवी तटे।
स्थाने वासः कुले जन्म देहि मे मधुसूदन॥
आसनं सुतसंकीर्णं विप्रसंकीर्ण मन्दिरम्।
हृदयं शास्त्रसंकीर्णं देहि मे मधुसूदन!॥

तिलकं विप्र हस्तेन मातृहस्तेन भोजनम् ।
पिंडं च पुत्र हस्तेन देहि मे मधुसूदन ! ॥
दुर्भिक्षे चान्नदातृत्वं हेमदानं सुभिक्षके ।
आतुरेऽभय दातृत्वं देहि मे मधुसूदन ! ॥
मा मतिः परदारेषु पर द्रव्येषु मा मतिः ।
परापवादिनी जिह्वा मा भूदेवं कदाचन ॥
सत्यं शौचं दया दानं भक्ति रेका जर्नादने ।
दमनंदक्षता चैव देहि मे मधुसूदन ! ॥
व्याधिनारहितो देहो ह्याधिना रहितं मनः ।
स्थिरा श्रीर्नित्यभक्तिश्च देहि मे मधुसूदन ! ॥
यदि तुष्टोऽसि मे देवह्यदग्धे दह्यतां मम ।
इत्येवं प्रार्थितं यच्च विष्णुस्तं प्रददौ मुदा ॥
भूमिः सर्वत्र निर्दग्धा ह्यदग्धा नैव दृश्यते ।
एकास्मिन् वै स्थलं गत्वा भूमिं पप्रच्छ केशवः ॥
भूमिरुवाच–पृथ्वी त्वं ब्रूहि मे सत्यं कोऽपि दग्धस्तवोपरि ।
अत्र भीष्म शतं दग्धं द्रोणश्चैव शतम् शतम् ॥
दुर्योधन सहस्रस्य कर्ण संख्या न विद्यते ।
तदा कृष्णेन कर्णोऽसौ वाम हस्ते प्रज्वालितः ॥
दक्षिणः बलि राजे यः पूर्वं दग्धस्तु हस्तकः ।

अर्थ–कर्ण ने कहा हे मधुसूदन ! मेरे पर यदि प्रसन्न होकर वर देते हो तो यह वर दो मेरा धन ब्रह्मवेत्ता

ब्राह्मणों में खर्च होवे, मेरा यौवन अपनी स्त्री में खर्च होवे और अपने स्वामी के कार्य में प्राण जावें।

सुपात्र में मैं दान दूँ, मेरी वृत्ति हर समय आप में लगी रहे, मेरा मरण गंगा जी के किनारे पर हो, सत्संग में निवास हो और अच्छे कुल में जन्म हो। पुत्रों के साथ मेरा बैठक हो, मेरा घर साधु ब्राह्मणों से पूरित हो और हृदय शास्त्र सिद्धान्त से पूरित रहे हे मधुसूदन मेरे को यह वर दो कि ब्राह्मण के हाथ से मेरा तिलक हो, माता के हाथ से भोजन हो और पुत्र के हाथों से मेरा पिंड हो। हे कृष्ण! दुर्भिक्ष में अन्न देने वाला सुभिक्ष में स्वर्ण देने वाला तथा दुःख काल में अभय दान देने वाला मैं ही होऊँ। मैं सदाचारी होऊँ। मेरी पर स्त्रियों में मातृ बुद्धि हो, पर धन में बुद्धि न हो, मृतिका बुद्धि हो तथा मेरी जिह्वा कभी भी पर निन्दा और चुगली करने वाली न हो। सब दिव्य गुणों से मेरा अन्तःकरण शुद्ध हो अर्थात् सत्यवादी, शौच, पवित्र रहने वाला दाभी तथा आपका अनन्य भक्त होऊँ, इन्द्रियों को दमन करने वाला तथा प्रत्येक बात समझने में चतुर होऊँ, हे मधुसूदन मुझे यह वर दो। मेरा शरीर नीरोग तथा मन ताप रहित हो, लक्ष्मी स्थिर रहे और नित्य आपमें भक्ति बनी रहे यह वर दो। हे कृष्ण यदि आप मेरे पर प्रसन्न हो तो आपका

ध्यान करते ही मेरा शरीर छूटे और आपने ही अदग्ध स्थान में मेरी दाह क्रिया करनी । इस प्रकार जो-जो वर माँगे भगवान प्रसन्न होकर देते गये तदनन्तर कर्ण ने भगवान के चरणों का ध्यान करते हुए शरीर छोड़ दिया और भगवान भी कर्ण के लिए अदग्ध भूमि खोजने लगे। सब जगह दग्ध भूमि मिली अदग्ध भूमि कहीं नहीं मिली। एक सुन्दर जगह जाकर भगवान ने पूछा कि हे भूमि कहो यहाँ कोई शव (मुर्दा) जला है अथवा नहीं ।

तब भूमि ने कहा यहाँ तो सैकड़ों बार भीष्म जल चुका है सैकड़ों बार द्रोण जल चुका है, हजारों बार दुर्योधन जल चुका है, कर्ण की तो कोई संख्या ही नहीं । तब भगवान कृष्ण ने अपने बायें हाथ पर कर्ण का दाह किया क्योंकि दाहिना हाथ राजा बलि से दान लेते समय ही दग्ध हो चुका था। भगवान की जो कर्ण पर इतनी प्रसन्नता हुई, यह सब दान की ही कृपा है इस लिए गुरमुखों को दान करना आवश्यक है। इसी कर्ण ने इन्द्र को अपनी त्वचा भी दान करदी थी इसके पिता ने बहुत रोका कि इन्द्र तेरे से त्वचा मांगने आएगा तो तुम न देना, परन्तु कर्ण ने कहा कि जब त्रिलोकी का नाथ याचक बन कर मेरे से मांगेगा तो मैं क्यों नहीं दूँगा । अन्त में कर्ण ने जीते जी अपनी त्वचा उतार कर देदी

महाभारत में यह कथा प्रसिद्ध है।

श्लो.-कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः।
ददौ दधीच्यस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मानाम्॥

अर्थ-कर्ण ने त्वचा दान की है शिबि ने अपना मांस दान किया है, जीमूत वाहन राजा ने जीव दान किया है और दधिचि ऋषि ने अपनी अस्थियों दान की है। महात्मा पुरुषों को कोई आदेय वस्तु नहीं अर्थात् उनके पास ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसको वह नहीं दे सकते।

महाराजा शिबि उशीनर देश के बड़े प्रसिद्ध दयालु तथा धर्मात्मा राजा हो चुके। यह सदैव भगवद्भक्ति योगादि कर्मों में लगे रहते थे। इन्होंने बहुत अश्वमेध यज्ञ किए थे इस प्रकार निरन्तर यज्ञ करते हुओं को देख कर इन्द्र को भय हो गया कि कभी इन्द्रासन न छीन ले, अतः उसके धर्म की परीक्षा लेने के लिए साक्षात् अग्निदेव और धर्म को भेजा। महाराज एक दिन अपने महल में सुख से बैठे थे तो उनकी गोद में एक कबूतर भयभीत हो कर काँपता हुआ आ बैठा। महाराज ने उसको प्यार किया और कहा कि मैं तेरे को अभयदान देता हूँ इतने में उसी कपोत का पीछा करता हुआ बाज भी वहाँ आगया बाज ने राजा से कहा कि यह हमारा आहार है। आप इसको छोड़ दो मैं इसको खाऊँगा राजा ने कहा मैं इसको अभय-

दान दे चुका हूँ यदि मैं इसको छोड़ दूँ तो मेरे को मिथ्या भाषण का पाप लगेगा बाज ने कहा आप धर्मात्मा हैं। सभी प्राणियों पर आपका समान अधिकार है जैसे इसकी रक्षा करना आपका धर्म है वैसे मुझे भूखे को आहार देना भी आपका धर्म है महाराज ने कहा कि तुम्हें भूख की निवृत्ति के लिए और जिसका माँस चाहिये मैं दूँगा, परन्तु इस को छोड दो। तब बाज ने कहा कि आप अपना माँस देदो क्योंकि मैं धर्मात्माओं का माँस खाता हूँ। कबूतर के वजन के बराबर माँस लूँगा। तब राजा ने कहा अच्छा मैं अपना ही माँस देता हूँ झट तराजू मगाया और अपना माँस काट कर उसमें रखा तो कबूतर का पलड़ा भारी निकला। आधा शरीर काटने पर भी बराबर न हुआ फिर अपना सिर काटने लगा तो उसी समय धर्मदेव और अग्निदेव ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड लिया और कहा कि बस हम तुम्हारे धर्म की परीक्षा ही लेने आये थे, अब हमने देख लिया कि तुम पूर्ण धर्मात्मा हो हम तुम्हारे ऊपर बहुत प्रसन्न हैं। इतना कह कर दोनों अपने लोक को चले गये। इस प्रकार राजा शिवि ने अपना माँस दान कर दिया था और राजा जीमूतवाहन ने भी अपना जीवन दान दिया था।

श्लोक—ददाति दुस्त्यजान् प्राणान् परार्थे दययायुतः ।
ददौ स शङ्खचूडार्थे प्राणान् जीमूत वाहनः ॥

कथा——धर्मात्मा भक्त जन दूसरों के लिए अपना दुस्त्यज (दुख से त्यागने योग) प्राणों को भी दया के वशीभूत होकर दे देते हैं। जैसे—शङ्खचूड़ा सर्प के लिए जीमूतवाहन ने अपने प्रिय प्राणों को दे दिया था। एक जीमूतकेतु नाम का राजा था। कल्पवृक्ष की कृपा से उसके घर में एक जीमूतवाहन नाम का पुत्र पैदा हुआ जब जीमूतवाहन बडा हुआ तब उसने भी कल्पवृक्ष की आराधना की। वर माँगा कि हमारे देश में दरिद्र न रहे सब धनी हो जॉय कल्पवृक्ष तथास्तु कह कर चल दिया। उसके राज्य में सब धनी हो गए। धनी होने से सब स्वतंत्र हो गए कोई किसी का कहना नहीं मानता था यहाँ तक की राजा का भी कोई कहना नहीं माने।

तब यह दोनों पिता पुत्र राज्य छोड कर वन को चले गए। एक दिन जीमूतवाहन भ्रमण करता हुआ देवी के दर्शन के लिए मन्दिर में गया, वहाँ मलयकेतु राजा की कन्या मलयवती वीणा लेकर गायन कर रही थी दोनों की परस्पर दृष्टि मिल गई। एक दूसरे पर मोहित हो गये तब मलयवती की सखियों ने उसकी माता से कह दिया। माता ने इसके पिता को कहा उसने अपने पुत्र को कहा

अन्त में सब ने यह सलाह की कि इस कन्या को व्याह दो। वर ढूंढने पर सब ने जीमूतवाहन को ही पसन्द किया और उसके साथ कन्या की शादी करदी। विवाह के पीछे जब घर आये तो दूसरे दिन जीमूतवाहन अपने साले मित्रावसु के साथ बाहर भ्रमण करने गया तो वहाँ पर देखा कि सफेद हड्डियों का ढेर लगा है पूछा कि यह क्या है ? तब उसके साले ने कहा कि पाताल के नाग कुमार आते हैं गरुड़ उनको खाकर यहाँ हड्डियाँ छोड़ जाते हैं। यह वचन सुन कर अपने साले मित्रावसु को कहा कि तुम घर जाओ मैं यहाँ नित्य नियम करके आऊँगा इतने में एक बूढ़ी माई के रोने की आवाज आई। जीमूतवाहन वहाँ पहुँच कर माई से पूछता है कि क्यों रोती है तब उसने कहा कि शङ्खचूड़ नाम वाला मेरा एक ही पुत्र है, उसकी आज वारी है इसलिये उसको गरुड़ खा जायगा, तब जीमूतवाहन ने कहा तेरे पुत्र की जगह मैं बैठता हूँ तू मत रो। इतना कह कर वहाँ बैठ गया, गरुड़ आया और उसको उठाकर ले गया। शङ्खचूड़ ने कहा कि यह तेरा भक्ष नहीं। तब गरुड़ ने उसको छोड़ दिया और जीमूतवाहन ने गरुड़ से वर माँगा कि जितने साँप मरे हैं सब को जीवित करदो और आगे के लिए सर्पों को खाना बन्द करदो तब गरुड़ ने वैसा ही किया।

रघुवंश में सङ्कृति नाम के एक बड़े प्रतापी राजा हुए हैं उनके दो पुत्र थे गुरु तथा रन्तीदेव, रन्तीदेव ने यह प्रण किया था कि मेरे द्वार से अतिथि कभी खाली नहीं जायेगा उसके द्वार पर याचकों की बहुत भीड़ रहने लगी। सब याचकों को मन वांछित भिक्षा देते-देते सारा कोष खाली होगया और उनके पास खाने मात्र को भी न रहा और राज्य में दुर्भिक्ष पड़ जाने के कारण भूख के मारे अपने परिवार को साथ लेकर राजा जंगल में चला गया। परन्तु उनके खाने के लिए तो कहाँ पीने के लिए एक बूंद जल की भी नहीं मिली इस प्रकार भूख प्यास से व्याकुल होने पर भी ईश्वर स्मरण में तत्पर रहे परन्तु शरीर भूख प्यास से शिथिल हो जाने से सब परिवार किसी वृक्ष के नीचे पड़ गया। इनको बिना खाये पीये ४८ दिन हो गये जब ४९वाँ दिन आया तब आकाश मार्ग से दिव्य भोजनों के थाल लगे हुए उनके आगे रखे गए और आकाशवाणी हुई कि ये थालें तुम्हारे लिए हैं। यह सुनकर राजा तथा परिवार के लोग बहुत प्रसन्न हुए और ईश्वर के गुणानुवाद करने लगे। ईश्वर को भोग लगा कर सब परिवार के लोग भोजन पाने की तैयारी कर ही रहे थे। इतने में एक ब्रह्मदेव आगए और कहा कि हे राजन्! मैं बहुत भूखा हूँ और मेरे प्राण निकल रहे हैं इसलिए यह भोजन मुझको

दे दीजिये। महाराज बड़े प्रसन्न हुए और बड़े सत्कार से ब्राह्मण को पेट भर के भोजन खिलाया शेष अन्न अपने परिवार को बाँट दिया वह अभी खाना ही चाहते थे इतने में भूख से व्याकुल एक शूद्र भोजन माँगने लगा राजा ने उसको भी पेट भर के खिलाया। इतने में एक मनुष्य बहुत से कुत्ते लेकर वहा आगया और कहा कि मैं और मेरे कुत्ते भूख से बहुत व्याकुल हैं इसलिए मुझे और मेरे कुत्तों को भोजन दो। राजा ने सबको भी अन्न दिया। अब एक मूर्ति की प्यास बुझाने के लिए जल ही शेष रह गया था। वह बाँट कर पीना ही चाहते थे इतने में एक चान्डाल उनके पास आया और कहा कि मैं बहुत प्यासा हूँ मुझे जल पिलाओ राजा ने उसको पानी पिलाया और बहुत प्रसन्न हुआ सोचा ऐसे निर्जन वन में हमारे से इतने प्राणी सुख पा रहे है।

वस्तुतः भगवान विष्णु जी ब्राह्मण, ब्रह्मा जी शूद्र और महादेव जी चान्डाल के वेष में महाराजा रन्तीदेव की आपत्तिकाल में प्रतिज्ञा तथा धैर्य की परीक्षा लेने आये थे। जब परीक्षा में पूरा उतरा तो तीनों देव राजा के सामने अपने स्वरूप में प्रकट होकर कहने लगे। हम तुम पर बहुत प्रसन्न हैं। वर माँग, तब महाराजा ने कहा आप सर्व शक्तिमान हो इसलिए मैं यही वर माँगता हूँ कि मेरे

द्वार से कोई भी याचक निराश होकर न जाए। तथास्तु कह कर देवता तो तिरोधान हो गए और महाराजा रन्तिदेव अपने राज्य मे आकर सबको मन वाञ्छित अन्न देता हुआ सुख पूर्वक राज्य करने लगा। महाराजा मयूरध्वज द्वापर के अन्त में रतनपुर में राज्य करते थे यह बड़े धर्मात्मा न्याय कर्ता शूर तथा भगवद्भक्त थे यह सर्वदा भगवत प्रीत्यर्थ ही यज्ञ करते थे। एक बार अश्वमेध यज्ञ करने के लिए घोडा छोडा गया उसकी रक्षार्थ इनके पुत्र ताम्रध्वज तथा प्रधान मन्त्री और सेना भी साथ में थी उन्हीं दिनों में महाराज युधिष्ठर भी अश्वमेध यज्ञ करा रहे थे उनके घोडे के रक्षक अर्जुन तथा इसके सारथी भगवान श्री कृष्ण थे मणिपुर में दोनों का आपस में युद्ध हुआ। भगवान श्रीकृष्ण जी की कृपा से अर्जुन ने विजय पाई तो इसको बडा अभिमान होगया। तब अर्जुन का अभिमान तोडने के लिए जब दूसरे दिन युद्ध हुआ तो ताम्रध्वज ने भगवान कृष्ण और अर्जुन को मूर्च्छित कर घोडे को छीन लिया अपनी राजधानी में पहुँच गया। राजा के पूछने पर उन्होंने सब वृतान्त सुनाया। राजा यह बात सुनकर बडा कुपित हुआ कि तुमने भगवान को मूर्छित करके घोडा छीन लिया है इसलिए तू मेरा पुत्र नहीं शत्रु है जिस भगवान की प्रसन्नता के लिए हम यज्ञ कर रहे हैं तू इनको मूर्छित

कर आया है उधर जब अर्जुन की मूर्छा खुली तो घोड़े के छीने जाने का बड़ा अफसोस हुआ। इस प्रकार अर्जुन का अभिमान दूर होगया। ताम्रध्वज जब वाण मारता था तो भगवान सहित अर्जुन का रथ तीन कदम पीछे हट जाता था। तब भगवान् ताम्रध्वज को धन्यवाद देते थे। अर्जुन को ईर्षा हुई और पूछा तो तब भगवान ने कहा कि मैं त्रिलोकी का भार रख कर रथ पर बैठा हूँ। फिर भी वह रथ को पीछे हटा देता है इसलिये उसके बल और पौरुष का धन्यवाद करता हूँ। ताम्रध्वज की स्तुति सुन कर अर्जुन का अभिमान तो दूर हो गया था परन्तु भगवान अपने भक्त की महिमा दिखाने के लिए आप ब्राह्मण बन कर और अर्जुन को अपना शिष्य बना कर मयूरध्वज की यज्ञशाला में पहुँचे। राजा ने बड़े प्रेम से नमस्कार कर आसन पर बैठा कर सेवा पूछी। तब ब्राह्मण ने प्रतिज्ञा कराके सेवा बतलाई कि मैं जंगल में अपने शिष्य के साथ इधर आ रहा था तो रास्ते में एक शेर मिला उसने हमारे शिष्य को खाना चाहा तो मैंने कहा कि इसको छोड़ दो और हमको खालो परन्तु शेर ने नहीं माना हमारे बहुत कहने पर शेर ने कहा कि अच्छा राजा मयूरध्वज प्रसन्नता के साथ आरे से चीरकर अपना आधा शरीर मुझे देगा तो मैं तुम्हारे इस शिष्य को छोड़ दूंगा। अब राजा ने

समझ लिया कि भगवान ही इस भेष में आए है। इसलिए जो माँगेगे वही दूँगा यह बात सुन कर राजा की रानी अपने को अर्धाङ्गी समझ कर प्रार्थना करने लगी कि मेरा शरीर शेर को देकर अपना बालक छुडालो परन्तु ब्राह्मण ने कहा कि हमारे को दक्षिण भाग चाहिये फिर पुत्र ने प्रार्थना की तो ब्राह्मण ने कहा कि नहीं तुम्हारे हाथों से चीरा हुआ पिता का दाहिना भाग हमको चाहिये। अन्त में राजा को रानी तथा उसका पुत्र आरा लेकर चीरने लगे जब थोडा शरीर बाकी रह गया तो राजा के वामनेत्र से अश्रुधारा बहन लगी। तब ब्राह्मण देव कुपित हुए और कहने लगे कि हम दुःख से दी हुई वस्तु ग्रहण नहीं करते तब राजा ने प्रार्थना की, कि मैं शरीर काटे जाने के कारण नहीं रोता वाम चक्षु से अश्रु इसलिए निकलते है कि दाहिना भाग तो ब्राह्मण देव की सेवा में लग कर सफल हो जायगा और बाम भाग व्यर्थ ही जायगा। भगवान् ने यह वचन सुनकर अपने स्वरूप को प्रकट किया तथा अपने शरीर से स्पर्श किया तब राजा का शरीर पहले से भी सुन्दर तथा हृष्ट पुष्ट हो गया।

भगवान् ने प्रसन्न होकर 'वरं ब्रूहि" कहा तब राजा ने कहा कि हे भगवन्! आपके चरणों में अविचल प्रेम बना रहे और आगे के लिए इतनी कठिन परीक्षा कभी

न लेना; तब भगवान् ने "तथास्तु" कहा और ऐसी लीला देख कर अर्जुन का अभिमान दूर हो गया। राजा मयूर-ध्वज ने भगवान तथा अर्जुन का तीन दिन तक अतिथि सत्कार करके घोड़ा वापस देकर विदा किया। इस प्रकार गुरुमुख लोगों को शरीर भी दान कर देना चाहिये। गुरु जी लिखते हैं "पुन दान का करे शरीर" इस प्रकार गुरुमुख को दाता बनना चाहिये। दाता के लक्षण शास्त्रकारों ने इस प्रकार किये हैं ।

श्लोक—दाता न दापयति दापयिता न दत्ते।
यो न दान दापन परो मधुरोन वक्ति॥
दानञ्च दापनं च मधुरा च वाणी।
त्रीण्यमूनि सत्पुरुषे वसन्ति ॥

अर्थ—जो पुरुष आप दान करता है और अपने सम्बन्धियों से नहीं कराता वह भी दाता नहीं और जो दूसरों से दान कराता है अपना पैसा खर्च नहीं करता वह भी दाता नहीं आप दान करता है दूसरों से भी दान कराता है परन्तु मीठी वाणी नहीं बोलता वह भी दाता नहीं जो आप भी दान दे दूसरों से भी दिलाये तथा मधुर वाणी बोले उसको दाता कहते हैं।

सूर्यवंशियों में महाराजा रघु बड़े धर्मात्मा और चक्रवर्ती राजा हुये ।

एक दिन महाराज न्यायालय में बैठे हुए थे। उनके पास कौत्स नाम वाले ऋषिकुमार आये, राजा ने ऋषिकुमार की अर्घ से पूजा की। थोड़ी देर के बाद ऋषिकुमार आर्शीवाद देकर चल पड़े। तब राजा ने पूछा कि आप कैसे पधारे थे तब ऋषिकुमार ने कहा मैंने तुम्हारे दान की प्रसिद्धि सुनी है और इसीलिए आपके पास आया था। परन्तु यहां आकर सुना कि राजा ने यज्ञ में सर्वस्व दान कर दिया और मैं देखता भी हूँ कि स्वर्ण के अर्घ के स्थान में मिट्टी के पात्र से अर्घ दी है। इससे प्रतीत होता है कि आपके पास कुछ भी न रहा। राजा ने कहा कि आप अपना मनोरथ अवश्य प्रकट करो, ऋषिकुमार बोले–मैंने अपने गुरु के पास रह कर पूर्ण रीति से वेद विद्या का अध्ययन किया है। गुरु दक्षिणा को मैंने प्रार्थना की तब गुरु जी ने कहा कि हम तुम्हारी सेवा पर ही सन्तुष्ट हैं परन्तु मैंने बहुत हठ किया तो गुरुजी ने कुपित होकर कहा कि चौदह लाख मुद्रिकाएँ (मुहरें) दो। मैं इसलिये आपके पास आया था तब महाराज ने कहा जब तक मेरे हाथ में धनुषबाण है तब तक हमारे पास से कोई ब्रह्मचारी ब्राह्मण और विद्वान खाली नहीं लौट सकता आप बैठिये मैं अभी कुबेर पर चढ़ाई करके अभी आपका मनोरथ सिद्ध करता हूँ। उसी समय राजा ने सेना

को आज्ञा दी और प्रातःकाल चढ़ाई करने का समय नियत किया। प्रातः होते ही कोषाध्यक्ष ने आकर सुनाया महाराज! रात्रि को कोष में स्वर्ण की वर्षा हुई है। राजा ने स्वयं आकर देखा और कौत्स ऋषि को धन देकर शेष ब्राह्मणों को बांट दिया।

महाराजा विक्रम भी बड़े दानी हुए हैं इनके अनेक प्रसंग ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं। उनमें से एक प्रसङ्ग यहाँ भी लिखते हैं। महाराजा विक्रम के द्वार पर जो भी अतिथि आता था वह रिक्त हस्त नहीं जाता था। एक समय एक इच्छाचारी सर्प वन में रहता था वन में अग्नि लग गई उसका शरीर भी आधा जला सा होगया, सदा ही जलन लगी रहती थी। इसलिए बड़ा दुःखी रहता था और शान्ति का उपाय ढूंढता था परन्तु कहीं भी उसे शान्ति का स्थान नहीं मिला। तब किसी दूसरे इच्छाचारी सर्प ने कहा कि महाराजा विक्रम के हृदय में शान्ति का कुण्ड है वहाँ दो घड़ी निवास करोगे तो शान्ति आजायेगी। महाराजा विक्रम बड़ा दानी है इसलिए तुमको हृदय में स्थान भी दे देगा। तब सर्प राजा विक्रम के द्वार पर आकर पड़ गया और खान पान सब छोड़ दिया। महाराजा विक्रम के पूछने पर सर्प ने कहा कि मुझको अपने हृदय में जगह दो राजा को मन्त्री तथा सब सम्बन्धियों

ने रोका, परन्तु परोपकारी महाराजा विक्रम ने चार प्रहर पर्यन्त अन्दर रहने के लिये सर्प को स्थान दे दिया। सर्प अन्दर जाकर परम शान्ति को प्राप्त हो गया। वहाँ से बाहर निकलने को जी नहीं चाहता था। राजा विक्रम ने भी औषधि आदि उपायों द्वारा सर्प को बाहर नहीं निकाला सर्प के अन्दर रहने से राजा कुष्टी हो गया तब सब सम्बन्धी राजा से ग्लानि करने लगे। तो राजा राज्य छोड़ कर गंगा के किनारे चला गया वहाँ भी लोग ग्लानि करते थे तथा विष के प्रभाव से राजा को मूर्छा आजाती थी। एक दिन राजा गंगा में डूब कर मरने लगा तो इतने में दूसरे राजा के सिपाहियों ने राजा को पकड़ लिया और ले गये। क्योंकि उस राजा की छोटी लड़की ईश्वर परायण थी, ईश्वर को ही सर्व सृष्टि का पालक समझती थी।

"मानुष की टेक बिरथी सब जान। देवन कउ एकै भगवान" ॥

उसके पिता को अभिमान था कि मैं ही इनको खान पानादि देता हूँ। एक दिन लड़की को पूछा उसने कहा कि मैं परमेश्वर के आश्रित हूँ। उसके पिता ने कहा—तू मेरे आश्रित है मैं ही तो तेरा पालन करता हूँ तब कन्या ने कहा नहीं। राजा को बड़ा क्रोध आया और कहा कि कोई कुष्टी ढूंढ कर लाओ, उसके साथ इसकी

शादी करेंगे फिर देखेंगे इसका पालन करने वाला ईश्वर। महाराज विक्रम का बूटी समझ कर कन्या की इसने साथ शादी करदी और उसी समय देश से निकाल दिया। राजा विक्रम आठों पहर बेहोश रहता था उसको इतना भी पता न था कि मेरी इससे शादी हुई है कि नहीं लड़की अपने पति को टोकर में सिर पर उठा कर लिये फिरती और सेवा करती थी जब सेवा करते २ छः मास व्यतीत हो गये तो एक दिन राजा को एक वृक्ष के नीचे सुला दिया आप (कन्या) पाठ करने लगी। तो वहाँ एक बामी में से एक सर्प निकला इसने देखा कि राजा विक्रम को उस सर्प ने मूर्च्छित कर रखा है। तब उसने राजा के पेट में बैठे हुए सर्प को कहा कि अरे नीच! तू बाहर निकल नहीं तो मैं तुझे इस रानी द्वारा जड़ी बूटियाँ खिला कर मार कर बाहर निकलवा दूँगा।

उसने कहा कि मैं कभी नहीं निकलूँगा तब बाल्मीक वाले सर्प ने रानी को कहा कि तू कोई चिन्ता न कर इस सर्प को तेरे पति महाराजा विक्रम ने पेट में जगह दी थी इसलिए यह दुष्ट होगया है। अब तू इसको अमुक बूटी खिला तो सर्प अन्दर ही मर कर टुकड़े टुकड़े हो कर बाहर निकल जायगा। राजा विक्रम अच्छा हो जायगा, तब राजा विक्रम के पेट में रहने वाले सर्प ने

कहा हे रानी ! मेरा वचन भी सुन। इस सर्प के बिल में धन का कोष है इसको अमुक औषधि का धुआँ देकर अन्धा कर देना और धन निकाल लेना।

रानी ने दोनों के वचन सुने और विचार किया कि इन्होंने अपने अपने छिद्र बता दिए हैं इसलिए दोनों ही सुख से रहित हो जायेंगे।

परस्परस्य मर्माणि ये न रक्षन्ति मानवः।
त एव निधनं यान्ति वल्मीकोदर सर्पवत् ॥

अर्थ—परस्पर अर्थात् एक दूसरे के मर्म "गुह्यवार्ता" को जो नहीं छिपाते हैं वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जैसे वाल्मिक वाला सर्प तथा राजा के पेट वाला सर्प दोनों मृत्यु को प्राप्त हो गए थे तब रानी ने औषधियाँ लाकर राजा को खिलाई। पेट वाला सर्प तो मर कर वमन द्वारा बाहर निकल गया और राजा स्वस्थ होगया जब नेत्र खोले तब सामने अति रुपवति कन्या देखी तो पूछा कि तू कौन है ? उसने कहा मैं आपकी सेविका अर्धाङ्गी हूँ। राजा ने कहा कैसे ? तब उसने अपने पिता की सब बात (कथा) सुनाई तो राजा विक्रम बड़े प्रसन्न हुए। वाल्मीक वाले सर्प को तथा उसके कोप को लेकर अपने राज्य में चले गए। उस सर्प को दूध पिला कर बहुत सेवा की और उस राजकन्या को पटरानी बना

लिया। कन्या के माता पिता पर अन्य राजा ने चढ़ाई कर उसका राज्य छीन लिया और देश से निकाल दिया। वह मजदूरी करके अपनी आजीविका करते रहे। कन्या को पता लगा तो उसने राजपुरुषों द्वारा उनकी ढूंढ करवा कर अपने पास बुलाया और महाराजा विक्रम के कुष्टी होने का सब वृतान्त सुनाया और उस शत्रु राजा से युद्ध कर उसको पराजित करके अपने पिता का राज्य वापस दिला कर अपने माता-पिता को भी सुखी किया।

श्लो.—दातव्यं भोक्तव्यं सति विभवे संग्रहो न कर्तव्यः।

परयामि मधुकरीणां संचितं हरन्त्यन्ये। व्याख्यानमाला।

अर्थ—धन का भोग तथा दान करना चाहिये किन्तु संग्रह नहीं करना चाहिये। देखो यह मक्खियों का इकट्ठा किया हुआ शहद कोई दूसरा ही लेगया।

धन के भागी चार हैं धर्म चोर नृप आग।

कोपहिं तापे भ्रात त्रै करे जो ज्येष्ठह त्याग॥

एक दिन राजा भोज के घुटने पर मक्खिका बैठ गई। मक्खिका का स्वभाव हाथ पैर मसलने का होता है। राजा भोज ने हाथ पैर मसलती हुई देख कर कालीदास से पूछा कि यह क्या कहती है? पं० कालीदासजी ने अपने श्लोक में उत्तर दिया।

मक्षिकोवाच—देयं भोजनं धनं सुकृतिना नो संचितव्यं कदा।
श्री कर्णस्य बलेर्विक्रम पथेरद्यापिकीर्तिं स्थिता ॥१॥
अस्माक मधु दान भोग रहितं नष्ट चिरात् संचितम्।
तस्माद् पाणिपादयुगलेयर्घयन्त्यहो मक्षिकाः ॥२॥

अर्थ—मक्खि कहती है कि हे राजा भोज धन को इकट्ठा मत करो धर्मात्मा सुपात्रों को देकर यश लो। धन के देने से दाता कर्ण, राजा विक्रम बलिराजा इन की कीर्ति अब तक स्थित है। आप भी दान कर यश लो।१। नहीं तो हमारी तरह हाथ पॉव मसलते रहोगे। हमारी तरफ देखो कि हमने बहुत काल का इकट्ठा किया हुआ मधु न खाया और न दान ही किया वह नष्ट हो गया। इसलिए मैं हाथ ममलती हूँ और पश्चात्ताप करती हूँ।

कवित्त—जैसे मधुमाखी संच संच के इकत्र करे।
हरे मधु आरा तोकि गुख छार डार के॥
जेसे बछे हेत गऊ संचित है चीर सदा।
दुहि लेत है अहीर ताहि बछरा बिडार के॥
जैसे घर खोद-खोद कर मूसा बिल साजे।
पेसत सरप धाय खाय तिह मारके॥
तैसे खोट पाप नर माया जोड-जोड़ मूढ़।
अन्त समय खाली चलै दोनों हाथ झारके॥

श्लो. दानेनभूतानिवशीभवन्तिदानेनवैराण्यपियान्तिनाशम्।
परोऽपि बन्धुत्व मुपैति दानैर्दानं हिसर्वव्यसनानि हन्ति।१।
यज्ञा सम्पूर्णतां यान्ति दानेन दक्षिणात्मनः।
दातारं सर्वभूतानि सेव्यन्ते पितर यथा ॥२॥
दातानीचोऽपि सेव्यः स्यान्निष्फलोनमहानपि।
जलार्थी वारिधिंत्यक्त्वापश्य कूपं निषेवते ॥३॥
गौरवं प्राप्यते दानान्नतुवित्तस्य संचयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीना मधः स्थिति ॥४॥

अर्थ—दान से सर्व प्राणी वशीभूत हो जाते हैं, दान से सब शत्रु नष्ट हो जाते हैं, दान से अन्य पुरुष भी बन्धु बन जाते हैं और दान से सब दोष आवृत हो जाते हैं ॥१॥ दक्षिणा देने से सब यज्ञ सफल हो जाते हैं, सब जीव दाता की शरण हो जाते हैं। जैसे पिता की शरण में पुत्र होता है ॥२॥ दाता होने से छोटा भी पूज्य हो जाता है दाता न होने से बड़ा भी पूज्य नहीं होता जैसे जलार्थी समुद्र को छोड़ कर कुँए को सेवन करता है। जैसे पक्षी ऊँचे सेमल के वृक्ष को छोड़कर छोटी बेरी का सेवन करते हैं। गुरु जी भी लिखते हैं:—

सिमल रुख सरायरा अति दीरघ अति मुच।
ओयजो आवहि आसकर जाहि निरासेकित ॥

फलफिके फुल चकनके कंम न आवहिंपच
मिठत नीवी नानका गुण चंगि आईआं तत ॥

दान से ही मान प्रतिष्ठा बढती है। धन के सञ्चय करने से नहीं, देखो मेघ जल दान करने से ऊँचे आकाश में स्थित हैं जल का दान न करने से समुद्र नीचे रहता है और दानियों के नाम अब तक प्रसिद्ध हैं जैसे-राजा हरिश्चंद्रादि—

सवैया—सिन्धु अगाध अहेलरणादिक,
तदपि काहुकी प्यास न टारे ॥
जान्हुं प्रमाण जु वारि सुचारु तृषा,
नरनारी मृगादि की हारे ॥
नैक धनाढ्य तथापि बडो, अर्थी व्यर्थ नहिं जात द्वारे ।
जांधन राशि निराशिक भिक्षुक सो धन क्या जुवतिव्रत धारे॥

दोहा—धन संग्रह ते दान धन, सौ गुण अधिक पछान ।
विना दान जो द्रव्य है सो धन सुमन समान ॥

शास्त्र की आज्ञा है कि एक ग्रास अपने पास हो तो उसमें से भी आधा ग्रास दान कर देना चाहिये ।

श्लोक—ग्रासादपि तदर्धं च कस्मान्नो दीयतेऽर्थिषु ।
इच्छानुरुपो विभवः कस्य कदा भविष्यति ॥

अर्थ—ग्रास में से आधा ग्रास अर्थियों को क्यों नहीं देते हो ?

शंका—यदि धन दान करदें तो, संचय किस तरह होगा !

समाधान—इच्छानुसार तो धन किसी के पास इकट्ठा हुआ नहीं। जब इकट्ठा नहीं हो सकता तो फिर धन का दान क्यों न करें। जो दान दिया जाता है वह अपना है शेष दूसरों का है जैसे किसी नगर में एक महात्मा तीस वर्ष से रहते थे। बहुत शिष्य सेवक हो जाने पर भी महात्मा बड़े सन्तोषी, तथा उपरामचित्त रहते थे। एक रोटी खाकर ही आठ पहर व्यतीत कर देते थे। एक दिन दूसरा साधु उनके पास आया और कहा कि आप यहाँ वर्षों से रहते हो आपने शिष्य सेवक बहुत बनाये होंगे और आप बहुत पदार्थ खाते होंगे तब महात्मा ने कहाकि मैं तीस वर्ष से यहाँ रहता हूँ। शिष्य सेवक बहुत हैं। उनसे दो रोटी लेता हूँ एक खा लेता हूँ और एक कुए में फेंक देता हूँ। उस सन्त ने कहा मैं देखना चाहता हूँ। इतने में एक भक्त दो रोटियाँ ले आया महात्मा ने परमेश्वर का धन्यवाद कर रोटियाँ ले लीं, इतने में एक अभ्यागत आगया। बड़ी श्रद्धा से एक रोटी उसे दे दी और एक आप खाली। उसके दूसरे साधु ने पूछा—आप कहते थे कि एक रोटी कुए में डाल देता हूँ किन्तु आपने कूए में तो फैंकी नहीं। महात्मा ने कहा कि

जो पेट में डाली है वह तो कूप में ही डाली है और जो अतिथि को परमेश्वर के नाम पर दी है वह मैंने खाई है। इस प्रकार महात्मा लोग सन्तोष और ईश्वर का धन्यवाद भी करते हैं। जैसे दो महात्माओं ने परस्पर धन्यवाद और सन्तोष का निर्णय किया था। एक ने पूछा कि इनको आप किस-किस जगह प्रयोग करते हो? एक ने कहा कि जब परमेश्वर मायिक पदार्थ थोड़ा या अधिक देता है तो मैं धन्यवाद कर ले लेता हूँ। यदि न दे तो सन्तोष करके बैठा रहता हूँ, मैं तो इस तरह सन्तोष और धन्यवाद का प्रयोग करता हूँ। दूसरे महात्मा ने कहा यह ठीक नहीं इस तरह तो सब संसारी लोग भी करते हैं। साधु में तो कुछ अन्तर चाहिये। तब उसने कहा कि आप किस प्रकार प्रयोग करते हो? उत्तर-मैं परमेश्वर से प्रार्थना करता हूँ, हे परमात्मन् कोई मायिक पदार्थ हमारे को न दे क्योंकि मायिक पदार्थ हमारे को भुला देते हैं। हम तो मायिक पदार्थ की इच्छा भी नहीं करते। परन्तु प्रारब्ध के अधीन परमेश्वर दे देता है तो सन्तोष करके ले लेते हैं। यदि परमेश्वर मायिक पदार्थ न दे तो धन्यवाद करते हैं। पहले महात्मा और दूसरे महात्मा के सन्तोष तथा धन्यवाद में यह अन्तर है पहले महात्मा ने तो पदार्थ मिलने पर धन्यवाद और न मिलने पर सन्तोष किया दूसरे

महात्मा ने पदार्थ के मिलने पर सन्तोष और न मिलने पर धन्यवाद कहा है. महात्मा लोग इस प्रकार मायिक पदार्थों का त्याग करते रहते हैं ।

इसलिये धन की इच्छा नहीं करनी चाहिये तथा प्राप्त धन को त्याग करना यही त्याग है और जो धन का त्याग नहीं करते उन का मनुष्य शरीर निष्फल है। उनके मृतक शरीर को गीदड भी नहीं खाते जैसे एक कंजूस का मृतक शरीर जंगल में पडा था और गीदड उसे खाने के लिय आये तब आकाश वाणी हुई—हे गीदड़ो ! इस शरीर को न खाना क्योंकि इसके सब अवयव अपवित्र हैं।

श्लो.–हस्तौ दान , विवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वत द्रोहिणौ ।
नेत्रे साधु विलोकनेन रहितौ पादौ न तीर्थं गतौ ॥
अन्यायार्जित वित्त पूर्ण मुदरं गर्वेण तुंगंशिरः ।
रे रे जंबुक मुञ्च मुञ्च सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः ॥

अर्थ—इसके दोनों हाथ दान से रहित हैं, दोनों कान परमेश्वर की कथा के द्रोही हैं, दोनों नेत्र सन्तों के दर्शन से रहित हैं, पाँव कभी तीर्थ यात्रा में नहीं गए, इसने अन्याय से इकट्ठे किए हुए धन से पेट भरा है और अहंकार से इसका शिर ऊंचा ही रहा है। किसी के आगे कभी सिर झुकाया नहीं, इसलिए हे गीदड़ो ! जल्दी इसके

शरीर को छोड़ दो।

दो.—गज मोती अरु भुजंग मणि तीजी शूम सुआथ।
रजब मन मारे बिना माया चढ़े न हाथ॥

कथा—एक समय में दशम गुरु गोविन्दसिंह जी ने एक लड़के के हाथ से जल मँगाया तो उसके हाथों में छाले पड़ गये उसने कहा कि मैंने अपने हाथ से कभी कोई चीज उठा कर नहीं दी आज आपको जल पिला रहा हूँ। गुरुजी ने तत्काल ही वह जल छोड़ दिया और कहा— कि तेरे हाथ दान न करने से अपवित्र हैं। जो दान नहीं करते उनको मायिक सुख भी नहीं मिलते। दान करने वालों को ही सब कुछ मिलता है। इसलिये दानियों के पास तू विभूति देख कर ईर्षा मत कर। किन्तु दान करके पदार्थ ग्रहण कर नहीं तो संतोष में रहो यदि दूसरे लोग अच्छे पदार्थ खाते हैं तो तू चनों में ही प्रसन्न रहो। यदि दूसरे लोग रेशमी कपड़े पहनते हैं तो तुम फटे कपड़ों में ही सन्तोष करो और प्रसन्न रहो।

दाता के घर लक्ष्मी सदा रहे भरपुर।
जैसे गारा राज को भर भर देत मजूर॥
काहू दीने पाट पटंबर काहू पलंग निवारा।
काहू गरी गोदरी नाही काहू खान परारा॥

अहिरख वाद न कीजै रे मन।
सुकित करि करि लीजै रे मन॥ आसा कबीरजी ४७६॥
रजव काढ़े कूप जल घटे न निर्मल नीर।
बिन काढ़े पानी सड़े पीवे न कोई नीर॥

अर्थ—दान में सप्त गुरु श्री गुरु हर राय साहिब जी के पास एक प्रेमी ने कहा कि मैं पहले निर्धन था, मध्य में धनी हो गया अब फिर निर्धन हो गया हूँ। इसमें क्या कारण है। तब गुरु जी ने कहा कि दान करने से तू मध्य में धनी हो गया था और दान के रुक जाने से तू फिर निर्धन हो गया तब उसने कहा कि मैंने तो कभी दान किया ही नहीं तब गुरुजी ने कहा कि जब तू निर्धन था तब तेरे घर में पक्षियों का जोड़ा रहता था। जो कि पूर्व जन्म में साहूकार थे और हमारे शिष्य थे परन्तु हमारा उपदेश न पालन करके पक्षियों का पालन करते रहे इसलिये वह पक्षी बन गए, तेरे घर में रहते थे, तू मजदूरी कर अनाज ले आता और उसे खुला रख देता था। उन्होंने विचार किया कि हमने न तो गुरुजी की सेवा की और न उपदेश ही कमाया है इसीलिए हम पक्षी बन गए हैं। अब इसके घर में रहते हैं। इसका कुछ भला करना चाहिये तब वह तेरा अन्न लेकर हमारे लंगर में डालते रहे। संगत (आम जनता) खाती रही। उस पुण्य

के प्रभाव से तू धनी हो गया था। अब तूने नये मकान बना लिये जालीदार दरवाजे लगा लिये हैं। पक्षियों को रहने की जगह न मिली वे उड़ गये। तेरा दान बन्द हो गया। इसलिये तू निर्धन हो गया अब दान करो तो फिर धनी हो जाओगे। उसने गुरु जी का वचन मान कर दान कियाँ और धनी हो गया। इस प्रकार अनेकों प्रसंग दान के हैं। इसलिये अनेक गुरुमुख (अधिकारी) को दान करना ही श्रेष्ठ है। फिर किसी भक्त ने प्रश्न किया कि मनुष्य जन्म की सफलता किस प्रकार होती है और मनुष्य जन्म का फल क्या है ? तब आपने उत्तर दिया कि आत्म ज्ञान के लिए ही परमात्मा ने मानव जन्म दिया है। यदि आत्म ज्ञान हो गया तो मनुष्य जन्म सफल। नहीं तो मानव जन्म व्यर्थ है।

६—❀ स दा चा र ❀

मू०—आचाराल्लभते पूजामाचाराल्लभते प्रजाम् ।
आचारात् प्राप्यते स्वर्गमाचारात् प्राप्यते सुखम् ॥१॥
आचारात् प्राप्यते मोक्षः आचारात् किन्न लभ्यते।
आचारभ्रष्ट देहानांभवेद्धर्मो पराङ्मुखः ॥२॥
दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः ।

दुःख भोगी च सततं रोगी चाल्पायुर्भवेत् ॥३॥

अर्थ—आचार से ही पुरुष प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है और आचार से ही पुत्रादिकों को प्राप्त होता है। आचार से ही स्वर्ग को प्राप्त होता है। आचार से ही सुख मिलता है ॥१॥ आचार से मोक्ष को प्राप्त होता है। आचार से क्या नहीं प्राप्त होता? भावार्थ यह है कि आचार से सब कुछ प्राप्त हो सकता है। जो पुरुष आचार से भ्रष्ट है वह दुराचारी है। उस से धर्म भी मुख मोड़ लेता है।

दुराचारी पुरुष ही संसार में निन्दित है और दुराचारी ही संसार में दुखी रहते हैं। सदा रोगी रहते हैं। इसलिए नित्य नैमित्तिक रूप सदाचार का कभी त्याग न करें और सदाचार से शुद्ध चित्त कर तथा ईश्वर भक्ति से चित्त को एकाग्र कर और चार साधन सम्पन्न हो कर ज्ञान के लिए गुरु की शरण में जायें। आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः। सदाचार रहित पुरुष को चार वेद भी शुद्ध नहीं कर सकते।

कथा—रुक्मांगद करतूत राम जपहु नित भाई ॥

अयोध्या के राजा ऋतुपर्ण का पुत्र रुक्मांगद राजा था, उसकी स्त्री का नाम संध्यावली और उनके पुत्र का नाम धर्मांगद स्त्री पुत्र दोनों सुपात्र तथा आज्ञा मानने वाले थे। रुक्मांगद बड़ा धर्मात्मा

राजा था एकादशी का व्रत रखता था और अपनी प्रजा से भी व्रत रखवाता था उसकी प्रजा भी धर्मात्मा थी। धर्म के बल से मरने के बाद कोई भी यमपुरी में नहीं जाता था इस बात का यमराज को बड़ा दुःख हुआ।

तब यमराज ब्रह्मा जी के पास गया और प्रार्थना की महाराज! अयोध्या के राज्य भर से मर कर कोई मनुष्य मेरे यमपुरी नहीं आता मेरी पुरी बर्बाद सी होगई है, आबादी नहीं हो रही है। ऐसा उपाय करो जिससे रुक्मांगद का धर्म टूट जाय, तब ब्रह्मा जी ने सब देवताओं से मिलकर सम्मति ली और प्रस्ताव पास किया कि ठीक है रुक्मांगद को धर्मच्युत करदो। एक सुन्दरी मोहनी नाम से स्त्री पैदा की उसे समझा बुझा कर अयोध्या में भेज दिया कि तुम रुक्मांगद का एकादशी व्रत भंग करो। यद्यपि मोहनी को यह बात स्वीकार न थी परन्तु सब देवताओं ने उसे हठ पूर्वक भेज दिया। वह रुक्मांगद के बाग में आ गई रुक्मांगद राजा भी वहाँ पर बाग में घूम रहा था। उसको देख कर पूछा तू कौन है। कहाँ से आई हो। यहाँ पर क्यों आई हो? उसने कहा मैं ब्रह्मा जी की पुत्री हूँ और ब्रह्मलोक से ही आई हूँ। आप का नाम सुना था, आप बड़े धर्मात्मा हैं, आपके दर्शन के लिए यहाँ आई हूँ। मेरा विचार आपसे शादी करने

का है। रुक्मांगद ने अपनी स्त्री तथा पुत्र से सलाह ली। उन्होंने कहा कि आप निशंक होकर शादी करलें। हम भी इसकी सेवा करेंगे। इससे कभी विद्वेष नहीं करेंगे। तब राजा ने उससे शादी करली। उस अप्सरा मोहिनी ने राजा से कहा कि जब मैं कोई प्रार्थना करूँ तो आप को स्वीकार करनी होगी। राजा ने कहा तथास्तु। इस तरह बहुत दिन बीत गए, एकादशी का दिन आ गया। उस दिन राजा स्वयं तथा अपनी सब प्रजा से ब्रह्मचर्य रखवाता था। उसी दिन मोहिनी अप्सरा कामातुर होकर राजा से कहने लगी कि मेरी इच्छा पूर्ण करो। राजा ने कहा नहीं ऐसा कभी नहीं होगा, मैं अपना धर्म भङ्ग न करूँगा। इसी धर्म के प्रभाव से मेरे राज्य में से मर कर कोई यमपुरी में नहीं जाता। यदि इस समय मैं अपना धर्मछोड़ दूँ तो सब प्रजा की दुर्गति का कारण मैं बनूँगा मोहनी ने बहुत प्रार्थना की परन्तु राजा ने स्वीकार नहीं किया तब वह क्रोध कर शाप देने लगी और कहा कि आपने कहा था कि तेरी प्रार्थना मानूंगा अब मेरी इच्छा पूर्ण क्यों नही करते ? तब महाराज रुक्मांगद ने कहा कि इसके बदले में कुछ और माँगले। और बात जो तू कहे मैं मानने के लिए तैयार हूँ। तब उसने कहा अच्छा अपने पुत्र का शिर मुझे दो मैं इसे देवी की भेट चढाऊँगी, नहीं तो मेरी पहली

इच्छा पूर्ण करो। तब रुक्मांगद ने अपने पुत्र तथा स्त्री को बुलाया। उसे मोहिनी का सारा वृतान्त सुनाया तब स्त्री ने कहा अपना व्रत भग न करो पुत्र का शीश देकर वचन को पूरा करो और पुत्र ने भी शिर देना स्वीकार कर लिया तब रुक्मांगद ने अपने पुत्र को मोहिनी की भेंट.कर दिया। राजा का एक ही यह पुत्र था। तब मोहिनी ने कहा इसे स्नान करा कर तुम अपने हाथों से इसका शिर काटो। तुम्हारे तीनों के नेत्रों से अश्रु न निकले तब मैं इसे स्वीकार करूँगी रुक्मागद ने धर्म रक्षा के लिए इसी तरह किया जब राजा अपने हाथों से पुत्र का शिर काट चुका तब सब ब्रह्मादि देवता वहाँ पर इकट्ठे हो गये महाराजा रुक्माँगद को धन्यवाद दिया उसके पुत्र को जीवित कर दिया.तब राजा अपने पुत्र को राज्य देकर अपनी रानी सहित ब्रह्मलोक में चला गया। सारांश यह है कि जिस तरह महाराज रुक्माँगद अपने धर्म में तथा नियम में दृढ़ रहा हर्ष शोक नहीं किया उसी तरह नित्य कर्म में तत्पर रहना चाहिये। चाहे कितने विघ्न बाधायें क्यों न पडें। जिस तरह रुकमागद ने अपने धर्म से राज्य भर के किसी भी मनुष्य को यमपुरी नहीं जाने दिया। भट कहते हैं तैसे हे गुरु अमर देव जी! अपने जीने जी किसी के पुत्र को माता पिता के होते मरने नहीं दिया—यह

आप में ही बल है। आप लोकोद्धार के लिए प्रगट हुए हो इस सारी कथा का सारांश यह है कि सब किसी को अपने धर्म में दृढ़ रहना चाहिये। अपने देश व कुल की रक्षा करनी चाहिये। यह सुन कर शिष्य को अपने प्रश्न का पूरा उत्तर मिल गया और महात्मा के चरणों में पड़ गया निःसन्देह होकर सो नित्य नैमितिक कर्मों से ही सर्व फल प्राप्त होते हैं।

१०– ❀ सत्य धर्म प्रशंसा ❀

प्र० नं० १–नास्ति सत्यसमोधर्मो न सत्याद्विद्यते परम्।
नहि तीव्र करं किञ्चित् अनृतादिह विद्यते॥१॥

अर्थ–सत्य के समान कोई धर्म नहीं सत्य से परे श्रेष्ठ और नहीं है असत्य से परे इस संसार में तीव्रतर यानि अति बुरा और नहीं॥१॥

मू०—अश्वमेध सहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते।
अश्वमेध सहस्रञ्च सत्यञ्च तुलया धृतम्॥२॥

अर्थ—हजार अश्वमेध यज्ञ के फल को और सत्य को एक जगह लेंगे तो सत्य ही विशेष रहेगा।

सत्यंमृदु प्रियं वाक्यं धीरोहित करं वदेत्।
आत्मोत्कर्षं तथा निन्दां परेषां परिवर्जयेत्॥३॥

अर्थ—सत्य प्यारा कोमल हितकारक ऐसा वचन धीर पुरुष बोले, अपनी स्तुति पराई निन्दा इसको बुद्धिमान त्याग दें।

सत्यमेव व्रतं यस्य दयादीनेषु सर्वदा ॥
कामक्रोधो वशेयस्य सः साधुः कथ्यते बुधैः ॥४॥

सत्य बोलना ही जिसका व्रत है और दीन दुःखी पर दया करता है सदैव काम क्रोध जिसके वश में है वो ही साधु है ऐसा बुद्धिमान कहते हैं ॥४॥

मू०—सत्येन पूज्यते साक्षीधर्मः सत्येन वर्द्धते।
तस्मात्सत्यंहि वक्तव्यं सर्ववर्णेषु साक्षिभिः ॥५॥

भा०—सत्य बोलने से साक्षी यानि गवाही देने वाला यथार्थ पूजा जाता है सत्य से ही धर्म बढ़ता है इस से सब जगह चारों वर्णों में साक्षियों करके जैसा देखा हो जैसा सुना हो वैसा ही सत्य कह देना चाहिये ॥५॥

कथा नं० १—जैसे महाराजा सत्यव्रत के दर्शन से चित्त शान्त हो जाता था क्योंकि यह सदा सत्य बोलते थे इनका सत्य बोलना ब्रह्मलोक तक प्रसिद्ध हो गया था। किसी समय में लक्ष्मी और शनिश्चर का विवाद हो गया लक्ष्मी ने कहा मैं निर्धन को धनी कर सकती हूँ। और शनिश्चर ने कहा कि मैं धनी को निर्धन कर सकता हूँ। और परस्पर बड़प्पन का विवाद हो गया। लक्ष्मी ने कहा मैं बड़ी हूँ, शनिश्चर ने कहा मैं बड़ा हूँ। वास्तव में

लक्ष्मी बडी है क्योंकि सबको सुख देती है और विष्णु भगवान की चरण सेविका है और शनिश्चर सब को दुःख देता है। इसलिए बड़ा नहीं परन्तु अमृत की बडाई मूर्छित को जीवित करने में है और मारने में विष की ही बडाई है इसी तरह दुःख देने में शनिश्चर की ही बडाई है और सुख पहुँचाने में लक्ष्मी की बडाई है। इनका आपस में विवाद बढ गया और सब देवता और दैत्यों के दो दल हो गये। शनि के पक्ष में दैत्य थे और लक्ष्मी के पक्ष में देवता थे। इसलिए आपस में निर्णय नहीं हो सका। बहुत काल तक इनका विवाद बना रहा और न्याय करने के लिए पक्षपात रहित धर्मात्मा सत्यवादी महापुरुष को ढूढते रहे। बहुत समय तक ऐसा कोई उत्तम पुरुष नहीं मिला। अन्त में रघुकुल सूर्यवंशियों में एक महाराजा सत्यव्रत था उसकी स्त्री पतिव्रता थी दोनों के तेज प्रताप से उनके राज्य में सुख और शान्ति का साम्राज्य था। इसलिए दोनों पक्ष दैत्य और देवता सत्य व्रत राजा की शरण में आये। लक्ष्मी और शनि का आपस का विरोध हट जावे महाराजा सत्यव्रत ने कहाकि हम गुप्त रीति से दो आसन बनायेंगे तुम दोनों अपनी इच्छानुसार आसन पर बैठ जाना आसनों के खोलने पर जिसमें श्रेष्ठ पदार्थ होएँ वह श्रेष्ठ समझा जायगा।

महाराजा ने एक सिंहासन हीरे जवाहारात जड़ित स्वर्ण का बनवाया और एक काँच मणियों से जड़ित लोहे का बनवाया दोनों को वस्त्र से अच्छादन कर दिया फिर सर्व सम्मिति से पहिले शनिदेव को इच्छानुसार उन सिंहासनों पर बैठने की आज्ञा दी। शनिदेव अपनी इच्छानुसार एक सिंहासन पर बैठ गया तत्पश्चात् लक्ष्मी जी को आज्ञा दी वह दूसरे सिंहासन पर जाकर बैठ गई। जब सिंहासन खोले गये तब शनि का आसन निकृष्ट वस्तुओं का बना हुआ निकला और लक्ष्मी जी का उत्तम वस्तुओं का। तब सब लोगों ने तालियाँ बजाई कि लक्ष्मी जी बड़ी हैं। निर्णय ठीक हो गया। परन्तु शनिदेव को बड़ा दुःख हुआ। उसने क्रोध में आकर महाराजा सत्यव्रत को कहा कि मैं तेरी अच्छी तरह खबर लूँगा और लक्ष्मी जी ने महाराजा से कहा कि मैं तुम्हारी और तुम्हारी स्त्री के धर्म की रक्षा करूँगी, तुम चिन्ता नहीं करो।

कष्ट पड़ने पर भी धैर्य रखना अन्त में तुम्हारी ही विजय होगी। शनि ने महाराजा सत्यव्रत के राज्य में दुर्भिक्ष कर दिया। प्रजा में विरोध फैला दिया, तरह २ की बिमारियाँ फैला दी, और भी अनेक प्रकार के उपद्रव पैदा कर दिये।

इन बातों को देख कर महाराजा सत्यव्रत अपनी रानी

को लेकर कुछ हीरे जवाहरात दिव्य वस्त्र भूषण लेकर आधि रात्रि में अपना राज्य छोड़ कर निकल गया। तब शनिदेव ने रास्ते में अपनी माया से एक नदी बना दी और उस पर कोई नौका नहीं थी। सिर्फ एक छोटी सी डोंगी थी जिस में एक आदमी बैठ सकता था। उसको लेकर शनिदेव किनारे पर खड़े ह राजा ने पार जाने के लिए कहा उस मल्लाहरूप शनि ने कहा कि मेरी नाव छोटी है इस पर तुम दो नहीं बैठ सकते और सामान भी अलग ही जा सकेगा, साथ नहीं रख सकते। तब राजा ने कहा अच्छा पहले सामान को पार करो हम पीछे चलेंगे। ऐसा कह कर महाराजा सब वस्त्र भूषण हीरे जवाहरात नगदी सामान उस छोटी सी नौका पर रख दिया केवल अपने पास एक धोती जो पहनी हुई थी और जो वस्त्र महारानी के पहने हुए थे वही रखे। बाकी सब सामान पार करने के लिए नाव पर रख दिया।

नदी के बीच में नौका ले जाकर मल्लाह ने कहा कि मैं शनि हूँ अब यह सामान तुमको नहीं मिलेगा। मैंने ही तुम्हारे राज्य में अशान्ति और उपद्रव फैलाया है। मैं तेरे को अभी बहुत कष्ट दूँगा। अब भी तू मुझे बड़ा बनादे, नहीं तो तेरे को इस रानी से भी अलग कर दूँगा। चाहे कितना ही यत्न करो, तुम दोनों को इकट्ठा नहीं रहने दूँगा।

उसी समय लक्ष्मी प्रकट हो गई राजा को कहा कि तुम धैर्य रखो। अलग होने पर भी तुम दोनों का धर्म स्थिर रहेगा। अन्त में तुम्हारी ही जय होगी। राजा मन में धैर्य रख कर रानी को साथ में लेकर चला जा रहा था आपस में पल भर भी अलग नहीं होते इकट्ठे ही मजदूरी करते है। इसी तरह धीरे २ समुद्र के किनारे पहुँच गए जहाज से माल उतर रहा था और बहुत से कुली वहाँ पर काम करते थे। उसी जगह ये दोनों मजदूरी करने लगे उधर शनि ने एक व्यापारी का रूप धारण कर और माल का भरा हुआ जहाज उसी किनारे आ लगाया। उस जहाज और मजदूरों के साथ ही यह भी मजदूरी करने लगे कितने ही दिन उस जहाज पर मजदूरी करते रहे। एक दिन राजा के पेट में दर्द हो गया और टट्टी चला गया इसकी स्त्री जहाज में काम करती थी और पीछे से शनि ने जहाज चला दिया।

जब राजा ने आकर देखा कि जहाज जा रहा है और दूर निकल गया तब शनि ने जोर से आवाज दी कि मैं शनि हूँ और तुम्हारी स्त्री को तुमसे अलग कर दिया है और तुमको भी कष्ट दूँगा, नहीं तो अब भी मुझको बड़ा बना दो उधर रानी को सुन्दर देख कर जहाज वाले मोहित हो गये तब रानी ने सूर्य भगवान का ध्यान किया

और प्रार्थना की कि मैं आपकी ही कुल की वधु हूँ मेरी लज्जा रखो रानी ने अपने पतिव्रत धर्म के प्रभाव से अपना असली स्वरूप सूर्यनारायण के पास अमानत रख दिया और उनसे छाया जैसा काला और भयानक स्वरूप मांग लिया, जिससे अपना पतिव्रत धर्म रखा क्योंकि कुरूपा जानकर उसके पास कोई नहीं आता था।

इधर राजा अपनी स्त्री के वियोग में बड़ा दुःखी हुआ। और शोकातुर हो किनारे किनारे चल पड़ा उसी समय लक्ष्मी प्रकट हो गई और अपने पिता समुद्र से कहने लगी कि आप इस राजा की रक्षा करो और सहायता करो तब समुद्र ने कहा कि हे राजन्! एक जहाज पर सवार होकर अपनी स्त्री का पीछा करो उसे ढूँढो जो खर्च होगा मैं दूँगा और कभी कोई धक्का लगाकर तेरे को समुद्र में गिरा देगा तो मैं डूबने नहीं दूँगा और मैं तेरी हर तरह से रक्षा करूँगा, फिर समुद्र ने उसको बहुत से रत्न जवाहरात दिये। उधर वह शनि का जहाज पतिव्रता के चुराने से समुद्र में ही खड़ा हो गया। चल नहीं सका अन्त में उस पतिव्रता की पूजा की तथा चरण धोकर समुद्र में जल गेरा तो जहाज चल पड़ा, उधर राजा भी किनारे किनारे जा रहा था। वह जहाज भी एक बंदरगाह में पहुँच गया। तब राजा भी उसी जहाज में सवार होकर

अपनी रानी को ढूँढने लगा तब शनि ने झट पहिचान लिया कि राजा सत्यव्रत है और सोचा इसको भी आज रात को समुद्र में फेंक दूँ।

परन्तु प्रथम इसको समझा दूँ तब शनि ने राजा सत्यव्रत से कहा कि मैं शनि हूँ और यह तेरी स्त्री है इससे मिलने में तुझे और भी कष्ट दूँगा नहीं तो मुझको अब भी बड़ा बना दे, इधर रानी ने भी राजा से अपना सब दुःख सुनाया और कहा कि मैंने अपना असली स्वरूप सूर्यनारायण के पास अमानत रखा है और यह काला स्वरूप उनसे मांग कर लिया है क्योंकि यह लोग मेरा सतीत्व धर्म भङ्ग करने लगे थे। दिन भर राजा रानी इकट्ठे रहे, रात्रि को शनि ने राजा का माल असबाब लूट लिया उसको समुद्र में धक्का दे दिया।

राजा समुद्र की कृपा से डूबा तो नहीं समुद्र की लहरों से किनारे लग गया। समुद्र के किनारे किसी राजा का बाग था। उस बाग के माली के पास राजा सत्यव्रत रहने लगा राजा सत्यव्रत बड़ा भगवत भक्त था इसलिए वह भगवान के गीत गायन कर रहा था। उसी बाग में राजा की लड़की भी घूमने आ गई जिसका आठवें दिन में स्वयम्वर था।

प्र. नं. २—चत्वार एकतो वेदा साङ्गो पाङ्गा सविस्तराः।
स्वधीता मनुजव्याघ्र सत्यमेकं किलैकतः ॥१॥

भा०—ऋक, यजु, साम, अथर्व चारों वेद व्याकरण शिक्षा कल्पछन्द ज्योतिष, निरुक्त ये छ अङ्ग नीति चिकित्सादि उपांग ये सविस्तार सब पढ़ा हो हे युधिष्ठिर। एक तरफ एकला सत्य ये सम ही है।

सत्यं स्वर्गस्यसोपानं पारावारस्य नौरिव।
न पावनतमं किंचित् सत्यादध्यगमं क्वचित् ॥२॥

सत्य ही स्वर्ग के जाने की सीढ़ी है संसार तरने को नौका है। सत्य से परे पवित्र अधिक कोई नहीं।

सत्यधर्मं समाश्रित्य यत्किञ्चित्क्रियते नरैः।
तदेव सकलं कर्म सत्यं जानीहि सुव्रते ॥३॥

भा०—हे सुव्रत, सत्य के आश्रय जो कर्म पुरुष करता है सो सब सत्य ही माना जाता है।

सत्यरूपं परंब्रह्म सत्यं हि परमं तपः।
सत्य मूला क्रिया सर्वा सत्यात्पर तरं नहि ॥४॥

भा०—सत्य ही परब्रह्म परमेश्वर का रूप है सत्य ही परम तप है सत्य ही क्रिया सब व्यवहार का मूल है। सत्य से परे कुछ नहीं है।

ससत्यं च समता चैव दमश्चैव संशयः।
अमात्सर्यं क्षमाचैव ह्रीस्तितिक्षानसूयता ॥५॥

भा०—सत्य समता, दम, ईर्षा न करना, क्षमा, बुरे काम से लज्जा तितीक्षा सहन शक्ति किसी के गुणों में दोष न लगाना।

कथा नं० २—भगवान के अमृतमय गीत सुन कर राजा पर मोहित हो गई और प्रार्थना की कि आप स्वयंवर में अवश्य पधारें मैं आपके गले में जयमाला पहनाऊँगी। महाराजा सत्यव्रत ने स्वीकार न किया और कहा कि मेरे पर शनिश्चर जी का कोप है, उसने मुझे अनेक कष्ट दिये और आगे को भी देगा मेरे पीछे तुम भी कष्ट भोगेगी। ऐसे अनेक प्रकार से समझाया, परन्तु कन्या ने कहा कि मैं प्रतिव्रता बनूंगी आपके लिए अथवा अपनी धर्म रक्षा के लिए कष्ट भी सहन करूँगी और जहाँ तक होगा मैं आपके कष्ट को दूर करूँगी। ऐसे विनती कर राजा को स्वयंवर में आने को मना लिया। उसके बाद गुप्त रूप से शनि आया और महाराजा सत्यव्रत से कहा कि तुमने राजकन्या मिलने की खुशी नहीं करनी। घातयीतुमेव—नीचः पर कार्यं 'वेती न प्रसाधयितुं, पातयितुमेव शक्तिर्वायो वृक्षं नचोन्नयमयितुम्॥ मैं तेरे को बहुत कष्ट दूगा। और कन्या पर भी उसके माता पिता का कोप करा दूगा, नहीं तो अब भी उसी तरह सभा लगा कर मेरे को बड़ा बनादे, तुमको मैं हर

प्रकार से सुखी कर दूँगा। ऐसे अनेक प्रकार का लोभ तथा भय दिखाया। साम दाम दन्ड भेद आदि सब उपाय कर चुका परन्तु महाराजा ने सत्य को न छोड़ा और कहा कि पहिले धर्मात्माओं की तरह सत्य की प्रतिज्ञा को पालूँगा। जैसे महाराजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र ऋषि को दक्षिणा देने की प्रतिज्ञा कर अपना पुत्र स्त्री तथा अपने आपको बेच कर धर्म का पालन किया था। जैसे महाराजा शिवि ने शरणागत की रक्षा के निमित्त अपना माँस अर्पण कर दिया था। परन्तु सत्य प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं करी। राजा बलि ने वामन भगवान को अढ़ाई कदम पृथ्वी देने की प्रतिज्ञा की थी। गुरु शुक्राचार्य के रोकने पर भी नहीं रुका, पाताल चला जाना स्वीकार किया परन्तु अपनी प्रतिज्ञा पर स्थिर रहा। दधीची ऋषि ने अपने शत्रु इन्द्र को जिसने एक बार दधीची ऋषि का शिर भी उतार दिया था उसको भी ऋषि ने अपनी प्रतिज्ञानुसार अपनी अस्थियें देकर प्रतिज्ञा का पालन किया। वसिष्ठ जी ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं जैसा देखूँगा वैसा ही कहूँगा। इस प्रतिज्ञानुसार अपने सौ पुत्र मरने पर भी क्षत्री वेष में आये हुए विश्वामित्र को राज ऋषि ही कहा ब्रह्म ऋषि नहीं कहा जिस तरह इन पूर्वज ऋषियों तथा राजाओं ने प्रतिज्ञाओं का पालन किया है वैसे ही मैं भी पालूँगा और तुम्हारे को बड़ा

नहीं कहूँगा जैसे उन्होंने प्रतिज्ञा पालन की है। तैसे ही और भी अनेक धर्मात्माओं ने प्रतिज्ञा पालन की है। राजा दशरथ ने अपनी रानी कैकेयी को वचन दिया था, पुत्र वियोग सहन कर लिया और अपने प्राण दे दिये परन्तु कैकेयी को जो वचन दिया था उसका पालन करके अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। भगवान् श्री रामचन्द्रजी ने विभीषण को लंकेश कहा था, जब लक्ष्मण जी मूर्छित हो गये तब भगवान् रामचन्द्रजी ने कहा कि हे लक्ष्मण उठो मेरी प्रतिज्ञा तब पूर्ण होगी जब आप मेघनाद को मार दोगे। तथा वचन के बँधे हुए पाँडव सभा में नग्न होती हुई द्रोपदी को न छुडा सके और नन्द राजा की कन्या विद्यावती ने स्वयंवर में सुव्रत को ही जयमाला पहराई। नारद ऋषि ने बहुत समझाया कि इसकी आयु कम है परन्तु उसने अपनी प्रतिज्ञा पालन किया और सावित्री की तरह यमराज से पति की रक्षा की। सत्यगुरू तेगबहादुर साहिब जी ने काश्मीरी ब्राह्मणों के साथ प्रतिज्ञा की थी कि मैं हिन्दू धर्म की रक्षा करूँगा इसलिए उन्होंने अपना शिर देकर हिन्दू धर्म की रक्षा की और अपनी प्रतिज्ञा का पालन किया। ऐसे अनेक महात्माओं ने अपना सत्य वचन नहीं हारा। हकीकतराय ने हिन्दू धर्म को नहीं छोड़ा अनेक प्रकार के कष्ट भय और लोभ से

नहीं डरा और हिन्दू धर्म का पालन किया। ऐसे अनेकों धर्मात्मा लोग सत्य प्रतिज्ञा को पालते रहे हैं। इस प्रकार का जब राजा सत्यव्रत ने शनि को उत्तर दिया तब शनि हत तेज हो गया क्योंकि शनि को सात वर्ष राजा को कष्ट देते हुए व्यतीत हो चुके थे और ६ मास शेष रह गये थे। और उधर स्वयंवर में राजकन्या ने महाराजा सत्यव्रत को जयमाला पहना दी। तब शनि की प्रेरणा से कन्या के पिता ने अपनी कन्या पर क्रोध किया कि तुमने माली के घर रहने वाले को, जिसकी जाति का कुछ पता नहीं जयमाला पहना कर मेरा नाम बदनाम कर दिया है। इस प्रकार अनेक दुर्वचन कह कर कन्या को अपने दामाद सहित देश निकाला दे दिया। कन्या ने इतना अनादर पाने पर भी अपने पति को नहीं त्यागा प्रत्युत बहुत प्रेम से सेवा करने लगी और वन में निवास करते हुए संत सेवा करते रहे चित्त प्रसन्न रहा इतने में शेष ६ मास भी व्यतीत हो गये और शनिश्चर भी धर्मात्मा राजा को दुःख देने से तेज रहित हो गया था और सब जगह उसका अनादर होने लगा था। शनि अपने को पापी समझ कर अपने पिता सूर्यनारायण की शरण में गया। सूर्यनारायण विष्णु की शरण में गया। शनि को विष्णु भगवान तथा लक्ष्मी के चरणों में डाला। तब लक्ष्मीजी ने कहा कि जब तक तू महाराजा सत्य-

व्रतसे माफी नही मॉगेगा तव तक मैं तुझे माफी नहीं दूँगी शनि ने कहा जो आप कहें मैं करने को तैयार हूँ। परन्तु आप साथ में चलो और जो पदार्थ मैंने गुम किये हैं वे सब दूंगा। तब लक्ष्मी जी ने कहा कि श्री व्रत राजा ने अपनी कन्या सहित सत्यव्रत राजा को देश निकाला दे दिया है जब तक वह भी क्षमा नहीं मांगेगा तब तक मैं भी क्षमा नहीं दूंगी। तब शनि ने कहा अच्छा मैं श्रीव्रत को भी साथ ले आऊँगा। आप भी चलो ऐसा कह कर जहाज लेकर जिसमें कि उस राजा की पतिव्रता स्त्री थी और समुद्र का दिया धन पदार्थ था। शनि सौदागर बन कर श्री व्रत राजा के यहाँ पहुँच गया राजा से सब हाल सुनाया और कहा कि महाराजा सत्यव्रत ही तुम्हारा दामाद है श्रीव्रत राजा सब हाल सुन कर दुःखी भी हुआ और प्रसन्न भी हुआ प्रसन्न इसलिए हुआ कि महाराजा सत्यव्रत ने मेरी कन्या के वश में है और दुःखी इसलिए हुआ कि बिना जाने मैं महाराजा को तथा कन्या को अपमानित कर देश निकाला दे दिया। अब चलकर उनसे क्षमा माँगू और उनको देश में ले आऊँ राजा श्रीव्रत बहुत साधु ब्राह्मण वजीर अमीरों को साथ लेकर महाराजा सत्यव्रत के पास गया और बहुत प्रार्थना करके अपने अपराध की क्षमा कराई और अपने राज्य में ले

आया उधर से शनि भी अपने पिता सूर्यनारायण को तथा भगवान् विष्णु और लक्ष्मी जी को साथ लेकर वहां पहुँच गया और उसकी स्त्री जो कुरुपा बनी हुई थी और उसका जितना कोप था सब का सब सत्यव्रत के चरणों में भेंट कर दिया और सूर्यनारायण से महाराजा सत्यव्रत की पहली महारानी ने अपना अमानत रखा हुआ सुन्दर-स्वरूप ले लिया और अपने पति के चरणों में पड़ गई। उस समय सबकी आज्ञानुसार शनिश्चर महाराज सत्यव्रत के चरणों में पड़ गया और क्षमा माँगने लगा और सबने कहा कि महाराज इसका अपराध क्षमा करो अथवा जो चाहो इसको दण्ड दो हम बीच में जामन पड़ेंगे तब महाराजा सत्यव्रत ने कहा कि यह सदैव के लिए किसी को कष्ट न दे यदि ऐसी प्रतिज्ञा करे तो क्षमा कर देंगे अन्यथा नहीं शनि ने कहा अच्छा जो आपकी यह कथा सुनेगा उसको मैं कष्ट न दूंगा उस दिन रविवार था और सूर्य भगवान् भी पास थे महाराजा भी सूर्यवंशी थे अतः यह नियम होगया कि रविवार को येह कथा सुनाई जाय तो सुनने वालों को शनि कष्ट नहीं देंगे और शनि को क्षमा कर दिया। शनि ने डोंगी में से जो वस्त्र भूषण चुराये थे वे भी सब बाहर रख दिए। उसी समय महाराजा श्रीव्रत

ने कन्या के दान में बहुत सारा धन वस्त्र भूषण देकर सत्यव्रत राजा को उसके राज्य में छोड़ गया।

सवैया—जब भानु उठे दिश पश्चिम होई पुन मेरु चले अतिशय जब ही, गिरि शृँग शिला जब होइ पद्मा, अग्नि अति शीतल होई कबहि॥ सबके अति साजन संत जना वह झूठ गिरा न कहे कबही, तज भ्रान्त रिदे घर सन्त गिरा सो संमय अबही, अबही, अबही।

प्र० नं० ३—त्यागो ध्यानंशमार्यत्वं धृतिश्च मृदुता दया।
अहिंसा चैव राजेन्द्र! सत्याकारः सनातनः॥१॥

भा०—दान करना, व विरक्त रहना ईश्वर का ध्यान लगाना मन का रोकना यानि छल प्रपंच रहित सरल स्वच्छ स्वभाव धैर्य कोमल चित्त रहना दया करना हिंसा न करना, भीष्म कहते हैं हे युधिष्टर ये सब सनातन सत्य का ही स्वरूप है इसमें कोई संशय नहीं॥१॥

ऋषयश्चैव देवाश्च सत्यमेव हिमेनिरे।
सत्यवादी हि लोकेऽस्मिन्परं गच्छतिचाक्षयम्॥२॥

भा०—वेद और ऋषि मुनि भी सत्य को ही मानते हैं सत्यवादी पुरुष ही इस संसार से परम अक्षय लोक को जाता है॥२॥

भूमिकीर्ति, यशो लक्ष्मीं पुरुषं प्रार्थयन्तिहि।
सत्यं समनुवर्तन्ते सत्यमेव भजेत्ततः॥३॥

भा०—भूमि अर्थात् सब सृष्टि व राज्य सुख कीर्ति पवित्र यश लक्ष्मी ये सब सत्य बोलने वाले के पीछे २ प्रार्थना करते फिरते है। तिसमें सत्य ही बोलना चाहिये।

वरं कूपात् शताद्वापी वरंवापी शतात्क्रतुः।
वरं क्रतु शतात्पुत्रः सत्यं पुत्रात् शताद्वरम् ॥४॥

भा०—सौ कुँवो से तो बावडी श्रेष्ठ है, सौ बावड़ीयों से यज्ञ, सौ यज्ञों से सुपुत्र सौ सुपुत्रों से भी यज्ञ श्रेष्ठ है ॥४॥

सर्वं वेदाधिगमनम् सर्व तीर्थादि दर्शनम्।
सत्यं च वचनं राजन्, समं वास्यान्नवासमम् ॥५॥

भा०—सर्व वेदों का पढ़ना सर्व तीर्थों का स्नानादि दर्शन करना और एक तरफ अकेला सत्य बोलना। हे युधिष्ठर यह सब बराबर हों अथवा नहीं हों।

कथा नं० ३—सत्य पर महाराजा विक्रम और रानी की कथा जब करयप ऋषि की स्त्री अदिति के गर्भ में सूर्य-नारायण थे तब वृद्ध ब्रह्मचारी के वेष में भिक्षा लेने अदिति के घर आया उस समय भोजन तय्यार न था और सगर्भा होने के कारण भोजन तय्यार भी न कर सकी और वृद्ध भी तीन दिन का भूखा था। भूख से व्याकुल होकर बारम्बार भिक्षां देहि भिक्षां देहि कह रहा था परस्पर झगड़ा हो गया अदिति ने कहा मैं सगर्भा हूँ भिक्षा तय्यार नहीं कर सकती तब वृद्ध ने शाप दिया कि तू घर पर

आये हुए भूखे अतिथि को जिस गर्भ की रक्षा के लिए भिक्षा नहीं बना देती वह अन्दर ही सूख जायगा, तब गर्भ का बच्चा अन्दर ही सूख गया और अदिति रोने लगी इतने में कश्यप ऋषि भी आ गये रोने का कारण पूछा उसने बुद्धि की सब वार्ता सुनाई कश्यप ने कहा तूने गृहस्थ धर्म का पालन नहीं किया, गृहस्थ आश्रम का मुख्य धर्म सेवा है अच्छा तू रो मत मैं अपने तपोबल से सूखे हुए बच्चे के शरीर के अन्दर एक और नया सजीवन शरीर पैदा कर देता हूँ तब उसने अपने तपोबल से गर्भ को हरा कर दिया जब बच्चा गर्भ से बाहर आया तब सूर्य नारायण के दो शरीर हुए, एक सूखा एक हरा सूखे बच्चे के निकलते समय माता को बडा कष्ट हुआ और तपोबल के प्रभाव से बालक में तेज बहुत था कोई भी उस तेज को सहन नहीं कर सकता था, जब सूर्य नारायण पूरी अवस्था को प्राप्त हुए तब माता पिता को उनके विवाह का संकल्प हुआ सूर्यनारायण अत्यन्त तेजस्वी थे उनका तेज किसी से सहन नहीं होता था इसलिए कोई भी उन्हें अपनी कन्या देने को तय्यार नहीं था और न कोई कन्या ही सूर्यनारायण को पसन्द करती थी अन्त में विश्वकर्मा को प्रेरित कर उसकी संज्ञा नाम वाली कन्या से सूर्यनारायण का विवाह करा दिया परन्तु संज्ञा पति का तेज सहन नहीं

कर सक्ती थी हर समय दुःखी रहती थी जब गर्भवती हो गई तो घर से भाग गई। एक पवित्र स्थान में बैठ कर बच्चों की वृद्धि के निमित्त तप करने लगी जब बच्चा पैदा होने का समय आया तब ब्रह्माजी उसके पास आये और कहने लगे कि घर में चल परन्तु उसने नहीं माना वहीं पर ही प्रसूत होगई दो बच्चे पैदा हुए एक पुत्र और एक कन्या ब्रह्मा जी ने एक पुत्र का नाम यमराज और कन्या का नाम यमुना रखा। ब्रह्माजी ने दोनों को बड़े २ वर दिये और समझा बुझा कर बच्चों सहित संज्ञा को सूर्य-नारायण के घर ले आये फिर एक पुत्र पैदा हुआ जिस का नाम मनु रखा संज्ञा फिर अपनी छाया की मूर्ती बना कर घर में रख गई और आप कुरुक्षेत्र में घोड़ी बन कर विचरने लगी। छाया से दो लड़के पैदा हुए। एक शनि दूसरा सावर्णि। वह छाया शनि के साथ ज्यादा प्यार करती थी। घर में जो वस्तु आती थी सब बच्चों को न देकर शनि को देती थी। यह देख कर यमराज को बड़ा क्रोध आगया उसने अपनी माता छाया को लात मारदी। माता छाया ने उसको शाप दिया कि तेरी लात में कुष्ट हो जाय। तब वह कुष्टी हो गया। जब सूर्य-नारायण घर पर आये सब वृत्तान्त सुना तो मनमें विचारा कि माता और पुत्र का झगड़ा कैसा? ज्योतिष और

योग बल से देखा कि यह संज्ञा की छाया है संज्ञा स्वयं नहीं आप तो कुरुक्षेत्र में घोडी बन कर विचर रही है। अब उसे पिता द्वारा समझा कर ले आना चाहिये तब विश्वकर्मा के पास पहुँचे। तब विश्वकर्मा ने कहा कि जब तक आपका सूखा हुआ शरीर छील कर साफ न किया जाता तब तक संज्ञा आपके पास नहीं रह सकती। आप बैठ जाएँ मैं आपका शरीर छीलकर साफ कर देता हूँ। तब खराद से सूर्य नारायण का सूखा शरीर छील कर उससे सुदर्शन चक्र बनाया गया जिसका तेज बड़ा है और विष्णु भगवान के हाथ में रहता है। इस प्रकार ऊपर का सूखा हुआ शरीर छीलकर सूर्य नारायण का तेज घटाया गया और कहा कि संज्ञा घोडी बन कर कुरुक्षेत्र में विचर रही है। जाओ उसे घर पर ले आओ। तब सूर्य नारायण कुरुक्षेत्र में गये और संज्ञा को घोडी के रूप में देख कर स्वयं घोडा बन गये और उसके सम्बन्ध से दो लडके पैदा हुए जिनका नाम अश्विनी कुमार रखा गया, अश्विनी नाम घोडी का है। उसके कुमार बच्चे अश्विनी कुमार हुए फिर उनको घर ले आये। घर में छाया की मदद से शनि जोर पकड गया अपने भाईयों से तथा पिता से लडने लगा परस्पर में विरोध बढ गया। शनि ने दैत्यों की मदद ले ली। इस प्रकार देवता और दैत्यों में विवाद

हो गया। देवताओं का दावा था कि हम बड़े हैं। दैत्य कहते थे हम बड़े हैं शनि ने कहा मैं सर्व पूज्य हूँ। सूर्य भगवान कहता था कि मैं पूज्य हूँ क्योंकि तेरा पिता हूँ। शनि ने कहा पिता है तो क्या है ? वासुदेव पिता था पर पूज्य श्रीकृष्ण ही थे। इस प्रकार शनि पिता से भी पूजा कराने की इच्छा करता था। यदि कोई देवता उसे समझाता था तो उसको क्रूर ग्रह बनकर साढ़े सात वर्ष दुःख देता था। इसलिये उसे कोई समझाता नहीं था। दिन प्रतिदिन विरोध बढ़ता ही गया तब सब लोग ब्रह्मा जी के पास पहुँचे ब्रह्मा जी से प्रार्थना की कि यह विरोध कैसे हटे ? ब्रह्मा जी ने कहा भूलोक (मार्त्तलोक) में भारत खण्ड में कलियुग के समय जो कोई सत्यवादी राजा होगा वह तुम्हारा न्याय करेगा और किसी से नहीं हो सकेगा। वह राजा भी शनि से बड़ा दुःख पायगा परन्तु अपना सत्य नहीं छोड़ेगा और उसके सत्य से डर कर हत तेज हुआ शनि अपनी हार मान लेगा तब न्याय हो जायगा। इस प्रकार देवता और दैत्य कलियुग समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

प्र. नं ४–सत्य हीना वृथा पूजा सत्य हीनो वृथा जपः।
सत्य हीनो तपो व्यर्थ ऊषरे वपनं यथा ॥१॥

भा०—पूजा जप तप सब साधन सत्य के बिना सब

वृथा ही है जैसे कल्लर भूमि "ऊसर" में बीज बोना वृथा है ॥१॥

असत्प्रलापं पारुष्यम् पैशून्य मनृतन्तथा ।
चत्वारिवाचा राजेन्द्र न जल्पेन्नानुचिन्तयेत् ॥२॥

भा०—असत्य बोलना, कठोर बोलना निन्दा करना झूँठा दोष लगाना हे राजन् युधिष्टर यह चारों बातें न कहे न मन में चिन्तन करे ॥२॥

ब्रह्मघ्ना ये स्मृता लोका ये च स्त्रीबाल घातिनः ।
मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य ते तेस्युः ब्रुवतोमृषा ॥३॥

भा०—ब्रह्महत्या का पाप स्त्री बालक के मारने का जो पाप है, मित्र के साथ द्रोह ये पाप किसी के किये हुए गुण उपकार का भुला देना ये सब झूँठ बोलने वाले पुरुष को होते हैं ॥३॥

नासत्य वादिनः सख्यं न पुण्य न यशो भुवि ।
दृश्यतेनापि कल्याणं कालकूट मिवाश्नतः ॥४॥

भा०—झूठे पुरुष को कोई मित्र नहीं बनाता न उसको कोई पवित्र समझे न पृथ्वी में उसका यश हो न उसका कल्याण बस झूँठ बोलना विष खाने के बराबर ही है ।४।

कूड़ बोल मुरदार खाय औरों को समजावण जाय ।
सत बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप । जाके हिरदे साच है ताके हिरदे आप । कूड़ बोल २ निख खावणया ॥

मानाद्वायदिवा लोभात्, क्रोधाद्वायदिवा भयात्।
योऽन्यादन्यथा वा ब्रूते स नरः पाप माप्नुयात् ॥५॥

भा०—मान के लिए वा लोभ के लिए काम क्रोध के वश से या किसी के भय से इन अन्यार्थों से भी जो पुरुष झूठ बोल देते हैं सो झूँठे पुरुष पाप के भागी होते हैं ॥५॥

नग्नो मुण्डः कपालेन भिक्षार्थीक्षुत्पिपासितः।
अन्धः शत्रु कुलंगच्छेद्यः साक्ष्यनृतं वदेत् ॥६॥

भा०—जो पुरुष झूँठी गवाही देता है सो दूसरे जन्म में अन्धा हुआ नग्नशिर मुंडा हुआ भूखा प्यासा ठीकरा हाथ में लेकर शत्रुओं के घर में भीख माँगता है कुछ खाने को मिलता नहीं ॥६॥

कथा नं० ४—जब महाराजा विक्रम उज्जैन नगरी के राजा हुए और उन्होंने प्रतिज्ञा की कि शरीर चला जाय पर मैं कभी भी अन्याय नहीं करूँगा और न कभी असत्य (झूठ) कहूँगा और महाराजा विक्रम ने यह प्रतिज्ञा की थी कि किसी जाति का मनुष्य भी मर जाय और उसे कोई संभालने वाला न हो मुझे पता लग जाय तो उसकी दाह क्रिया किये बिना मैं अन्नजल ग्रहण न करूँगा। एक और प्रतिज्ञा थी कि विदेशी व्यापारी का माल मेरे राज्य में बिक्री न होय तो उसका माल कैसा भी होय और

कितना भी कीमत का होय तो उसे मैं ले लूगा, अपने खजाने से पैसा भर दूगा इसलिए उसका यश देवता और दैत्यों तक पहुँच गया। दैत्यों ने विचार किया कि शनि और सूर्य का जो परस्पर पूज्यपन का विवाद है वह महा-राजा विक्रम से निवृत किया जाय। तब देवता और दैत्य मिलकर महाराजा विक्रम के पास आये। महाराजा विक्रम शनि का क्रूर स्वभाव जानता था और यह भी समझता था कि यह दुःख बहुत देगा। फिर विचार किया न्याय करना राजाओं का धर्म है "राजे चुकी न्याय की" इस वचनानुसार इनका न्याय अवश्य करना चाहिये, चाहे कितना भी कष्ट क्यों न हो तब राजा विक्रम ने देवता और दैत्यों से कहा कि मेरा सच्चा न्याय होगा म जो न्याय करूँगा वह तुम दोनों को मान्य होगा, दोनों ने स्वीकार किया तब राजा ने दो आसन और दो माला एक ही नमूने के बनाये और कहा एक-एक माला पहिन कर एक-एक आसन पर बैठ जाओ मैं मन्त्र पढूँगा जिसका आसन नीचे दब जायेगा और माला सूख जायेगी वह तुम्हारे में से अपूज्य और झूठा माना जायेगा। ऐसा कह कर मन्त्र पढने लगा मन्त्र पढ़ते-पढते शनि का आसन नीचे दब गया और माला सूख गई ताली बज गई कि सूर्यनारायण पूज्य है शनि नहीं

तब शनि को बड़ा क्रोध आया और लाल नेत्र करके महाराजा विक्रम को कटु वचन बोले कि तुमने मेरे को अपूज्य सिद्ध किया है मैं तुम्हारे को साढ़े सात वर्ष तक असह्य घोर दुख दूँगा। महाराजा विक्रम ने कहा परवाह नहीं कुछ भी करो तब शनि ने कहा अच्छा सम्भल कर रहना ऐसे कह कर उठ गया और सारी सभा को निश्चय हो गया कि सूर्यनारायण ही पूज्य हैं, शनि नहीं थोड़े दिन बाद शनि लोहमयी दरिद्र की मूर्ति बना कर महाराजा विक्रम के राज्य में आया और एक लाख रुपया उसका दाम रक्खा। दरिद्र को कोई लेता नहीं था क्योंकि दरिद्र और लक्ष्मी का विरोध है। जहाँ लक्ष्मी होगी वहाँ दरिद्र नहीं होगा। जब बाजार में दरिद्र नहीं बिका तो शनि ने महाराजा विक्रम से कहा कि मेरा दरिद्र बाजार में बिकता नहीं आप इसे लेलें। और मुझे खजाने से एक लाख रुपया दिलवादें नहीं तो तुम्हारा धर्म नहीं रहेगा। तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि किसी पुरुष का माल यदि बाजार में न बिके तो खजाने से रुपया देकर वह मैं ले लूँगा यहि दरिद्र है इसे मोल लोगे तो आपकी राज्य लक्ष्मी नष्ट हो जायगी। महाराजा विक्रम ने कहा कि राज्य लक्ष्मी जाय तो जाय परन्तु धर्म न जाना चाहिये। और खजान्ची से कहा कि इसको एक लाख रुपया दे दो और दरिद्र को

मूर्ति लेकर खजाने में रख दो खजान्ची ने बहुत प्रार्थना की कि महाराज! दरिद्र न खरीदीए पर राजा ने कहा मैं जरूर खरीदूंगा। मेरे भाई भर्तहरि ने भी दरिद्र मोल लिया था। भर्त वचन। देकर तोते अधिक समाजा, लीयो दरिद्र मोल मैं राजा। अन्त में शनि को लाख रुपये देकर दरिद्र की मूर्ति ले ली गई। जब दरिद्र खजाने में आगया तब लक्ष्मी जाने लगी जाते समय राजा से मिली और कहने लगी कि दरिद्र आपने मोल लिया है इसलिए मैं जाती हूँ। मेरे जाने से तुम्हारा राज्य नष्ट हो जायगा, प्रजा में बड़े २ उपद्रव होंगे पण्डित लोग तुम्हारी निन्दा करेंगे, इसलिए आप दरिद्र को निकाल दो धर्म जाता है तो जाने दो राजा ने कहा मैं धर्म को कभी भी नहीं जाने दूंगा चाहे राज्य चला जाय निन्दा होय मृत्यु आजाय परन्तु धर्म को नहीं छोड़ूगा। जैसे लिखा है।

निन्दन्तु नीति निपुणा यदिवा स्तुवन्तु,
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतुवा यथेष्टम्।
अद्यैवबामरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः॥

अर्थ—धैर्यवान् धर्मात्मा लोग धर्म मार्ग से एक पैर भी पीछे नहीं हटते चाहे कितनी सम्पत्ति व विपत्ति आजाय पण्डित लोग निन्दा करें व स्तुति करें लक्ष्मी आ

जाय चली जाय आज ही मृत्यु आ जाय व युग भर जीतें रहें। इस वास्ते हे लक्ष्मी! तुमने रहना हो तो रहो जाना है तो जाओ मैं तो धर्म का त्याग कभी नहीं करूँगा तब लक्ष्मी ने कहा कि मैं भी दरिद्र के साथ इकट्ठी नहीं रह सकती ऐसे कह कर रोती हुई चली गई। लक्ष्मी के जाने से अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे, तब शनि स्वयं मूर्तिमान् होकर आया और कहा हे राजन्! ये सब मेरे कर्तव्य है। अब भी मेरे को पूज्य बनादो नहीं, तो मैं आपको बहुत कष्ट दूँगा। राजा ने कहा तू पूज्य नहीं हो सकता तब शनि क्रोधित होकर चला गया और महाराजा विक्रम शिकार खेलने गया तो बाहर लक्ष्मी मिली उसने राजा को बहुत समझाया कि एक बार मेरे साथ भी शनि का झगड़ा हो गया था। महाराज सत्यव्रत ने अनेक दुःख सहन करके झगड़ा निवृत किया था। शनि ने महाराज सत्यव्रत को बड़े दुःख दिए थे उसी तरह आपको भी अनेक कष्ट देगा। इस प्रकार लक्ष्मी ने बहुत कहा पर राजा ने कोई परवा नहीं की कि फिर लक्ष्मी ने कहा अच्छा मेरी एक प्रार्थना मान लीजिये शनि अब आपके पास एक लोहे की कला का घोड़ा बना कर ले आयगा। वह शहर में तो बिकेगा नहीं आपने भी उसे खरीदना नहीं यदि धर्म की रक्षा के लिए घोड़ा खरीदा

भी तो उस पर चढ़ना नहीं यदि बुद्धि के विपर्यय होने से चढ़ भी बैठे तो घोड़े को चाबुक न मारना। चाबुक मारोगे तो घोड़ा आपको उडाकर आकाश में ले जावेगा यह बातें याद रखनी दूसरे दिन वैसे ही हुआ, शनि घोड़ा बना कर ले आया। शहर में नहीं बिका तो राजा ने मोल लिया फिर उस पर चढ़ भी गया लक्ष्मी के वचन भूल गया। चाबुक मार दिया घोड़ा उड़ा कर ले गया वह घोड़ा सात दिन तक ऊपर के वायु चक्र में कभी नीचे कभी ऊपर राजा को घुमाता रहा। आठवें दिन राजावीर के राज्य में नदी किनारे एक जंगल में फेंक कर चला गया। राजा को सख्त चोटें लगी दिमाग हिल गया पर धैर्य से सहन करता रहा। वहाँ पर फिर शनि आया महाराजा विक्रम से कहा कि अब भी मेरे को पूज्य बनादे नहीं तो और भी अधिक कष्ट दूंगा परन्तु राजा ने नहीं माना। राजा नित्य कर्म करने वास्ते नदी किनारे आया स्नान ध्यान किया भूख से व्याकुल था कुछ खाने की इच्छा हुई इतने में नदी में एक मुरदा बहता हुआ नजर आया उस मुरदे को शिखा सूत्रादि हिन्दू धर्म के चिन्ह थे राजा ने विचारा कि धर्म शास्त्रानुसार यह दाह करने योग्य है जल प्रवाह के योग्य नहीं। इसका मैं ही दाह कर्म करूँ। तब राजा ने उसे बाहर निकाला और दाह

करने के वास्ते लकड़ियाँ ली, सामान इकट्ठा किया चिता बनाई अग्नि लगा ही रहा था तो शनि ने उधर राजा वीर को जाकर खबर दी कि एक मुसाफिर तुम्हारे लड़के को मार कर चिता में जला रहा है, चल कर पहचान लो तब राजा क्रोध में आगया थोड़ी सी पुलिस ले कर वहाँ पर पहुँचा और आकर देखा तो कहा कि हाँ यह मेरा लड़का है । तब बिना सोचे विचारे महाराजा विक्रम को बहुत मारा और हथकड़ी लगवा कर हवालात में भेज दिया और अन्न जल भी बन्द कर दिया । फिर अपने लड़के की तलाश करी तो ससुराल में गया हुआ लड़का वहाँ पर मिल गया तीन दिन बाद हवालात से राजा को निकाल दिया और मुरदा उसके हवाले किया राजा ने उसका दाह कर्म करके नित्य कर्म किया फिर भूख से व्याकुल था ही कुछ खाने के लिए शहर में आने लगा रास्ते में फिर शनि मिल गया उसने कहा कि अब भी मेरे को पूज्य बनादे नहीं तो इससे भी अधिक कष्ट दूँगा । राजा ने कहा कि कष्ट सहन कर लूँगा पर तुम को पूज्य नहीं बनाऊँगा तब शनि ने कहा कि अच्छा मेरा प्रभाव भी देख लेना ।

प्र. नं. ५–अवाक् शिरास्तमस्यन्धे किल्बिषी नरकं व्रजेत् ।
यः प्रश्नं वितथं ब्रूयात् पृष्टः सन्धर्मनिश्चये ॥१॥

भा०—जिस पुरुष को धर्म न्याय के लिए सत्य पूछा और वह असत्य साक्षी दे झूंठ बोलता है वो नीचे को शिर कर महा अन्धतम नरक में गिराया जाता है।

गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दान शूरैश्चसप्तभिर्धार्यते धरा ॥२॥

भा०—गौ ब्राह्मण वेद पतिव्रता स्त्री, सन्तोषी वा दानी शूरवीर सत्यवादी पुरुष इन सातों करके ही पृथ्वी धारण की हुई है अर्थात् ये सब ही तो सृष्टि की मर्यादा वा रक्षा का मूल है॥

त्रीण्येवतु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम्।
नद्रुह्येचैव दद्याच सत्यं चैव परं वदेत् ॥३॥

भा०—ये तीन पद पुरुषों के उत्तम व्रत हैं, किसी से द्रोह न करना, दान देना सत्य बोलना।

सत्येन लभ्यस्तपसाह्येप आत्मा।
सम्यक्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयोहि शुभ्रो।
यं पश्यन्तियतयः क्षीण दोषाः ॥४॥

भा०—वो परमात्मा सत्य से तप से ब्रह्मचर्य से वेद ज्ञान से नित्य उपनिषदों के यथार्थ निःसन्देह विचार से प्राप्त होने योग्य है वो परमात्मा शरीर के भीतर हृदयाकाश में नित्य स्थित है। सो सिद्ध ज्योतिस्वरूप यानी चित्त

ज्ञानस्वरूप है जिसका शुद्ध अन्तःकरण यत्नशील संन्यासी भीतर ही देखते हैं।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मो नवै यत्र च नास्ति सत्यं २ न तद्यच्छलेनानुनिद्धम् ॥

भा०—वह सभा नहीं कही जाती जिसमें कोई वृद्ध पुरुष नहीं है। वह वृद्ध भी नहीं होता जिसमें धर्म नहीं है। वो धर्म नहीं जिसमें सत्य नहीं। वो सत्य भी नहीं जो छल से किया जाता है। सभा वही है जिसमें वृद्ध है, वृद्ध वही है जो धर्मात्मा है। धर्मात्मा वही है जिसमें सत्य है। सत्य वह है जो छल दम्भ से रहित है। कूड़ निखुटे नानका ओड़क सच रही।

कूड़े की पत लथी जाय समोदरामजेता फिक्ष खाय।
सतमेव जयतिनानृतम् । सत्यं वद धर्मंचर ॥

कथा नं० ५—जब राजा शहर आया जेब से एक पौन्ड निकाल कर हलवाई को कहा पौन्ड ले ले मेरे को कुछ मिठाई दे और बाकी रुपये दे दे उसने कहा थाल में फेंक दे जब थाल में फेंका तो शनि ने उसे अधेला बना दिया। हलवाई महाराजा विक्रम से लड़ने लगा कि तुम अधेले को पौंड बतलाते हो। लड़ते समय वहाँ पर पुलिस आ गई। पुलिस ने महाराजा विक्रम को बहुत मारा और अधेला हाथ में पकड़ा कर धक्के देकर बाहर निकलवा

दिया। फिर महाराजा विक्रम भड़भूँजा की दुकान पर पहुँचा और कहा मेरे को अधेले के चने देदे। उसने कहा फेंक अधेला। शनि ने अपनी माया से उस अधेले को भी गुम कर दिया। भड़भूँजे ने कहा तुमने अधेला फेंका नहीं? महाराजा विक्रम ने कहा मैंने फेंका है आपस में लड़ाई हो गई सिपाहियों ने फिर धक्के लगाकर महाराजा को बाजार से निकाल दिया। उस रोज भी महाराजा विक्रम भूखा ही रहा। शनि ने कहा देखा! तेरी क्या दशा करदी। जड़ पदार्थ भी मेरा हुक्म मानते हैं। तू भी मेरा हुकम मान कर मेरे को पूज्य बना दे नहीं तो और कष्ट भी दूँगा तब भी राजा विक्रम ने नहीं माना। रात पड़ गई कोई उसको रहने नहीं देता था आखिर शहर से बाहर निकल गया तब धर्म भी मिल गया। धर्म ने कहा महाराजा विक्रम तुमने कष्ट सहन कर मेरी रक्षा की है मैं भी तेरी रक्षा करूँगा। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' अन्त में तेरी ही जय होगी परन्तु मरण पर्यन्त कष्ट अवश्य होंगे डरना नहीं। "यतो धर्मस्ततो जयः" ऐसे कह कर चला गया। धर्म की सहायता से और महाराजा विक्रम भी शहर से बाहर निकल गया। बाहर एक क्षत्रिय की छोटी सी दुकान थी। दुकान के आगे बरामदा था। दुकानदार से कहा मैं इस जगह सो सकता हूँ? रात्रि व्यतीत करनी

है उसने बड़े प्रेम से कहा हाँ रह सकते हो। सोने के लिए चटाई दे दी कुछ खाने के लिये भी दिया। इतने दिन बाद आज धर्म की सहायता से महाराजा विक्रम ने रात्रि सुख पूर्वक व्यतीत की। प्रातःकाल उठे ईश्वर स्मरण किया। दुकानदार के आने से पहिले दुकान की सफाई कर जल छिड़क दिया। दुकान वाला आया सफाई देख कर बड़ा प्रसन्न हुआ। महाराजा विक्रम जाने लगा तो जाने नहीं दिया और कहा कि रोटी खिला कर जाने दूंगा। उसने कहा मैं रोटी तब खाऊँगा जब मेरे से कोई काम लोगे क्योंकि मैं कोई साधु तो नहीं दुकान वाले ने कहा ये दो सौदे हैं कोई आए तो उसको इस भाव से दे देना मैं बाजार से और सौदा ले आऊँ। महाराजा विक्रम दुकान पर बैठ गए। अब धर्म उनका सहायक हो गया था। बस जो चीज आती थी झट अच्छे दाम पर बिक्री हो जाती थी दुकान दार को बड़ा लाभ हो गया थोड़े दिनों में दुकान वाला तो लखपति हो गया। महाराजा विक्रम को जाने नहीं देता था। शनि ने विचार किया इसको एक बार अपना प्रभाव दिखलाऊँ। दुकान वाले की महाराजा विक्रम पर श्रद्धा होगई थी उसने एक नया मकान बनवाया। उसमें अच्छे २ फर्श गलीचे बिछाकर अच्छी सजावट करदी और विचार किया कि जैसे इस धर्मात्मा

के दुकान में पैर पाने से मैं लखपति हो गया हूँ यदि घर में भी इनका चरण पड़ जाये तो मेरे को और अधिक धन का लाभ हो जायगा। महाराजा विक्रम को कहा कि कल मेरे घर में जरूर चरण रक्खो। महाराजा मानते नहीं थे परन्तु बहुत विनती कर मना लिया। शनि भी एक सेठ का स्वरूप धार कर उसी शहर में रहने लगा और दुकानदार के पास ही उस शनि रूप सेठ का महल था। घर की सजावट करते देख सेठ ने दुकानदार से पूछा आज क्या है? उसने कहा आज एक धर्मात्मा ने मेरे घर में आना है। जिस की कृपा से मैं लखपति बन गया हूँ। तब शनि रूप सेठ ने कहा कि सजावट के लिए हीरे जवाहरात सोने के पलंग कुर्सियां जो चाहिये मेरे से ले जाओ फिर दे जाना दुकानदार सजावट का सामान ले आया। भोजन तैयार होनेपर महाराजा विक्रम को बडी धूम-धाम से ले आया और सम्मान पूर्वक सजाये हुए कमरे में बैठाया, सब सम्बन्धी बुला लिये और इकट्ठे हो गये। सबने महाराजा विक्रम का सत्कार किया। महाराजा विक्रम को भोजन कराकर उसी सुन्दर कमरे में अकेले को सुला दिया। जब सब लोग चले गये महाराजा विक्रम अकेले रह गये तब शनि ने आकर कहा कि अब भी मेरे को पूज्य बनादो नहीं तो और ज्यादा कष्ट दूँगा। परन्तु महाराजा विक्रम

ने नहीं माना तब शनि ने फिर अपनी माया से सोने चाँदी के सब सामान को लकड़ी का बना दिया हीरा जवाहरात भी पत्थर बन गये। महाराजा विक्रम देखकर आश्चर्य हो गये स्थान छोड़कर बाहर निकल गये जब दुकानदार कमरे में आया और देखी न वह धर्मात्मा है न हीरे जवाहरात हैं न पलङ्ग है तब उसने निश्चय किया कि यह कोई ठग था सारा सामान उठा कर ले गया तब शनि रूप सेठ को खबर करी सेठ ने कहा राजा से कहो और उसे पकड़वाओ दुकानदार ने राजा के पास जाकर पुकार करी। राजा ने तलाश करके उसको पकड़ लिया। पास बुलाकर पूछा कि इसने तुमको हीरे जवाहरात और स्वर्ण जड़ित पलङ्ग बिछाकर दिये थे तब महाराजा विक्रम ने कहा हाँ, फिर पूछा अब कहाँ चले गये ? महाराजा विक्रम ने कहा मेरे बैठे बैठे गुम हो गये। राजा ने समझा चोर यही है। तो इसके हाथ पैर कटवा कर कूप में फेंकवा दिया और समझा की आप ही मर जायगा। महाराजा विक्रम वहाँ भी खुश रहे। आप राग बड़ा अच्छा जानते थे। एक दिन प्रेम से राग अलाप रहे थे तो एक तेली ने सुना। सुन कर तेली का चित्त शान्त हो गया महाराजा विक्रम को कूप से निकाल लिया और अपने पास रखकर बहुत सेवा की। महाराजा

विक्रम भी योग्य सहायता करता था और राग सुनाया करता था। एक दिन महाराजा विक्रम प्रातःकाल प्रेम से राग गायन कर रहा था उस समय राजा वीर की कन्या भी सखियों को साथ लेकर सैर को आ रही थी। रास्ते में राग सुनके गद् गद् हो गई चित्त शान्त हो गया फिर तो रोज आकर उससे राग श्रवण करती थी। आखिर उसकी ऐसी श्रद्धा बढ़ी कि स्वयंवर में इसी को पति बनाऊँगी। तब उसने महाराजा विक्रम से प्रार्थना की कि थोड़े दिनों में मेरा स्वयंवर होने वाला है आपको मैं वस्त्र भूषण पालकी भेजूँगी आप दर्शन देना। समयानुसार पालकी आदि भेजदी और महाराजा विक्रम के गले में जयमाला पहिना दी। जब राजा वीर को पता लगा कि यह वही आदमी है जिसके मैं हाथ पैर कटवा कर कूप में फेंकवाया था तब कन्या पर सख्त नाराज हुआ। परन्तु कन्या ने हठ किया कि मेरा पति यही रहेगा, तब राजा वीर ने क्रोध करके उन दोनों को देश से निकाल दिया। कन्या की माता ने चोरी से बहुत जवाहरात दे दिये। कन्या ने नदी के किनारे एक सन्तों का आश्रम बनाया और पास ही अपना मकान बनाकर रहने लगी। बहुत सन्त महात्मा वहाँ पर आते थे यह सत्सङ्ग करती थी। प्रेम पूर्वक पति की सेवा भी करती थी रात दिन वेदान्त विचार करते हुए वह दोनों

जीवन्मुक्ति का आनन्द लेते रहे। इतने में शनि के साढ़े सात वर्ष गुजर गये। धर्मात्मा को दुखाने से अब शनि बलहीन हो गया था और पश्चाताप करने लगा। अपने पिता सूर्यनारायण के पास जाकर कहा कि आप ही पूज्य हैं मेरा अपराध क्षमा करें और महाराजा विक्रम से भी क्षमा करा दो। तब शनि अपने गुरु शुक्राचार्य और पिता सूर्यनारायण को साथ लेकर महाराजा विक्रम के चरणों में आ पड़ा और अपने सब अपराधों की क्षमा मांगने लगा महाराजा विक्रम क्षमा न करते थे। अन्त में शुक्राचार्य और सूर्यनारायण ने कहा कि जो भी इस समय आप शनि से कहोगे सब कुछ मान लेगा परन्तु इसे क्षमा अवश्य प्रदान करो तब महाराजा विक्रम ने कहा जो मेरी यह कथा सुने उस पर यदि शनि बैठा हो तो एक वर्ष की जगह एक घड़ी हो जाय। भाव यह कि साढ़े सात वर्ष की जगह साढ़े सात घड़ी हो जाय। तब शुक्राचार्य ने कहा कि मैं इसका समर्थन करता हूँ। परन्तु कथा शुक्रवार को सुनाई जाए। शनि ने यह सब बातें मान ली और कटे हुए हाथ पैर भी पूर्ववत् कर दिए। फिर गुम की हुई सब वस्तुएँ पाऊँड, सोने के बर्तन, निवारी पलंग, हीरे, रत्न, जवाहरात आदिक प्रकट कर दिये फिर सूर्यनारायण ने महाराजा विक्रम पर प्रसन्न होकर अपने नाम को विक्रम

के साथ जोड कर कहा कि आज से तुम्हारा नाम विक्रमादित्य है। इतने में राजा वीर भी मुख में घास और गले में कपडा बाँध कर अपराध की क्षमा माँगने आया तो महाराजा विक्रम ने उसे क्षमा कर दिया और राजा वीर ने भी प्रार्थना की कि मेरा नाम भी आपके नाम से प्रसिद्ध होय। भाष कि आज से आपका नाम वीरविक्रमादित्य होय। सबने स्वीकार कर लिया फिर बडी धूमधाम से महाराजा वीरविक्रमादित्य को उज्जैन में आकर राजसिंहासन पर बैठाया और सारे राज्य में आनन्द-मङ्गल जयजयकार हो गया। जो पुरुष इस कथा को श्रवण करता है उसको शनि वर्ष की जगह घडी हो जाता है। इस कथा को मुलतान आदि शहरों में प्रत्येक शुक्रवार को लोग श्रवण करते हैं। इस प्रकार सत्य बोलने के प्रताप से महाराजा शनि आदि बडे बड क्रूर ग्रहों को भी वशीभूत कर लिया था। इस वास्ते कहा है कि "बोलिए सच धर्म झूठ न बोलिये। इस प्रकार नरक से छूटने के सत्य आदि साधन श्रवण कराए।

कथा न ६—एक समय की बात है इन्द्रादि देवताओं ने गुरु वृहस्पति से कहा कि राक्षसों से कैसे विजय प्राप्त होवे तो दव गुरु बोले कि शुक्राचार्य जी से सजीवनी विद्या लाओ तब तुम्हारी विजय होगी। कच, पिता की ऐसी बात सुन

और आज्ञा लेकर शुक्राचार्य जी के पास पहुँच गया, सेवा आरम्भ करदी जब गौवों को चुगाने गया तब राक्षसों ने काट काट कर नदी में डाल दिया, सन्ध्या होने पर जब नहीं आया तो शुक्राचार्य की पुत्री देवीयानी बोली हे पिता जी! आज कच नहीं आया क्या बात है तो ध्यान से पता किया कि कच को तो नदी में काट २ कर वहा दिया गया, तो पुत्री की प्रार्थना पर जीवित कर दिया, कुछ दिनों बाद अवकाश पाकर पुनः राक्षसों ने कच की शराब बनाई और शुक्राचार्य जी को निमंत्रत करके पिला दी गई, देवयानी बोली हे पिता जी! कच आज फिर नहीं आया, देखा तो पेट में ही है पुत्री के पुनः विनती करने पर संजीवनी विद्या से फिर जीवित किया, परन्तु आप मर गये, और देवयानी ने शीघ्रही जीवित कर दिये, जब देवयानी के पास संजीवनी विद्या आ गई तो कच का रूप देखकर मोहित हो गई और संजीवनी विद्या देने की प्रतिज्ञा की। जब कच नहीं माने तो संजीवनी विद्या दे दी गई परन्तु कच ने कहा कि आप मेरी धर्म की वहिन हैं इसलिये मैं आप के साथ शादी नहीं कर सकता चाहे मेरा शरीर भी मृतक हो जाय अथवा संजीवनी विद्या भी न रहे तो भी मैं अनुचित काम नहीं करूँगा तब देवयानी ने शाप दे दिया कि तेरी संजीवनी विद्या लोप हो जाये जो

कि मेरे से तुमने प्राप्त की है क्योंकि मैं आपकी गुरु भी हूँ और मैंने तुमको संजीवनी विद्या सिखाई है ऐसा कह कर चुप हो गई। कच के सत्य धर्म को देख कर देवताओं ने अपनी वाणी से, लोप हुई संजीवनी विद्या, पुनः प्रदान कर दी और कच ने भी ऐसा सत्य धर्म का काम किया जो कि आज तक कोई न कर सका इसलिये सेवा भाव और अपने धर्म सत्य पर दृढ़ रहना चाहिये जैसे कि कच।

:— ※※ —
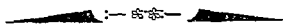
११—❀ ब्रह्म दर्शन ❀

ब्रह्म दर्शन में अहंकार प्रतिबन्धक अर्थात् परदा है जैसे श्रीरामचन्द्र जी के दर्शन में लक्ष्मण जी का दर्शन प्रतिबन्धक था भाव यह है जब श्री रामचन्द्र जी 'पिताजी की आज्ञा पाकर वन को गये और चित्रकूट पहुँचे वहाँ अनेक ऋषिगण रहते थे उन्हों ने श्री रामचन्द्र जी तथा लक्ष्मण जी को सत्कार से अपने पास बिठलाया और अपने से थोड़ी दूर श्री सीता जी को एक वृक्ष के नीचे बैठा दिया उस समय ऋषिअङ्गनाओं को भी पता लगा कि श्री रामचन्द्र जी पिता की आज्ञा पाकर सीता जी को साथ लेकर वन में आये है। परन्तु श्री रामचन्द्र जी को नहीं जानती थीं जब पता लगा कि यहाँ चित्रकूट में

आये हैं तो सब मिलकर दर्शन के लिए आईं और सीताजी के पास बैठ गईं। सामने सम आयु वाले श्याम और गौर दो स्वरूप देखे उनको संशय हुआ कि इन दोनों में श्री रामचन्द्र जी कौन हैं। बहुत दलीलें दौड़ाई परन्तु कुछ निश्चित न कर सकीं हार कर श्री सीता जी को पूछा श्री रामचन्द्र जी कौन हैं? तो श्री सीताजी ने श्री लक्ष्मण के निषेध द्वारा श्री रामचन्द्र जी का ज्ञान करा दिया अर्थात् यह कहा कि वाम भाग में जो गौर मूर्ति बैठे हैं उनका नाम लक्ष्मण है। और यह मेरे देवर हैं। सब ऋषिपत्नीयों ने निश्चय किया कि दक्षिण भाग में जो श्याम मूर्ति बैठे हैं वह ही श्री रामचन्द्र जी हैं। सबने उठकर फूल माला लेकर श्री रामचन्द्र जी को अवतार समझकर पूजन किया। इसी तरह जिज्ञासु ने वेद और शास्त्रों द्वारा श्रवण कर रखा था कि परमात्मा हृदय के अन्दर जो अहं वृत्ति है उसमें आया हुआ है और अपना नाम आत्मा रखवाया है वह आत्मा अजर अमर है।

घट घट वासी सर्व निवासी नेरे ही ते नेरा।

ऐसे परम पिता परमात्मा हृदय देश की अहंवृत्ति में आया हुआ सुना है। जो सर्वत्र पूर्ण है निर्लेप है एवं पलमात्र में सब को नाश करता है। यह सुनकर जिज्ञासु दर्शन करने को गए तो अन्दर दो आत्मा देखे एक साक्षी

आत्मा और एक जीवात्मा इनमें कौन आत्मा ब्रह्म स्वरूप है यह समझ न सका क्योंकि अभेद के वचन भी सुने हैं और भेद के भी वचन सुन रखे हैं।

दृष्टान्त—एक ब्राह्मण काशी जी में विद्या पढ़ कर षट् शास्त्री पण्डित हो गए और देश देशान्तरों में पर्यटन करते हुए और सब विद्वानों की सभा में शास्त्रार्थ करके विजय प्राप्त की। इस तरह दिग्विजयी पंडित हो गये और उनके बहुत शिष्य सेवक बन गए। धन भी बहुत इकट्ठा हो गया मान प्रतिष्ठा बहुत होने लगी परन्तु चित्त शान्त न हुआ क्योंकि चित्त में संशय हो गया था। चित्त शान्ति के लिए एक वृद्ध ब्राह्मण के पास पहुँचे और प्रार्थना की कि मेरे चित्त में शान्ति नहीं चित्त हमेशा दुःखी रहता है। आप कृपया कोई शान्ति का उपाय बतावें। उन्होंने कहा पंडित जी, चित्त शान्ति के लिए वेदान्त शास्त्र का विचार करो फिर चित्त शान्त होगा उसने वेदान्त शास्त्र का विचार किया और ब्रह्म का प्रसङ्ग पढ़ा। पहले केनवल्ली नामक उपनिषद को विचारा उसमें ब्रह्म का प्रसङ्ग है यमराज नचिकेता को कह रहे हैं।

न जायते म्रियते वाविपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूवकश्चित्।
अजोनित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्य माने शरीरे॥

अर्थ—यह ब्रह्म स्वरूप जो आत्मा है वह जन्मता

मरता नहीं चेतन स्वरूप है। किसी कारण से पैदा नहीं हुआ और न किसी कार्य को उत्पन्न करता है। यह आत्मा अज है। उत्पत्ति रहित है नित्य और अविनाशी है। एक रस है, नवीन से नवीन है और शरीर के नाश होने पर भी स्वयं नाश नहीं होता इसलिए बहुत से मनुष्यों को यह संशय रहता है कि देह, इंद्रिय, मन बुद्धि से भिन्न आत्मा है या नहीं और इसमें देवताओं को भी संशय रहता है कि बहुत बार श्रवण करने पर भी मनुष्य इस आत्मा को नहीं जान सकते। क्योंकि आत्मा सूक्ष्म है। यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनोमतम। तदेव ब्रह्मत्वं विद्धिनेदंयदिदमुपासते। यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यन्ति तदेवब्रह्म त्वं विद्धिनेदं यदिदमुपासते। केन उपनिषद्।

अर्थ—इस ब्रह्मरूप आत्मा का मन से संकल्प नहीं किया जाता है और न बुद्धि से निश्चय किया जाता है। क्योंकि मन बुद्धि जड़ हैं। प्रत्युत मन बुद्धि के प्रकाश करने वाला ही ब्रह्म जानना और जिसको मन बुद्धि जानते हैं वे मायावी पदार्थ हैं। ऐसे ही यह ब्रह्मरूप आत्मा नेत्रादि इन्द्रियों का विषय नहीं। जिस करके नेत्रादि इन्द्रियें जानी जाती हैं। उसको तू ब्रह्मरूप निश्चय कर।

श्रीमद्भागवत स्कं० ६ अ० १६-२३

श्लो०—यं न स्पृशन्ति न विदुर्मनो बुद्धिरिन्द्रियासव-।
अन्तर्बहिश्च विततं व्योम वदनन्तोऽस्म्यहम् ॥

अर्थ—नारद जी चित्रकेतु को उपदेश कर रहे हैं कि जिस चैतन्य को यह मन बुद्धि इन्द्रिय गण और प्राण नहीं जान सकते है न छू सकते है और जो चैतन्य ब्रह्माण्ड के अन्दर बाहर पूर्ण है और आकाश की तरह असङ्ग और अनन्त है। हे राजन्! वह अनन्तः मैं हूँ। ऐसे निश्चय करके शोक रहित हो

न शस्त्रं न चक्र न गदा न सिआमं असचरजरूपं रहंत जनमं।
मं० म ५-१८५६

अलख अपार अगम अगोचर ना तिस काल न करमा।
जाति अजाति अजोनी संभउ ना तिस भाउ न भरमा॥
रूप न रेख न रंग किछ त्रिहगुण ते प्रभु भिन्न।
तिसहि बुझाए नानका जिस होवै सु प्रसन्न॥
चक्र चिहन अरु बरन जाति अरु पात नहिन जिह।
रूप रंग अरेरा भेख कोऊ कहि न सकति किह॥
अचल मूरति अनभऊ प्रकाश अमितोज कहिजै।
कोटि इंद्र इंद्राणि साहि साहाण गणिजै। त्रिभवण महीप सुर नर असुर नेत २ बन त्रिण कहत। तव सर्ब नाम कथै कवन, करम नाम बरणत सुमति।
॥ जाप साहिब पाति शाही १० ॥

इस प्रकार वेदान्त शास्त्र को पढ़कर पंडित जी को संशय हुआ कि रूप रेखा चिन्ह चक्र से अलग ब्रह्मरूप आत्मा अन्दर है। यह वेदान्त शास्त्र कहता है। मैं इसको नहीं मानूँगा क्योंकि ऐसे ब्रह्म का प्रत्यक्ष दर्शन नहीं होगा और वेद भगवान् भी कहते हैं कि उसको मन बुद्धि इन्द्रिय नहीं जान सकतीं अगर वह ब्रह्म न जाना जाए तो उस ब्रह्म के मानने से लाभ ही क्या होगा और हमारे न्याय शास्त्र में आत्मा का मानस प्रत्यक्ष लिखा है सुख और दुःख की तरह। इसलिए वेदान्त शास्त्र माननीय नहीं है क्योंकि वेदान्त शास्त्र कहता है कि ब्रह्म तो है परन्तु वह जाति गुण क्रिया सम्बन्ध से रहित है और जाति गुण क्रिया सम्बंध वाले में ही शब्द की प्रवृत्ति होती है। जब ब्रह्म में शब्द की प्रवृत्ति ही नहीं तो वेदान्त शास्त्र ही निष्फल है। किसी को भी बोध जनक न होगा और रूप रंग चिन्ह चक्र वाले में ही नेत्रादि द्वारा प्रत्यक्ष अनुमान आदिक प्रमाणों की प्रवृत्ति होती है। रूप रेखा से भिन्न में प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों की प्रवृत्ति ही नहीं होवेगी और मुख्य प्रमाण दो ही थे शब्द और प्रत्यक्ष इन्होंने ही ब्रह्म का ज्ञान कराना था और ये दोनों जाति गुण क्रिया सम्बन्ध रूप रंग चिन्ह चक्र वाले में ही प्रवृत्त होते हैं। ब्रह्म इन गुणों से रहित है। इसलिए

कोई प्रमाण ब्रह्म में नहीं और प्रमाण शून्य होने से ब्रह्म है ही नहीं। वेदान्त कहता है कि ब्रह्म है, अगर है तो उसका रूप रंग चिन्ह चक्र बतलावें परन्तु बता नहीं सकते। इसलिए वेदान्त शास्त्र झूठा है प्रमाणिक नहीं और जो कहता है कि मन बुद्धि प्राण इन्द्रियों से आत्मा अलग है तो उस कहने वाले के पेट को चाकू से चीर कर देखें और उससे कहें कि बता तेरा आत्मा कहाँ २? अगर अलग वस्तु कोई होती तो अवश्य निकलती परन्तु पेट चीरने से आत्म वस्तु की प्राप्ति नहीं हुई इसलिए आत्मा ब्रह्म नहीं है। ऐसे एक सन्देह पैदा हुआ उसके होने से चित्त बहुत दुःखी हुआ क्योंकि संसार में तीन आदमी सदा दुःखी रहते हैं।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः। गी.अ.४श्लो.४।

भा०—प्रथम अज्ञानी, दूसरा श्रद्धा रहित तीसरा संशय वाला ये तीनों पुरुष दुःखी रहते हैं और परमार्थ से नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। इन तीनों में से संशय आत्मा को न इस लोक का सुख और न परलोक में ही सुख मिलता है। इसलिए वह पंडित फिर उस वृद्ध ब्राह्मण के पास आया और अपना सब दुःख सुनाया फिर वृद्ध ब्राह्मण ने कहा अच्छा अब भक्ति शास्त्र पढ़लो भक्ति शास्त्र पढते पढते एक श्लोक आया।

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परोददातीति कुबुद्धिरेषा ।
अहङ्करोमीति वृथाऽभिमानः स्वकर्म सूत्रे ग्रथितो हि लोकः ।

॥ अध्यात्मरामायण अयो० काण्ड सर्ग ६–६ ॥

सुख दुःख के देने वाला कोई नहीं । जो कहता है कि अमुक ने हमको सुख दिया है अमुक ने दुःख दिया है यह कुमति है अर्थात् मनमति है मैं कर्ता हूँ यह जो अभिमान कर्ता है वह भी मन मति है । इस कर्म रूपी सूत्र से यह जीव बँधा हुआ सुख दुःख को प्राप्त होता है । मुक्त नहीं होता । सो सुख दुःख के देने वाला अभिमान सहित कर्म ही है । ऐसे जान कर किसी को भी दोष लगाना न चाहिये । इस अवस्था में ब्रह्म दर्शन हो जाते हैं ।

ददै दोष न देऊ किसै दोष करमा आपणिआ ।
जो मैं किया सो मैं पाइया दोष न दीजै अवरजना ॥

॥ आसा म १–४३३ ॥

स वा अयमात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमय प्राणमयश्च चक्षुर्मय श्रोत्रमय पृथिवीमय आपोमयो वायुमय आकाश मयस्तेजोमयोऽतेजोमय काममयोऽकाममय क्रोधमयोऽक्रोधमयो धर्ममयोऽधर्ममय सर्वमयस्तद्यदेतदिदम्मयोऽदोमय इति । यथाकारी यथाचारी तथाभवति साधुकारी साधुर्भवति पापकारी पापोभवति । पुण्य पुण्येन कर्मणा भवति पाप पापेन । अथोखल्वाहु काममय एवाय पुरुष इति स यथा

कामोभवति यत्क्रतुभवति तदभिसम्पद्यते ॥ यजुर्वेद की बृहदारण्यकोपनिषद् ।

अर्थ—यह आत्मा है तो परिपूर्ण ब्रह्मस्वरूप परन्तु वासनारूप उपाधि के अधीन होकर अपने ब्रह्म स्वरूप को भूल कर जैसी भावना करता है वैसा ही हो जाता है। पहले पंच कोशों की भावना करता है अर्थात् मैं आनन्द-मय हूँ। विज्ञानमय हूँ। मनोमय हूँ। प्राणमय हूँ। अर्थात् मैं आनन्द स्वरूप हूँ। बुद्धिरूप हूँ, मन हूँ, प्राण हूँ। मैं नेत्र स्वरूप हूँ, काम स्वरूप हूँ, फिर पांच तत्वों में भावना करता हूँ। मैं पृथ्वी रूप हूँ, जलरूप हूँ, तेज रूप हूँ। वायु-रूप हूँ। आकाश रूप हूँ फिर भावना करता है कि मैं कामी हूँ। कभी भावना करता है मैं ब्रह्मचारी हूँ। कभी भावना करता है मै क्रोधी हूँ। कभी क्षमावान हूँ। कभी धर्मी हूँ अधर्मी हूँ। यह हूँ, वह हूँ। ऐसा कर्म करने वाला हूँ। श्रेष्ठ कर्म वाला साधु हो जाता है। पाप करने वाला पापी कहलाता है। मतलब यह है कि पुरुष वासना मय है। जैसी वासना करेगा वैसा ही उसको संकल्प होगा जैसा संकल्प होगा वैसा ही कर्म करेगा। जैसा ही कर्म करेगा वैसा ही फल पावेगा अर्थात् जन्म पावेगा इस प्रकार वासना इसको बन्धन करती है। मुक्त नहीं होने देती। प्र०—"मुक्त कब होगा"

उ०—यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामायेऽस्यहृदिश्रिता ।
अथमर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥

जिस समय सम्पूर्ण कामनायें जो कि उसके हृदय में निवास करती हैं जब वे सब कामनायें छूट जाती हैं उस समय अमर हो जाता है और इस शरीर में ही ब्रह्मभाव को प्राप्त हो जाता है।

अन्त काले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भाव याति नास्त्यत्र संशय ॥

अर्थ—इसलिए हे अर्जुन तू हर समय मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन बुद्धि से युक्त हुआ निसंदेह मेरे ही को प्राप्त होगा। अर्थात् मुक्त होगा। अन्त काल नारायण सिमर एसी चिन्ता महि जे मरै। बदति तिलोचन ते नर मुक्ता पीतम्बर वाके हदे वसै (गूजरी त्रिलोचन ५२६)
अजामिल कउ अन्तकाल मे नारायण सुधि आई।
जागति कउ, जोगी सुर वाछत सो गति छिनमहि पाई।
(राम कली म ९ ९०२)

शङ्का०—नाना प्रकार की योनियों मे जीव कैसे प्राप्त होता है।

उत्तर—मरण काल में जैसी कामना होता है, वैसा ही जन्म होता है।

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पित लोकं नयति। (प्रश्नोपनिषद् अ ३ मं० १)

अर्थ—मरण काल में जिसका जैसा संकल्प होता है। उसके सहित यह प्राण को प्राप्त होता है। प्राण अर्थात् उदान वायु रूप तेज युक्त होकर इस जीवात्मा को यथा संकल्प किये हुए लोक को ले जाता है।

श्लो०—अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्य लोकम्।
(प्रश्नोपनिषद् प्रश्न ३ मन्त्र ७)

इन सब नाड़ियों में से शिरना नाम की एक नाड़ी द्वारा ऊपर की ओर जाने वाला जो उदान वायु है वह इस जीव को पुण्य कर्म की वासना से पुण्य लोक अर्थात् स्वर्गादि लोक को ले जाता है और पाप कर्म वासना वाले जीव को नरकादि लोकों में ले जाता है।

यं यं वापि स्मरन् भावंत्यजत्यन्ते कलेवरम्।
तं तमेवैति कौन्तेयः सदा तद्भाव भावितः॥

हे कुन्ती पुत्र अर्जुन! अन्त काल में जो मनुष्य जिस जिस भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़ता है, उस २ भाव को ही प्राप्त होता है। क्योंकि हर समय जिसको याद करता रहता हो मरण समय भी वही याद आता है।

अन्तकाल जो लक्ष्मी सिमरे ऐसी चिन्ता महि जे मरे सरप जोनि वलि वलि उतरै ।रहाउ। अन्तकाल जो स्त्री सिमरै ऐसी चिन्ता महि जे मरै वेसवा जोनि वलि वलि उतरै। अन्तकाल जो लड़के सिमरै-ऐसी चिन्ता महि जे मरे सूकर जोनि वलि वलि उतरे। अन्तकाल जो मन्दिर सिमरै ऐसी चिन्ता महि जे मरै प्रेत जोनि वलि वलि उतरै। अन्त काल में जो ईश्वर को याद करता है। सो ईश्वर में मिल जाता है। (त्रिलोचन गूजरी ५२६)

कामै स्तै स्तैहृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्य देवताः।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया॥

गी० अ० ७ श्लो० २०

अर्थ—अपने स्वभाव से प्रेरे हुए उन २ भोगों की कामना द्वारा ज्ञान से भ्रष्ट होकर परमेश्वर को छोड कर अन्य देवताओं को भजते हैं। अर्थात् पूजते हैं और उन २ नियमों को धारण करके मरण काल में उस २ देव योनि को पाते है। तन निरंजन जोति सबाई सोहं भेद न कोई जीऊ अपरम्पर पार ब्रह्म परमेसुर नानक गुर मिलिआ सोई जीऊ॥ आतम राम राम है आतम हरि पाईऐ सबदि वीचारा हे।आतम महि रामरमहि आतम चीनसी गुरु वीचारा (१) "प्रज्ञानं ब्रह्म" ऐतरेय ३ अ (२) "अहं ब्रह्मास्मि" यजु० बृह० (३) साम० छान्दो० उप० 'तत्वमसि"

(४) "अयमात्मा ब्रह्म" अथर्व वेद ॥ ब्रह्मो पसारा ब्रहम पसरिआ सभ ब्रह्म दृष्टि आइआ । तू सदा सलामति निरंकार । सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ।

सूही म० ५ ७८२ जपु जी ७

सो प्रभु दूरि नाहीं प्रभु तू है ॥ आ सा म० १–३५४

आतम ब्रह्मचीनि सुख पाइआ ॥ सोरठि म० १–६०७

आतमा परमात्मा एको करै ॥ धनासरी म० १–४६१

उपनिस्रा सत गिआन माहुरे पेईए ज हरि नलिराम जीउ । ब्रहम ब्रहम मिलिआ कोइ न साके भिनकरि बलिराम जीउ ॥

सूही म० ५–७७८

जो दीसै सो तन रूप गुण निधान गोविन्द अनुप ॥

तिलग म ५–७२४

इस प्रकार चारों महा वाक्य जीव-ब्रह्म की एकता अर्थात् अखण्ड अर्थ को कहते हैं। जो पुरुष इसका बारबार अभ्यास करता है उसको १८ सिद्धि प्राप्त हो जाती हैं।

अणिमा महिमाचैव गारमा लघिमा तथा ।
प्राप्ति परा कामनीशत्व वशीत्व चापृाभिध्या ॥

। अहंब्रह्मास्मि ।

१२—❀ साधु सज्जन स्वभावः ❀

प्र. नं. १—सुमुखाः सर्व भूतानां प्रशांताः शंसित व्रताः ।
सेवयासन्मार्गवक्तारः पुण्य श्रवण दर्शनाः ॥१॥

भा०—अब सुजन स्वभाव कहते हैं मूर्खों के अपगुणों को त्याग कर जो गुण सत्पुरुषों करके संग्रह किये जाते हैं सो सज्जनों के स्वाभाविक ही ये गुण होते हैं। महात्मा सब भूतों के अनुकूल होते हैं। शान्त चित्त होते हैं। दृढ़ व्रत होते हैं। सबके सेवा करने योग्य होते हैं। सन्मार्ग शुभ-कर्म के बताने वाले पवित्र श्रवण वा दर्शन होते हैं ॥१॥

अञ्जलि स्थानि पुष्पाणिवासयन्ति कर द्वयम् ।
अहो सुमनसांवृत्तिर्वामदक्षिणयोः समा ॥२॥

भा०—जैसे फूल दाहिने हाथ तथा बायें हाथ में एक सी ही सुगन्ध देता है तैसे महात्मा पुरुष भी शत्रु मित्र भाव से रहित सबको एक भाव से ही वर्तते हैं। धन्य हैं ॥२॥

किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।
नहिस्वदेहे शैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥३॥

भा०—क्या आश्चर्य है यदि महात्मा पुरुष सब पर कृपा करने में तत्पर हैं। क्योंकि महात्माओं का तो शरीर परोपकार के लिए होता है जैसे चन्दन का वृक्ष औरों की

शान्ति के लिए ही होता है, अपनी शान्ती के लिए नहीं होता ॥३॥

धनिनोपिनिरुन्मादाः युवानोपि न चञ्चलाः ।
प्रभवोप्य प्रमत्तास्ते महामहिम शालिनः ॥४॥

भा०—सत्पुरुषों की महान महिमा है। क्योंकि धनी होने पर भी मद न करना युवा अवस्था होने पर भी चञ्चल इन्द्रिय न होना, प्रतापी होकर भी प्रसन्न न होना ॥४॥

सम्पदो महतामेव महतामेव चापदः ।
वर्द्धतेचीयते चन्द्रो न तु तारागणः क्वचित ॥५॥

भा०—सम्पदा भी महत्पुरुषों के पास होती है और विपत्ति भी बड़े पुरुषों पर पड़ती है। जैसे बढ़ता भी चन्द्रमा है घटता भी चन्द्रमा ही है। तारे कभी नहीं बढ़ते न घटते। तारागण का चन्द्रवत उदयास्त बढ़ना-घटना तो होता है किन्तु लोकों की दृष्टिगोचर नहीं होता, तुच्छ होने के कारण बढते घटते मालूम नहीं होते। चन्द्रमा प्रत्यक्ष ही दीखता है ॥५॥

अहोकिमपिचित्राणि चरित्राणिमहात्मनाम् ।
लक्ष्मीं तृणायमन्यन्तेतद्भारेण नमन्त्यपि ॥६॥

भा०—अहो महात्माजनों के क्या ही आश्चर्य और विचित्र चरित्र हैं। लक्ष्मी को तो तृण सम जानते हैं।

ऐश्वर्यवान होकर ज्यूँ ज्यूँ पदार्थ बढ़ता है त्यूँ त्यूँ आप नरम सरल होते जाते हैं ॥६॥

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि ।
लोकोत्तराणाञ्चेतांसि कोहि विज्ञातुमर्हति ॥७॥

भा०—महात्मा के चित्त पत्थर से तो कठोर विपत्ति में होते है। सम्पत्ति में तो फूलों से भी नरम हो जाते हैं। संसारी लोकों से विलक्षण होते हैं। महात्मा के चित्त की वृत्ति कौन जान सकता है।

विकृतिंनैवगच्छन्ति सङ्ग दोषेण साधवः ।
आवेष्टितं महासर्पैश्चन्दनं न विषायते ॥८॥

भा०—महात्मा का चित्त सङ्गदोष से भी नहीं बिगड़ता जैसे चन्दन के पेड़ को अनेक सर्प लिपटे होते हैं तो भी निर्विष है, प्रत्युत्य अपनी सुगन्धि शीतलता उनको दे रहा है ॥८॥

सुजनं व्यजनंमन्ये चारुवंश समुद्भवम् ।
आत्मानंच परिश्राम्य परताप निवारणम् ॥६॥

भा०—साधुजन श्रेष्ठ वंश के पंखे हैं समझ लो क्यों कि पंखा भी अच्छे कोमल (बाँस) वंश से निकलता है और साधु भी श्रेष्ठ वंश में ही पैदा हुए होते हैं और आप तो भ्रमण करते हैं परन्तु सबकी ताप (गर्मी) को दूर करते हैं।

सद्भिस्तु लीलया प्रोक्तं शिला लिखितमक्षरम् ।
असद्भिःशपथैर्जले लिखितमक्षरम् ॥१०॥

भा०—सज्जनों की लीला वचन शिला के अक्षरों की तरह अटल है दुष्टों की वाणी जलरेखा समान देखने मात्र है चाहे सुगंद भी करें तो भी प्रतीति नहीं ।

कथा नं० १—जड़भरत महात्मा की धारणा इस प्रकार सुनी जाती है किसी महात्मा ने कवित्त कहा है कि जड़ भरत ऐसी दशा में रहते थे । आए को हर्ष नहीं गये को शोक नहीं कैसो निर्द्वंद भयो समझाने की बात है । देह देहु नेरे नहीं लक्ष्मी को हेरे नहीं मन को कहूँ फेरे नहीं पाहन सम गात है । लोगन की रीति नहीं काहुँ सो प्रीति नहीं हार नहीं जीत नहीं वरण है न जात है । ऐसो जब ज्ञान होत तबही कुछ ध्यान होत ब्रह्म के समान होत ब्रह्म में समात है । ऐसी दशा में जड़भरत महात्मा रहा करते थे अनेक जिज्ञासु उनके दर्शन करने की इच्छा करते थे मनुष्यों की तो बात ही क्या है । पशु पक्षी भी उनके उपदेश सुन कर संसार समुद्र से पार हो जाते थे । जैसे किसी देश का एक राजा था वह सन्तान हीन था सन्तान के अभाव से वह सदा दुःखी रहता था अनेक उपाय करने पर भी कोई सन्तान न हुई । एक दिन उसने अपने वजीर से पुत्रोत्पत्ति का

उपाय पूछा तब उसने सन्तों की सेवा बतलाई कि सन्तों के निमित्त नदी के किनारे आश्रम बनवाओ और अन्न-वस्त्र से उनकी सेवा करो, कोई महात्मा आशीर्वाद देगा तो तुम्हारे पुत्र अवश्य हो जायगा। राजा ने वैसा ही किया। सन्तों के लिए बड़ा सुन्दर आश्रम बनवाया। साधु महात्मा प्रसन्न हुए राजा भी रानी सहित सेवा करने लगा, महात्मा प्रसन्न हुए और आशीर्वाद दिया कि तुम्हारे दो पुत्र होंगे एक को गृहस्थ में रखना और एक को सन्त बनाना और तुम भी राज्य देकर जीवन मुक्त होकर विचरना। कुछ समय के बाद राजा के घर दो पुत्र पैदा हुए राजा की सन्तों में बड़ी श्रद्धा हुई, सत्संग करने लगा सत्संग करते २ राजा को ज्ञान हुआ और चित्त शान्त होगया। अब अधिक सुख जीवन मुक्ति के आनन्द की राजा की इच्छा हुई और शास्त्र में जीवन मुक्ति के लक्षण पढ़े ऐसे लक्षणों वाले महात्मा की तलाश करने लगा पता चला कि जड़भरत महात्मा ऐसे लक्षणों वाले हैं और खास निशानी जड़भरत की यह है कि उनको किसी बात में भी आग्रह नहीं और हर समय आत्म चिन्तन में रहते हैं और जीवन मुक्ती के जो पाँच प्रकार के फल हैं। उनको प्राप्त हैं—वे पाँच फल ये हैं। (१) ज्ञान रक्षा अर्थात् कितने ही व्यवहार करने पर भी ईश्वर की तरह अपने तत्व से

भूलते नहीं। (२) दूसरा फल तप है अर्थात् तृष्णा वासना से रहित होना है, यह परम तपस्या है उनको किसी वस्तु की वासना नहीं परम विरक्त हैं। (३) विषय वादाभाव है अर्थात् किसी के साथ वादविवाद नहीं करते जो कोई जैसे कहे वैसे ही मान लेते हैं किसी प्रकार का हठ नहीं करते। (४) दुःखाभाव है किसी प्रकार का उनको दुःख प्रतीत नहीं होता। प्रमाण—जोनर दुःखमें दुःख नहीं मानै सुख सनेह और भय नहीं जाकै कञ्चन माटी मानै। सोरठ म० ३–६३३ क्योंकि हर समय आत्म चिन्तन ही करते रहते हैं। (५) सुखाविर्भाव है अर्थात् आनन्द में मस्त रहते हैं। गावीए सुणीए मन रखीए भाउ। दुःख पर हरि सुख घरि लै जाई। इस प्रकार जीवन मुक्ति के पाँचों फल जड़भरत में देखने में आते हैं। राजा को जड़भरत से मिलने की तीव्र जिज्ञासा हुई और जड़भरत की परीक्षा की। परीक्षा के लिए भी तैय्यार हुआ। राजा के बगीचे में एक नीम का वृक्ष था और उस नीम में फल लगा हुआ था जो साधु आता था राजा उसको यह कहता था कि महाराज यह आम लगे हुए हैं, यह बहुत बड़े बड़े सेर सेर तीन तीन पाव के हो जाते हैं और पकने पर बहुत मीठे होते हैं। आप यह आम खाकर जाईयेगा, पहिले न जाइयेगा। यह बात सुनकर महात्मा लोग राजा को

पागल समझते और झगड़ा करते थे और कहते थे कि नीम के फलों को आम बतलाता है जब राजा उनका हठ देखता था तब वह जान लेता था यह जड़भरत नहीं। राजा ने सन्तों के द्वार पर एक तोता रखा हुआ था जो कि आते जाते सन्तों का तथा राजा का बड़े मीठे वचनों से सत्कार करता था और हर एक सन्त के आगे तोता प्रार्थना करता था कि महाराज मैंने सुना है कि राम का नाम बन्धन काट देता है परन्तु मेरा तो यह लोहे का पिंजरा भी राम नाम नहीं काट सकता मैं प्रातःकाल से लेकर रात्रि को सोने पर्यन्त राम का नाम जपता रहता हूँ फिर भी हमारी इस लोहे के पिंजरे से मुक्ति नहीं होती आप कोई युक्ति बताईये जिससे मेरा बन्धन निवृत होवे। इस प्रकार की प्रार्थना तोता हर एक महात्मा के सामने करता था। महात्मा ने भी अनेक युक्तियें तोते को सुनाई परन्तु उसका लोहे का पिञ्जरा दूर न हुआ। एक दिन दैवयोग से महात्मा जड़भरत जी भी वहाँ आये। सुन्दर स्थान देख कर अन्दर आगए। दरवाजे में प्रवेश होते ही तोते ने बड़े मीठे वचनों से सत्कार किया और साधु जान कर उसने प्रश्न किया कि महाराज! राम का नाम तो जन्म मरणादि सब बन्धनों को काट देता है और मैं सिर्फ लोहे का पिञ्जरा ही राम नाम द्वारा छुड़ाना

चाहता हूँ कोई युक्ति बताने की दया करिये। यह सुन जड़भरत जी तोते के पास गये और कहा सबसे उपराम होकर सो जाओ न किसी से बोलो न किसी को बुलाओ और नेत्र मत खोलो। अनेक यत्न करने पर भी न उठना इस युक्ति के प्रयोग से आज ही मुक्त हो जाओगे ऐसा कह कर तोते को अपने हाथ से सुला गए। तोता महात्मा जी के वचनानुसार आँखे बन्द करके सोगया क्योंकि महात्माओं के वचन उत्तम अधिकारी पर जल्दी असर करते हैं। जब राजा आया तोते ने पहले की तरह मीठे वचन बोल कर राजा का सत्कार न किया राजा ने जाकर देखा तो सोया पड़ा है तब राजा तोते को अपने हाथों में लेकर प्रेम करता है उसने महात्मा के वचनानुसार आँखें बिल्कुल बन्द कर रखीं और राजा के बुलाने पर भी न बोला। राजा ने तोते को बीमार समझ कर सुगन्धित जल छिड़का परन्तु तोते ने ऐसा स्वांस रोका मानो मुर्दे के तुल्य हो गया है। राजा ने अनेक उपाय किये तब भी तोता न उठा, फिर राजा ने कहा इसका पिंजरा खोल कर नीचे ले आओ नीचे मंगाकर तोते को उसी नीम की ठंडी छाया में पिंजरे से बाहर निकाल कर मैदान में रख दिया और कहा कि सब अपना अपना काम करो इसको यहीं खुली हवा में पड़ा रहने दो जब तोते ने दृष्टि मारकर

देखा कि कोई मेरे पास नहीं है तब तोता उडकर एक दम वृक्ष के उपर की टहनी में पत्तों के बीच जा बैठा और ऊँचे स्वर से महात्मा जडभरत की स्तुति करने लगा। "जैसा सतगुरु सुणीदा तैसो ही मैं डीठ" हे स्वामिन्! हे जडभरत! जिस तरह आपके गुण मैंने सुने थे वैसे ही देख लिए। "ऐसे गुरु को बलि-बलि जाईये आप मुक्त मोहि तारे" आप तो मुक्त हो मुझ जैसे पक्षियों को भी उपदेश देकर मुक्त कर दिया इसलिए मैं मन वाणी से आपका धन्यवाद करता हूँ राजा तोते के यह वचन सुन कर और बन्धन से मुक्त हुआ देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ और कहने लगा कि ऐसे श्रेष्ठ महात्मा जिन्होंने इस पक्षि को उपदेश देकर बन्धन से मुक्त कर दिया मैं भी उन्हीं की शरण जाकर अपना मनोवाँछित फल पाऊँ। राजा आकर जड़भरत जी के चरणों में गिर पड़ा परीक्षार्थ यह वचन कहा कि महाराज! जिस वृक्ष के नीचे आप बैठे हैं यह आम का पेड़ है इसमें बड़े-मोटे और मीठे फल लगते हैं इसलिए आप इसके फल खाकर जाना जल्दी न करना। जब महात्मा जड़भरत ने देखा की राजा नीम के वृक्ष को आम का कहता है। मन में सोचा अच्छा इसमें हठ करने का क्या मतलब है? यह विचार करके कहने लगे कि हे राजन्! अन्न जल होगा तो खाकर जावेंगे नहीं तो हरि

इच्छा हमारा कोई आग्रह नहीं। राजा ने ऐसी ऐसी अनेक परीक्षाएँ ली परन्तु किसी बात में जड़भरत ने हठ नहीं किया। यह देख कर राजा ने कहा कि यह गुण तो जडभरत के सुने थे शायद जडभरत जी ही होंगे यह विचार कर राजा हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा कि महाराज! आपके शरीर का शुभ नाम जानना चाहता हूँ, कृपा करके कहिये मेरा चित्त प्रसन्न होगा महात्मा कहने लगे इस शरीर को जडभरत कहते हैं। फिर तो राजा को इतना आनन्द हुआ कि राजा आनन्द में फूला नहीं समाता था। राजा सपरिवार अपने हाथों से सेवा किया करता था। जब राजा ने सेवा से महात्मा को प्रसन्न देखा तब जीवन मुक्त होने की युक्ति पूछी तब महात्मा जडभरत जी ने अधिकारी जान कर राजा को कहा कि हे राजन्! गुणातीत हो अर्थात् सुख दुःख और मान अपमान आदि द्वन्द्वों में सम रहो चित्त में हर्ष शोक मत करो। ऐसे अनेक शिक्षा दायक वचन राजा को कह कर हर्ष शोक से रहित जीवन मुक्त कर दिया इसलिए सुख दुःख में सम रहने की चतुर्थ युक्ति गुणातीत होकर रहना है।

प्र. नं. २—नारिकेल समाकारा दृश्यन्तेः पिच सज्जनाः।
अन्ये बदरिका कारा बहिरेव मनोहराः ॥१॥

भा०—महात्मा गूढ़ सार बोले होते हैं नारियल के

फल की समान और दुर्जन तो बेर की समान ऊपर से ही सुन्दर होते हैं भीतर से दोषों से पूर्ण होते हैं ॥१॥

परोपदेश कुशला दृश्यन्ते बहवोजनाः ।
आत्मोपदेश कुशला सहस्त्रेष्वपि दुर्लभाः ॥२॥

भा०—औरों को उपदेश देने में चतुर मनुष्य तो बहुत से हैं और आप धारण करने वाले तो हजारों में भी दुर्लभ हैं ॥२॥

यथाचित्तं तथा वाचः यथा वाचस्तथाक्रिया ।
चित्तेवाचिक्रियायांच साधूनामेक रूपता ॥३॥

भा०—जो चित्त में हो सोई वाणी से कहना वाणी से कहा गया सो ही कर देना, महात्मा के चित्त, वाणी, क्रिया तीनों एक रस होते हैं औरों के नहीं ॥३॥

उपकर्तुं प्रियं वक्तुं कर्तुं स्नेहमकृत्रिमम् ।
सुजनानां स्वभावोऽयं केनेन्दुः शिशिरीकृतः ॥४॥

भा०—महात्माओं की वाणी स्वाभाविक ही उपकार करने वाले प्रेम बढ़ाने वाली होती है । उनका स्वभाव ही ऐसा है जैसे चन्द्रमा स्वभाव से ही शीतल है किसी ने छींटे देकर तो शीतल नहीं किया ॥४॥

निर्गुणेष्वपि सत्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ।
नहिसंहरते ज्योत्स्नांचन्द्रश्चाण्डाल वेश्मनि ॥५॥

भा०—महात्मा सब पर दया ही करते हैं चाहे कोई

श्रेष्ठ हो कोई निर्गुण हो जैसे चन्द्रमा सबके समान ही चॉडाल के घर में भी प्रकाश देता है ॥५॥

उपकारिपूयः साधुः साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषुयः साधुः सः साधुः सद्भिरुच्यते ॥६॥

भा०—जो उपकारी अच्छे पर साधुपना करता है उसके साधुपन का क्या गुण है जो अपकारी नीच को भी साधु बना देते हैं, सत्पुरुष उसी को साधु मानते हैं।

हृदयानि सतामेव कठिनानी तिमे मतिः ।
खलवाग्विशिखैस्तीक्ष्णैर्भिद्यन्ते न मनाग्यतः ॥७॥

भा०—लोग कहते हैं सन्तों के हृदय कोमल होते हैं मैं कहता हूँ बड़े कठिन होते हैं क्योंकि दुष्टों के वाक्य रूपी बाण तिनमें नित्यप्रति हजारों ही लगते हैं फिर भी टूटते नहीं ॥७॥

स्वभावंनैवमुञ्चन्ति सन्तः संसर्गतोऽसताम् ।
नत्यजन्तिरुतं मञ्जु काकसम्पर्कतः पिकाः ॥८॥

भा०—सन्त जन दुष्टों की सङ्गति होने पर भी अपने उत्तम स्वभाव को नहीं छोड़ते जैसे कोकिल कागों में बैठती हुई भी अपनी मीठी वाणी नहीं छोड़ती ॥८॥

स्वगुणान्परदोषांश्च वक्तुं प्रार्थयितुंपरान् ।
याचितारंनिराकर्तुं सतां जिह्वा जड़ायते ॥९॥

भा०—अपने गुण, पराये दोष, किसी से माँगना

मांगन आये को ना कहना इन चार बातों के कहने में सन्तों की जबान (जड) चुप हो जाती है ॥९॥

स्थिरा शैलीगुणातांखलत्रुष्या न बाध्यते ।
रत्नदीपस्यहिशिखा वातैश्चापि न शाम्यते ॥१०॥

भा०—पर्वत के समान दृढ जो सन्तों की बुद्धि वा दुष्टों की बुद्धि में बाधा नहीं होती जैसे मणि की प्रभा वायु से भी नहीं बुझ सकती ॥१०॥

उदये सविता रक्तोरक्तश्चास्तमये तथा ।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता ॥११॥

भा०—सूर्य भी उदय अस्त समय में लाल होता है परन्तु सन्त तो संपदा विपदा में एक रस ही रहते हैं ॥११॥

कथा नं० २ श्लो.—अष्टदश पुराणानां व्यासस्य वचनं द्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीड़नम् ॥

दूसरों को दुःख देना यह आधा पाप है, जैसे एक सेठानी के सन्तान नहीं थी उसने पुत्र के लिए बहुत यत्न किये अन्त में एक महात्मा के पीछे पड़ गई महात्मा ने कहा मैं कुछ नहीं जानता मेरे पीछे मत पड़ो। परन्तु उस माई ने सन्तों को बहुत दुःखी किया न भजन करने देवे न किसी समय बैठने दे तब सन्तों ने क्रोध में आकर कहा कि जा जितने गरीबों के घर जलायेगी उतने ही पुत्र होंगे माई मूर्ख थी उसने भाव न समझा और जाकर गरीबों के

सात घर जला दिये तब माई के सात पुत्र पैदा हुए। उसी जगह एक मौनी महात्मा रहते थे तब वह बोल पड़े कि भगवान के घर भी न्याय नहीं है जब कुछ काल में वह सातों लड़के बड़े हो गये तथा सनका विवाह भी हो गया तब इस ग्राम में ताउन (प्लेग) की बिमारी पड़ गई। उस माई के सातों ही पुत्र मर गये तो माई की सातों ही शनु-षायें विधवा हो गईं। तब उस माई को वह सातों ही चिता के समान जलाती थीं माई को अत्यन्त दुःख हुआ फिर यह मौनी महात्मा बोले भगवान के घर न्याय तो है परन्तु देर से होता है सर्व धर्म में श्रेष्ठ धर्म हरि को नाम जप निर्मल कर्म। सुषमनि २६६।

दृष्टान्त—एक महात्मा वन में तपस्या कर रहे थे उनके पास कोई दूसरे महात्मा पहुँचे आपस में सत्संग हुआ तब दूसरे महात्मा ने कहा कि परमेश्वर की कृपा सब धर्मों में से श्रेष्ठ है। तपस्वी को संशय हुआ तब उसने ईश्वर आराधना किया, तो भगवान ने उसको दर्शन दिया और कहा कि मेरी कृपा ही उत्तम धर्म है। तपस्वी ने कहा कि मैं देखना चाहता हूँ सबसे बड़ा पापी तथा सब से बड़ा पुण्यी कौन है। भगवान ने कहा कल प्रातःकाल ग्राम में जाना जो तुझको सर्व प्रथम मिलेगा वह सबसे अधिक पापी समझना। तपस्वी प्रातःकाल ही ग्राम के

पास गया तो रास्ते में एक सफेद पोश वाला तिलक लगाये हुए मिला जब उसका नाम पूछा तब उसने कहा कि मेरा नाम हरिश्चन्द्र है और कहा कि मैं सबसे अधिक पापी हूँ, परन्तु तपस्वी को सन्देह हुआ कि यह पूर्ण रूपेण भक्त होते हुए भी अपनी नम्रता दिखाता है। जब ग्राम में जाकर पूछा तो सबने कहा कि वह महापापी है, फिर उसके घर जाकर उसकी स्त्री से पूछा कि सच बतला तेरा पति कैसा है? तो उसने कहा कि हे तपस्वी जी! मैं पति की निन्दा नहीं करती परन्तु आप सच पूछते हो तो इस समय वह महापापी है। यदि ईश्वर की कृपा हुई तो धर्मी हो जावेगा। उधर जब हरिश्चन्द्र ने तपस्वी को बतलाया कि मैं महापापी हूँ तब तपस्वी जी ने बहुत फटकारें दीं। और कहा कि धिक्कार है, तेरे को जो ईश्वर स्मरण नहीं करता ईश्वर तेरे पर कृपा करे कि तेरे को शुभ मार्ग में लगायें, तब उसके मन में बड़ा पश्चाताप हुआ और उसी समय किसी महात्मा के पास गया और दण्डवत् प्रणाम् कर उनकी चरण धूली अपने मस्तक पर लगाई तो धूली के महातम से उसके पाप बहुत से निवृत्त हुए।

सन्त की धूर मिटे अघ कोट।
सन्त प्रसादि जन्म मरण से छोट॥

तब महात्मा ने उसके हाथ में गङ्गाजल देकर शपथ

(सौगन्ध) करा कर आगे के लिए सब पाप छुडाये और गङ्गाजल पिलाया तथा स्नान कराया। नाम का उपदेश दिया और कहा अन्न जल छोड एकान्त में जाकर निरन्त ऊँचे स्वर से ईश्वर को पुकारना। अब वह जो महापापी दिन में कई वार अभक्ष वस्तुएँ भक्षण करता था वह आज भगवान को याद कर रहा है। तब भगवान प्रसन्न होकर प्रगट हुए और कहा कि में तेरे पर बहुत प्रसन्न हूँ अब मेरी कृपा से तू धर्मात्मा बन गया क्योंकि मैंने गीता में कहा है कि जो पुरुष महापापी भी हो परन्तु मेरा अनन्य चित्त से स्मरण करे तब उसको साधु समझना होगा। फिर उसने भगवान से प्रार्थना की कि आप मेरे शहर में चलो जिससे सबको दर्शन का लाभ होगा तब भगवान उसके शहर में गए। सबको दर्शन देकर कहा और उसकी स्त्री से भी कहा कि आज से इसको महाधर्मात्मा समझना। रात्रि भर भगवान को अपने घर रख कर रात्रि जागरण किया तथा अनन्य चित्त हो सेवा करता रहा। उधर तपस्वी ने फिर भगवान् को याद कर कहा कि महाराज! सबसे बड़ा पापी तो देख लिया अब धर्मी का भी दर्शन कराओ तब भगवान ने कहा उसी तरह उसी ग्राम में प्रात काल में जाओ जो सबसे प्रथम में मनुष्य मिलेगा वही धर्मात्मा समझना तब तपस्वी प्रात काल ग्राम में

गया तो सामने से वही कल वाला हरिश्चन्द्र मिला तब तपस्वी बड़ा विस्मित हुआ कि कल तो यह महापापी था आज यह महाधर्मी बन गया इसका क्या कारण है ? तब तपस्वी ने उससे पूछा तो हरिश्चन्द्र ने उससे कहा कि महाराज! आज तो मैं आपकी कृपा से महाधर्मी हूँ। भगवान् तो मेरे घर में बैठे हैं चलो आप भी दर्शन करो तब तपस्वी ने ग्राम निवासी लोगों से पूछा तो सबने कहा कि अब तो यह महाधर्मात्मा है, इसकी कृपा से हम सब को भगवान के दर्शन हुए हैं तब तपस्वी ने समझा कि परमेश्वरीय कृपा ही सर्वोत्तम धर्म है।

प्र. नं० ३—विवेकः सह सम्पत्या विनयो विद्यया सह।
प्रभुत्वं प्रश्रयोपेतं चिन्हमेतन्महात्मनाम् ॥१॥

भा०—विभूति हो तो साथ विवेक हो, विद्या के साथ विनय प्रभु होकर निर्गर्व होना ही महात्मा के चिन्ह हैं। ॥१॥

स्वभावं न जहात्येव साधुरापद्‌ गतोपिसन्।
कर्पूरः पावक स्पृष्टः सौरभंलभतेतराम् ॥२॥

भा०—सन्त् जन विपत्ति पर भी स्वभाव नहीं छोड़ते, आग में जलाया गया भी कपूर सुगन्धी नहीं छोड़ता ॥२॥

विचेत्यागः क्षमाशक्तौ दुःखे दैन्य विहीनता।
निर्दम्भता सदाचारे स्वभावोयं महात्मनाम् ॥३॥

भा०—धन होने पर दान करना, शक्ति होने पर भी क्षमा करना दुःख समय भी दीन न होना, साधुपन आचरण में दम्भ न करना ये महात्माओं का स्वभाव ही है।३।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चन्दनंन वने वने ॥४॥

भा०—हरेक पर्वत में माणिक नहीं, हर एक हाथी के शिर में मोती नहीं। हरेक वन में चन्दन नहीं तैसे साधु जन भी प्रत्येक स्थान में नहीं मिलते। ॥४॥

सुलभाः पुरुषाः लोके साधवः साधुकारिषु।
असाधुषुपुनस्साधु दुर्लभः पुरुषो भुवि ॥५॥

भा०—जो साधुओं पर साधुपना करते हैं ऐसे तो जगत में सुलभ हैं जो असाधुओं पर साधुपन करें सो ही दुर्लभ हैं। ॥५॥

शिष्टाचारः प्रियोयेषु दमोयेषु प्रतिष्ठितः।
सुखं दुःखं समंयेषां सत्यं येषां परायणम् ॥६॥

शिष्टाचार जिनको प्रिय है दम साधन जिनमें स्थित है सुख दुःख जिनको सम है सत्य ही जिनका व्रत है।६।

नधनार्थं यशोऽर्थंवा धर्मस्तेषां युधिष्ठिर।
अवश्यं कार्य इत्येव शरीरस्य क्रियास्तथा ॥७॥

भा०—हे युधिष्ठिर उन पुरुषों का धर्म कुछ धन तथा यश के लिए नहीं है। अवश्य करना ही है जैसे भोजनादि और भी शारीरिक यात्रा आवश्यक है तैसे महात्माओं को धर्म करना भी आवश्यक है। ॥७॥

दन्ति दन्त समानं हि निसृतं महतांवचः।
कूर्मग्रीवेवनीचानां पुनरायाति याति च ॥८॥

भा०—सत्पुरुषों के वाक्य हाथीदंत के समान परोपकारक होते हैं तथा जो कुछ मुख से निकला बदलते नहीं एक रस ही होते हैं नीचों के वाक्य कच्छु की गर्दन समान दूसरे को काटने वाला तथा कभी बाहर कभी भीतर अर्थात् भट बदलने वाले होते है। ॥८॥

सज्जनाएव साधूनां प्रथयन्ति गुणोत्करम्।
पुष्पाणां सौरभं प्राय स्तनुते दिशु मारुतः ॥९॥

भा०—सन्तों के गुणों को सत्पुरुष ही विख्यात करते हैं जैसे पुष्पों की सुगन्धि को वायु फैला देती है ॥९॥

कर्तव्य माचरन्कार्यमकर्तव्य मनाचरन्।
तिष्ठति प्रकृताचारे सवै आर्य इति स्मृतः ॥१०॥

भा०—जो करने योग्य कर्म को करते हैं निन्दित कर्म को नहीं करते सदाचार में नित्य स्थित है सो आर्य पुरुष हैं ॥१०॥

उत्तमः क्लेशविक्षोभं क्षमः सोढुं न हीतरः।
मणिरेव महाशाण घर्षणं न तु मृत्कणः ॥११॥

भा०—उत्तम पुरुष ही विपत्ति आदिक क्लेश सहार सकता है नीच नहीं, जैसे साण की रगड़ को मणि सहार सकती है। मट्टी डली नहीं ॥११॥

कथा नं० ३—इसी तरह अपने पिता के साथ जाती हुई कन्या ने एक तपस्वी से भगवान् का पूजन होते हुए देखा तब कन्या ने पूछा यह किसका पूजन करते हैं? तो उसके पिता ने कहा पुत्री! यह भगवान का पूजन कर रहे हैं। तथा उसके पिता ने भगवान् के अनेक गुण भी सुनाये तो कन्या के चित्त में भगवान की पूजा करने का प्रेम उत्पन्न हुआ तब भगवान् जी की मूर्ति तपस्वी से मांगने लगी परन्तु तपस्वी जी देते नहीं थे तब तीन दिन तक कन्या अन्न छोड़े बैठी रही तो रात्रि के समय भगवान् तपस्वी की छाती पर बैठ गये और कहा कि तू मेरे निर्गुण स्वरूप का स्मरण कर और यह प्रतिमा कन्या को दे दो यह मेरे सगुण स्वरूप का ध्यान करेगी। तब तपस्वी ने भगवान् की प्रतिमा कन्या को देदी वह उस मूर्ति को लेकर बहुत प्रसन्न हुई और घर में जाकर भगवान का नानाविधि से पूजन करने लगी तथा अनन्य प्रेम से प्रसन्न हो भगवान् ने प्रत्यक्ष होकर कहा कि वर माँगो। तब कन्या ने

कहा आप प्रतिदिन इसी चतुर्भुज सगुण स्वरूप में मुझे दर्शन दिया करो। तब भगवान् ने कहा चतुर्भुज स्वरूप में तो कभी कभी दर्शन होगा परन्तु साधु के स्वरूप में ग तेरे पास भिक्षा के लिए आकर नारायण हरि शब्द कहा करूँगा और तू मुझको खाली न जाने देना कोई न कोई वस्तु खाने की अवश्य तय्यार रखना म अपनी इच्छानुसार किसी भी समय अवश्य आया करूँगा। परन्तु जिस दिन भिक्षा न मिलेगी फिर मैं न आऊँगा तब कन्या ने खान-पानादि सब सामग्री हर समय तय्यार रखी। भगवान् के आने पर उनको भोजन खिलाना तथा प्रेम भरी तोतली बातें करना तब भगवान में उसका अनन्य प्रेम होगया। इतने में उसके माता पिता ने उसकी मंगनी करदी कन्या तो नहीं चाहती थी परन्तु माता पिता ने जबरदस्ती से करदी। कुछ दिन बाद शादी होने लगी जब वेदी के ऊपर चारों तरफ से फेरे ले रही थी तो भगवान ने परीक्षा करने के लिए उस समय साधुरूप में आकर नारायण हरि शब्द कहा तब कन्या वह कार्य बीच में ही छोड़कर निर्भयता से अपनी जेब में से खाद्य पदार्थ निकाल कर भिक्षा में देने लगी। सबके मना करने पर भी कन्या न मानी। भगवान में पूरण प्रेम रखा। फिर डोला में चढते समय नारायणहरि शब्द कहा तो कन्या ने

शीघ्रता से भिक्षा दी परन्तु उसके ससुराल के सब लोग नाराज होकर निन्दा करने लगे और यह ख्याल किया कि यह व्यभिचारिणी है। इसको घर से निकाल देना चाहिये तब कन्या ने भगवान से प्रार्थना करके अपने पति को चतुर्भुज स्वरूप में भगवान का दर्शन कराया। तब उसके पति का भी भगवान में प्रेम होगया तो जब भगवान साधुस्वरूप में आवें तब सब कार्यों को छोड कर वह भी भिक्षा देने लगा। ऐसी दशा देखकर उसके माता पिता ने स्त्री सहित अपने पुत्र को निकाल दिया। वह दोनों किसी राजा के शहर में चले गए। वहाँ कुछ दिन तो उन्होंने जेवर भूषण वेच कर अपना निर्वाह किया अन्त में धनके न रहने से पति भी दुःखी हुआ। तब उसकी स्त्री ने कहा कि आप चिन्ता न करें मैं आपको राजगुरु बना दूँगी। उस शहर के राजा को कुष्ट रोग था उसने बहुत यत्न किए परन्तु कुष्ट दूर न हुआ अन्त में राजा ने ढौंडी पिटवा दी कि जो मेरा कुष्ट दूर करेगा उसको मैं बहुत धन देकर गुरू धारण करूँगा। तब कन्या ने कहला भेजा कि कुष्ट को हम दूर करेंगे फिर जब भगवान भिक्षा को आये तो उनके चरण धोलिये वो जल राजा को पिलाया तो राजा का एक दम कुष्ट दूर हो गया। तब राजा ने अनन्य प्रेम से उसके पति को शास्त्र विधिवत् गुरू धारण

किया। आप पूजा करके फिर सबसे पूजा कराई तब वह स्त्री और पति ईश्वर में प्रेम करते हुए संसार यात्रा करके भगवान में ही अभेद होगये। इस प्रकार परमेश्वर प्रेम तथा उसका स्मरण करना पूरा पून्य है तथा आठ आना भर पुन्य परोपकार है।

प्र नं० ४—रक्तत्वं कमलानां सत्पुरुषाणां परोपकारित्वम्।
असताञ्च निर्दयत्वं स्वभाव सिद्धंत्रिषुत्रितयम् ।१।

भा०—कमल फूलों में लाली सन्त जनों में परोपकार नीच जनों में निर्दयता, तीनों में तीनों स्वाभाविक ही होते हैं ॥१॥

सम्पदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणेच धीरत्वम्।
तं भुवनत्रयं तिलकं जनयति जननी सुतं विरलम् ।२।

भा०—सम्पदा और विपदा में जिनको हर्ष शोक नहीं, रण में धीरज है ऐसा विरला पुत्र ही माता जनती है क्योंकि वह पुत्र तो तीनों लोक में तिलक रूप है ॥२॥

अप्रिय वचन दरिद्रैः प्रियवचनाढ्यैः स्वदारपरितुष्टैः।
परपरिवाद निवृतैः क्वचित्क्वचिन्मंडिता वसुधा ॥३॥

भा०—जो कठोर वचन नहीं बोलते प्रिय वचन ही बोलते हैं अपनी स्त्री में प्रीति रखते हैं और किसी की निन्दा व बुराई नहीं करते ऐसे जगत का भूषण रूप पुरुष कहीं कहीं ही है। ॥३॥

वदनं प्रसाद सदनं सदयं हृदयं सुधामुचोवाचः ।
करणं परोपकरणं येषां केषां कथं नते वन्द्याः ॥४॥

भा०—जिन का मुख सदा प्रसन्न रहता है चित्त दया सहित है वाणी अमृत जैसी मीठी है। शरीर करके सदा परोपकार करते हैं। वे पुरुष क्यों कर सबके वन्दना करने योग्य नहीं ? सबके ही स्तुति करने योग्य है। ॥४॥

सुजनो न याति वैरं परहितनिरतो विनाश कालेऽपिच्छेदेऽपि।
चन्दनतरुः सुरभयति मुखं कुठारस्य ॥५॥

भा०—श्रेष्ठ पुरुष किसी से वैर नहीं करते उलटा सबका हित ही करते हैं। जैसे चन्दन का पेड़ काटने पर भी काटने वाले को सुगन्धि ही देता है। ॥५॥

मूकः परापवादे परदार निरीक्षणेप्यन्धः।
पङ्गुः पर धन हरणे स जयति लोकत्रये पुरुषः।६।

भा०—पराई निन्दा करने को गूँगे, पराई स्त्री देखने में अन्धे पराया धन चुराने में पिंगले बने रहते हैं सो तीनों लोक में जय पाते हैं। ॥६॥

किम्मधुना किं विधुना किं सुधया किं वसुधयाऽखिलया । यदिहृदयहारि चरितः पुरुषः
पुनरेतिनयनयो स्यनम् ॥७॥

भाषा—जिसके पवित्र चरित्र सबके मन को हरने वाले हैं ऐसे महात्मा जन के पास सदा दर्शन के लिए हों

फिर उनको मधु से क्या महात्मा के उपदेश से शहद मीठा नहीं होता तथा चन्द्रमा से भी अधिक शान्ति दायक वाक्य होते हैं अमृत से भी हितैषी सब भूमि के राज्य सुख से भी अधिक सुख वाले होते हैं इन वाक्यों के होते मीठे से चन्द्र से सुधा से सार्व भौम राज्य से क्या है कुछ नहीं ॥७॥

शरदि न वर्षति गर्जति वर्षति वर्षासु निस्वनो मेघः ।
नीचो वदति न कुरुते न वदति सुजनः करोत्येव ॥८॥

भा०—शरद ऋतु में मेघ गर्जता तो बहुत है वर्षता नहीं और वर्षा ऋतु में गर्जता तो नहीं वर्ष ही जाता है एवं नीच पुरुष कहता तो बहुत कुछ है परन्तु किसी का कार्य कुछ भी सिद्ध नहीं करता सन्त जन कह कर नहीं सुनाते कार्य कर ही देते हैं । ॥८॥

दानाय लक्ष्मी सुकृताय विद्या चिन्ता पर ब्रह्मविनिश्चयाय ।
परोपकाराय वचांसियस्य वंद्यस्त्रिलोकी तिलकः स एव ।९।

भा०—विभूति जिनकी दान के लिए है विद्या जिनकी सत्कर्मों के लिए है विचार जिनका परब्रह्म परमेश्वर के विचार लेने के लिए है वाणी जिनकी परोपकार के लिए है सो पुरुष तीनों लोकों में तिलक रूप है ।९।

नं स्वे सुखे व कुरुते प्रहर्ष नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः ।
दत्वान पश्चात्कुरुतेहि तापंसकथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ।१०।

भा०—जिनको अपने सुख में पराये के दुःख में खुशी नहीं कुछ किसी को दान देकर पछताते नहीं सो पुरुष ही आर्य शील हैं। ॥१०॥

तुङ्गात्मना तुङ्ग तरा समर्था मनोरथां पूरियितुं ननीचाः।
धाराधरा एव धराधराणां निदाघदाहं शमितुं न नद्यः ॥११॥

भा०—बड़े पुरुष ही बड़े पुरुषों के मनोरथ पूर्ण करने को समर्थ होते हैं नीच नहीं जैसे पर्वतों की तपन को बादल ही बुझाते हैं तालाब, कुए इत्यादिक नहीं। ॥११॥

कथा न ४—एक निर्धन वैश्य था परन्तु उसके दिल में हर समय परोपकार करने के ख्याल बने रहते थे। तथा किसी को दुःखी देख कर सहन नहीं कर सकता था। उसका अपना परिवार अधिक था परन्तु स्वयम् दो दिन भूखे रहकर भी दूसरों को भोजन करा दिया करता था। एक दिन नदी के किनारे सन्ध्या करने गया तो वहाँ तीन सन्त तीन दिन के भूखे थे, उनको भूखे देखकर चित्त में ख्याल आया कि मैं अपने को बेच कर भी इनको भोजन अवश्य कराऊँगा। उधर अपने आप भी परिवार सहित दो दिन का भूखा था बच्चे भूख के मारे रो रहे थे और खाने के लिए उससे कुछ मांग-मांग कर तंग कर रहे थे परन्तु सन्तों को वह निमन्त्रण दे आया और घर आकर सब समाचार सुनाया तब उसकी स्त्री ने कहा कि मेरे

पिता का दिया हुआ मेरे पास हाथ का कंगन है, मैंने अब तक छिपा रखा था सो अब इसको बेच कर भोजन सामग्री ले आओ सन्तों को खिला कर शेष बच्चों को भी खिलाओ तब उस वैश्य ने कंगन को बेच कर भोजन सामग्री लाकर भोजन बना कर सन्तों को खिलाया। पश्चात् अपने बालकों को खिलाया परन्तु एक उनका बड़ा लड़का हठ कर बैठा कि मैं भोजन न करूँगा क्योंकि हम भी तीन दिन के भूखे पड़े थे हमारे लिए तो कंगन नहीं बेचा अब सन्तों के लिए कंगन बेच कर सन्तों को भोजन खिलाया है अपने बच्चों से अधिक सन्तों को मान बैठे हैं-हमारे से प्रेम नहीं तब पिता ने कहा कि हे पुत्र! हमको तो सन्त ही प्यारे हैं "धृगंत मात पिता स्नेहं" इत्यादि संस्कृत श्लोकों में लिखा है कि माता पिता स्त्री पुत्रादिक सम्बन्धियों से प्रेम करने वालों को अन्त में धिक्कार मिलती है। और सन्तों से प्रेम करने वालों को धन्यवाद मिलता है। तथा सन्तों की सेवा करने का बड़ा महात्म्य है तथा महान् पुण्य की प्राप्ति होती है। तब पुत्र ने नम्र होकर कहा कि सन्त-सेवा से क्या फल प्राप्त होता है? मैं यह सुनना चाहता हूँ उन तीनों सन्तों में से एक सन्त बोले कि यहाँ से सौ कोस की दूरी पर एक जंगल में अमुक पर्वत की गुहा में नदी के किनारे एक सन्त रहते हैं तुम

वहाँ जाओ वह तुम्हें सन्त सेवा का महात्म्य सुनायेंगे तथा हम तेरे को आशीर्वाद देते हैं कि रास्ते में तुम्हारे को भूख प्यासादि बाधायें नहीं सतायेंगी। तथा पशु, पक्षी, देव, किन्नरादि सबकी भाषा तुम समझोगे। परन्तु रास्ते में जाते समय परोपकार करते हुए जाना होगा। तब ही माता-पिता तथा महात्माओं को नमस्कार करके चल पड़ा। चलते २ रास्ते में रात्रि पड़ी वहाँ एक चाण्डाल अपनी स्त्री सहित रहता था। उस चाण्डाल ने इस लड़के की वन के फलों से सेवा की परन्तु चाण्डाल की स्त्री ने पति के कहने पर भी कुछ सेवा न की तब उस चाण्डाल ने वैश्य के लड़के को कहा कि मैं चाहता हूँ कि इस नीच योनि तथा दरिद्र से मुक्त हो जाऊँ और तुम सन्तों के पास जा रहे हो इस लिए तुम उनसे मेरी भी प्रार्थना करना उसने कहा अच्छा कर दूँगा फिर आगे चलते-चलते रास्ते में एक राजा से मेल हुआ तो राजा ने उसकी बहुत सेवा की तथा वार्ता-लाप करते हुए कहा कि आप सन्तों के पास जा रहे हो तो मेरी भी प्रार्थना करना कि मेरे घर सन्तान होती है और मर जाती है इसलिए मेरे को एक दीर्घायु पुत्र प्रदान करें। तब मैं पुत्र के दुःख से मुक्त होकर सन्तों की अधिक सेवा करूँ फिर आगे गया तो शहर में एक बड़ाभारी सौदागर मिला वह एक सात मंजिल महल बनवा रहा था परन्तु

वह बीच में ही गिर जाता था। पूरा होने नही पाता था इसलिए वह बहुत दुःखी था, उसने भी कहा कि मेरी तरफ से भी सन्तों को प्रार्थना करना कि मेरा महल सात मंजिल का पूरा क्यों नहीं होता? बीच में ही क्यों गिर जाता है। मैं दान पुण्य भी बहुत करता हूँ परन्तु मकान फिर भी सम्पूर्ण नहीं होता, इसमें क्या कारण है? फिर वहां से आगे चला तो एक कूँए पर पीपल का वृक्ष था उसके नीचे ही दोपहर को आराम किया। उस वृक्ष पर एक यक्ष रहता था, उससे मेल हुआ। तब उसने कहा कि सन्तों से यह पूछना कि इस पीपल का एक टहना क्यों सूखा रहता है? फिर आगे गया तो एक नदी आयी उसमें से एक दरियाई घोड़ा निकला तब उस घोड़े ने कहा कि मैं बड़ा हृष्ट-पुष्ट हूँ परन्तु मेरे पर कोई सवारी नहीं करता इसलिए मेरा जन्म निष्फल है। मेरे पर सवारी न करने का कारण सन्तों से पूछना फिर थोड़ा आगे बढ़ा तो एक मगरमच्छ मिला उसने कहा कि मैं शीतल जल में रहता हुआ भी जलता रहता हूँ। इसका कारण तथा उपाय पूछना। फिर नौका द्वारा नदी से पार होकर पर्वत की गुहा में सन्तों के पास पहुँचा तथा सबका समाचार और अपना हाल भी सुनाया। तब सन्तों ने कहा कि पहिले हमारी प्रेम से सेवा करो तब इन सब बातों का उत्तर मिलेगा। तब वह

वैश्य का पुत्र शिष्य रीति अनुसार एक वर्ष पर्यन्त सेवा करता रहा तब सन्तों ने प्रसन्न होकर उसको सब बातों का उत्तर दिया और यह कहा कि तुम सबको हमारे बतलाए हुए उत्तर देते जाना और तुम्हारे प्रश्न का उत्तर राजा के घर जो पुत्र उत्पन्न होगा वही देवेगा। तब वह सन्तों को नमस्कार कर आज्ञा लेकर चल पड़ा तो रास्ते में प्रथम वह मगर मच्छ पड़ा मिला, उसको उत्तर दिया कि तू पूर्व जन्म में ब्राह्मण था जिन गुरुओं से तूने विद्या पढ़ी थी उनकी तुमने सेवा नहीं की और न किसी को आप ही विद्या पढ़ाई, न किसी को सुख पहुँचाया प्रत्युत वादविवाद करके दूसरों को दुःख ही दिया। इसलिए तू अन्य किसी ब्राह्मण के श्राप से मच्छ बना और विद्या न दान करने से जलता रहता है। अब तुम विद्या दान करो तो तुम्हारी जलन दूर होगी। तब उस मच्छ ने कहा कि मेरे को सब विद्यायें ज्ञात हैं और तुम्हीं मुझे योग्य अधिकारी प्रतीत होता है इसलिए मैं तुझे विद्या पढ़ाता हूँ। तब उसको सब विद्याएँ व्याकरण आदि तथा षट् अङ्गों सहित वेद और शास्त्र पढ़ाये और मंत्र यंत्र तथा तान्त्रिक विद्या भी पढ़ादी तब उसकी जलन दूर हुई, जब थोड़ा आगे आया तब दरियाई घोड़ा मिला तब उसके प्रश्न का उत्तर दिया कि तू पहिले एक महात्मा का

सेवक था परन्तु आज्ञा पालन न कर स्वतन्त्र विचरता था इसलिए एक दिन महात्मा ने शाप दिया कि जा तू पशु होजा, तुम्हारा शरीर किसी के काम न आवेगा और न तुझको कोई ग्रहण करेगा और तुमने जो शापन्त पूछा था उसका सन्तों ने यह उत्तर दिया है कि जब तुमको कोई तुम्हारे शाप का ज्ञान करा देगा तब तुम्हें कोई ग्रहण करेगा और तुम्हारा शरीर सफल होगा। तब घोड़े ने कहा आप ही मेरे मालिक हो क्योंकि आपने ही मेरा शाप अन्त किया है इसलिए मुझे अँगीकार करो तब वह वैश्य घोड़े पर चढ़ कर आगे चला फिर उस पीपल वाले कुए पर यक्ष से कहा, कि इस पीपल के नीचे धन की निधि है उसके ऊपर विषधर सर्प बैठा है उसके फुँकारे से इस पीपल का एक टहना सूखा रहता है। जब कोई सर्प को मार कर धनको निकालेगा तब यह वृक्ष हरा होगा। तो उस यक्ष ने कहा कि आपसे बढ़ कर उत्तम अधिकारी और कौन है आपके पास विद्या है मन्त्र-तन्त्र भी याद हैं किसी तरह सर्प को दूर कर धन लो और पीपल को हरा करो। तब उसने मन्त्रों द्वारा सर्प को भगाया और धन को निकाल पीपल को हरा कर घोड़े पर लाद कर आगे चल पड़ा। तो उस सात मंजिल महल वाले सेठ के पास पहुँचा। उसको भी प्रश्न का उत्तर दिया कि

तेरे घर २५ वर्ष की कुँवारी कन्या बैठी है तूने अभी तक उसकी शादी नहीं कराई। तेरे को कोई वर पसन्द नहीं आता जब वह कन्या काम से पीड़ित हो ठंडा श्वास भरती है तब तेरा महल गिर जाता है। तब सेठजी ने विचार किया कि इस लड़के से बढ़ कर धर्मात्मा और योग्य वर कहां मिलेगा? ऐसा विचार कर उस लड़के को कहा कि तुम ही मुझे योग्य वर मिल गये हो इसलिए आप मेरी कन्या की शादी स्वीकार करो क्योंकि आपके पास धन विद्या मय वस्तुएँ हैं तब सेठ ने मुहूर्त दिखा कर कन्या की शादी कराकर बहुत धन दहेज में दे दिया तब वह वहाँ से चलकर राजा के पास पहुँचा तब उस राजा को कहा कि उन सन्तों ने यह उत्तर दिया है कि तुम्हारे घर पुत्र उत्पन्न होगा परन्तु जब वह मेरे से चार बातें करेगा तब दीर्घायु होगा। राजा ने कहा अच्छा आओ मेरे पास ठहरो जब लड़का पैदा हो जाये आप चार बातें करके उसकी दीर्घ आयु करना, तब मैं आपका गुरु के समान पूजन करूँगा। ऐसा कह कर उस वैश्य पुत्र को ठहराया जब लड़का पैदा हुआ तब उसने एकान्त में ले जाकर लड़के से वार्तालाप किया तब उसने कहा कि मैं आपकी सेवा से राजकुमार बना हूँ। मैं वही चाण्डाल हूँ जो आपको मार्ग में मिला था और आप मेरे पास रात्रि भर

रहे थे। अब आपका आशीर्वाद चाहता हूँ, तब उसने आशीर्वाद दिया और कहा कि तू दीर्घजीवि हो। फिर बालक ने कहा कि जो मेरी स्त्री थी उसने आपकी सेवा नहीं की थी इसी से वह मर कर सूकरी बन गई है। आप सन्मुख देख लें और बहुत बच्चे जन कर दुःख पाती है, अतिथि सत्कार न करने का उसको यह फल मिला। फिर उस वैश्य के लड़के ने कहा कि मैंने सन्तों से पूछा था कि सन्तों की सेवा का क्या फल है? तब उन्होंने कहा था कि राजा का लडका उत्तर देवेगा अब आप बतलाओ मैंने जो एक वर्ष सन्तों की सेवा की उसका क्या फल है? इस बात का उत्तर दो। तब बालक ने कहा कि सन्तों ने तुम्हें प्रत्यक्ष दिखा दिया है अब में इसमें क्या कहूँ? मगर मच्छ द्वारा तुमको विद्या मिली, घोड़ा तथा निधि मिली सेठ की कन्या से शादी हुई तथा मेरे पिता ने आप में गुरु भावना की और चित्त शान्त हुआ यह सब सन्त सेवा का प्रत्यक्ष फल है। अदृष्ट फल तो कहा ही नहीं जाता कितना होगा अब विद्या को मनन करो उस द्वारा आत्म-ज्ञान पाकर जन्म मरण से मुक्त हो जाओगे यह बात सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ और वहाँ से चलकर राजा से पूजा करवा कर अपने घर आया और मार्ग से आने जाने का तथा सन्तों का सब हाल सुनाया। तब सब सम्बन्धी बड़े

प्रसन्न हुए और पहले से भी अधिक महात्माओं की सेवा करने लगे और वह विद्या मनन कर आत्मज्ञान पाकर जीवन मुक्ति का आनन्द लेने लगा तब उन तीनों महात्माओं ने कहा जिनको कंगन बेचकर भोजन खिलाया था, वह कहने लगे कि देखा। सन्त सेवा का महातम। सन्तों की सेवा का महात्म्य का कहना ही क्या है? एक कुत्ते की सेवा की हुई भी निष्फल नहीं जाती जैसे बशरा शहर के रहने वाली रायशां लड़की ने मक्के जाते समय एक प्रसूता कुत्ती की रास्ते में सेवा की तब साठ कोस इधर ही मक्का आकर मिला।

प्र. नं. ५—विद्या विवादायधनंमदायशक्तिः परेषांपरिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतज् ज्ञानाय दानायच रक्षणाय ॥१॥

भा०—दुष्टों की विद्या झगड़े के लिए और धन मद के लिए और शक्ति जीवों के पीडा के लिये होती हैं सन्तों के इनसे उलटे होते हैं। विद्या ज्ञान के लिए धन दान के लिए और शक्ति सब जीवों की रक्षा के लिए होती है। विद्या धन शक्ति दोनों में ही है ॥१॥

चातकस्त्रिचतुरान्पयःकणान्याचते जलधरं पिपासया।
सोऽपिपूरयति विश्वमम्भसा हंत हंत महतामुदारता ॥२॥

भा०—पपीहा प्यास के मारे तीन चार बूँद जल की बादल से माँगता है और बादल भी सब विश्वभर को वर्षा

के भर देता है। अहो आश्चर्य है बड़ों की उदारता ॥२॥

वनेपिसिंहा मृगमांसभक्षिणो बुभुक्षितानैव तृणं चरन्ति।
एवं कुलीनाः व्यसनाभिभूताः न नीच कर्माणिसमाचरंति।३।

भा०—वन में रहने वाला सिंह मांस और मृग आदि ही खाता है चाहे भूखा मर ही जावे परन्तु घास नहीं खाता इसी प्रकार उत्तम कुल के पुरुषों पर चाहे कितनी विपदा पड़ जावे परन्तु नीच कर्म नहीं करते ॥३॥

शुद्ध स एव कुलजश्च स एव धीरः।
श्लाघ्यो विपत्स्वपि न मुञ्चति यः स्वभावम् ॥
तप्तंयथा दिन करस्य मरीचि जालै।
र्देहंत्यजेदपिहिमः ननु शीतलत्वम् ॥४॥

भा०—सोई पुरुष शुद्ध है सोही उत्तम कुल का है सोही धैर्यवान है सोही सराहने के योग्य है जो पुरुष विपदा में भी अपने धर्मत्व स्वभाव को नहीं छोड़ते जैसे बर्फ सूर्य की धूप से पिगलती जाती है परन्तु अपनी शीतलता को नहीं छोड़ती ॥४॥

कान्ता कटाक्ष विशिखा न लुनन्ति, यस्य।
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ॥
कर्षन्ति भूरि विषयाश्च न लोभ पाशैः।
लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः ॥५॥

भा० स्त्री के नेत्र बाण जिस चित्त को नहीं डुलाते

क्रोधाग्नि दाह नहीं करती अनेक विषय रूप लोभ फांसी से नहीं खैंचा जाता सो धीर चित्त पुरुष तीन लोक को जय कर लेता है ।

आक्रोशितोपि सुजनो न वदत्यवाच्यम् ।
निस्पीडितो मधुरमुद्वमतीक्षु दण्डः ॥
नीचो जनो गुणशतैरपि सेव्यमानो ।
हास्येहि तद्वदतिपत्कलहेप्यवाच्यम् ॥५॥

भा०—दुर्वचन कहने पर भी श्रेष्ठ पुरुष बुरा वाक्य नहीं कहता जैसे पीड़ने से भी ईख का गन्ना रस ही देता है नीच पुरुष को चाहे सैंकड़े गुणों से सेवन करो परन्तु वह हँसी में भी वह वाक्य कहेगा जो लड़ाई में भी न कहा जावे ॥५॥

केनाञ्चितानि नयनानि मृगाङ्गनानाम् ।
को वा करोति रुचिरांगरुहान्मयूरान् ॥
कश्चोत्पलेषु दलसंनिचयं करोति ।
को वा करोति विनयं कुलजेषु पुंसु ॥६॥

भा०—हरिणी के नेत्रों में अंजन किसने लगाया है ? मोर के पंखों पर चित्रकारी कौन करता है ? कमल के दलों को सञ्चय कौन करता है ? ऐसे ही कुलीन पुरुषों को शुभ आचरण कौन सिखाता है ? अर्थात् जैसे मृगी को नेत्र, मोर के कमल के पुष्प स्वतः स्वभाव से ही सुन्दर

है जैसे कुलीन पुरुषों में भी बिना उपदेश के विनय होती है किसी के सिखाने कहने से नहीं ॥६॥

घृष्टं घृष्टं पुनरपिपुनश्चन्दनश्चारुगन्धम् ।
छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादुचैवेक्षु काण्डम् ॥
दग्धं दग्धं पुनरपिपुनः काञ्चनं कान्तवर्णम् ।
न प्राणान्ते प्रकृति विकृतिर्जायते चोत्तमानाम् ॥७॥

भा०—जैसे चन्दन बारम्बार घसाने से भी सुगन्धि को ही देता है ईख का गडा बारम्बार पीड़न छेदन से भी स्वादु रस ही देता है और स्वर्ण बारम्बार दाह करने से भी सुन्दर वर्ण नहीं त्यागता तैसे उत्तम पुरुष भी स्वभाव विकृत नहीं करते, विपत्ति चाहे प्राणान्त तक हो जावे ॥७॥

वाञ्छा सज्जन संगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता ।
विद्यायां व्यसनं स्वयोषितिरतिर्लोकापवादाद्भयम् ॥
भक्ति शूलिनि शक्तिरात्म दमने संसर्ग मुक्तिः खले।
ह्येते येषु वसन्ति निर्मल गुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ॥८॥

भा०—सत्संग में जिनकी रुचि है पराये गुणों में जिनकी प्रीति है, गुरुओं में जिनकी नम्रता है विद्या में जिनका अभ्यास है अपनी स्त्री में जिनकी प्रीती है जिस कर्म की लोक निन्दा करें उस कर्म से जो भय करते हैं परमेश्वर में जिनकी भक्ति है अपने मन इन्द्रियों के रोकने की शक्ति जिन में है दुष्ट सङ्ग करने से रहित जो हैं ये सब

निर्मल गुण जिन पुरुषों में हैं तिन पुरुषों को नमस्कार है ॥८॥

गर्वेनोद्वहते न निन्दतिपरान् नोभाषते निष्ठुरम् ।
प्रोक्तं केनचिदप्रियश्च सहते क्रोधश्च नालम्बते॥
श्रुत्वा वाक्यमलक्षणं परकृतं संतिष्ठते मूकवत् ।
दोषांछादयते स्वयं न कुरुते ह्येतत्सतां लक्षणम् ॥९॥

भा०—जो गर्व नहीं करते, किसी की निन्दा नहीं करते किसी को कठोर वाणी नहीं बोलते दूसरे के कहे कठोर वाक्य को सहार लेते हैं । क्रोध नहीं करते किसी के कहे हुए दुर्वचन को सुनकर गूंगे हो जाते हैं औरों के दूषण ढक लेते हैं आप किसी से कोई दोष नहीं करते ये सब सत्पुरुषों के लक्षण हैं ॥९॥

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधन हरणेसंयमः सत्य वाक्यम् ।
काले शक्तयाप्रदानंयुवति जन कथामूक भावः परेषाम् ॥
तृष्णास्रोतोविभङ्गो गुरुषुचविनयः सर्वभूतानुकम्पा ।
सामान्या सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेषपन्थाः ।१०।

भा०—जो जीव हिन्सा नहीं करते, किसी का धन नहीं हरते, सत्य वाणी बोलते हैं, समयानुसार यथा शक्ति दान भी देते हैं, परस्त्री से विषयों की बात नहीं करते, चुप रहते हैं तृष्णा का प्रवाह जिन्होंने रोक लिया है । गुरुजनों में सदा नम्र चित्त रहते हैं सब जीवों पर दया

करते हैं। सर्व शास्त्रों में जो सार है, उसको ग्रहण करते हैं पक्षपात से जो रहित हैं। ये ही सत्पुरुष महात्माजनों का रास्ता है ॥१०॥

कथा नं. ५—दो.—सिर की शोभा दूर कर, चीनों आतमराम।
साठ कोस मक्का मिला, देख दगा के काम ॥
तथा—कसे बा सगे नेक वा गुम न करद।
कुजा कुन शबद बा नेक मरद ॥

अर्थ—कुत्ते की सेवा की हुई भी परमेश्वर गुम नहीं करता फिर महात्मा जनों की सेवा की हुई कैसे गुम कर सकता है? तथा श्री ब्रह्मा जी ने नारद को परोपकार का उपदेश किया है। एक समय नारद जी प्रसन्न होकर ब्रह्माजी के पास गये तब उन्होंने कहा कि आपने कौनसा महान पुण्य किया है, जिससे आपका प्रफुल्लित वदन हो रहा है। तब नारद जी ने उत्तर दिया कि एक सौदागर मिला उसने मुझे नमस्कार की तब मैंने कहा कि सभी नमस्कार ही करता है अथवा प्रेम भी है। तब उस सौदागर ने कहा कि मैं प्रेम से नमस्कार करता हूँ जो आप आज्ञा करो करने को तैयार हूँ। तब मैंने कहा कि जितना तुम्हारे पास धन है सब गरीबों को लुटादो तब उसने मेरी आज्ञानुसार सब धन गरीबों को लुटा दिया। इसलिए मैं प्रसन्न हूँ कि ऐसा आज्ञाकारी सेवक मिलना बड़ा कठिन

है। तब ब्रह्माजी ने कहा कि केवल एक भक्त के मिलने से इतनी प्रसन्नता न चाहिये किन्तु कोई परोपकारी मिले तो इतनी प्रसन्नता करने योग्य है। तब नारदजी ने कहा कि क्या परोपकार का इतना महात्म्य है तो मेरे को भी बताओ मैं कौनसा उपकार करूँ तब ब्रह्माजी ने कहा कि परस्पर दोनों के झगड़े को मिटाकर मिला देने जैसा कोई और पुण्य नहीं तू ऐसा परोपकार करके फिर मेरे पास प्रसन्न वदन होकर आना। तब नारद जी ने पूछा कि किनका परस्पर भेद है? मैं उनके पास जाकर उनका मेल कराऊँ। तब ब्रह्माजी ने कहा कि आजकल मानसरोवर में हंसो का परस्पर विरोध है उनका तुम आपस में मेल कराओ। तब नारद जी अपने पिता की आज्ञा मान कर मानसरोवर पर पहुँचे। वहाँ पर क्या देखा कि एक भी हंस दिखाई नहीं आता तब कहने लगे कि यहाँ मानसरोवर होता था वह कहाँ है? दिखाई नहीं आता तब मानसरोवर ने जाना कि नारद मुनि आये हैं। तब दिव्य स्वरूप धारण कर नारद जी के पास आया और कहा कि मैं ही मानसरोवर हूँ आपने मुझे पहचाना नहीं! तब नारद जी ने कहा हंस कहाँ है? मानसरोवर वह है जिस में हंस रहते हैं तो मानसरोवर ने कहा कि हमारा आपस में विरोध हो गया है इसलिए हंस नाराज होकर समुद्र और तालाबों पर चले

गये हैं। तब नारद जी ने मानसरोवर को कहा कि तू मूर्ख है जिनके रहने से तुम्हारा नाम मानसरोवर पड़ा है तथा जिनके रहने से तुम्हारी शोभा है उनसे तुमने विरोध कर लिया अब तुमको मानसरोवर कौन कहेगा ? अब तुम्हारी बिना हंसों के क्या शोभा है ? तब मानसरोवर ने हाथ जोड़ कर कहा कि आप उन्हें यहाँ ले आओ मैं अपना अपराध क्षमा कराऊँगा। फिर नारद जी हंसों के पास गये देखा तो छोटे २ तालाबों पर बैठे मिट्टी कंकर खा रहे हैं। पंख धूली से लग कर मैले हो गये हैं। नारद जी ने कहा ये कौन हैं ? बगुले हैं या हंस हैं अगर हंस होते तो मानसरोवर पर होते यहाँ हंसों का क्या काम है ? परन्तु सूरत तो हंसों जैसी है निवास स्थान देख कर बगुले मालुम होते हैं। तब हंसों ने आकर नारद जी को नमस्कार की और कहा महाराज! हम हंस ही हैं परन्तु मानसरोवर से विरोध होगया है इसलिए उसको छोड़ कर यहाँ रहते हैं। तब नारद जी ने कहा कि तुम बड़े मूर्ख हो क्योंकि जिसका खाते पीते हो उसका ही विरोध करते हो तुम बड़े कृतघ्न हो यह काम तुम्हारे लिए उचित नहीं और न तुम्हारी शोभा न यश है। तब हंसों ने कहा कि महाराज जो आज्ञा करो मानने को तैयार हैं तब नारदजी ने दोनों को इकट्ठे कर उनका परस्पर वैमनस्य मिटा कर

मेल करा दिया। तब वे परस्पर मिलकर, प्रसन्न हुए तथा नारद जी का उपकार मानकर धन्यवाद दिया। फिर नारद जी ब्रह्मा के पास आये तो ब्रह्माजी ने कहा कि अब तुम्हारी प्रसन्नता सफल है इसलिए परोपकार करना आठ आना भर पुण्य है। शेष जितने भी यज्ञ दानादि पुण्य हैं सब आठ आने के अन्तर्गत हैं इस प्रकार दो पुण्य दो ही पाप हैं। इनका ज्ञान विद्वानों द्वारा ही होता है। इसलिए गुरुजी लिखते हैं:—

सती पहरी मत भला वहीए पड़िआं पास।
ओथे पाप पुन्य विचारिये कूड़ै घटै रास॥

विद्वानों के बिना पुण्य पाप का निश्चय न होकर भ्रम हो जाता है। जैसे गुरू जी लिखते हैं।

पाप पुण्य की सार न जाने। दूजे लागे भरम भुलाने॥

पुरुष अपनी बुद्धि अनुसार शब्दों के अनेक अर्थ करते हैं। परन्तु शब्द का भाव निश्चय नहीं कर सकते जैसे एक ब्राह्मण ने राजसभा में आकर दोहा पढ़ा तो सभा में बैठे हुए पुरुषों ने अपनी बुद्धि अनुसार अलग-अलग अर्थ किए वह दोहा यह है।

दो.—पग बिन गमना अति करे, मुख स्याही तन श्वेत।
जो कभी भी माँगे नहीं, सो माँगे कर हेत॥

राजा ने प्रथम मन्त्री से अर्थ पूछा तब मन्त्री ने

उत्तर दिया कि "पत्रिका" है क्योंकि कागज सफेद है अक्षर काले हैं। पाँव के बिना जल्दी जल्दी दौड़ती है। जो कभी भी कुछ नहीं माँगता वह भी पत्रिका माँगता है कि आप पत्र अवश्य भेजना। फिर राजा ने मन्त्री के पुत्र से पूछा तो उसने "चौपड़" कहा क्योंकि वह भी सफेद होते हैं उसमें अङ्क काले होते हैं बिना पॉव के चलते हैं क्योंकि पौ बारह इत्यादि शब्द कह कर आगे चलाते हैं। जो राजा लोग कुछ भी नहीं मांगते चौपड़ रूपी जुआ वह भी माँगते हैं। फिर राजा ने अपने राजकुमार से पूछा उसने कहा "नेत्र" इनके आस-पास का हिस्सा सफेद होता है बीच में काले होते हैं। बिना पॉव के दूर चले जाते हैं और जो कुछ नहीं मांगता तो देखना वह भी चाहता है। फिर राजा ने कहा कि मेघ हैं क्योंकि वह भी सफेद होते हैं और वर्षने वाले काले होते हैं जो कोई पुरुष और कुछ नहीं चाहते वर्षा वे भी चाहते हैं। और सन्तों ने कहा है कि "मन" है क्योंकि सत्व गुण का कार्य है, इसलिए सफेद है जन्म जन्म की पाप कर्म रूपी स्याही लगी हुई है इसलिए काला है और बिना पाँवों के दूर देशों में निकल जाता है और जो ब्रह्मवेत्ता कुछ भी नहीं चाहते वह भी जिज्ञासु से कहते हैं कि "मन" मेरे को देदे। इस प्रकार बिना विद्वान गुरु से वेदों के मन

माने अर्थ कर भ्रम में पड़ जाते है। क्योंकि पहले वक्ता में चार दोष होते हैं। १–विप्रलिप्सा अर्थात् ठगने की इच्छा। २–भ्रम–अर्थात् जो बात शिष्य को कहनी हो उसमें अपने आपको सन्देह होना। ३–प्रमाद–जानबूझ कर आलस्य करना। ४–कर्णपटवता अर्थात् साधन में चतुर न होना। ये चार दोष गुरु में हैं और चार ही दोष शिष्य में होते है। १–अश्रद्धा। २–बुद्धि की मन्दता। ३–विषयाशक्ति। ४–दुराग्रह यानि कुतर्क और हठ। इन चार दोषों से रहित गुरु और इन चार दोषों से रहित शिष्य होवे और फिर यथार्थ वाक्य सुने जावें तब शब्द बोध होता है। परन्तु शब्द बोध में तीव्र जिज्ञासा भी कारण है, जिज्ञासा रहित को कितने ही शब्द सुनाये जावें तब भी वह शब्द बोध को पैदा करने वाला नहीं होता। इसलिये इत्यादि साधु सज्जनों के गुण कथन किये गये हैं।
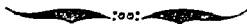
१३—❀ मूर्ख निन्दा ❀

प्र. नं. १–वरं पर्वत दुर्गेषु भ्रान्तं वन चरैः सह।
न मूर्ख जन संसर्गः सुरेन्द्र भवनेष्वपि॥१॥

अर्थ—जहाँ पर वन पर्वत हैं ऐसे स्थानों में तो रहना

अच्छा है, परन्तु मूर्ख पुरुष के साथ स्वर्ग में भी रहना ठीक नहीं ॥१॥

मूर्खस्य पञ्चचिन्हानि गर्वो दुर्वचनं मुखे।
हठी चैव विषादी च सदुक्तं नैव मन्यते ॥२॥

अर्थ—मूर्ख के ये पांच चिन्ह हैं, गर्व, दुर्वचन बोलना, हठ करना, शुभ काम करने से दुःख मानना, सत्पुरुषों का कथन सदा ही न मानना ॥२॥

मूर्खो हि जल्पतां पुंसांश्रुत्वा वाचः शुभाशुभाः।
अशुभं वाक्यमादत्ते पुरीषमिव सूकरः ॥३॥

अर्थ—मूर्ख जब पुरुषों के वाक्य सुनता है तब अशुभ को तो झट धारण कर लेता है, शुभ को नहीं जैसे सूकर, श्वान विष्टा को तो ग्रहण कर लेते हैं पुष्प चाहे पास ही पड़े हों उनको देखते ही नहीं ॥३॥

मूर्खो मूर्खमपि दृष्ट्वा चन्दनादपि शीतलः।
यदि पश्यति विद्वांसं मन्यते पितृघातकम् ॥४॥

अर्थ—मूर्ख को देख कर मूर्ख चन्दन से भी शीतल हो जाता है, जब किसी विद्वान को देखता है तो ये समझता है कि मेरे पिता के मारने वाला मेरा शत्रु है।४।

कथा नं० १—एक बाग में चार आदमी इधर उधर घूम कर आपस में हास विलास करते हुए जा रहे थे। तब उन्होंने दूर से एक वृद्ध को देखा जब वह पास में आया

तो उस वृद्ध को कांटा लगा उसने नीचा होकर कांटा निकाला तो इन चारों ने समझा कि उसने हमको नमस्कार किया है। आपस में झगड़ने लगे एक ने कहा मेरे को नमस्कार की है दूसरे ने कहा मेरे को, तीसरे ने कहा मेरे को चौथा बोला मेरे को, परन्तु निश्चय न कर सके कि किसको नमस्कार की है तब चारों वृद्ध से पूछने लगे कि तूने किसको नमस्कार की है। वृद्ध ने विचार किया मैंने तो कांटा निकाला था और इन्होंने नमस्कार समझली। इसलिए ये मूर्ख हैं ऐसा विचार कर कहने लगा कि जो तुम चारों में से बड़ा मूर्ख है उसको नमस्कार की है। तब वे नमस्कार के लालच में आकर सब कहने लगे कि मैं बड़ा मूर्ख हूँ, मैं बड़ा मूर्ख हूँ और आपस में विवाद करने लगे तब वृद्ध ने कहा कि तुम सब अपनी अपनी मूर्खता सुनाओ।

प्र. नं २—उपदेशोहि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विपवर्धनम् ॥१॥

अर्थ—मूर्ख को उपदेश देना भी क्रोध का हेतु है शान्ति का नहीं है। जैसे सर्प को दूध पिलाने से उसके विप को ही बढ़ाता है ॥१॥

वरं सरावहस्तस्य चाण्डालागार वीथिपु।
भिक्षार्थमटनं राम न मौर्ख्यं हतजीवितम् ॥२॥

अर्थ०—वशिष्ठ मुनि बोले हे राम! ठीकरा हाथ में लेके चाण्डालों के घरों से भिक्षा माँग लेनीं तो श्रेष्ठ है परन्तु वृथा ही हैं। जीवन जिसका ऐसे मूर्ख की संगति न होय ॥२॥

अत्याचारो ह्यनाचारोऽत्यन्त निन्दातिसंस्तुतिः।
अति शौचमशौचश्चपड्विधंमूर्खलक्षणम् ॥३॥

अर्थ—अति आचार तथा अनाचार अति निन्दा या अति स्तुति अति शुद्धियाँ या अति अशुद्धियाँ करना ये ६ लक्षण मूर्ख के हैं ॥३॥

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः।
अर्थांश्चाऽकर्मणा प्रेप्सुः मूढ़ इत्युच्यते बुधैः ॥४॥

अर्थ०—वेद शास्त्र तो पढ़े नहीं वैसे गपौड़े मारने दरिद्री होकर उदारता का उत्साह रखना, काम कोई न करना बिना उपाय के धन की बहुत इच्छा करना, ये मूर्ख के लक्षण हैं ॥४॥

अनाहूतः प्रविसति ह्यपृष्टोबहुभाषते।
अविश्वसितेविश्वसिति मूढ़ चेताः नराधमः ॥५॥

अर्थ०—बिना बुलाये हुए आपही आकर काम में सलाह देने लग जाना बिना पूछे से बोलना जिस पर विश्वास न करना हो उस पर विश्वास कर लेना ये भी मूर्ख के लक्षण हैं ॥५॥

कथा न० २—उन में से एक मूर्ख था, दूसरा मूर्ख स्वामी था तीसरा मूर्ख नेता था और चौथा मूर्खों का भी मूर्ख था इन चारों की कहानिया ये हैं। उनमें से एक ने कहा कि ह बूढ़े मेरे साले की शादी थी मुझे भी बुलाया मैं रास्ते में आ रहा था तो एक सन्त की कुटिया आई वह सन्त एक समय भोजन किया करता था और विरक्त था मैं सायकाल उनकी कुटिया में गया वह पहिले भोजन कर चुका था, कोई चीज उनके पास खाने की नहीं थी, मैं भूख से व्याकुल था और सन्त ने मेरे सुन्दर कपडे देखकर समझा कि कोई भक्त है इस लिए मेरे को कथा सुनानी शुरु करदी। मेरे को भूख ने बहुत व्याकुल किया रात्रि का वक्त था म ग्राम में मागने गया दैवयोग से मैं अपने श्वसुराल में पहुच गया तो मेरी साली मिठाई की सुन्दर मिठाई भोजन लेकर आई साथ ही लालटेन भी ले आई और कहा कि अरे मगने ले भोजन। मैंने उसको पहिचान लिया और पीछे हटा जैसे मैं पीछे को हटता जाऊँ वैसे ही वह मेरे पीछे को चली आई। आखिर मैं कुए में गिर पडा तब लडकी ने शोर किया कि फकीर कुए में गिर गया तब जो लोग शादी पर आये थे उन्होंने मुझे बाहर निकाला और मेरे को पहिचान लिया तो मुझे ऐसी लज्जा आई कि न तो मैं अब तक घर गया हूँ और

न ससुराल ही गया हूँ इसलिए मैं ही बड़ा मूर्ख हूँ।

प्र. न. ३–अमित्र कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म आरभते दुष्टं तमाहुर्मूढ चेतसम् ॥१॥

अर्थ—अमित्र दुष्ट को तो मित्र बना लेना, मित्र जो सत्पुरुष है उनसे विरोध करना या मारना, दुष्ट कर्म का आरम्भ करना ये मूर्ख के लक्षण हैं ॥१॥

मदोपशमनं शास्त्रं, खलानां कुरुते मदम्।
चक्षुः प्रकाशकं तेज उल्लूकाणामिवांधताम् ॥२॥

अर्थ—सत्पुरुषों के तो शास्त्र पढ कर मदमान दूर होते हैं और दुष्टों को मदमान हो जाते हैं। जैसे सूर्य के उदय हो जाने से सबको प्रकाश और उल्लू अन्धा हो जाता है ॥२॥

शोभतेविदुषा मद्ये नैव निर्गुणमानसः।
अन्तरे तमसा दीपः शोभते नार्कतेजसाम् ॥३॥

अर्थ—जैसे दीप अँधेरे में कुछ प्रकाश करता है सूर्य के सामने नहीं ऐसे ही निर्गुण पुरुष भी मूर्खों में ही शोभा पाता है। गुणवानों में नहीं ॥३॥

वेदविद्याविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन तु मूर्खाणां निन्द्रया कलहेन वा ॥४॥

अर्थ—बुद्धिमानों के दिन तो शास्त्रों के पढ़ते पढ़ाते बीत जाते हैं मूर्खों के व्यसनों में, कलह में, नींद में, सब उमर बीत जाती है ॥४॥

न व्याधिर्न विषनाम तथा नाधिश्च भूतले ।
खेदाय स्वशरीरस्थं मौर्ख्यमेकं यथा नृणाम् ॥५॥

अर्थ—इस संसार में ऐसा दुःख को कारण ना तो कोई रोग था ना कोई विष ना कोई विपत्ति आदि मानसिक रोग चिन्तादि दुःखदायक हैं जैसे मूर्ख जन दुःखदायक हैं ॥५॥

कथा नं० ३—तब दूसरे मूर्ख ने कहा कि सुनो मैं इससे भी बड़ा मूर्ख हूँ। एक दिन मैं भी अपने श्वसुराल गया रात्रि को वहाँ पहुँचा तो हमारे सम्बन्धी रोटी खा रहे थे। मेरे को भी रोटी खाने को कहा तो मेरे मुख से ना निकल गयी। कि मैं खाकर चला हूं अभी भूख नहीं और थी मेरे को भूख, उन्होंने बहुत कहा परन्तु मैंने किसी की नहीं मानी जब सम्बन्धी सो गए तो मेरे को भूख के मारे निंद्रा न आई जब आधी रात हो गई तो मैं उठ कर मिठाई आदि खाने की सामग्री ढूंढने लगा तो कई दिन का सूखा हुआ एक लड्डू मिला, हाथ लगने से बर्तनों का शब्द हुआ तो मेरी सास जाग उठी और चोर-चोर करके पुकारा, दीपक जलाया तो मेरे को पहिचान लिया मेरे मुँह में लड्डू था सूखा होने की वजह से फूटा नहीं था तो मैं हूँ हूँ इस प्रकार करके बोलूँ तो इन्होंने जाना कि इसका मुँह सूज गया है। मुंह से बोल नहीं सकता फिर उन्होंने

वैद्य बुलाया वैद्य ने नस्तर लगा कर गाल फाड़दी तब मैंने लड्डू छिपाने के लिए दूसरी तरफ कर लिया वैद्य ने कहा कि रोग दूसरी तरफ आगया है। तो मेरी दूसरी गाल भी फाड़दी और लड्डू बाहर निकाला लड्डू को देख कर सब हँसने लगे और मेरे को कहा महामूर्ख तब से लेकर मैं आज तक वहाँ नहीं गया इसलिए मैं तेरे से बड़ा मूर्ख हूँ।

प्र. नं. ४—यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥१॥

अर्थ—जिसको अपनी बुद्धि नहीं है शास्त्र उसको क्या प्रकाश कर सकता है? जैसे अन्धे को शीशा क्या दिखावेगा? कुछ भी नहीं ॥१॥

माता शत्रुः पिता वैरी बालो येन न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा ॥२॥

अर्थ—वह माता और पिता दोनों ही शत्रु के समान हैं जो पुत्र को पढ़ाते नहीं हैं। वह मूर्ख पुत्र विद्वानों की सभा में शोभा नहीं पाता जैसे हंसों के मध्य में बगला शोभा नहीं पाता है ॥२॥

अन्तःसार विहीनस्य सहायःकिंकरिष्यति।
मलयेऽपि स्थितो वेणुर्न वेणुश्चन्दनायते ॥३॥

जो अपनी शक्ति बुद्धि से रहित है उसको सहायक भी

क्या कर सकता है ? बांस चन्दन के वन में रह कर भी बाँस ही रहता है क्योंकि भीतर से सार रहित (शून्य) है ॥३॥

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतर माराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धंब्रह्मापि तं नरं न रञ्जयति ॥४॥

अर्थ—जो अज्ञानी है प्रथम संस्कार से रहित है उसको उपदेश जल्दी हो जाता है और जो विशेष ज्ञाता है किञ्चित् सन्देह वाला है उसको तो उपदेश अति शीघ्र हो जाता है और जो किञ्चित् ज्ञान से स्वयं पंडित मानी है न पूर्ण ज्ञानी है न अति अज्ञानी है उस यद्ध ज्ञानी को तो ब्रह्मा भी उपदेश नहीं कर सकता क्योंकि वह न तो कच्चा है वो दुर्विदग्ध पकरोड अधजला पत्थर है ॥४॥

मुक्ता फलैः किं मृग पक्षिणांच ।
मिष्टान्न पान्नं किमुगर्दभानाम् ॥
अन्धस्य दीपो वधिरस्य गीतम् ।
मूर्खस्य किं धर्म कथा प्रसंगः ॥५॥

अर्थ—मृगादिक जीव तथा पक्षियों को मोतियों के हार पहराने से क्या फल है । गधे को मिठाई खिलाना, अन्धे को दीपक दिखाना, बहरे को गायन सुनाना, वैसे ही मूर्ख को भी धर्म कथा सुनाना व्यर्थ है ।

कथा नं० ४—तीसरे मूर्ख ने कहा कि मेरी भी कथा सुनो मैं आप दोनों से बड़ा मूर्ख हूँ एक दिन मैं

ससुराल जा रहा था तो रास्ते में कुए के ऊपर आराम करने के लिए सो गया। सोते हुए मेरी पगड़ी कुए में गिर पड़ी जब मैं जागा तो देखा कि दिन बहुत कम रह गया है जल्दी २ जा रहा था रास्ते में ताँगे में बैठ कर जाती हुई ससुराल की नाइन मिली तो उसने मुझे पहिचान लिया और नंगे सिर देखकर हमारे ससुर के घर जाकर कहा कि आपकी कन्या मर गई क्योंकि आपका दामाद नंगे सिर खबर देने आ रहा है। घर में रोना पीटना शुरू हो गया इतने में मैं भी पहुँच गया। उनको रोते देख मैं भी रोने लगा और खूब सिर को पीटा इस प्रकार तीन दिन तक रोना पीटना जारी रहा आखिर उन्होंने मेरे से कहा कि अच्छा जो होना था सो हो गया परमेश्वर की आज्ञा में प्रसन्न रहना चाहिये तो मैंने पूछा कि कौन मर गया क्या हुआ तो उन्होंने कहा कि आप जो हमारे घर नग्न सिर आये इसलिए हमने समझा कि हमारी कन्या मर गई है। इसी से रोना पीटना किया है यह सुन कर मैंने अपना सिर सम्भाला और लज्जा का मारा अब तक ससुराल नहीं गया।

अर्थ सत्य, तप, ज्ञान, अहिंसा तथा विद्वानों और वृद्धों को प्रणाम करना शीलव्रत इनको जो धारण करता है अर्थात् जो शास्त्र को पढ़ कर शास्त्र को कहा करता है वही विद्वान् कहा जाता है। केवल पढ़ने से ही विद्वान् नहीं होता ॥१॥

मू०— शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः।
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥
सुचिन्तितं चौषधमातुराणाम् ।
न नाम मात्रेण करोत्यरोग्यम् ॥२॥

अर्थ–जो शास्त्र पढ़के शास्त्र के विरुद्ध आचरण करे वह तो मूर्ख ही होता है जो शास्त्र या वेद न भी पढ़ा हो किन्तु आचरण वेदानुकूल है तो उसको ही विद्वान् मानो। जैसे कोई रोगी दवाई का नाम याद कर रहा हो उससे रोग दूर नहीं होते रोग दूर तो दवाई के सेवन से ही होते हैं॥

मू०— स्वायत्तमेकान्त गुणं विधात्रा।
विनिर्मितमच्छादनमज्ञतायाः ॥
विशेषतः सर्वविदां समाजे ।
विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ॥

अर्थ–विद्वानों के समाज में मूर्ख चुप ही रहे, तो नहीं मालूम होगा कि मूर्ख है। विधाता ने मूर्खपन के छिपाने

का ढकना चुप रहना ही रचा है बस मूर्ख चुप रहने से ही अच्छा लगता है ॥३॥

श्लो०— वरं दरिद्रः श्रुतिः शास्त्र पारगो,
न चापि मूर्खो बहुरत्न संयतः
सुलोचना जीर्ण पटापि शोभते
न नेत्र हीना कनकैरलङ्कृताः ॥४॥

अर्थ–विद्वान तो धन रहित भी हो तो भी अच्छा है मूर्ख यदि बहुत रत्न पूर्ण धनाढ्य भी हो तो भी कुछ नहीं। सुन्दर नेत्र पुरुष, पुराने वस्त्र से भी अच्छा, कुनेत्रवान अलंकारों से भी कुछ नहीं शोभता ॥४॥

श्लो०–शक्यो वारयितुं जलेन हुत भुक, च्छत्रेण सूर्यातपो।
नागेन्द्रोनिशिताङ्कुशेन समदो, दण्डेन गो गर्धभौ ॥
व्याधिर्भेषज संग्रहैश्च विविधैर्मन्त्र प्रयोगैर्विषम् ।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्य नास्त्यौषधम् ॥

अर्थ–अग्नि जल से बुझाई जाती है, धूप को छतरी से निवृत कर देते हैं, हाथी अंकुश से समझ आता है। गौ, भैंस, गधे आदिक दण्ड से समझाये जाते हैं। विष मन्त्र मणि प्रयोग दवाई से दूर हो जाता है। शास्त्र में सब प्रकार के उपाय हैं परन्तु मूर्ख सुधारने के उपाय और दवाई कोई नहीं ॥५॥

कथा नं० ५—चौथा मूर्ख बोला बूढ़े ! मेरी कथा सुनो मैं राजा का फौजी नौकर था और बड़ी तनख्वाह पाता था मित्रों को भी खिलाता था स्वयं भी खूब खाता था मेरी उदारता को देख कर एक चतुर चालाक स्त्री मेरे पास आई कहने लगी तुम पैसे को व्यर्थ मत खोओ। एक हजार रुपया मेरे को दो तो मैं तुम्हारी सगाई (मंगनी) कराद्ं मैंने झट हजार रुपये दे दिये फिर छः मास के बाद मेरे पास आई और कहा कि दो हजार रुपया निकालो तो शादी के लिए वस्त्र भूषण बनाऊँ। तो मैं बड़ा खुश हुआ दो हजार रुपया निकाल कर दे दिया। कुछ समय के बाद फिर आकर कहा कि तुम्हारे घर लड़का हुआ है उसके उत्सव और पालन पोषण के लिए कुछ रुपया चाहिये तब हमने बड़ी खुशी से उसको रुपये दे दिये फिर आई और कहा कि दूसरा लड़का पैदा हुआ है उसके लिए भी रुपया ले गई इधर मेरे से कोई कसूर होगया जिससे राजा ने सब माल जब्त कर लिया और नौकरी से अलग कर दिया मैं उस स्त्री के पास आया और कहा कि मेरी स्त्री और बच्चे मुझको मिलादो। यह सुन कर वह कहने लगी कि तेरी स्त्री मेरे से नाराज हो गई है मैं घर बता देती हूँ तुम चले जाना। तब उसने एक महल में मेरे को भेज दिया वहाँ एक साहूकार की स्त्री दो बच्चे लिए बैठी

थी तो मेरे को बड़ी खुशी हुई दोनों बालक मेरे पास आ गए मैंने उनको अच्छी २ चीजें दीं उन्होंने सब चीज अपनी माँ को देदी उस स्त्री ने समझा कि कोई मेरे पति का मित्र आया है। उसने पलंग बिछा दिया और इत्र पानादि थाल में रख बच्चों के हाथ भेज दिया मैंने दोनों लड़कों को गोद में ले लिया और आनन्द में फूला नहीं समाता था इतने में उस स्त्री का पति आगया मुझे बच्चों के साथ प्यार करते देखा अपनी स्त्री से पूछा यह कौन आदमी है ? उसने कहा कि मैंने तो आपका मित्र समझ कर आपके आने तक बिठाया है। आप अब जाकर पूछीए उसका पति मेरे पास आया धीरे से पूछने लगा कि आप कौन हैं ? और कैसे आये ? तब मैंने कहा मैं आपका बहनोई हूँ। अपनी स्त्री तथा बच्चों से मिलने आया हूँ। मेरी बात सुन कर उसको बड़ा क्रोध आया और दाँत पीस कर कहने लगा कि अरे पागल ! इतने जूते लगेंगे कि जिससे तेरी खोपड़ी उड़ जायेगी। अभी पुलिस मंगाकर तेरे को पकड़ाता हूँ तब मैं ऐसा भागा कि जूता भी वहीं रह गया फिर उस गली की तरफ आज तक नहीं गया हूँ इसलिए तीनों में से मैं बड़ा मूर्ख हूँ।

इसीलिए मूर्खों का भी कोई अन्त नहीं एक २ से बड़ा है और अपने सम्बन्धियों में किसी की थोड़ी बुद्धि

देख कर घबराना नहीं चाहिये। अपने को मध्य कोटी में समझ कर सदैव प्रसन्न रहना चाहिये दुनियाँ में ऐसे २ बुद्धि शून्य पड़े हैं जिनको वर्षों में एक पंक्ति भी याद नहीं हुई। जैसे एक ब्राह्मण को सारी आयु याद करने से "ओ३म् नमः सिद्धम्" याद हुआ और भाग्य ऐसे श्रेष्ठ हुए कि राजकन्या से उसकी शादी हुई।

प्र० नं० ६ श्लो०—मूर्खत्व सुलभ मजस्व कुमते, मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः।

निश्चिन्तो बहु भोजनोतिमुखरोरात्रिंदिवास्वप्न भाक्॥
कार्या कार्य विचारणान्धबधिरो मानपमाने समः।
प्रायेणामयवर्जितो दृढ़ वपुः मूर्खः सुखं जीवति।५।

अर्थ—सब वस्तु में गुण अवगुण मिल कर ही रहते हैं मूर्ख की इतनी निन्दा की अपगुण कहे क्या मूर्ख में कोई भी गुण नहीं अब जो गुण हैं उन्हें कहते हैं मूर्ख में आठ गुण हैं जो मूर्ख में भी गुण भालता है उसको हंसी से कहते हैं जो तू मूर्ख के गुण चाहता तो आठ हैं सुखाले मिलते हैं सो तू सेवन कर, १. चिन्ता रहित होना मूर्ख निश्चिन्त होता है २. बहुत खाना ३. अपनी प्रशंसा करना ४. दिनरात बहुत सोना ५. कार्य अकार्य में अन्धा बोला कुछ खबर नहीं क्या करना है। ६. मान अपमान सम

७. रोमरहित ८. शरीर पुष्ट इन गुणों से मूर्ख सुखी जीता है।

साकत कउ अमृत बहु सिंचहु सभ डाल फूल बिष कोरे।
जिउ जिउ निवहि साकत नर सेती छेड़ छेड़ कढ़हि बिख खारे।
साकत सिउ मन मेल न करीअहु जिन हरि हरि नाम बिसारे।
साकत वचन बिच्छुआ जिउ डसीए तज साकत परे परारे।
(नट नारायण अष्ट पदी म० ४-९८३)

तुमी तुमा विष, अक धतूरा निम फल। मनि मुखि वसहि तिस जिस तु चित्ति न आव ही।

अति अचारी अचार बिन अति निन्दा अति रूप।
मूर्ख के षट् लक्षण हैं अति हाँसी अति चूप।
अमृत लै लै नीम सिंचाई, कहत कबीर उआको सहज न जाई।
(आशा कबीर जी ४८१)

कहा सुआन कउ सिमरित सुनाए, कहा साकत पै हरि गुन गाए।
कौआ कहा कपूर चराए, कहि बिसीअर कौ दूध पिआए।

अर्थ—स्वर्गीय अमृत अथवा गंगाजल, अमृत अथवा मिश्री डाल कर मीठा किया हुआ जल रूप अमृत से नीम को सिंचन करे तो भी नीम का कड़वापन स्वभाव नहीं छूटेगा। ऐसे ही कुत्ते को धर्मशास्त्र रूप स्मृतियाँ सुनाने से क्या वह कुत्ता ब्रह्मचारी रहेगा? कुत्ती के पास न जायेगा क्योंकि उसका स्वभाव भी 'सौ कुत्ती घात है"

इसलिए उसको धर्मशास्त्र सुनाना निष्फल है। जैसे कौवे को कपूर खिलाने से क्या वह विष्टा न खायेगा ? किन्तु वह अपने स्वभावानुसार अवश्य विष्टा खायेगा जैसे विषधारी सर्प को अमृत रूप दूध पिलावें तो वह काटना छोड देगा ? किन्तु अपने स्वभाव वश अवश्य काटेगा।

"कहा साकत पहि हरि गुन गाये"

मन मुख को हरि गुण गायन कर सुनाने से क्या वह प्रेमी भक्त बन जायगा ? किन्तु नहीं बनेगा।

"साकत सिउ भूल नहीं कहीए"

जैसे कड़वी तुम्बी को अठसठ तीर्थों में ले जाकर स्नान भी करा दे तो भी उसका कटु स्वभाव नहीं जायगा। इसी तरह मनमुख बाहर से शरीर की कितनी भी तपस्या करे और शुद्धी करे तो भी उनका स्वभाव अर्थात् दुराचार नहीं जायगा, दुराचारी ही रहेगा।

दो०—खलहु करहि भल पाइ सुसंगु। मिटहिं न मलिन स्वभाऊ अभंगू। लख सुवेष जग वंचक जेऊ, वेख प्रतापपूजियत तेऊ॥ उघरहि अन्त न होई निबाहू, कालनेमी जिम रावण राहू।

तुलसी रामायण

प्रमाण—उपदेशो न दातव्यो यादृशे तादृशे जने।
पश्य वानरमूर्खेण सुगृहीनिर्गृही कृतः॥

हस्तपाद समायुक्तो दृश्यते पुरुषाकृतिः ।
शीतेनखिद्यसे मूढ कथं न कुरुषे गृहम् ॥
सूची मुखी दुराचारा रंडा पंडित वादिनी ।
नाशङ्कते प्रजल्पन्ती तत्किमेनां न हन्म्यहम् ॥

अर्थ—तू हाथों या पैरों से युक्त, पुरुष के आकार वाला है फिर भी शीत से दुःखी हो रहा है ? हे मूर्ख ! तू अपना घर क्यों नहीं बना लेता ? सुई के समान मुख वाली दुराचारिणी रंडा अपने को पंडित मानने वाली यह निश्शंक होकर मुझे वचन बोलती है तो इसे मैं क्यों न मारदूँ ?

अब मनमुख पर दूसरा दृष्टान्त कहते हैं—

मछी तारु किआ करे पंखी किआ आकाश ।
पत्थर पाला किआ करे खुसरे किआ घर वास ॥
कुते चन्दन लाइये भी सो कुती धात ।
बोलाजे समझाइये पड़ीअहि सम्रिति पाठ ॥
अन्धा चानण रखीए दीवे बलहि पचास ।
चउणै सुइना पाइए चुणि चुणि खावे घास ॥
लोहा मारणि पाइऐ ढहहि न होइ कपास ।
नानक मूर्खे ऐहि गुण बोले सदा विणास ॥
माझवार म० ४-१४३

हिरदे कपट मुखग्यानी, भूठे कहा विलोवस पानी।
कायआ मांजस कउन गुनां, जउ घट भीतर है मलना, रहाउ।
लौकी अठसठि तीरथ नाई। कउरापन तऊ न जाई॥

सोरठ कबीर जी ६६५

चउरासीह नरक साकत भोगाईए। जैसा किचै तैसो पाइए॥

मारु सोलहे १०२८

जे मूरख समभाईये समभे नाहि छावन धूपा मूरख नाल चँगेरी चूपा। भाई गुरुदासवार ३३ पौ० २

निम विरख बंहु सींचीए अमृत रस पाया।
विसीअर मंत्रि विसाहीऐ बहु दूध पीआया॥
मनमुख अभिन्न न भिजई पत्थर नवाइआ।
विख महि अमृत सिंचिये विख का फल पाइआ॥

सारंग-वार म० ५-१२४४

मूरख भोगे भोग दुख सबाइआ। सुखहु उठे रोग पाप कमाइआ। हरखहु सोग विजोग उपाय खपाइआ।

आसावार १३६

कथा नं० ६—एक और बुद्धि शून्य की कथा इस प्रकार है। वह मूर्ख एक वैद्य के पास गया वैद्य ने जुलाब की पुड़िया दी और कहा कि जुलाव लेने के बाद खिचड़ी खाना। खिचड़ी का नाम उसको याद न रहा वह फिर पूछने आया तो वैद्य ने कितनी बार उसको

समझाया, कहा कि रास्ते में इसको रटते जाना परन्तु रास्ते में फिर भूल गया और खिचड़ी को खाचिड़ी २ कहता आया, तो रास्ते में किसान चिड़िया उड़ा रहा था वह सुनकर उसको मारने लगा और कहा कि मैं तो चिड़ियां उड़ाता हूँ, तू खाचिड़ी २ कहता है। तो उसने कहा क्या कहूँ ? किसान ने कहा कि उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी कहता जा तब वह उड़ चिड़ी कहता जा रहा था। एक व्याध ने चिड़ियाँ पकड़ने के लिए जाल बिछा रखा था। वह उड़ चिड़ी का शब्द सुनकर उसे मारने लगा। तब उसने कहा कि मैं और क्या कहूँ ? तो व्याध ने कहा कि "आता जा फंसता जा" ऐसा कहता जा। इस तरह कहता हुआ वह आगे चला। रास्ते में चोर चोरी कर रहे थे उन्होंने उसको खूब पीटा तब इसने चोरों से पूछा कि मैं क्या कहूँ ? तो उन्होंने कहा घर जाओ खूब ले आओ ऐसा कहता जा। आगे गया तो लोग मुर्दे को ले जा रहे थे उन्होंने भी यह शब्द सुनकर खूब पीटा और कहा कि ऐसे दिन कभी न आवें इस प्रकार कहता जा आगे एक बारात जा रही थी उन्होंने यह सुन कर बहुत मारा। इस प्रकार अपनी मूर्खता से सारी बार पिटता ही रहा और कहा कि मैं ऐसा जुलाब कभी न लूँगा। ऐसे नुस्खे को कोई नहीं पी सकता परन्तु ईश्वर की

सृष्टि में ऐसे असंख्य मूर्ख पड़े हैं।

असंख्य मूर्ख अन्धघोर। असंख्य चोर हराम खोर।
कई कोटि अन्य अगियानि ॥

चौ०—बहुरि बंदि खल गन सति भाएँ।
जे बिनु काज दाहिनेहु बाएँ॥
पर हित हानि लाभ जिन्ह केरें।
उजरें हरष बिषाद बसेरें ॥१॥

भा०—अब मैं सच्चे भाव से दुष्टों को प्रणाम करता हूँ। जो बिना ही प्रयोजन अपना हित करने वालों के भी प्रतिकूल आचरण करते हैं। दूसरों के हित की हानि ही जिनकी दृष्टि में लाभ है। जिनको दूसरों के उजड़ने में हर्ष और बसने में विषाद होता है ॥१॥

हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहस बाहु से।
जो पर दोष लखहिं सह साखी। परहित घृत जिन्हके मन माखी।२।

जो हरि और हर के यश रूपी पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए राहु के समान हैं (अर्थात् जहाँ कहीं ब्रह्मा विष्णु या शंकर के यश का वर्णन होता है उसी में बाधा देते हैं। दूसरों की बुराई करने सहस्र बाहु के समान वीर हैं। जो दूसरों के दोषों को हजार आँखों से देखता है, दूसरों के हित-रूपी घी के लिए जिनका मन मक्खी के समान है। अर्थात् जिस प्रकार मक्खी घी में गिरकर उसे खराब कर देती है

स्वयं भी मर जाती हैं। उसी प्रकार दुष्ट लोग दूसरों के बने काम को अपनी हानि करके भी विगाड़ देते हैं।

चौ०—तेज कृसानु रोष महिषेशा।
अघ अवगुन धन धनी धनेशा॥
उदय केत समहित सबही के।
कुम्भ करन सम सोवत नीके॥ ॥३॥

अर्थ०—जो तेज (दूसरों को जलाने वाले ताप) में अग्नि और क्रोध में यमराज के समान है, पाप और अवगुण रूपी धन में कुवेर के समान धनी है। जिनकी बढ़ती सभी के हित का नाश करने के लिए केतु (पुच्छल तारे) समान है। जिनके कुम्भकरण की तरह सोते रहने में ही भलाई है।

चौ०—पर अकाज लगि तनु परि हरहीं।
जिमिहिम उपल कृपि दलि गरही॥
बन्दउँ खल जस सेष सरोषा।
सहस वदन बरनन पर दोषा॥ ॥४॥

अर्थ—जैसे ओले खेती का नाश करके आप भी गल जाते हैं वैसे ही वे दूसरों का काम विगाड़ने के लिए अपना शरीर तक छोड़ देते हैं। मैं दुष्टों को हजार मुख वाले शेष जी समझ कर प्रणाम करता हूँ कि जो पराये दोषों का हजार मुखों से बड़े रोष के साथ वर्णन करते हैं। ॥४॥

पुनि प्रनवऊँ पृथुराज समाना, पर अघ सुनइ सहसदस काना।
बहुरि सक्रसम बिनवउं तेही, सन्तत सुरा नीक हित जेही ।५।

अर्थ०—पुनः उनको राजा पृथु (जिन्होंने भगवान का यश सुनने के लिए दस हजार कान माँगे थे के समान जानकर प्रणाम करता हूँ, जो दस हजार कानों से पापों को सुनते है। फिर इन्द्र के समान मान कर उनकी विनय करता है, जिनको सुरा (मदिरा) नीकी और हितकारी मालुम देती है। (इन्द्र के लिए भी सुरा नीक अर्थात् देवताओं की सेना हितकारी है।

बचन वज्र जेहि सदा पिआरा, सहस नयन पर दोष निहारा ।६।

जिनको कठोर वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और जो हजार आँखों से दूसरे के दोषों को देखते हैं ।६।

दोहा—उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहि खल रीति।
जानि पानि जुग जोरिजन विनति करइ सप्रीति ।।७।।

अर्थ—दुष्टों की यह रीति है कि वे उदासीन शत्रु अथवा मित्र जिसका भी हित सुन कर जलते हैं, यह जानकर दोनों हाथ जोड़कर यह जन उनसे विनय करता है ।७।

चौ०—मैं अपनि दिसि कीन्ह निहोरा।
तिन्ह निज ओर न लालच मोरा ॥
बायस पलिअहिं अति अनुरागा।
होहिं निरामिष कबहु कि कागा ॥

अर्थ—मैंने अपनी ओर से विनति की है परन्तु वे अपनी ओर से कभी नहीं चूकेंगे। कौओं को बड़े प्रेम से पालिये परन्तु वे क्या कभी माँस के त्यागी हो सकते हैं? नहीं।

पूर्वमेवमहं मूर्खो द्वितीयः पाशवन्धकः ततो
राजाच मन्त्रिच सर्व वैमूर्ण मण्डलम् ॥

अर्थ—एक चिड़िया कहती है कि पहले तो मैं मुर्ख हूँ दूसरा मुझे पकड़ने वाला व्याध तथा राजा और मन्त्री मूर्ख है क्योंकि कभी चिड़िया भी सोना हगती है।

अपिवेत्ति षडक्षराणि चेदुपदेपूंशिति कंठमिरयति।
वसनाशनमात्रमस्ति चेत धनदादपयतिरिचते खलः॥

❀ अतिथि-पूजनम् ❀

सं प्राप्तायत्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैवयथाशक्ति सत्कृत्यविधि पूर्वकम् ।१।

अर्थ—जो अतिथि घर में आजावें तो उसको आसन जल अन्न यथा शक्ति आदर सहित रीति से गृहस्थ देवे। ॥१॥

नवै स्वयंतद श्नीयात् अतिथिंयन्न भोजयेत्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं चातिथि भोजनम् ।२।

अर्थ—और आप भी तब तक नहीं खावे जब तक

अतिथि को भोजन नहीं करवा देवे। क्योंकि जो अतिथि को भोजन देता है उसको धन, यश, आयु, स्वर्ग ये बहुत प्राप्त होते हैं न देने से इन सबका नाश होता है। ।२।

अतिथिं तत्र संप्राप्तं पूजयेत् स्वागता दिना।
तथासन प्रदानेन पाद प्रचालनेन च ।३।

अर्थ—अभ्यागत यदि आ जावे तो उसको आसन देकर पाँव धोकर उसका आदर करे। ।।३।।

श्रद्धयाचान्नदानेन परि प्रश्नोत्तरेण च।
गच्छतश्चानुपानेन प्रीतिमुत्पादयेत् गृही ।।४।।

अर्थ—फिर भोजन करावे फिर प्रेम की बातें करे फिर कुछ प्रयोजन भी पूछे, करने योग्य हो तो उसका प्रयोजन भी करे जब जाय तो कुछ दूर साथ भी पीछे २ जावे, इससे उसका सत्कार पाया जाता है। ।।४।।

असुक्त्वातिथयेचान्नं प्रपच्छेद्यः समाहितः।
सर्वे ब्रह्मविदोलोकान्प्राप्नुयाद्भरतर्षभ ।।५।।

अर्थ—जो आप भूखा रह कर भी अतिथि को भोजन देता है। हे युधिष्ठिर वह मनुष्य ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है।५।

न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिर्वह्निशुश्रूषया तथा।
गृही स्वर्गमवाप्नोति यथा चाऽतिथि पूजनात् ।६।

अर्थ—दक्षिणा सहित यज्ञ करने से, अग्नि-होत्र करने से भी गृहस्थी को ऐसा स्वर्ग नहीं मिलता जैसा

अतिथि को अन्न जल आसन आदि पूजन से मिलता है ।६।

तृणानिभूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता ।
एतान्यपि सतांगेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ।७।

अर्थ—१–पास आये को आसन २–सोने को निवास स्थान ३–पीने को जल ४–मीठी प्यारी सच्ची वाणी से ये चार वार्ता सत्पुरुषों के घरों में हमेशा रहती हैं कभी इनका छेदन नहीं होता ॥७॥

यतिश्च ब्रह्मचारी च पक्वान्न स्वामिना वुभौ ।
तयोरन्नमदत्त्वा च भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ।८।

अर्थ—संन्यासी व ब्रह्मचारी ये दोनों जैसी रोटी घर में धनी तय्यार हो वैसी देनी चाहिये यदि इनको न दे और आप भोजन करलें तो गृहस्थी चान्द्रायण व्रत करके शुद्ध होता है नहीं तो पापी होता है । ।८।

आसनावसथौशय्या मनुव्रज्या मुपासनम् ।
उत्तमेषूत्तम कुर्याद्धीनेहीनं समे समम् ॥९॥

अर्थ—आसन शय्या निवास सब सेवा अतिथि की उत्तम ब्राह्मणादि अति विद्वान होवे तो उत्तम रीति से करे शूद्रादि हीन वर्ण हो तो हीन रीति से करे योग्यता विचार लेवे । ॥९॥

काष्टभार सहस्रेण घृतकुम्भ शतेन च ।
अतिथिर्यस्य भग्नाशस्तस्यहोमो निरर्थकः ।१०।

अर्थ—जो हजारों मार समिधा लगा कर, सैकड़ों घड़े घी के पाकर होम करे और अतिथि की आज्ञा पूरी न हुई तो सब होम व्यर्थ ही है ॥१०॥

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुंच्यन्ते सर्व किल्विषैः।
भुञ्जतेतेत्वघंपापायेपचंत्यात्म कारणात् ॥११॥

अर्थ—जो गृहस्थी नित्य पंच यज्ञ कर सब बाल वृद्ध अतिथि पशु पंछि तक भी सब को देकर फिर आप स्त्री पुरुष शेष बचा हुआ भोजन खाते हैं वो सब पापों से रहित हो जाते हैं। जो आप ही पकाया और आप ही खाय लिया सो पापी है। वो पाप फल को भोगते हैं। जिसकी जान पहिचान कोई नहीं है और स्वतः आ जाय, एक रात से ज्यादा न रहे वो अतिथि है। ॥११॥

एक महात्मा जी ने यह व्याख्यान, दृष्टान्त और प्रमाण देकर बहुत विस्तार के साथ किया और अतिथि का लक्षण इस प्रकार से बतलाया है कि जो प्रथम तो अज्ञात हो अपने शहर अथवा ग्राम का रहने वाला न हो और प्रथम कभी द्वार पर आया न हो और रात्रि रहने का भी जिसका संकल्प न हो वह अतिथि कहा जाता है। उस अतिथि को भोजन खिलाने का बड़ा महात्म्य लिखा है। ऐसे अतिथि को जो प्रति दिन बिना खिलाए आप खाता है वह पापमय भोजन करता है। जब यह प्रसंग एक सेठ

ने सुना तब वह विचार करने लगा कि मेरे को धिक्कार है जो इतना धन होने पर भी मैं पापों का भोजन करता हूं। इसलिए अब मैं सभा में उठ कर प्रतिज्ञा करूँ क्योंकि चित्त बदलने में देरी नहीं होती ऐसे विचार कर एक दम सभा में खड़ा होकर कहने लगा कि महाराज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ आप सब लोग सुनो अब तक तो मैं पापों का ही भोजन करता रहा परन्तु अब मैं अतिथि के खिलाये बिना भोजन न करूँगा महात्मा और सत्संगियों ने कहा कि यदि एक दिन अतिथि न आयेगा तो क्या करेगा ? फिर सेठ ने कहा मैं भी भोजन न करूँगा। दूसरे दिन अतिथि को भोजन कराकर खाऊँगा महात्मा ने कहा यदि दूसरे दिन भी न मिला। तब सेठ ने कहा तीसरे दिन भी अतिथि को भोजन कराकर खाऊँगा।

सेठ का वचन सुन कर सन्तों ने कहा कि अगर दैवयोग से तीसरे दिन भी अतिथि न मिले, तो सेठ ने कहा कि चौथे दिन बारह बजे तक प्रतीक्षा करूँगा अगर फिर भी अतिथि न आया तो चिता में जल कर मर जाऊँगा। तब सेठानी भी कहने लगी कि मैं भी अपनी तरफ से और दो अपने बच्चों की तरफ से तीन अतिथियों को प्रति दिन भोजन खिलाया करूँगी तीन दिन तक अतिथि के न आने पर मैं अपने बच्चों को तो भोजन खिला दूँगी परन्तु

स्वयं न खाऊँगी अगर चौथे दिन तक न आया तो मैं भी भोजन खालूँगी पति की तरह जल कर न मरूँगी जब यह प्रतिज्ञा की। उधर कथा समाप्त हुई सब लोग घर चले गये सेठ सेठानी प्रतिदिन कथा में आते रहे और अतिथियों को ढूँढ कर प्रेम पूर्वक प्रति दिन भोजन खिलाते रहे एक दिन परमेश्वर ने भक्तों की परीक्षा करने के लिए प्रेरणा की। तीन दिन तक उस शहर में कोई अतिथि न आया और वह साहूकार अतिथियों को ढूँढता २ थकित हो गया। चौथे दिन बारह बजे तक प्रतीक्षा की परन्तु जब कोई भी अतिथि न आया तो अपनी प्रतिज्ञानुसार जलने लगा। लोग इकट्ठे हो गये जब चिता पर चढ़ गया और अग्नि लगाने की तय्यारी की तो दूर से महात्मा आते हुए दिखाई पड़े तब उन लोगों ने कहा कि अग्नि मत लगाओ सामने महात्मा चले आरहे हैं तब साहूकार चिता से उतर कर बड़ी धूम धाम से महात्माओं को अपने घर ले आया, भोजन खिलाकर सत्सग कराया। इसलिये अतिथि सेवा यथा शक्ति करनी चाहिये।

१५ ※ संसार वर्णनम् ※

संसार विष वृक्षस्य द्वे फलेत्वमृतोपमे।
ज्ञानामृतरसास्वादः आलापः सज्जनैः सह ॥१॥

अर्थ—यह जगत् विप का जगत् है, परन्तु इसके दो फल अमृत के समान हैं। एक ज्ञानामृत का पीना दूसरा सत्पुरुषों से वार्तालाप करना ॥१॥

यथाविन्ध्यवनस्थाने प्रस्फुरंति करेणवः ।
तथा तस्मिन् परे भूम्निब्रह्माण्डत्रसरेणवः ॥२॥

अर्थ—जैसे जंगल में देखने से जरा नेत्रों के आगे करेणु यानि जरें मालुम पड़ते हैं, वैसे ही तिन परम परमात्माओं में ये नाना ब्रह्माण्ड रूपी त्रसरेणु वो ही जर्रे से उड़ रहे हैं ॥२॥

यः सर्वविभवोऽस्माकं धियां न विपयस्तवः ।
तज्जगत् जनने शक्तिर्न ममास्ति महामते ॥३॥

अर्थ—हे महामति राम ! जो प्रत्यक्ष सामने दृश्य पदार्थ दिखाता हुआ सब जगत पृथ्वी आदि भूत जड़ चेतन शरीर बुद्धि इन्द्रिय आदि सब पदार्थ हम निर्णय करने को सामर्थ नहीं हो सकते। तो इस जगत् के करने वाली माया को हम कैसे निर्णय कर सकते हैं हाँ अनुमान से ही कह सकते हैं कि ये चेतन की प्रेरणा से किसी शक्ति का किया हुआ जगत है ॥३॥

देहवटादि धानादौ सुविचार्य विलोक्यताम् ।
कधाना कुत्र वावृक्षस्तस्मान् मायेतिनिश्चितु ।४।

अर्थ—शरीर,वट, वृक्ष धान्य, तृणादि कहां तो ये

इनका बीज कहा, नटादि के आकार से निश्चय होता है कि इस जगत का बीज माया शक्ति है। ॥४॥

दुखाङ्गारस्तीव्रः संसारोऽयं महान् सोगहनः।
इह निपयामृतलालसमानस मार्जार मानिपप्तः ॥५॥

अर्थ—ये संसार महानस् यानी रसोई बनाने की भट्ठी या हवन कुण्ड है इसमें दुःख रूपी अंगार भरे हैं हे मन रूपी मार्जार तू इस ससार रूपी भट्ठी में मत गिर ॥५॥

अयमविचारितचारुतया संसारोभाति रमणीयः।
अत्रपुनः परमार्थ दृशाकिमपि न सारोरमणीयः।६।

अर्थ—इसके न विचारे से ये जगत रमणीय अति सुन्दर व प्यारा सच्चा भासता है। यथार्थ पदार्थ दृष्टि से इसको विचार लिया जाय तो इस संसार में कोई पदार्थ सत्य सुन्दर सुख रूप नहीं है, लोक वेद मत में न कोई सुखी न कोई सत्य है ॥६॥

एतस्मात्किमिन्द्र जालमधिकं यद् गर्भवासस्थितम् ॥
रेतश्चेतस्ततो हस्त मस्तक पदप्रोद्भू नानानांकुरम् ॥
पर्यायेणशिशुत्व यौवन जराव्रवैरनेकैर्वृतम् ।
पश्यत्यति शृणोतिजिघ्रति तथा गच्छत्यथागच्छति ।

भावार्थ—देखो यह संसार इन्द्रजाल मदारी नटुए का तमाशा है प्रथम बीज गर्भ में निवास कर पाद मस्तकादि अंगो की घटना होती है। फिर जन्म बालक युवा

वृद्धादि अनेक रूप बदलता है। देखता, सुनता, सूँघता, खाता, जाता, आता सभी कुछ करता हुआ विनाश होता है फिर कुछ भी निशान नहीं दीखता इससे परे इन्द्रजाल नहीं तो क्या है ?

क्वचिद्वीणानादः क्वचिदपि चहा हेति रुदितम्।
क्वचिद्विद्वद्गोष्टी क्वचिदपि सुरामत्त कलहः॥
क्वचिद्रम्यारामा क्वचिदपिजराजर्जित तनुः।
न जाने संसारः किंममृतमयः किं विषमयः॥

अर्थ—कहीं तो वीणादि बाजे बजते मंगल हो रहे हैं कहीं दूसरी तरफ हाहाकार हो रहा है। इधर विद्वानों की सभा हो रही है कहीं कह रहे हैं कि हिंसा मत करो मांस मदिरा न वरतो उधर मदिरा पान किये हुए चीक रहे है कि पियो और पीयो कहीं लक्ष्मी के विलास बाग, मन्दिर यज्ञ दान हो रहे हैं कहीं महान् रोगी और भूखे जल्पते हुए पुकार रहे हैं। इस संसार की रचना का कुछ पता नहीं मिलता सुख रूप है क्या दुख रूप है। अर्थात् सुख देखो तो उसका अन्त नहीं, दुःख देखो तो उसका अन्त नहीं परन्तु निश्चय करने पर संसार दुःख रूप ही है

इन्द्रस्याशुचिशूकरस्य च सुखे दुःखे च नास्त्यंतरम्।
स्वेच्छा कल्पनयातयोः खलु सुधाऽमेध्यंच काम्याशनम्॥
रम्भा चा शुचि सूकरी च परम प्रेमास्पदं मृत्युतः।

संत्रासोपिसमः स्वकर्मगतिभिश्चान्योन्य भावः समः ॥

भा०—वास्तव में विचारा जाय तो इन्द्र के भोगों में और स्वान सूकर के भोग में कुछ भी भेद नहीं है । इन्द्र को अमृत रम्भा भोग से और स्वान को मल कूकरी के भोग से एक तुल्य ही आनन्द है। मृत्यु का भय भी समान ही है कर्म गति भी दोनों के समान ही है। जो इनमें से न्यूनाधिकता प्रतीत होती है सो केवल भ्रम ही है।

अत्तुंवाञ्छति शाम्भवोगणपते राखुंक्षुधार्तःफणी ।
तञ्चक्रौञ्चपतेःशिखी गिरिसुता सिंहोऽपि नागाशनम् ।
इत्थंयत्रपरिग्रहस्य घटनाशम्भोरपि स्याद् गृहे ।
तत्रान्यस्य कथं न भवि जगतो यस्मात्स्वरूपंहितत् ॥१॥

शंकर के गणों में परस्पर मत भेद है ऐसे ही जगत में

१६ ॐ वैराग्य प्रकरणम् ॐ

उत्तर भाग ॥ॐ॥ एकादश गुरुदेव मंगल

वन्दे नानक देव मगादमरं, वन्दे गुरुं रामेयम् ।
वन्दे राम सुतं मिनेक जलधिं, वन्दे गोविंदं हरम् ।
वन्दे श्री हरि राय नन्द कुवरं, वन्दे गुरुं नवमयम् ।
वन्दे सिंह गोविंद योद्धममलं, वन्दे गुरुं ग्रन्थयम् ।

पुतरी तेरी विधि करि थाटी। जान सति करि होइगी माटी॥
मूल सम्मालहु अचेत गवारा। इतने कउ तुम किआ गरबे॥

रहाउ। तीन सेर का दिहाडी मिहमान अवर वसतु तुझ पाइ अमान। मिसटा असत रकत परेटे चाम। इस ऊपरी ले राखिओ गुमान। एक वसतु बूझहि ता होवहि पाक। विनबुझे तू सदा ना पाक। कहु नानक गुर कउ कुरबान॥ जिसते पाइये हरि पुरख सुजान॥   आ० म० ५-३७४

गहरि करिके नीव खुदाई ऊपरी मंडप छाए। मारकन्डे ते को अधिकाई जिनि त्रिण धरि मुड बलाए। हमरो करता राम सनेही। काहे रे मन गरव करत हहु विनस जाई झूठी देही। मेरी मेरी कैरऊ करते दुर्योधन से भाई बारह योजन छत्र चलै था देहि गिरज न खाई। कहा भइओ दर बाँधि हाथी खिन माहि भई पराई। दुर्वासा सिउ करत ठगउरी जादव एफल पाए। कृपा करि जन अपने ऊपर नामदेव हरि गुन गाए॥   धनासरी नामदेव

माटि ते जिनि साजिआ करि दुर्लभ देह। अनिक छिद्र मन महि ढके निरमल द्रिसटेह। किउ विसरे प्रभु मनैते जिसके गुण एह। प्रभु तजि रचे जिआन सिउ सो रलिए खेह। रहाउ। सिमरहु सिमरहु सासि सासि मत विलम करेह। छोडि प्रपंच प्रभु सिउ रचहु तजि कूडे नेह। जिन अनिक एक बहु रंग किए हैं होसी एह। करि सेवा तिस पार ब्रह्म गुरते मति लेह। ऊँचेते ऊँचा बडा सब संगी वर नेह। दास दास को दासरा नानक करि लेह। बिलावल म० ५-८१२

नवे छिद्र स्रवहि अपवित्रा । बोलि हरिनाम पवित्र सभि किता । मारु म० ४–६६८

मू०– काच कोटं रचंति तोयम् लेपनं रक्त वरमणह ।
नवंत दुआरं भीत रहितं वाइरूपं असथंभनह ॥
गोविन्द नामं नह सिमरंति अगिआनि जानाति असथिरं ।
नउ दरि थाके धावत रहाए । दसवै निज घरि वासा पाए ॥

अर्थ–इस तरह दसवा गुप्त द्वार है, पर वेद में तो एकादश दरवाजे लिखे हैं । ग्यारहवाँ द्वार नाभि को गिना है । कहीं २ शास्त्रों में चौदह दर्वाजे भी लिखे हैं परन्तु वे स्त्रियों के लिखे हैं । मनुष्य शरीर से स्त्री के शरीर में तीन द्वार अधिक हैं, दो स्तन और एक गर्भाशय । इस प्रकार चौदह हुए ऐसे दर्वाजों वाला जो शरीर है उसके खण्डन में विद्वान का चित्त जाना जाता है ।

छाया शरीरे प्रतिबिम्ब गात्रे । यत् स्वप्न देहे हृदिकल्पितांगे ।
यथात्मबुद्धि स्तव नास्ति काचिज्जीविते शरीरे चतथैवमाऽस्तु ।
विवेक चूड़मणि ३८५

अर्थ–अपने शरीर की छाया में जैसे तेरे को आत्म बुद्धि नहीं होती अर्थात् मैं छाया हूँ, इस प्रकार अपने आपको नहीं कहता और दर्पण में जो तुम्हारे शरीर का प्रतिबिम्ब है, उसमें भी जैसे तेरे को अहँ बुद्धि नहीं होती स्वप्न की देह में जैसे तुम्हारी अहँ बुद्धि नहीं होती वैसे सातों

धातुओं से बना हुआ जो जीवित शरीर है उसमें भी तेरे को अहँ बुद्धि न होनी चाहिये।

अत्रात्मबुद्धिंत्यज मूढ बुद्धे। त्वङ् मांस मेदोऽस्थि पुरीपराशौ सर्वात्मनि ब्रह्मणि निर्विकल्पे कुरुष्वशान्ति परमां भजस्व।

भाषा–हे मूढ़ बुद्धे! इस त्वचा मांस चर्बी हड्डी और विष्टा के समूह रूप शरीर से अपनी आत्मबुद्धि को त्याग दे और सर्वात्म निर्विकल्प ब्रह्म में उस आत्म बुद्धि को लगा कर अति शान्ति को प्राप्त हो।

त्वङ् मांस मेदोऽस्थि पुरीष राशावहं मतिं मूढ़ जनः करोति।
विलक्षणम्वेति विचारशीलो निजस्वरूपम्परमार्थ भूतम्॥
विवेकचूड़ामणी

अर्थ–चर्म, मांस, चर्बी हड्डी और विष्टा आदिकों में मूढ़ पुरुष अहँ मति करता है, और विचार शील पुरुष विलक्षण परमार्थ भूत अपने स्वरूप को प्राप्त होता है। इस प्रकार शरीर में आत्म बुद्धि भी खण्डन करनी चाहिये।

न सुखं देव राजस्य न सुखं चक्रवर्तिनः।
यत्सुखं वीत रागस्य मुनेरेकांत वासिनः। महा० भ०
इन्द्र लोके महद्दुःखं सत्य लोके तथैव च।
विष्णु लोके तथा रौद्रे दुःख मेव विचारतः॥ दे० भा०
ना सुख घिच गृहस्थ के, न सुख छोड़ गयां।
ना सुख पडियां पण्डितां, ना सुख भूप भयां।

ना सुख बोलन बोलके, ना सुख चुप्प रह्यां ।
सुख है विच विचार के, सन्तां शरण पयां ।
भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः ।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः ।१।
भोगे रोगभयं सुखे क्षय भयं वित्तेनृपालाद्भयं,
माने हानिभयं जये रिपुभयं रूपे जरायाभयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खल भयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्य मेवाभयम् ।२।
वैराग्य शतक् ।

१८ ※ दयादि महिमा ※

अठसठ तीर्थ सकल पुंन जीय दया प्रवान ।
जिसनों देवे दया कर सोई पुरुष सुजान ॥

शास्त्रों में जिज्ञासु के लक्षण इस प्रकार भी वर्णन किए गए हैं, जिसके अन्त करण में मल और विक्षेप दोष नहीं हैं केवल आवरण ही है और चारों साधन सम्पन्न है वह जिज्ञासु व अधिकारी है ।

प्रश्न—हे भगवन् जो ! मल विक्षेप आवरण और चार साधनों का स्वरूप आप भिन्न भिन्न करके वर्णन करें और मल विक्षेप की निवृत्ति कैसे हो सकती है, कृपया यह भी कहें ?

उत्तर—हे प्यारे ! मल नाम पापों का है जैसे जल में

गदलापन हो तो सूर्य का आभास नजर नहीं आता वैसे ही जब तक पापों से अन्तःकरण मलिन है तब तक आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता परन्तु उस मलिनता की निवृत्ति, निष्काम कर्म दया, दान; परोपकार और सेवादि से हो सकती है। शास्त्रों में लिखा है कि डेढ़ ही पाप है और डेढ़ ही पुण्य है, आत्मा का न जानना ही सारा पाप है आत्मा का जानना ही सारा पुण्य है। आधा पाप जीवों को दुःख देना है और आधा पुण्य जीवों को सुख देना है।

भा०—मुख्य जो अठसठ तीर्थ हैं उन सब का फल एक ओर जो जीवों पर दया करता है वह एक, किन्तु तीर्थों से भी जो जीवों की रचा करता है उसका अधिक फल होता है। एक महात्मा की कुटिया के पास पानी का भरा हुआ एक कच्चा तालाब था। एक दिन वहां पर धीवर ने मछलियां पकड़ने के लिए जाल डाला। महात्मा ने देख कर कहा कि हे पापी! यह पाप क्यों कर रहा है? तब उसने कहा कि पेट ही सब पाप कराता है। महात्मा ने कहा, "पेट की पालना अन्न से होती है" उसने कहा, "मुझे अन्न नहीं मिलता तभी तो यह जीव पकड़ कर और इनको बेच कर निर्वाह करता हूँ।" महात्मा ने कहा "अन्न हमारे से लिया कर और इन जीवों को मारना छोड़दे" तब उसने जाल फेंक दिया और वहां ही रहने

लगा। वहां पर सेवा व सत्सङ्ग करते २ कुछ समय बीत गया। एक दिन विनती करी कि हे महाराज! और लोगों को आप उपदेश मन्त्र देते हैं। मुझ पर भी आप कृपा करें। तब महात्मा ने सोचा कि इसने पाप कर्म बहुत किए हैं जब तक इससे बहरंग साधन न कराया जावे तब तक नाम जपने में इसका मन नहीं लगेगा दूसरे इसकी श्रद्धा भी देखनी आवश्यक है। यह विचार कर महात्मा ने कहा कि हे प्यारे! प्रथम तुम तीर्थ यात्रा कर आओ। साथ ही हमारी लष्टिका को भी स्नान कराना जिस स्थान पर यह लष्टिका हरी हो जाये वहां से वापिस आ जाना फिर हम तुमको उपदेश मन्त्र देंगे। उसने "सत्य वचन" कहा और लष्टिका लेकर चलदिया। चलते २ रात पड़ गई तो किसी गांव के बाहर एक वृक्ष के नीचे सो रहा। कुछ रात्रि व्यतीत होने पर उसी वृक्ष के समीप दो पुरुष आये और परस्पर इस प्रकार बातें करने लगे। कि इस गांव को हम इस ओर से आग लगावें क्योंकि इस समय वायु भी तीव्र चल रही है इससे सारा गांव जल जावेगा। आज हमको अच्छा अवसर मिला है। यह हमारा शत्रु है। इन बातों को वह धीवर सुन रहा था। उसने विचार किया कि यह अत्याचारी बहुत बुरा विचार कर रहे हैं। इस गांव में अनेक जीव मनुष्य और पशु आदिक हैं। इस अग्नि के

लगने से सब ही जल कर मर जावेंगे तो बड़ा अनर्थ होगा। परन्तु फिर विचारा कि मेरे कहने से तो ये मानेंगे नहीं। चलो पहिले भी अनेक पाप किए ही हैं यह भी उनके साथ ही सही। इस समय इनको मारकर गांव के अनेक जीवों को बचालूँ। ऐसा विचार कर चुपके से पीछे की ओर से उनको उस लष्टिका से मार डाला और लष्टिका को अपने पास रख कर सो रहा। जब प्रातःकाल उठ कर देखा तो उस लष्टिका से शाखें निकली हुई पाई अब विचारने लगा कि महात्मा जी ने कहा था कि जिस स्थान पर लष्टिका हरी हो जावे तो वापिस आ जाना इससे अब मेरी आगे जाने की कोई आवश्यकता नहीं रही। यह विचार कर उसी स्थान से लौट आया और महात्मा के पास आकर लष्टिका रखदी और दण्डवत् प्रणाम करके बैठ गया, तब महात्मा ने कहा कि तुझको तीर्थ यात्रा करने के लिए भेजा था तू वापिस क्यों आ गया? तो उसने कहा महाराज जी! आपने कहा था कि "जिस स्थान पर लष्टिका हरी हो जावे वहां से लौट आना। सो लष्टिका हरी हो गई है। महाराज ने पूछा "हरी कैसे हुई" तब उसने सब वृतान्त कह सुनाया। महात्मा ने कहा "तेरे पापों से यह पुण्य बढ़ गया है।' इससे लष्टिका-हरी हो गई है क्योंकि तूने दो अत्याचारी पुरुषों को मार

कर अनेक जीवों की रक्षा की है इससे तेरा पुण्य बढ़ गया है" तब उसको उपदेश दिया देखो यह सब दया का ही प्रताप है। धर्म करने के लिए अनेकों साधन किए जाते हैं परन्तु धर्म का मूल यह "दया" ही है।

दो०—दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लगि घट में प्रान॥

चौ०—उपजै धर्म वाक्य सत कर अति, दया दान कर धर्म बधै निति। स्थिति धर्म क्षमा के संगा, धर्म क्रोध करि होत विभंगा॥

भा०—क्रोध करने से कैसे धर्म का नाश होता है और दया करने से कैसे धर्म बढ़ता है ? इस पर संक्षेप से लिखा है। एक राजा शिकार के लिए जंगल में गया। आगे एक साधु धूनी तप कर भजन कर रहा था। राजा ने घोड़े से उतर कर नमस्कार की और बैठ गया; फिर पूछा "महाराज जी ! आप कब से यहां पर बैठे हैं और कब तक बैठना है ?" उसने कहा "सात वर्ष हो गए हैं, पांच वर्ष और बैठने का विचार है। मैंने प्रण करके यह सूखा खूंटा गाड़ा है कि जब यह हरा होगा तो मैं समझ लूंगा कि अब मेरी भक्ति ईश्वर को स्वीकार हो गई है।" राजा ने पूछा "कुछ हरा भी हुआ है" साधु ने कहा कि उँगली के पोरे समान शाखा निकली है। यह सुन कर

राजा को भी भक्ति करने की इच्छा हुई फिर उस साधु से कहने लगा "मैंने दुनियाँ के बहुतेरे सुख भोगे हैं अब मेरा भी विचार हो गया है कि मैं भी ईश्वर भजन करके अपना जन्म सफल करूँ" ऐसा कह-कर वह राजा भी आधा मील की दूरी पर अपनी बर्छी गाड़ कर यह प्रण करके बैठ गया कि जब यह हरी होगी तब मैं उठूँगा और यह समझूँगा कि मेरी तपस्या ईश्वर को स्वीकार हो गई है। जब भक्ति करते २ आठ दिन हो गए तो रात के समय आँधी और वर्षा आरम्भ हो गई कुछ यात्री मार्ग भूल कर दुःखी हुए उस ओर भटक रहे थे। उनकी दृष्टि एक चमकती हुई धूनी पर पड़ गई। यात्रियों ने वहाँ पहुँच कर विनती करी कि हे महाराज! हम यात्री मार्ग भूल गए हैं और शीत से बड़े दुखी हो रहे हैं। आप इस स्थान से परिचित हैं कृपा करके हमें किसी ग्राम का मार्ग बता दीजिये यह सुनकर साधु बड़े क्रोध से बोला "क्या हम तुमको मार्ग बतलाने के लिए यहाँ बैठे हैं? हमारे भजन में तुमने विघ्न डाला है। अभी यहाँ से चले जाओ" यह सुन कर उन यात्रियों को आगे से भी अधिक दुःख हुआ और निराश हो गये इतने में उस राजा की धूनी चमकी तब यात्रियों ने सोचा अब दूसरी ओर चलें कदाचित् उसके मन में ही दया आ जावे और हमको मार्ग बतलादे। चलते २ वहाँ पहुँचे

और विनती की कि हे सन्त! हम यात्री हैं शीत से बडे दुःखी हो रहे हैं और मार्ग भूल गए हैं आप कृपा करके हमको किसी ग्राम का मार्ग बता दीजिए। तब राजा ने (जो सन्त रूप में था) सत्कार से कहा "आओ मित्रो मैं आपके साथ जाकर पहुँचा आता हूँ" क्योंकि ईश्वर भक्तों के ऐसे लक्षण कहे हैं। ॥ दोहा ॥

हँस बोले आदर करे, आवत देख अतीत।
तुलसी ताहि पिछानिये, परमेश्वर की प्रीत ॥१॥
परमेश्वर के भगत की, प्रथमै यही पिछान।
आप अमानी होय रहे, देत और को मान ॥२॥

ऐसे प्रेम मय वचन सुनकर उनका चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ और आधा दुःख उनका उसी समय दूर हो गया राजा सन्त उनके साथ चल पडा और शहर में मुसाफिर खाने के अन्दर ले जाकर फिर उनको आग जलादी और उनके कपडे भी सुखा दिये इसप्रकार की सेवा देख वे बड़े प्रसन्न हुए। इतने में प्रातःकाल हो गया तो राजा (सन्त) उन यात्रियों से आज्ञा लेकर जब लौटकर अपनी धूनी पर आया तो क्या देखता है कि बर्छी हरी भरी होकर लहलहा रही है। वह सोचने लगा कि आज रात को अमृत वर्षा हुई है जिससे यह बर्छी हरी भरी हो गई है चलें उस महात्मा का खूंटा भी देखें वह भी तो हरा हो

गया होगा। राजा सन्त ऐसा विचार कर उस साधु के पास गया और जाकर कहा कि महाराज! आपका खूंटा हरा होने की बधाई हो आगे से साधु ने कहा कि मेरे से विलास क्यों करते हो क्या तुम्हारी बर्छी हरी हो गई है? उत्तर में राजा ने कहा हां महाराज जी! इसीलिए तो मैंने आपको बधाई दी है। परन्तु आपने इस बात को विलास समझा है आप अपना खूंटा देखिये तो सही मेरा विचार है आपका खूंटा भी अवश्य ही हरा हो गया होगा क्योंकि रात को अमृत की वर्षा हुई है। उस साधु ने जब कपड़ा उठा कर देखा तो जो शाख पहिले हरी भरी निकली हुई थी वह भी जल करके राख हो गई है। ऐसा देख कर वह साधु रुदन करने लगा और राजा-सन्त से कहा कि तुमने आज ऐसा कौनसा काम किया है, जिससे तुम्हारी बर्छी हरी भरी हो गई है। तब राजा सन्त ने रात्रि के यात्रियों वाला सारा प्रकरण सुना दिया यह सुन कर वह सन्त बोला कि वह यात्री पहिले मेरे पास आये थे। मैंने उनके ऊपर क्रोध किया। तब राजा (सन्त) बोला कि तेरे तप का नाश होने का यही कारण है। जो तुमने उनका दिल दुःखी किया।

प्र०—मन सन्तोष सर्व जी दया, इन विधि वर्त सम्पूर्ण गया।

दिल में अगर रहम नहीं सारी इबादत बेकार।

दिल में अगर रहम नहीं सारी रिआजत (तप) वेकार ॥
कभी रहमत और बरकत नहीं पायगा।
जो किसी का दिल दुखायगा तो सजा पायगा ॥
दर्द वन्द दर्वेश है वेदरद कसाई
दया जाने जीव की किछ पुन दान करे।
आसावार पृ० ४६८
सिर की शोभा दूर कर चीन्हों आतमराम।
साठ कोस मक्का मिलो देख दया के काम ॥

१८ ❀ कृपण निन्दा ❀

जिउ मधु माखी संचै अपार, मधु लिनो मुख दीनी छार।
गउ बाछ कउ संचै खीर, गला बाँध दुहि लेय अहीर ॥
माया कारन स्रम अति करै, सो माया लै गाडे धरै।
अति संचै सूझै नहीं मूढ़, धन धरती तन होय गयो धूड़ ॥
सारङ्ग नामदेव पृ० १२५२

जैसे मधु मक्खियाँ शहद को एकत्र करती हैं तो शहद के उतारने वाले उनको धुआँ देकर शहद निकाल लेते हैं या जैसे गऊ बछड़े के लिए दूध एकत्र करती है परन्तु बछड़े का गला बाँधकर अहीर दूध दुह लेते हैं। वैसे ही कृपण धन के अर्थ श्रम अर्थात् अनन्त कठिनाइयां उठा कर धन एकत्र करता है फिर उसको पृथ्वी में गाड़ देता

है इसका फल यह होता है कि अन्त में वह धन पृथ्वी में ही गड़ा हुआ रह जाता है और मिट्टी के साथ मिट्टी हो जाता है।

अन्त काल जो लक्ष्मी सिमरै ऐसी चिन्ता महि जे मरै।
सर्प योनि वलि वलि उतरै॥ त्रिलोचन पृ० ५२६

पुनः-ख्रमहि धन राखन कउ दीआ मुगध कहै धन मेरा।
जम का दण्ड मुँड में लागै खिन महि करै निबेरा॥
आसाकबीर पृष्ट ४७९

जैसे एक कृपण न आप खाता था न दान देता था। उसके पुत्र सत्संग में जाने लगे तो कुछ दिन पीछे उनको विचार हुआ कि हमारा पिता धन के साथ अति प्यार करता है पुण्य दान कुछ करता नहीं यह इसके किस काम आवेगा ? पिता से बोले आपको ईश्वर ने इतना धन दिया है इससे कुछ-लाभ उठाना चाहिए। लड़कों ने कहा कुछ पुण्यदान तथा ईश्वर भजन किया करो जिससे परलोक सुधरे और मनुष्य जन्म सफल हो। ऐसा उन्होंने कई बार कहा परन्तु उसका चित्त न तो दान करने को चाहे न भजन करने को। लड़कों ने विचार किया कि पिता का चित्त तो दान करने को नहीं चाहता परन्तु फिर भी यह हमारे पिता हैं इसलिए हमें चाहिए कि किसी न किसी प्रकार इनके धन को अच्छे काम में लगायें। एक दिन कुछ

रुपये पृथ्वी पर रख कर ऊपर एक बोरी गेहूं की डाल कर कहा "पिताजी! आज शुभ दिन है इस गेहूं का संकल्प करदें" वह गेहूं के दानों पर बैठ कर कहने लगा कि यह कैसे सुन्दर दाने हैं घर के खाने के योग्य हैं। ऐसा कहते २ उसका हाथ नीचे रुपयों पर जा पडा तो वह क्रोधित होकर लडकों को गालियां देने लगा और कहने लगा "तुमको कमाना पडे तो पता चले मेरे कमाए हुए धन को लुटाने लगे हो"। ऐसे ही गालियाँ देते हुए दुकान पर चला गया। अभी दो दिन हुये थे कि वह निमूनिया से बीमार होकर मर गया। उसके सत्सगी लड़के विचार करने लगे कि हमारा कर्तव्य है इनकी गति वास्ते हरिद्वार में जाकर इनका दाह संस्कार और कुछ पुण्य दान करें। उन्होंने अति सुन्दर विमान बनवाया और उसमें मृत देह को लेकर चल पडे सामान के लिए एक घोडी साथ ले ली रात्रि को एक गांव के समीप की धर्मशाला में विश्राम किया। उसी रात्रि को गांव का एक पागल मनुष्य सर्दी से पीडित हो धर्मशाला में आया और अन्दर घुसा ही था उसके पाँव के साथ विमान का स्पर्श हुआ उसने कपडा हटा कर देखा तो मुर्दा पड़ा है। उसको बाहर फेंक कर आप उसकी जगह विमान में सो गया जब प्रातःकाल लड़के उठे तो उन्होंने जल्दी से विमान अपने कन्धों पर

उठा लिया। अन्धेरे के कारण उन्हें कुछ पता न लगा और पागल को उठा कर ले चले। वह झोकों के सुख से बीच ही पड़ा रहा। जब लड़कों ने विमान गंगा तट पर जाकर रक्खा तो पागल उठ कर बैठ गया। लड़के बोले तुम कौन हो? उत्तर में वह बोला तुम कौन हो? इतना कहते ही उठ कर चला गया। लड़कों ने सोचा कि हमारे पिता ने ही यह रूप धारण किया है या कोई और कारण है धर्मशाला में चल कर देखें। तब एक लड़का घोड़ी पर सवार होकर वापिस गया तो क्या देखता है कि मृत देह वहां पड़ी हुई है और दुर्गन्ध आ रही है। पूछने पर मालुम हुआ कि वह मनुष्य इस गॉव का एक पागल था। तब वह मृत देह को घोड़ी पर बॉध कर ले चला जब हरिद्वार के पास पहुंचा तो घोड़ी डरी और सवार को गिरा तथा मृत शरीर को लेकर घर पहुँच गई। उसके भाई बन्धुओं ने सोचा अब हरिद्वार ले जाने में कठिनाई होगी और दुर्गन्धी भी बढ़ जावेगी। इसलिए यहाँ ही इसका दाह संस्कार कर दिया जावे तो अच्छा है। उन्होंने उसी स्थान पर दाह संस्कार करके फूल चुन कर रख लिए। लड़के भी हरिद्वार से आगए उन्होंने विचारा कि व्यवहार की प्रबलता से अब हमारा जाना कठिन है। इन फूलों को अपने पुरोहित के हाथ हरिद्वार भेज देवें। वही हमारे पिताजी के

फूलों को गंगाजी में प्रवाह करके भण्डारा कर आवेंगे। पुरोहित जी को बुला कर कहा कि यह पाँच हजार रुपया है। इससे हमारे पिता के नाम पर भण्डारा करा देना और यह सौ रुपया तुम अपने दान पुण्य खर्च के लिए ले जाओ। पुरोहित जी रुपया और फूल लेकर जब गाँव के बाहर निकले तो मन में सोचा कि हमारे घर में धन की आवश्यकता है इससे यह सौ रुपया घर दे जाऊँ अपना खर्च इस पांच हजार में से ही निकाल लूँगा। उसने फूल तो एक वृक्ष के साथ लटका दिये और आप घर चला गया उस गांव का एक हरिजन उस रास्ते से निकला उसने एक रूमाल वृक्ष के साथ लटकता हुआ देखा खोला तो उसमें अस्थियां थीं। उनको फैला दिया और रूमाल घर ले जाकर अपने लड़के के सिर पर बांध दिया जब पुरोहित जी घर में रुपये देकर लौटे तो फूलों वाला रूमाल वहां नहीं पाया। उनको बड़ा आश्चर्य हुआ और सोचा "यदि मैं लौटकर यह बात बतलादूं तो अप्रसन्नता होने का भय है। इससे हरिद्वार चलकर भण्डारा ही करादूं। लौट. कर कह दूंगा कि फूल प्रवाह कर दिये हैं। यह विचार कर हरिद्वार चले गए। दूसरे दिन बच्चे सहित वह हरिजन उस साहूकार के घर सफाई करने को गया तो उन्होंने अपना रूमाल पहिचान लिया। भंगी से पूछा तो उसने

सारा हाल कह सुनाया तब उनको बड़ा खेद हुआ और पुरोहित जी के आने पर पूछा कि फूल कैसे पहुँचाये। वह जान गये कि इनको पता लग गया है। उत्तर दिया "हे राजरान्! जब आठ दस मनुष्यों से आपके पिता हरिद्वार न पहुंचे तो मैं कैसे पहुंचा सकता था उन्होंने विचार किया कि इसमें किसी का दोष नहीं हमारे पिताजी ने अपने हाथों से ही दान पुण्य नहीं किया। इसीलिए उनका मृत शरीर भी खराब हुआ इससे यह भी अनुमान हो सकता है कि वह आगे भी दुःख ही पावेंगे।

कृपण (सूम) की माया किसी काम नहीं आती। एक कृपण के पास बहुत माया थी वह अपना निर्वाह भी कंजूसी से करता था और माया से ऐसा कहता था—

दाता के गृह जाती तो कदर हूं न पाती।
अब मेरे गृह आइ है बधाई बाँट बाँवरी॥
खाने दर खाने बीच तुझको निवास देऊँ।
होइ न उदास एहो मेरे मन चा ओरी॥
खाऊँ न खिलाऊँ मर जाऊँ तो सिखाय जाऊँ।
पुत्र और नाती को आपनो सुभाउ री॥
चमड़ी उतारे तो भी दमड़ी न देऊँ किसे।
सूम भाषे माया को तू बैठी गीत गाउरी॥

जब उसका शरीर शान्त हुआ तो लोगों ने सोचा कि इसने

अपने हाथ से दान नहीं किया, इसके धन को हम दान करदें। इन्होंने साधु ब्राह्मणों को न्यूँता देकर बड़ा भारी कड़ाहा खस्मै बनाने को रक्खा एक चील मृत सांप को पकडे हुए आकाश में उड़ती हुई निकली तो उसके पंजे से सर्प निकल कर कड़ाहे में जा पड़ा। खस्मै तय्यार होने पर साधु तथा ब्राह्मणों को भोजन खिलाने के लिए पंक्ति बिठाई गई परोसते २ कड़ाहे में से मरा हुआ सर्प निकल आया। तब वह खस्मै किसी ने न खाई। सबकी सब पृथ्वी में गाड़ दी। तातें सिद्ध हुआ कि जो सूम पुरुष अपने हाथ से दान पुण्य नहीं करता उसका धन मरने के पीछे भी व्यर्थ ही जाता है। देखो सूम पुरुष किस प्रकार दुःख पाता है।

एक धनी पुरुष एक बार जंगल में गया। वहां फल सहित खजूर का पेड़ देख कर विचार किया कि शहर में तो इन पर पैसे खर्च करने पड़ते हैं यहाँ से तोड़ कर खालूँ। कुछ बच्चों के लिए घर ले जाऊँ। वह खजूर पर चढ़ कर फल तोड़ कर खाने लगा। पेट भरने पर जब नीचे पृथ्वी पर दृष्टि पड़ी तो ऊँचाई देख कर चित्त में भय हुआ कि कहीं गिर न पड़ूँ ऐसा सोच कर अपने मन में संकल्प किया कि हे देवी माता! यदि मैं इस पेड़ से सकुशल नीचे उतर गया तो आपको सौ रुपये भेंट करूँगा।

नीचे आने पर विचार आया कि सौ रुपये का बहुत बड़ा संकल्प कर बैठा हूँ। ऐसी चिन्ता करता हुआ घर आ रहा था तो मार्ग में उसे एक सूम मित्र मिला। उसके पूछने पर उसने सब समाचार खजूर के पेड़ पर चढ़ने का और संकल्प करने का कह सुनाया। तब उसने कहा कि देवी को प्रसन्न करना सुगम है। एक नारियल लाल कपड़े में लपेट कर देवी की भेंट करादो वह प्रसन्न हो जावेगी सूम बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि हे मित्र ! आपने मुझे बहुत अच्छी बात बताई है, ऐसा ही करूँगा। दूसरे दिन प्रातःकाल उठ कर वह बाजार में नारियल खरीदने गया, दुकानदार से नारियल का मोल पूछा उसने तीन पैसे कहे सूम बोला कि ठीक २ कहो मुंह माँगी तो मौत भी नहीं मिलती जब बहुत झगड़ा करने लगा तो दुकानदार ने कहा कि शहर के बाहर हमारी दुकान है वहां से दो पैसे का ही मिल जावेगा तुम वहाँ से ले लो। सूम ने कहा कोई बड़ी बात नहीं यहां से एक मील का ही अन्तर है मैं वहां से ले लूंगा। बाहर की दुकान पर पहुँचा और कहा "नारियल का क्या लोगे ? दुकानदार बोला कि 'दो पैसे' उससे भी कहा कि कुछ कम करो। दुकानदार उसका परिचित था। उसने सोचकर कहा कि यह सिर खपाई करेगा। कहा कि हम बाग में से उठाकर लाते

हैं यदि मन्दा लेना है तो वहां चला जा वहां हमारा साथी है वह एक पैसे में देदेगा। तब बाग में पहुंच कर उसने नारियल का मोल पूछा उसने एक पैसा कहा। फिर सूम ने कम करने को कहा वह बोला कि वृक्ष पर चढ़ कर तोड़ लो तो पैसे के दो मिल जावेंगे सूम ने सोचा कि ऊपर चढ़ कर तोड़ लेने में क्या हानि है? एक देवी को भेंट चढ़ाऊँगा एक बाल बच्चों के लिए घर ले जाऊँगा। वह पेड़ पर चढ़ गया, देखा कि एक ओर छोटे २ और दूसरी ओर बड़े २ नारियल हैं परन्तु जिस ओर बड़े २ हैं उनके नीचे कुआ है जब और आगे बढ़ा तो नीचे की शाख टूट गई ऊपर की टहनी जिसको नारियल तोड़ने के लिए पकड़ा था वह हाथ में रह गई तो वह दोनों को भाई लटकने लगा और उसी मनुष्य से कहा 'हे भाई! मेरी सहायता कर' उसने कहा मैं क्या कर सकता हूँ? मेरा हाथ वहां तक नहीं पहुँच सकता। सूम ने कहा सौ रुपया लेले और किसी प्रकार मुझे नीचे उतार ले। तब वह बोला भाई मुझसे तो यह काम नहीं हो सकता। सूम ने बढ़ते २ पान सौ तक कहा तब उसके मन में भी लोभ जागा और विचारने लगा कि गांव से कोई आदमी बुलाकर उतार दूँ। जब बाग से बाहर निकला तो एक ऊँट वाले को देखा और उससे कहा हे भाई एक साहूकार नारियल लेने के

लिए वृक्ष पर चढ़ा हुआ है परन्तु जिस शाखा पर चढ़ा था वह टूट गई है। अब वह टहनी के साथ लटकता हुआ प्रार्थना कर रहा है। यदि हम उसे उतार लें तो ५००) तक देदेगा। वह रुपये हम आपस में आधे २ बांट लेंगे। ऐसा सुन कर उसने ऊँट को लाकर कुए के पनघट पर खड़ा कर दिया और उसका पांव बाँध कर दोनों उस पर चढ़ गए जब सूम को हाथ डाला तब ऊँट को मक्खी ने काटा तो वह कूद पड़ा और सब ऊँट समेत कुए में गिर पड़े। सूम और दोनों लोभियों की मृत्यु हुई।

दो०— मक्खी बैठी शहद पै, पंख गये लपटाय।
उड़ने की चिन्ता पड़ी, लालच बुरी बलाय॥

सूम और लालचियों का स्वभाव ऐसा ही हुआ करता है। चाहे कितना ही धन होवे वह दुखों को सहन करते रहते है परन्तु धन खर्च करने को उनका चित्त नहीं चाहता।

एक सूम अपने पुत्र और स्त्री को समझाता है।
पन्द्रह करोड़ दश लाख सो हजार चारें।
एता धन होते सूम आखे कैसे खायेंगे॥
पुत्रों को कहे ल्यो मूँज और बटो बान।
रात के निर्वाह के लिए मोल बदल लावेंगे॥
कल एक दाना चींटी ले गई थी चुपके से।
उसके शोक से ही हम रोटी न पकावेंगे॥

गिर गया तेल सूम सिर में थसावे लोगो।
एता नुकसान हम कैसे पूरा करेंगे॥
सूमनि को सूम कहे, कहो तो अकल मुझे।
दीपक के बिना जैसे जावे है अन्धेरा नी॥

सो इतना धन पाकर भी सूम न आप सुख भोग सकता है न किसी दूसरे को सुख पहुंचा सकता है सूम के धन की निष्फलता पर नीति में भी लिखा है यद्यपि खारे जल का समुद्र बड़ा गहरा होता है तो क्या किसी की प्यास दूर कर सकता है। जो नदी चल रही है यद्यपि उसका जल घुटने प्रमाण है वह श्रेष्ठ है क्योंकि स्त्री पुरुष मृगादिकों की तृषा निवृत कर सकती है। वैसे दान करने वाला चाहे छोटा धनी पुरुष है तो भी बड़े धनी से श्रेष्ठ है। क्योंकि उसके द्वारे से याचक खाली नहीं जाता है जिस पुरुष के पास धन का खजाना है और भिक्षुक खाली जाते हैं वह धन क्या चुनती छत के नीचे धरना है? वह धन दान के बिना निष्फल है।

सिमल रुख सराइआ अति दीरघ अति मुच।
ओह जे आवहि आसकरि जाहि निरासेकित॥
फल फिके फुल बकबके कम न आवहि पत्त।
मिठत नीवी नानका गुण चंगीआइआ तत॥२॥
वार आशा म० १ पृ० ४७०

सेमल का वृक्ष बड़ा सीधा ऊँचा और मोटा होता है परन्तु उस पर जो पक्षी फल की आशा करके आते हैं वे निराश हो चले जाते हैं। क्योंकि उसके फल फीके और फूल निरस होते हैं पत्ते भी उसके काम में नहीं आते। वेरी यद्यपि नीची है तथापि उसके फल मीठेपन का गुण है और छाया भी है इससे जो पक्षी आते हैं वे उसके फल पत्तों को खाकर प्रसन्न होते हैं। वैसे ही जो पुरुष बड़ा लम्बा, सुन्दर, जवान और धनी है परन्तु उसके पास से याचक निराश जाते हैं तो उसका धनी होना व्यर्थ है। क्योंकि एक तो उसकी वाणी में रस न होने से किसी का सत्कार नहीं करता। दूसरा वह किसी को दान भी नहीं देता है इससे तो वह किञ्चित सम्पत्ति वाला ही अच्छा है, जिसमें नम्रता और मीठा स्वभाविक गुण है और बाँट कर खाता है जिस समें याचक आता है और खाली नहीं जाता।

> बड़ा हुआ तो. क्या हुआ, जैसे बड़ी खजूर।
> पंछी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर॥
> आँख शर्म गई जब, तो ऐसी नार क्या ?
> अपना मतलब किया, तो ऐसा यार क्या ?
> रण में कत्ल ना. किया, तो हाथ तलवार क्या ?
> पात्रको दान ना दिया, ऐसा धन मार क्या ?

करि करि अनरथ विहाझी संपै सुइना रूपा दामा।
भाड़ी कउ उह भाड़ा मिलिआ होर सगल भइउ वैराना॥
गुज० म० ५-पृ ४६७

जो सूम धन को एकत्र करके बिना दान किये मर जाता है। वह दु.ख पाता है जो धन कमा कर शुभ कार्य में खर्च करते हैं वह आनन्द लेते हैं।

खोजत खोजत मूसा मर गिआ, मौज लई भुजंगे नें।
दुनियाँ धंधे पच पच मर गई, मौज लई सत संगे नें॥
संचित संचित माखि मर गिआ, मौज लई औरंगे नें।
जोड़त जोड़त कृपण मर गिआ, मौज लई वरतंगे नें॥

सिद्ध हुआ कि जिज्ञासु कृपणता का त्याग करके उदारता को धारण करे।

श्री दुर्वासा ऋषि भक्त अम्बरीष की शरणागत हुए।

१६—※ शरणागत प्रकरणम् ※

प्र०नं० १—न धर्मनिष्ठोऽस्मि न चात्म वेदी,
न भक्तिमांस्त्वच्चरणारविन्दे।
अकिञ्चनोऽनन्यगतिः शरण्यम्,
त्वत्पादमूलं शरणं प्रपद्ये ॥आलवन्द स्तोत्र॥

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददामीति व्रतं मम॥

असरण सरण विरदु संम्भारी ।
मोहि जानि तजहु भगत हितकारी ॥
सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥
त्वं माता त्वं पिता चैव त्वं गुरुः त्वं च बान्धवा ।
अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ॥
सर्व काम समृद्धस्य अश्वमेधस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सम्यग् रचिते शरणागते ॥
जिस पापी को मिले न ढोई, शरण आवे ना निर्मल होई ।
जप-तप संयम धर्म ना कमाया, सेवा साधु न जानया हरिराया ॥
कहो नानक हम नीच करमाँ, शरणपरे की राखो शरमा ।
प्रत्याख्यातो निरिश्चेन विष्णु च क्रोप तापितः ।
दुर्वासाशरणं यातः सर्वं कैलाश वासिनम् ॥५५॥

टीका—जब ब्रह्मा जी ने दुर्वासा ऋषि को निराश कर दिया तब भगवान् के चक्र से सन्तप्त होकर वे कैलाश वासी भगवान् शंकर की शरण में गये ॥५५॥

तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषं हिनः ।
तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥५६॥

टी०—यह चक्र विश्वेश्वर का शस्त्र है, यह हम लोगों के लिये असह्य है, तुम उनकी शरण में जाओ, वे ही तुम्हारा मंगल करेंगे ।

ये दारागार पुत्राप्तान् प्राणान वित्तमिमं परम् ।
. हित्वा मां शरणं याताः कथंतौंस्त्यक्तुमुत्सहे ॥

टी०—जो भक्त स्त्री, पुत्र, गृह, गुरुजन, प्राण, धन इस लोक और परलोक सब को छोड़कर केवल मेरी शरण में आता है उन्हें छोड़ने का सङ्कल्प भी मैं कैसे कर सक्ता हूँ ?

मयिनिर्बद्ध हृदया साधवः समदर्शनाः ।
वशी कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिंयथा ॥

टी०—जैसे सती स्त्री अपने पतिव्रत्य से सदाचारी पति को वश में कर लेती है वैसे ही मेरे साथ अपने हृदय को प्रेम बन्धन से बाँधकर रखने वाले समदर्शी साधु भक्ति के द्वारा मेरे को अपने वश में कर लेते हैं ।

कथा नं० २—विभीषणो महाभागश्चतुर्भिर्मन्त्रिभिः सह ।
आगत्य गमने रामसम्मुखे समवस्थितः ॥

महाभाग विभीषण अपने चार मन्त्रियों के सहित आकर आकाश में श्री रघुनाथ जी के सामने उपस्थित हुए और कहने लगे हे कमल नयन प्रभोराम ! मैं आपकी भार्या का हरण करने वाले रावण का छोटा भाई हूँ, मेरा नाम विभीषण है । मुझे भाई ने निकाल दिया है इसलिए मैं आपकी शरण आया हूँ हे देव ! मैंने उस अज्ञानी के हित की बात कही थी । उससे बार बार कहाकि तुम विदेहनन्दिनी सीता को रामके पास भेजदो तथापि कालके

वशीभूत होने के कारण वह कुछ सुनता नहीं है। इस समय वह राक्षसाधम मुझे तलवार से मारने के लिए दौड़ा तब मैं भय से तुरन्त ही अपने चार मन्त्रियों के सहित संसार-पाश से मुक्त होने के लिए मैं मुमुक्षु होकर आप की ही शरण में चला आया हूँ। विभीषण के ये वचन सुनकर सुग्रीव ने कहा, हे राम! इस मायावी राक्षसाधम का कुछ विश्वास न करना चाहिए, यदि कोई और होता तब कोई विशेष चिन्ता की बात नहीं थी किन्तु यह तो सीता का हरण करने वाले रावण का ही छोटा भाई है और वैसे ही बहुत बलवान दिखाई देता है। यह अपने सहस्र मन्त्रियों के साथ किसी समय एकांत में हमें मार डालेगा। अतः हे प्रभो! मुझे आज्ञा दीजिए मैं इसे वानरों से मरवा डालूँ, हे प्रभो! मुझे तो ऐसा ही पता लगता है आपका इस विषय में क्या विचार है, सो कहिए। सुग्रीव के वचन सुनकर श्री रामचन्द्र ने मुस्कराकर कहा—हे कपि श्रेष्ठ! यदि मेरी इच्छा हो तो मैं आधेनिमेस में ही लोक पालकों के सहित सम्पूर्ण लोकों को नष्ट कर सकता हूँ अतः इस राक्षस को अभय दान देता हूँ तुम इसे शीघ्र ही ले आओ। मेरा यह नियम है कि जो एक बार भी मेरी शरण आता है और तुम्हारा हूँ ऐसा कह कर मुझ से अभय दान माँगता है उसे मैं समस्त प्राणियों से निर्भय

कर देता हूँ। रामचन्द्र के इन वचनों को सुनकर सुग्रीव ने अति प्रसन्नचित्त से विभीषण को लाकर उनसे मिलाया। विभीषण ने उनको साष्टाङ्ग प्रणाम् किया और हर्ष से गद्-गद् कण्ठ हो परम भक्ति पूर्वक हाथ जोडकर शान्तिमूर्ति प्रसन्न वदनारविन्द विशाल नयन श्याम सुन्दर धनुर्बाण-धारी भगवान् रामकी लक्ष्मण जी के सहित स्तुति करनी आरम्भ कर दी। विभीषण बोला हे राजराजेश्वर राम! आपको नमस्कार है। हे सीता के मन में रमण करने वाले आपको नमस्कार है। हे प्रचण्ड धनुर्धर आपको वारम्वार नमस्कार है। हे भक्तवच्छल! आपको नमस्कार है। हे अनन्त अतुलतेजोमय सुग्रीवसखा रघुकुल नायक भगवान् राम आपको नमस्कार है। जो संसार की उत्पत्ती और नाशके कारण हैं, त्रिलोकी के गुरु और अनादि कालीन ग्रहस्थ हैं उन महात्मा राम को नमस्कार है। हे राम! आप संसार की उत्पत्ती और स्थिति के कारण हैं तथा अन्त में आप ही उसके लयस्थान हैं आप अपनी इच्छानुसार विहार करने वाले हैं हे राघव! चराचर भूतों के भीतर और बाहर व्यापक रूप से आप विश्वरूप ही भास रहे हैं। आपकी माया ने जिनका सदासद्विवेक हर लिया है वे नष्ट बुद्धि मूढ़ पुरुष अपने पाप पुण्य के वशीभूत होकर संसार में आते जाते रहते हैं। जब तक मनुष्य एकाग्रचित्त से

आपके ज्ञानस्वरूप को नहीं जानता तभी तक सीपी में चाँदी के समान यह संसार सत्य प्रतीत होता है। हे विभो! आपको न जानने से ही लोग पुत्र स्त्री और गृह आदि में आसक्त होकर अन्त में दुःखदायी विषयों में सुख मानते हैं। हे पुरुषोत्तम! आपही इन्द्र, अग्नि, यम, वरुण और वायु हैं आपही कुवेर और रुद्र हैं। हे प्रभो! आप अणु से अणु हैं और महान् से महान् हैं तथा आप ही समस्त संसार के माता-पिता व दाता धाता (धारण-पोषण करने वाले) हैं। आप आदि मध्य अन्त से रहित सर्वत्र परि-पूर्ण अच्युत और अविनाशी हैं आप हाथ पाँव से रहित नेत्र तथा कर्ण हीन हैं। तथापि हे खरान्तक! आप सब कुछ देखने वाले हैं सब कुछ सुनने और सब कुछ ग्रहण करने वाले और बड़े वेगवान् हैं। हे प्रभो! आप अन्नमय आदि पाँचों कोशों से रहित तथा निर्गुण और निराश्रय है। आप निर्विकल्प, निर्विकार और निराकार हैं आपका कोई प्रेरक नहीं है (आप उत्पत्ति, वृद्धि, परिणाम, क्षय, जीर्णता और नाश इन) छः भाव विकारों से रहित हैं तथा प्रकृति से अतीत अनादि पुरुष हैं। माया के कारण ही आप साधारण मनुष्य के समान प्रतीत होते हैं। वैष्णव जन आपको निर्गुण और अजन्मा जानकर मोक्ष प्राप्त करते हैं हे राघव! हे प्रभो मैं आपके चरण-कमल की

विशुद्ध भक्ति रूप सीढ़ी पाकर ज्ञानयोग नामक राजभवन के शिखर पर चढ़ना चाहता हूँ। हे कारुणिक श्रेष्ठ सीता पते राम ! आपको नमस्कार है हे रावणारे ! आपको वारम्वार नमस्कार है आप इस संसार सागर से मेरी रक्षा कीजिए। तव भक्तवत्सल भगवान राम प्रसन्न होकर बोले—विभीषण ! तेरा कल्याण हो, मैं तुझे वर देना चाहता हूँ अतः तेरी जो इच्छा हो वही वर मांगले। विभीषण बोला—हे रघुनन्दन मैं तो आपके चरणों का दर्शन पाकर ही धन्य और कृत कृत्य हो गया हूँ मुझे जो कुछ पाना था सो मिल गया अब तो मैं निःसन्देह मुक्त हो गया हूँ। हे राम आपकी मनोहर मूर्ति का दर्शन करने से आज मेरे समान धन्य और पवित्र कोई नहीं है अब इस संसार में किसी भी प्रकार मेरी समता करने वाला कोई नहीं है। हे रघुनन्दन कर्म बन्धन को नष्ट करने के लिए आप मुझे अपनी भक्ति से प्राप्त होने वाला ज्ञान और अपने समर्थ स्वरूप का साक्षात् कराने वाला ध्यान दीजिए। हे राजराजेश्वर राम ! मुझे विषय जन्य सुख की इच्छा नहीं है मैं तो यही चाहता हूँ कि आपके चरण कमलों में सर्वदा मेरी अशक्तिरूपा भक्ति बनी रहे। तव रघुनाथ जी ने तथास्तु कह कर विभीषण से प्रसन्न होकर कहा—भद्र ! सुनो मैं तुमको अपना निश्चय रहस्य सुनाता हूँ। जो

मेरे शान्त स्वभाव से, विरक्त और योग निष्ट भक्त हैं उन के हृदय में मैं सीता के सहित सदा रहता हूँ इसमें सन्देह नहीं। अतः तुम सर्वदा शान्त और पाप रहित रहकर मेरा ध्यान करने से घोर संसार सागर से पार हो जाओगे। पुरुष मुझे प्रसन्न करने के लिए इस स्तोत्र को पढ़ता-लिखता अथवा सुनता है वह मेरा प्रिय सारुप्यपद प्राप्त करता है विभीषण से ऐसा कह कर भगवान् भक्तवत्सल राम जी लक्ष्मण जी से बोले लक्ष्मण! यह अभी मेरे दर्शन का फल देखो। तुम समुद्र से जल ले आओ मैं इसे लङ्का के राज्य पर अभीशिक्त किये देता हूँ। जब तक चन्द्र, सूर्य और पृथ्वी की स्थिति है तथा जब तक लोक में मेरी कथा रहेगी तब तक यह लङ्का राज्य करेगा। ऐसा कह कर श्री रमा-पति ने लक्ष्मण जी से कलश में जल मँगवाया और मन्त्रियों तथा विशेषतः लक्ष्मण जी से उसे लङ्का के राजपद पर अभिशिक्त कराया। उस समय समस्त वानर प्रसन्न होकर धन्य है धन्य है ऐसा कहने लगे, और सुग्रीव ने विभीषण को गले लगाकर कहा—विभीषण! हम सब परमात्मा राम के दास हैं तथापि तुम हम सब में प्रधान हो क्योंकि तुमने केवल भक्ति से ही शरण ली है अब तुम रावण का नाश करने में हमारी सहायता करना। विभीषण बोले मैं परमात्मा राम की क्या सहायता कर सकता हूँ तथापि मुझ

से जैसी कुछ बनेगी निष्कपट होकर भक्तिभाव से उनकी सेवा करता रहूँगा।

प्र० नं० ३—न मामिमे ज्ञातय आतुरं गजा:,
कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम्।
ग्राहेण पाशेनविधातुरावृतोऽप्यहं च,
तंयामि परं परायणम् ॥३२॥

यह ग्राह विधाता की फाँसी है। इसमें फँसकर मैं आतुर हो रहा हूँ। जब मुझे मेरे बराबर के हाथी भी इस विपत्ति से न उबार सके तब यह बेचारी हथिनियाँ तो छुड़ा ही कैसे सकती हैं? इसलिए अब मैं सम्पूर्ण विश्व के एक मात्र आश्रय भगवान् की ही शरण लेता हूँ॥

यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात् प्रचण्डवेगादभिधावतोभृशम्।
भीतंप्रपन्नंपरिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥३३॥

काल बडा बलि है यह साँप के समान बड़े प्रचण्ड वेग से सब को निगल जाने के लिए दौड़ता ही रहता है। इससे अत्यन्त भयभीत होकर जो मृत्यु भी अपना काम ठीक-ठीक पूरा करता है। यदी कोई भगवान् की शरण में चला जाता है, तो वे प्रभु सबके आश्रय हैं। मैं उन्हीं की शरण ग्रहण करता अवश्य ही बचा लेते। उनके भय से भयभीत होकर हैं। श्रीमद्भागवत् अष्टम स्कन्द अ० ३

जबही शरण गही कृपा निधि, गजग्राहते छूटा।

महिमा नाम कहाँ लो वरनो, राम कहित वन्धनते टूटा ॥

गुरुवाणी

कथा नं० ३—शरणागत गजराज—महाभारत व भागवत् और दूसरे पुराणों में कथा विस्तार से लिखी है कि गज व ग्राह दोनों पहले जन्मों में ब्राह्मण भगवत् भक्त थे। ऋषेश्वर के शाप से एक ने शरीर हाथी का दूसरे ने शरीर ग्राह का पाया व पहले जन्म की शत्रुता से इस जन्म में भी संयोग लड़ाई का पहुँचा। इस प्रकार की एक दिन वह गजराज पानी पीने के लिए गण्डका नदी में जहाँ वह ग्राह रहता था गया और ग्राह ने गज का पांव पकड़ लिया। ग्राह अपनी ओर जल में खींचता था और गज अपनी ओर इसी भाँति एक हजार वर्ष तक दोनों लड़ते रहे। अन्त को ग्राह प्रबल पड़ा और गज को नदी में ले चला सूँड मात्र थोड़ा सा डूबने को बाकी था कि गज ने भगवत् की शरण ली। अर्थात् एक कमल नदी में से तोड़कर अपनी सूँड में लेकर भगवत् भेंट किया और पुकारा कि हे हरे! में तुम्हारे शरण हूं। शरणागत वत्सल दीन दुःख भन्जन महाराज.दुःख से भरी हुई टेर सुनते ही विकल होकर गरुड़ पर सवार चक्र फिराते हुए वैकुण्ठ से दौड़े और शीघ्र पहुँचने के हेतु ऐसी विकलता हुई कि जो गरुड़ का वेग मन के बराबर है उसको भी बलहीन समझ

कर छोड़ दिया और पियादेपायन धाये। गज की सूँड ज्यों त्यों बाहर थी कि आन पहुँचे और ग्राह के मुँह पर चक्र मारा कि मुँह उसका कट गया और गज उसकी फाँसी से छुटा।

प्र.नं. ४—दृष्टान्धान्कृपणानव्यङ्गान् अनाथान् रोगिणस्तथा।
दया न जायतेयस्य स रक्ष इति मे मतिः॥

नर अचेत पापते डर रे दीन दयाल सगल भय भञ्जन, शरण ताहे तुम पर रे॥ मनरे प्रभुकी शरण विचारो। यह मस्तृत गनकासी उधरी ताको यस उर धारो॥

न परः पापमादत्ते परेषां पाप कर्मणाम्।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चरित्र भूषणः॥

वाल्मि० काण्ड ६ सर्ग ११३-४२

कथा नं० ४—वाल्मिकी रामायण में सीता हनुमान जी का सम्वाद है। जब पुत्रादियों के सहित रावण को रामचन्द्र जी ने मार दिया तब हनुमान आदियों ने राम जी की आज्ञा से अशोक वाटिका में आकर सीता जी को नमस्कार कर कहा हे माता! जो राक्षसियाँ आपको कष्ट देती थीं, कहो अब उन सबको मार डालें। तब सीताजी ने कहा हे हनुमान! क्षमा, दया और विचार युक्त एक तामसी योनी भालू की कथा सुनो—एक वन में वट का वृक्ष था उसके ऊपर चढ़कर एक भालू रात्रिको सदैव निवास करता था। किसी दिन एक राजा घोड़े पर चढ़कर शिकार

खेलता हुआ उस वन में आ पहुँचा सूर्यास्त हो चुका था रास्ता देखने में नहीं आता था। राजा ने विचारा कि अब इस वन में प्राण रक्षा कैसे करें? तब चारों ओर देखने पर उसे एक वट वृक्ष दिखाई दिया घोड़े को छोड़ कर राजा उस वट वृक्ष पर जा बैठा रात्रि को भालू भी अपने नियमानुसार आकर उसी वट वृक्ष पर चढ़ गया और राजा को देखकर कुछ नहीं बोला। तब अर्ध-रात्रि में सिंह आया वृक्ष पर भालू और पुरुष को देखकर भालू से कहा कि इस पुरुष को नीचे गिरा दो यह अपने वनचरों का विरोधी है और अपना भक्ष है तब भालू ने कहा कि जो अपने स्थान में आ जावे उसकी जैसे-कैसे भी रक्षा करनी चाहिए। यह सुन सिंह चला गया और भालू सो गया तब सिंह आया और पुरुष से कहा इस भालू को नीचे गिरादो नहीं तो तुम्हारे को खा जाएगा। तब पुरुष ने भालू को नीचे गिराने के लिए धक्का दिया त्यों ही उसने जाकर साखा पकड़ ली नीचे नहीं गिरा तब सिंह ने भालू से कहा कि देखो! तुमको इस पुरुष ने नीचे गिराना चाहा। अब तो तुम इसको नीचे गिरा दो आधा हम खालेंगे आधा तुम खा लेना। यह सुन भालू ने कहा जो साधु महात्मा होते हैं वे पाप कर्म करने वाले पुरुष की पाप कर्म की वार्ता को ग्रहण नहीं करते हैं। रक्षा का

समय आने पर पापकर्म वाले भी ग्लनीय होते हैं साधु महात्माओं के ऐसे शुभ चरित्र भूषणरूप हैं अस्तु हे हनुमान जब तामसी योनी भालू का ऐसा चरित्र सुना जाता है तब मैं तो त्रिलोकी नाथ कृपा निधान रामचन्द्र जी की पत्नी हूँ और राक्षसियाँ तामसी स्वभाव की हैं। यदि मैं इनको कष्ट दूँगी तो राक्षसियों से मेरी क्या विशेषता होगी? क्योंकि यह जीव अपने अदृष्ट के अनुसार सुख दुःख को भोगता है? दूसरों को दोष लगाना अच्छा नहीं, मैं राक्षसियों को कष्ट देना नहीं चाहती।

प्र.नं.५–हन्याद्द्विषमपनीतं किन्तु न शरणागत द्विषं हन्यात्।
दीपस्तिमिर विनाशी दलयति नाधोगतं तिमिरम्॥

पांच वरष को अनाथ ध्रु ऊजाबक, हरिस्मृत अमर अटारे।
पुत्र हेतु नारायण कह्यो, जम कङ्कर मार विदारे॥
मेरे ठाकर केते अगनत उधारे ॥१॥
मोहे दीन अलपमत निर्गुण परयो शरण द्वारे।
वाल्मिक सुपचारो तरयो वधिक तरे विचारे॥२॥
एक निमक मन माहे अराधे, गजपत पार उतारे॥३॥
कीनी रक्षा भगत प्रह्लादे हरनाक्स नखे विदारे।
विदर दासी सुतभयो पुनीता, सकले कुल उजारे॥४॥
कौन अपराध बताऊँ अपने, मिथ्यामोह मगनारे।
आयो साम नानक ओट हरकी, लीजै भुजांपसारे।५।

अब हम चली ठाकर पै हार,
जब हम शरण प्रभुकी आयो राखप्रभुभावे मार।१।
लोकन की चतुराई उपमा ते, वैसन्तर जार।
कोई भलाकहो भावे बुराकहो, हमतन दियो है डार।२।
जो आवे शरन ठाकर प्रभु तुमरी, तिस राखो कृपाधार।
नानक शरन तुम्हारी हरजियो, राखो लाज मुरार।३।
देवगन्धारी महला ४ पृष्ठ ५२७

शरणमन्तम् किल विष नासं प्राप्तम् धर्म लब्धयम् पृ. १३५४।
छाड़ मगल सियाणपा साधु शरणी आओ पृ० ५०१ ॥
जाकै मस्तक कर्म प्रभु पाये,
साधु शरणि नानकते आए पृ. २६६।
साधु शरण परे सो उबरे खत्रि,
ब्राह्मण सूद, वैश्य चान्डाल चण्डैया।
सतगुरु आयो शरण तुमारी मिले सुख
नाम हरि सोभा, चिन्ता लाहे हमारी।
अवर न सूझे दूजी ठाहर हार परयो तो द्वारी।
लेखा छोड़ अलेखे छूटे हम निर्गुण लेहो उबारी।
सदबख सिन्द सदा मिहर वाना सभना दे आधारी।
नानक दास सन्त पाछे परयो राखलेहो एह वारी।
कशमीर के ब्राह्मणों की शरणागत रक्षिक गुरु तेग बहादर।
कथा नं० ५—यवन जाति में प्रधान भगत बाबर

नाम का मुसलमान था वह गुरु नानकदेव की शरण पड़ा गुरुजी ने प्रसन्न होकर उसको राज अधिराज बना दिया, वह बाबर राजा से ही गादी पर गादी होते हुए और कुछ समय बाद औरङ्गजेब राजा हुआ, जिसने समस्त ब्राह्मणों, क्षत्रियों को मुसलमान बनाना आरम्भ किया। प्रतिदिन उस समय की जनेऊ और चोटियें उतारी हुई तोली गयी तो एक मन से भी अधिक हुई, इस प्रकार का अत्याचार अनाचार, भ्रष्टाचार बढ़ रहा था। तब ब्राह्मण, क्षत्रियों का परस्पर समेलन हुआ और उसमें भी प्रधान २ लोगों का चुनाव किया गया और मुख २ लोगों को ही श्री अमरनाथ की गुफा में भेजा गया वहां जाकर श्री शंकर की अति घोर तपस्या की अन्ततः शिवजी ने प्रसन्न होकर कहाकि जिस धर्म की रक्षार्थ तुम यहाँ आए हो उस धर्म की रक्षा गुरुनानक की नौमी गादी पर गुरु तेग बहादुर जी ही करेंगे और यह पत्रिका हमारी ओर से दे देना साथ ही साथ उनके चरण पर पड़ जाना तुम्हारा सर्व कार्य सफल हो जाएगा। उसी समय श्री शंकर जी की आज्ञा से श्री आनन्द पुर शहर में गुरु तेग बहादुर जी के किले में प्रवेश किया और गुरु जी के चरण पकड़ लिए। अत्यन्त व्याकुल हो त्राहि-त्राहि करने लगे, हे गुरुदेव २ हम लोग आपकी शरणागत हैं, रक्षा करो २ हे धर्म रक्षिक

सनातन धर्म की, रक्षा करो २ तब गुरुदेव जी ने कहा मैं धर्म रक्षा के लिए प्राणों की बलि दे दूँगा और मेरा परिवार भी धर्म के लिए प्राण दे देगा परन्तु सनातन धर्म नाश नहीं होगा और दुष्ट औरङ्गजेब भी कष्ट पाकर मर जाएगा जो कि रावण का ही रूप है, ऐसा कह कर धीरे धीरे यात्रा करते हुये देहली तख्त पर गये और अनेक कष्ट सहन करने के बाद ही अपना सिर दे दिया परन्तु सनातन धर्म आर्य जाति की रक्षा की, जो अधर्मी दुष्ट यवन राजा औरङ्गजेब था कुछ समय के बाद कष्ट पाकर मर गया हिंदु जाति और सनातन धर्म गुरु जी की कुरबानी से अभी तक वर्तमान में निरन्तर चल रहा है। इति संक्षेप। इसका विस्तार गुरु इतिहास में देखो।

प्र० नं०६-शरणागत दीनार्त्त परित्राणपरायणे ।
सर्वस्यार्ति हरे देवी नारायणि नमोऽस्तुते ॥

नाहि न गुन नाहिन कछु जपतप,कवन कर्म अब कीजै ।
नानक हार परयो शरणागत अभय दान प्रभु दीजै ।
शरण परे की राख दयाला नानक तुमरे बाल गोपाला ।

॥ शरणागत रक्षक महाराज शिवि ॥

राजा शिवि का कबूतर की रक्षा के लिये बाज को अपने शरीर का मांस काट कर देना।

प्रस्पन्दमानः सम्भ्रान्तः कपोतः श्येन -लक्ष्यते ।

मत्सकाशं जीवितार्थी तस्य त्यागो विगर्हितः ॥५॥
योहि कश्चिद् द्विजान् हन्याद् गांवा लोकस्य मातरम् ।
शरणागतं च त्यजते तुल्यं तेषां हि पातकम् ॥६॥
महा० भा० वन पर्व० अ० १३१

टी०—बाज ! देखो तो यह वेचारा कबूतर किस प्रकार भय से व्याकुल हो थर थर कॉप रहा है। इसने अपने प्राणों की रक्षा के लिये ही मेरी शरण ली है। ऐसी दशा में इसे त्याग देना बड़ी ही निन्दा की बात है। जो मनुष्य ब्राह्मणों की हत्या करता है, जो जगत माता गौ का बध करता है तथा जो शरण में आये हुए को त्याग देता है, इन तीनों को समान पाप लगता है। ५-६ इस कथा का विस्तार दान महिमा में देखो।

२०— ※ भ क्ति प्र भा वः ※

धर्मश्च सत्यञ्च शमोदमश्च अमात्सर्यं ह्रीस्तितिक्षा, ऽनसूया। दानंश्रुतञ्चैव धृतिः क्षमाचमहा व्रताद्वादश ब्राह्मणस्य ॥१॥ महा० उद्यो० ४५-५—श्लोक
शूद्रेचैतद्भवेल्लक्ष्मद्विजेतच न विद्यते ।
न वै शूद्रो भवेच्छूद्रो ब्राह्मणो नच ब्राह्मणः ॥२॥
विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्द नाभ पादारविन्द विमुखाच्छ्वपचं परिष्ठम्। मन्येतदर्पितमनो वचने हितार्थ प्राणपु-

नातिसकुलं ननु भूरिमानः ॥३॥ भागव-स्कं.७अ.६श्लो.१०

श्रीण्येवतु पदान्याहुः पुरुषस्योत्तमं व्रतम् ।
न द्रुह्ये च्चैव दद्याच्च सत्यं च्चैव परं वदेत् ।४।
महा वन० पर्व० अ० २०६ श्लो० ६३

चण्डालोऽपि मुनि श्रेष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिकः ।
विष्णुभक्ति विहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः॥५॥ ना.पु.अ.३४

२१- ❀ श्री रमा उमा प्रश्नोत्तराणी ❀

भिक्षुः क्वास्ति वलेर्मखे पशुपतिः क्वासौ गवो गोकुले,
मुग्धे पन्नगभूषणं वदपुनः शेतेच तस्योपरि ।
आर्येमुञ्च विशालमास्य कमले नाहं प्रकृत्याचला,
इत्थं शैल सुता समुद्र तनया सम्भाषणं पातुवः ॥

टीका—लक्ष्मी पार्वती से बोली कि तुम्हारा भिक्षु पति दर २ मांगने वाला कहां है उमा बोलीवलि राजा के यज्ञ में इन्द्र राजा के कहने से, कपट का वामन रूप बना कर, तीन कदम भूमि कुटिया के लिये मांग रहा है। रमा बोली कि आपका पशुओं का पति पशु कहां है। उमा ने कहा कि गोकुल में जाकर गऊँएँ चुगा रहे हैं। लक्ष्मी बोली हे मुग्धे कि सर्प हैं भूषण जिसके सो कहो कहां है। उमा ने कहा कि उन्हीं सर्पों के ऊपर सोये हुए हैं। हे आर्ये हे कमल मुखी हेविशाल मुख वाली तुम ऐसे

पति को छोड़ दे, पार्वती बोली कि मैं तुम्हारे जैसी चंचल स्वभाव वाली नहीं जो कि पति को छोड़ दूंगी। इस प्रकार गिरि सुता और समुद्र तनया का जो कि परस्पर संभाषण है इसको जो कोई पुरुष पढ़ता व सुनता है उसकी रक्षा श्री रमा उमा करें हैं।

२२– ❀ श्रीराधा कृष्ण प्रश्नोत्तराणी ❀

श्री राधा कृष्ण के उपहास पर श्लोक।

अंगुल्या कः कपाटं परि हरति कुटिले माधवः किं वसन्तो।
नो चक्री किं कुलालो नहि धरणि धरः किं द्विजिह्वाफणीन्द्रः
नाहं घोराहि मर्दी किमु विहग पतिर्नो हरि किंकपीशः।
इत्यं राधा वचोभिः प्रहसित वदनः पातुवश्चक्र पाणिः॥

टीका—श्री राधा का कपाट जब श्री कृष्ण ने खट-खटाया तब श्री राधा भीतर से बोली कि कपाट को कौन कुटिल पुरुष उँगली से खटखटाता है, श्री कृष्ण उत्तर, मैं माया पति माधव हूँ। श्री राधा प्रश्न, किया माधव मैंने वसन्त ऋतु है। श्री कृष्ण उत्तर मैं वसन्त के अर्थ वाला माधव नहीं, किन्तु चक्र को धारण करने वाला चक्रधारी श्री विष्णु भगवान हूँ। श्री राधा प्रश्न, किया दण्ड और चक्र से बर्तन बनाने वाला चक्रधारी कुलाल

है, श्री कृष्ण उत्तर, मैं घडा आदि बर्तन गडने वाला कुम्हार या कुलाल नहीं परन्तु पृथ्वी को धारण करने वाला धरणि-धर हूँ, श्री राधा प्रश्न, किया आप पृथ्वी को उठाने वाला जिह्वा फणीन्द्र सर्प है। श्री कृष्ण उत्तर मैं सर्प नहीं, लेकिन भयंकर सर्प को मारने वाला हूँ। श्री राधा प्रश्न, किया तुम सर्पों को मारने वाला विष्णु भगवान का वाहन गरुड है। श्री कृष्ण उत्तर, मैं सर्पों को मारने वाला गरुड नहीं चुनाचे पापों को हरने वाला हरि हूँ, श्री राधा प्रश्न, किया वन्दरों का मालिक और रावण आदियों को मारने वाला श्रीराम का सेवक कपीश हनुमान है। इस प्रकार श्री राधा प्रश्न के आगे श्री कृष्ण अनोत्तर हो गये। इस श्री राधाकृष्ण उपहास को जो प्राणी पढ़ेगा या श्रवण करेगा उसकी रक्षा श्रीराधा कृष्ण करें हैं। -

२३— ❀ अन्ध विश्वास ❀

गतानुगति को लोगो न लोकः परमार्थिकः।
वालुका लिङ्ग मात्रेण गतं मे ताम्रभाजनम्॥

दृष्टान्त—महात्मा गन्धर्वसैन घोबी का १ सुन्दर गधा था एक चौधरी महोदय घोबी से कपडे धुलाए करता था, एक रोज काल वस घोबी का गधा मर गया इसलिये घोबी नहीं आ सका तो वह चौधरी स्वयं घोबी के यहाँ

गया और जाकर देखा वह धोबी दाढ़ी मूछ शिर मुण्डाकर शोकातुर हुआ बैठा था। चौधरी बोला धोबी क्या बात है? आज शोक में क्यों बैठे हो? और साथ ही मूण्ड मुण्डा कर बैठे हो धोबी बोला चौधरी महोदय आपको क्या फिकर है? आप तो आनन्द से मजा करते हो, तो चौधरी ने फिर पूछा क्या बात है? धोबी बोला महात्मा गन्धर्व सैन मर गया उसके शोक में शिर दाढ़ी मूछ मुण्डाया है, तो चौधरी बोला कि मुझे भी शिर दाढ़ी मूछ मुण्डा लेना चाहिये धोबी ने कहा अवश्य मुण्डवाना चाहिये। तब धोबी के कहने पर चौधरी ने भी मूण्ड मुण्डाया और चौधरी का परम मित्र एक राजा का मन्त्रि था। उसने पूछा चौधरी महोदय यह मूण्ड क्यों मुण्डाया है? तो चौधरी बोला महात्मा गन्धर्वसैन मर गया है। इसलिये मूछ शिर दाढ़ी मुण्डाया है तो मन्त्री ने कहा कि मुझे भी मूण्ड मुण्डा लेना चाहिये ऐसा कह कर उसने भी दाढ़ी मूछ मुण्डा लिया और राजा को पता चला तो राजा ने पूछा मन्त्री साहब क्या बात है? यह दाढ़ी मूछ क्यों मुण्डाई है? तब उसने भी कहा कि महात्मा गन्धर्व सैन मर गया इसलिये मूण्ड मुण्डाया है ऐसा सुनते ही राजा ने भी मूण्ड मुण्डाया तब तो राजा को देखकर समस्त दुनियाँ ने ही मूण्ड मुण्डा लिये कालन्तर जब राजा रानी के पास

गया और रानी ने पूछा यह शिर दाढ़ी क्यों मुण्डाया है ? तो उत्तर में राजा ने कहा कि महात्मा गन्धर्वसैन मर गये हैं इसीलिये मूण्ड मुण्डाया है तब रानी बोली वह महात्मा गन्धर्व सैन आपका चाचा लगता था या और कोई सम्बन्धी था ? सो बतलावो, वह सही गन्धर्व सैन महात्मा कौन था.

उशना वेदयच्छास्त्रं यच्च वेद बृहस्पतिः।
स्वभावे नैव तच्छास्त्रं स्त्री बुद्धौ सुप्रतिष्ठितम् ॥

टीका—जिन ग्रन्थों को शुक्राचार्य जानता है और जिन ग्रन्थों को बृहस्पति जानता है उन शास्त्रों का बौद्ध स्त्री को स्वभाव से ही होता है।

तो राजा नें मन्त्री से पूछा और मन्त्री ने चौधरी से पूछा चौधरी ने धोबी से पूछा और धोबी बोला मैं बहुत दुःखी हूँ क्योंकि, एक तो मेरा महात्मा गन्धर्व सैन मर गया है पुनः आप बारम्बार पूछते हो, इसीलिये मैं बड़ा ही दुःखी हूँ तब राजा मन्त्री और चौधरी हठकर पूछने लगे कि, वह गन्धर्व सैन कौम था तो धोबी बोला कि मेरा और मेरे बाल बच्चों का रक्षक एक गधा था सो मर गया है इसलिये हमने दाढ़ी मूछ और शिर मुण्डाया है तब तो यह बात सुनकर वे राजा मन्त्री और चौधरी महोदय हाथ मलने और मस्तक पीटने लगे और कहने लगे कि देखो

एक शूद्र धोबी ने हमको परेशान कर दिया है। और पश्चाताप करते २ अपने २ घर को आये, ऐसे ही मनुष्य शरीर को निष्फल गवाकर जीव को पश्चाताप करना पड़ता है।

प्रमाण—नाराणां नापितोधूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणांधूर्ता च मालिनी॥

दृष्टान्त—बारह साल बाद प्रयागराज का कुम्भ आया वहां पर सरकार की ओर से प्रबन्ध किया गया जहाँ तहां पर पुलिस का पहरा हो गया और कोई पुरुष या स्त्री नियत जगह से बिना टट्टी या लघुशंका नहीं कर सकते थे, ऐसा सख्त प्रबन्ध देखकर स्त्रियों को विशेष कष्ट हुआ तो एक मालन ने क्या किया कि एक खड्डा खोद कर टट्टी करदी और उसके उपर मिट्टी डालकर मढ़ी सी बनादी और उसके उपर फूल पुराने डाल दिये एक मानो लिङ्ग सा बना दिया गया क्योंकि उसको पुलिस का भय था कि कहीं पकड़ ना लें इसलिये प्रयत्न किया था, और संसारी लोगों ने उस लिङ्ग चिन्ह को पूजना आरम्भ कर दिया वहां पर हजारों नर-नारी की बराबर भीड़ होने लग पड़ी और वहां पर अच्छे २ माननीय लोग भी उपस्थित तथा आने लग पड़े यहां तक हो गया कि हजारों रुपयों के फूल चढ़ने लगे, ऐसे ही एक सीताराम नाम का साधु भी आ गया

उसने देखा कि कोई बड़ा भारी देवता यहां पूजा जाता है इसलिये हमको भी यहां पर दण्डवत प्रणाम करनी चाहिये जब उस सीताराम ने दंडवत किया तब अपना पीतल का लोटा बाहर रख दिया था जब उधर से चोर आया और उठाकर ले गया तब सीताराम आया और लोटा वहां पर न देखा तो घबरा गया और सिपाही बुलाये परन्तु कुछ पता नहीं चला । वहां पर किसी भले पुरुष ने बोला कि यह मढी किस देवता की है ? और किसने बनाई है ? किन्तु निर्णय करने पर पता चला कि अमुक मालन ने अपनी टट्टी यहां पर छुपाई थी, और उपर फूल डाल दिये थे उसको लोगों ने देवता मान लिया है इसलिये ही संसार अन्ध विश्वास में तत्पर रहता है और अपने परमार्थ स्वरूप को नहीं संभालता यहां पर जब लोगों ने खोद कर देखा तो सचमुच टट्टी ही प्राप्त हुई, और फिर सब से पूछने पर पता चला कि अमुक मालन धूर्ता ने डर कर परदा छुपाया था अन्धों ने देवता समझ कर पूजना आरम्भ कर दिया और बाद में सब लोग पश्चाताप करने लगे ऐसे ही मनुष्य शरीर पाकर जो निष्फल गवा देते हैं सो भी बाद में पश्चाताप करते हैं । इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अपना परमार्थ संभालें जिससे फिर बारम्बार जन्म न हो ।

२४— ❀ उपहास ❀

कालीदास कवि श्रेष्ठ ! कस्मिन् पर्वणि मुण्डनम् ।
राजनो गर्दभायन्ते तस्मिन् पर्वणी मुण्डनम् ॥

राजा भोज और कालीदास की कथा, इन दोनों की स्त्रियों ने आपस में विचार किया कि आज हमने अपने पतियों को वशीभूत करना है श्री कालीदास की स्त्री ने बोला आज रात को मैं अपने पति की दाढ़ी मूछ मुण्डा कर परम हंस बनाऊँगी, राजा भोज की स्त्री ने कहा आज मैं रात को अपने पति को गधा बनाऊँगी, और उपर सवारी करूँगी और दोनों की स्त्रियों ने ऐसा ही किया दूसरे रोज मन्त्री और राजा मिले आपस में हंसी होने लगी।

२५— ❋ सन्तवाणी अमूल्य ❋

श्रुति र्विभिन्ना स्मृतयश्च विभिन्ना नैकोमुनि
यस्य वचःप्रमाणं, धर्मस्य तत्वं निहितं
गुहायां महाजनों येन गतः स पन्था ॥
येनस्य मित्रो याता येन याताः पितामहाः ।
तेनया यात सतां मार्गं तेन गच्छन्नलिप्यते ।१।
यद्यदा चरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
सयत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥ गी० ६०११

एक सेठ बहुत धनाढ्य था और उसके दो लड़के थे उसने सोच विचार कर अपनी समस्त अर्थ सामग्री को बिक्री कर दिया क्योंकि सेठ ने यह विचारा था।

यदि पुत्रः सुपुत्रः स्यात् व्यर्थोहिधन संचयः।
यदि पुत्रः कुपुत्रः स्यात् व्यर्थोहिधन संचयः॥

इस श्लोकानुसार तमाम जायदाद बेचकर छः लाल खरीद लिये, मरते समय अपने दोनों लड़कों को तीन २ लाल बांट दिये।

बड़े लड़के ने तीन लालों से तीन काम किये १ लाल से शादी की दूसरे लाल से मकान बना लिया तीसरे से दुकान निकाल ली और छोटे भाई ने तीन लाल लेकर और साथ में दण्ड कमण्डल और कम्बल लेकर चल पडा चलते २ एक महात्मा मिल गये, दंडवत् प्रणाम किया और बोला कि तीन वाक्य ऐसे सुनावो जो अमोल हों जिससे हमारा जीवन सफल हो, उत्तर में सन्त ने कहा कि शब्द तो अमोलक है परन्तु इन तीन वाक्यों की तीन लाख कीमत है, उस लड़के को बोला कि एक से दो भले, दूसरा कहा कि आसन को देख भाल कर सोना चाहिये तीसरा शब्द कहाकि सबका भला करना ऐसा कह कर तीन लाल ले लिये वह लड़का वहां से चल पड़ा कुछ दूरी पर एक कच्चा तलाब मिला वहां एक पीला दादुर मिला उसको साथ में ले

लिया वहां से कुछ दूरी पर एक पीपल का पेड़ मिला उसकी छाया में सो गया वहां एक काला-सर्प रहता था उस सोये हुए लड़के को काटने आया वह पीला दादुर सर्प के साथ लड़ पड़ा खूब आपस में युद्ध हुआ अन्त में दादुर ने उस लड़के की छाती पर छलाङ्ग मारी और जगा दिया और उसने उठ कर देखा कि काला सर्प हमको मार डालता परन्तु इस दादुर की सङ्गति से मेरा अमोलक जीवन बच गया और उस सर्प को तुरन्त मार डाला और एक वचन तो सन्त का सफल हो गया, फिर आगे चल पड़ा वहां से कुछ दूर एक एकान्त स्थान में अच्छा मकान बना हुआ था, उसमें एक डाकुओं का नेता रहता था और उसने बहुत धन लूट के खजाना जमा कर रखा था वहां पर यह नियम कर रखा था कि एक कुऐं के अन्दर दो तीक्ष्ण धारा के आरा लगाये हुऐ थे और उसके ऊपर एक सुन्दर सूत की चारपाई बनाकर रखी हुई थी जिससे जो अतिथि वहां आता था उसको उस चारपाई के ऊपर स्थान देते थे जिससे वह गिर कर मर जाता था और उसी स्थान पर इस लड़के को भी विश्राम दिया जिस समय चारपाई में सोने लगा तब सन्तों का वचन याद आया कि सन्त जी ने यह बोला था। कि आसन देखकर सोना चाहिये इस वाक्य अनुसार चारपाई को झाड़ा और देखा देखने से यह

ज्ञात हुआ कि नीचे तो कुआ है और दो आरा लगे हुए हैं इसलिये यहां से हट कर दूसरी जगह सो गया प्रातःकाल होते ही उस डाकु की लड़की ने देखा श्रीमान् जी तो जीवित बैठा है और अपने पिता को जाकर बोली कि अतिथि तो जीवित बैठा है वह डाकु हक्का बक्का रह गया और लड़की को बोला कि जो हमने नियम बनाया है उसके अनुसार इस अतिथि की तुम्हारे साथ शादी करा देता हूँ सो ऐसा ही किया, उस डाकु ने १ ऐसा नियम बना रखा था कि जो अतिथि इस आरों से कट कर मर गया तो उसका धन जमा कर लेता था उन आरों से आज तक कोई जीवित नहीं रहा था।

इसलिये उसके पास बहुत धन लूटा हुआ पड़ा था यह लड़का सन्तों की कृपा से बचा रहा उसका एक यह भी नियम बना रखा था कि जो कोई इस आरे से जीवित रह जायेगा उसको मैं अपनी लड़की को विवाह दूँगा और समस्त बाग धन और मकान दे दूंगा इसलिये उसने ऐसा ही किया अब वह लड़का शादी कराकर अपनी स्त्री को साथ लेकर आगे चल पड़ा कुछ दूरी पर एक सर्प कांटे के दुःख से दुःखी था इस लड़के ने सन्तों के तीसरे वाक्य के अनुसार सब का भला करना चाहिये इस आज्ञा को मान कर उस सर्प का कांटा निकाल दिया और सर्प ने प्रसन्न

होकर धन की निधि बतला दी जिसमें एक सोने की गागर १०० लालो की भरी हुई थी लडका लेकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहा कि सन्तों का तीसरा वचन भी सफल हो गया है। इस प्रकार लौट कर अपने बड़े भाई को मिला परस्पर दोनों मिलकर प्रसन्न चित्त हुये। छोटे भाई ने आदि से अन्त तक तीन लालों की कथा सुनाई और सन्त जी की कृपा से तीन वचनों द्वारा तीन लाल देकर १०० लाल प्राप्त किये और साथ में सोना मकान बाग तथा धन और शादी भी करगई इसलिये सन्तों की कृपा से धर्मार्थ काम मोक्ष प्राप्त होते हैं और साथ ही साथ सुपुत्र भी हो जाते हैं इसलिये महात्मा के वचन अति अमूलक होते हैं परन्तु मोल भा ५० २ वचन का एक २ लाख रुपया होता है फिर वह दोनों भाई सन्तों की कथा बराबर सुनते रहे, और कुछ समय पाकर केवल मोक्ष को प्राप्त हुये और साथ ही अपने परिवार को भी तार दीया और इक्कीस कुल सहित बैकुण्ठ को चले गये, और उस गति को प्राप्त हुए जिससे लौट कर नहीं आ सकता है। इसलिये सर्व सज्जनों को चाहिये कि जिस पथ पर हमारे पूर्वज लोग गये हैं उसी पथ पर चलें और अपने जीवन को सफल बनावें।

२६— ❀ श्री भजनमाला ❀

जय सियाराम जय २ सियाराम जय रघुनन्दन जय घनश्याम
कौशल्या के प्यारे राम यशोदानन्द दुलारे श्याम टेक ०
चारो भय्या खेले राम सङ्ग बलदाउ खेले श्याम जय०
सरजू नहावे जय सियाराम जमुना नहावे जय घनश्याम जय
ताडका मारी जय सियाराम पूतना पछाड़ी जय घनश्याम जय
अहल्या तारी जय सियाराम कुबजा उधारी जयघनश्याम जय
धनुष तोड़ सिया लायेराम छलकर रुक्मणि लाये घन, जय
बेर जो खाये जय सियाराम चावल चावे जय घनश्यामजय
पाथर तारे जयसियाराम गिरवर धारे जय घनश्याम जय
रावण मारे जय सियाराम कंस पछाड़े जय घनश्याम जय०
राज विभीषण दीनाराम उग्रसेन को दीन्हा घनश्याम जय०
पुरी अयोध्या आये राम पुरी द्वारका पहुँचे घनश्याम जय०
दोनों समझो एक समान इनमें भेद जरा नहीं जानमानजय०
हाथ जोड़कर करो प्रणाम भक्तों तुमरा हो कल्याण जय०

२– हंसा चाल बसो वांहीदेश जहां का गया फेर न मरे टेक०
जहां अगम निगम दोधाम वास तेरा परे से परे टे०
जहाँ वेदों की गम नाहीं ज्ञान और ध्यान बीउरे टे०
जहां बिन सर्वण सुण लेह नैनों के बिना दर्श करे टे०
जहां बिन धरणी का धाम चरणों के बिना गमन करे टे०

जहां वैदेही इक देस, प्राणों के बिन स्वास भरे टे०
जहां जगमग जगमग होये उजारा दिन रैन रहे टे०
जहां प्रेम नगरिया के घाट अगम दरियाव बहे टे०
जहां सन्त करें इसनान दूजा तो कोई नहाये न सके टे०
जहां नहायां ते सुख होये तपत तेरे मन की बुझे टे०
जहां जन्म मरन मिट जाये अमर पुर वास होये टे०
राम को त्याग कर मिथ्या पदार्थ को ग्रहण किया।
३ नाम जपन क्यों छोड़ दिया तैने, रामरटन क्यों छोड़ दिया!
क्रोध न छोड़ा झूठ न छोड़ा सत्य वचन क्यों छोड़ दिया! टे०
झूठे जग में दिल ललचा कर असल वतन क्यों छोड़ दिया! टे०
कौड़ी को तू खूब संभाला लाल रतन क्यों छोड़ दिया! टे०
जिहिं समरन ते अति सुख पावे सो समरन क्यों छोड़ दिया! टे०
सुन बन्दे भगवान भरोसे तन मन धन क्यों ना छोड़ दिया! टे०

४– मेरे सत गुरुदीन दयाल रे मुझे शीघ्र पार उतार रे, मेरे प्रभु दीन दयाल रे मुझे० १ मैं पापी अवगुण आर रे नहीं तरने का है उपाव रे टे० २॥ कर्म न जाना धर्म न जाना मैं अपराधी बड़ गुनाह गार रे टेक० ॥३॥ जैसा समुद्र सागर नीर भर्या तैसे असुरी हमार रे ॥४॥ नहीं जात पात नहीं वर्णाश्रम मोहे पतत को पार उतार रे ।५। नहीं विद्या नहीं रूपवान मेरा श्वान जैसा आकार रे ॥६॥ नहीं दान नहीं सदाचार मैं दम्भी अपर अपार रे टेक ।७।

माया मोह भ्रम में भूला मेरी आपके आगे पुकार रे टे० ।८।
५—मेरे पांच शत्रु सताते हैं मुझको, बुरे कामों में नित्य ले जाते हैं मुझको, मेरे० मोह की माया है उसमें फंसाकर हरि के भजन से भूलाते हैं मुझको, मेरे० सारी उम्मर के जो दुःख देने वाले खुशी एक पल की दिखाते हैं मुझको मेरे० नहीं रास्ते की तरफ आने देते यह उल्टा ही मार्ग दिखाते है मुझको, मेरे०

६—राम भजन। क्यों माया मोह में भूला भजले राम ३ टेक
क्यों चौरासी दुःख भरता क्यों राम भजन नहीं करता,
नहीं कौड़ी पैसा लगता इसमें दाम ३ राम ३ टेक
धन दौलत तू खूब कमावे शुभ कर्मन में नहीं लगावे,
जो परमार्थ में जावे रह जाये नाम ३ राम ३ टेक
तेरी पिछली भली कमाई जो तो मानुख की देह
पाई, न कीनी धर्म कमाई जो आती काम ३ राम ३ टेक
अब भी समझले बन्दे क्यों जान बूझ होवे अन्धे,
ए झूठे जगके धन्धे अब कहा मान ३ राम ३ टेक ॥२॥
७—हरि भजन । दीनन दुःख हरण हरि सन्तन हितकारी टेक
अजा मिल गीध व्याघ । इनमें कहौ कौन साध,
पंछी हूँ यह पढ़ावत गनका सी तारी टेक
ध्रुव के शिर छत्र देत प्रहलाद को उबार लेत
भगत हेत बान्ध्यो सेतु लंकापुरी जारी टेक

तण्डुल देत रीज जात शाक पात स्यों अघात गणत नहीं जुठे फल खाटे मीठे खारी टेक
गज को जब ग्राह ग्रस्यो दुसाशन ने चीर खसयो सभा बीच कृष्ण द्रौपदी पुकारी टेक। इतने हरि
आये गये वचन न आरूढ भये। सूरदास द्वारे खड़्यो
आंधरो भिखारी टेक ॥८॥ गुरु नानक गोविन्द भजन।
गुर नानक गोविन्द गाते चलो, पाप तन मनके सारे मिटाते चलो। कृष्ण गोविन्द गोपाल गाते चलो, पाप तन मन के सारे मिटाते चलो०। देखना इन्द्रियों के न घोड़े भगें, रात दिन इन को संयम के कोड़े लगें, अपने रथ को सुमार्ग चलाते चलो टेक० प्राण जायें मगर नाम भूलो नहीं दुःख में तड़फो नहीं सुख में फूलो नहीं। नाम धन का खजाना बढ़ाते चलो टेक० नाम जपते रहो, काम करते रहो काम की वासनाओं से डरतेरहो, प्रेम भक्ति के आंसु बहाते चलो टेक० याद आयेगा उसको कभी न कभी, ध्यान आयेगा टेक भक्त पायेगा उसको कभी न कभी। प्रेमी पायेगा टे०. ऐसा विश्वास मनमें जमाते चलो टेक ॥९॥ गुरु नानक भजन। गुरु नानक महेश दुःखों को दूर करो दुःखों को दूरकरो टेक। विघ्न हरन मुख कमल प्यारे बिगड़े लाखों काज संवारे। काटो सर्व कलेश दुःखों को दूर करो टे०।

माता त्रिपतां के तुम जाये सभी देवता शीश नवाये (झुकाये)। पिता तुमारे कानेश दुःखों को दूर करो टे०। ऋद्धि सिद्धि और ज्ञान के दाता टे०। भक्तों के हो आप विधाता, करते प्रेम विशेष दुःखों को दूर करो तुम० साधु सन्त सब शरण तुम्हारी पूरण कीजे आश हमारी गावें शारद शेष दुःखों को दूर करो।१०।

उद्धवभजन। उद्धो कर्मनकी गति न्यारी, टेक

सब नदीयां सुन्दर जल भरियां सागर किम विधिखारी
उज्जल पंख दीये बगला को कोयल किस विधिकारी,
सुन्दर नयन मृगी को दीने वनवन फिरत उजाडी
मूर्ख २ राजा कीने पण्डित फिरत भिखारी।
सूरदास मिलवे की आशा दिन २ बीतत भारी।

।११। भजन। आया अकेला जाना अकेला दो दिन की जिन्दगी है। दो दिन का मेला टेक।

सोच समझ क्यों भूला है बन्दे,
यहां रहे बापू यहां रहे चेला टेक।
जाल माया का ऐसा है भारी साची है दौलत सचा झमेला
आना है खाली जाना भी खाली क्यों लपटाना ऐ
मोले माला टेक।

।१२। नमर भजन—प्रभु मेरे अवगुण चित्त न धरो। टेक
समदर्शी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो। टे०

एक नदीयां इकनाल कहावत मैलो ही नीर भरो ।टे०
जब मिल दोनों इक बरन भये सुरसरी नाम परयो
एक लोहा पूजा में राखत इक घर वधिक परयो
पारस गुण अवगुण नहीं जाने कंचन कर्त खरो । टेक
यह माया भ्रमजाल कहावे सूरदास सगरो । टेक
अब की बेर मोह पार उतारो नहीं परण जात टरो । टे.

१२–राम भरोसा भजन—ऐसो श्री रघुवीर भरोसो । टे०
बारी न बोरी मके प्रहलाद ही पावक नाही जगेसो ।
हिरनाकस बहो भान्ति सतायो हठकर वैर करोसो ।
मारयो चाहे दास नर हरि को आपे दुष्ट मरोसो ।
मीरा के मारन के कारण पठयो जहर खरोसो
राम नाम अमृत भयो ताको हस २ पान करोसो ।
द्रुपद सुता के चीर दुसाशन मध्य सभा पकरो सो
ऐंच २ कर भुज बल हार्यो नैक न अङ्ग उगरो सो ।
समुद्र में टटिरी के अंडा कोटिन दल बिखरो सो
राम नाम जब पंछी टेरो घंटा टूट परोसो ।
जारयो लङ्का अंजनी नन्दन देखत पुर सगरोसो .
ताके मध्य विभीषण को गृह राम कृपा उबरो सो । टेक०
रावण सभा कठिन प्रन अङ्गद हठकर हरि सिमरोसो
मेघनाद सम कोटिन योद्धा टारे पग न टरोसो ।
तुलसीदास विश्वास राम के का करे नारि नरोसो

और प्रभाव कहां लग वरनो यहां यमराज डरोसो !
१४–हुण भक्त सुदामा नू रो रो दे कहँदी नारी- तुसी द्वारिका जावो जी-दुःखकटनगे कृष्ण मुरारी ।१। हुण० कदी न खादी रज कर रोटी-किस्मत साडी सबसे खोटी-हुण मैं सहिनहिं सगदी जी इन बच्चों की हाहाकारी ॥२॥ हुण० जो कोई मित्र दे घर मंगण जावे अपनी इज्जत आप घटावे। कृष्ण वण गये राजा जी असी हैं दुःखी भिखारी ॥३॥ हुण० सुदामा कहँदा सुन मेरी नारी-गलतो तेरी सब सची सारी-परमैं नहिं जाणाँ जी तू क्यों करदी मेरी खवारी ॥४॥ हुण०

२७ ❀ दृष्टकूट ❀

वाहन जाको बैल है मुंड माल गल मांहीं,
शिर पर गङ्गा वहत है पर महादेव तो नाहीं ।१।
मुख मुरली तन श्याम है रहत कुँजन बन मांही,
माथे जाके मुकट है पर श्री कृष्ण तो नांहीं ।२।
अजा सहेली तासरिपु ता जननी भर्तार,
ताके सुत के मित्र को भजीयें बारम्बार ॥३॥
पद् चरन दो धरन है सात श्रवण दो नैन,
वांके रिपुके पुत्र का भजन करो दिन रैन ॥४॥
चले फिरे सुख पालकी धरनी धरे नहीं पाऊँ,

तबके थाके हे सखी अब दयावत पाऊँ,
करी तपस्या पूर्व में प्रभू मिलने की चाह,-
तबके थाके हे सखी अब दय वावत पाऊँ ॥५॥
कश्यप सुत दुर्बल भयो दधिसुत पहुँचो आय
मैं तोहे पूछुं हे सखी जोगी अब कहां जाये ।६।

२८— ❀ शरणागत पालक ❀

उपमा रहित राम । काष्ठ कल्पतरुः सुमेरु रचला चिन्ता मणिः प्रस्तरः । सूर्य स्तीव्रकरः शशि चयकरः चारोहि वारांनिधिः ॥ कामो नष्ट तनुर्वलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगो । नैवांस्ते तुलयामि भो रघुपते कस्योपमा दीयते ।
॥ चाणक्य ॥

सरणपरे की राख दयाला नानक तुमरे बाल गोपाला ॥
पूर्वोक्त सरणागत के विषय में गुरुदेव वाणी में से लिखा है ।

चौ०—सुनि प्रभु वचन हरप हनुमाना,
सरणागत वच्छल भगवाना ॥१॥
दो०—सरणागत कहुँ जेतजहिं निज अनहित अनुमानि ।
ते नर पाँवर पापमय तिनहहिं विलोकत हानी ॥२॥
चौ०—कोटि विप्र वदलागहीं जाहू,
आएँ सरण तजउँ नहिं ताहू ॥३॥

सन्मुख हुइ जीव मोहि जबहीं,
जन्म कोटि अघ नाशहिं तबहीं ॥४॥

टी०—जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या लगी हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता, जीव ज्योंहि मेरे सन्मुख होता है त्यों ही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं ।

चौ.—जौ सभीत आवा सरनाई, रखिहुँ ताहिं आनकीनाई ।५।

दो०—श्रवन सुजस सुन आयउँ प्रभु भजन भव भीर ।
त्राहि-त्राहि आरति हरन सरण सुखद रघुवीर ॥६॥

चौ०—असकहि करत दण्डवत् देखा,
तुरत उठे प्रभु हरष विशेषा ॥७॥
दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा,
भुजविशाल गहि हृदयँ लगावा ॥८॥
अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी,
बोले वचन भगत भय हारी ॥९॥
कहो ! लङ्केश सहित परिवारा ।
कुशल कुठाहर वास तुम्हारा ॥
सुनहुँ सखा निज कहऊँ सुभाऊँ ।
जान भुसुण्डि शम्भु गिरि जाऊ ॥
जो नर होय चराचर द्रोही ।
आवे सनय शरण तक मोही ॥

तजि मद मोह कपट छल नाना ।
करहु सर्वतेहि साधु समाना ॥

जिम पापी को मिले न ढोई सरण आवे ता निर्मल होई । हौनल हारिसत गुरु पूरे । मरण के दाते वचन के सूरे । शरणागत प्रहलाद जन आए, तिन की पैज सवारी । जप तप संजम धर्म न कमाया, सेवा साधु न जानया हरि-राया । कहो नानक हम नीच कर्मा शरण परे की राखो सरमा ॥ सरण परे की राखता नाही सहमाया ॥ शरण पड़े की राख दयाला, नानक तुमरे बाल गोपाला । जो शरण आवे तिस कंठ लावे । इह बिरद स्वामी संदा ॥

२६— ❀ सुपुत्र लक्षणम् ❀

श्लो.—प्रदोपे दीपकश्चन्द्रः प्रभाते दीपको रविः ।
त्रैलोक्ये दीपको धर्मः सुपुत्रः कुलदीपकः ।१।

अर्थ—सुपुत्र लक्षण कहते हैं कि रात्रि का दीपक तो चन्द्रमा है दिन का दीपक सूर्य है धर्म त्रिलोक का दीपक है सुपुत्र कुल का दीपक है ।१।

श्लो.—एकेनापि सुपुत्रेण विद्या युक्तेन भासते ।
कुलं पुरुष सिंहेन चन्द्रेणेव हि शर्वरी ॥२॥

अर्थ—एक ही विद्यायुक्त पुरुषार्थ पराक्रमवान सुपुत्र से कुल ऐसे प्रकाशती (शोभा पाता) है जैसे चन्द्रमा से

गत्रि शोभा पाती है ॥२॥

श्लो —पुण्य स्थाने कृतयेन तप' काप्यति दुस्तरम् ।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्य. समृद्धो धार्मिक: सुधी ।३।

अर्थ–जिस पुरुष ने किसी पवित्र स्थान में महान् तप किया हो उसके गृह में बुद्धिमान, धर्मात्मा, विद्वान, विभूतिमान पिता के आज्ञानुसार ऐसा सुपुत्र उत्पन्न होता है ॥३॥

श्लो.—एकेनापि सुपुत्रेण जायं मानेन सत्कुलम् ।
शशिना व गगन सर्व देवोज्वलीकृतम् ॥४॥

अर्थ—जसे चन्द्रमा से आकाश निर्मल भासता है ।४।

श्लो.—एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना ।
वासितं वद्धनं सर्व सुपुत्रेण कुलं यथा ॥५॥

अर्थ—जेसे एक ही चन्दन के वृक्ष से सब वन सुगन्धी वाला हो जाता है । जैसे एक ही गुणी सुपुत्र से सभी कुल गुणवान हो जाता है ॥५॥

श्लो.—पुन्नाम्नो नरकाद्यस्तु त्रायते पितरं सुतः ।
तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेतत् स्वयम् भुवा ।६।"

अर्थ—पुन्नाम नरक का है, नरक नाम दुख का है । जो माता पिता की सब प्रकार से दु.खों से रक्षा करे उसको पुत्र कहते ह । ब्रह्माजी पुत्र शब्द का लक्षणार्थ ऐसे कहते ह जो विद्या गुण बुद्धि धर्म पराक्रम विभूति सहित होकर पिता माता का भक्त हो सो सुपुत्र कहा जाता है ।६।

३०— * कुपुत्र *

श्लो.—एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम् ।
दशभिः सह पुत्रैर्वै भारं वहति रासभी ॥१॥

अर्थ—अब कुपुत्र के लक्षण कहते हैं एक ही बलवान् सुपुत्र से सिंहनी वन में निर्भय हो सोती है और दश दशकुपुत्रों वाली होकर भी, सूकरी, कूकरी, गधी भैंस क्लेश ही पाती हैं और भार भी उठाती फिरती है ॥१॥

श्लो.—अवनीतः सुतोजातः कथं न दहनात्मकः ।
विनीतश्च सुतोजातः कथं न शीत कारकः ।२।

अर्थ—नीति नम्रता से रहित कुपुत्र जिसके गृह में हो सो कैसे उसका आत्मा न दग्ध होगा ? और विनीत पुत्र का जिसके घर जन्म पड़ा सो सुपुत्र है सो पुरुषोत्तम कैसे न सुख पावेगा ?

श्लो.—यदि पुत्रः कुपुत्रः स्यात्व्यर्थो हि धनसञ्चयः ।
यदि पुत्रः सुपुत्रः स्यात् व्यर्थो हि धनसञ्चयः ।३।

अर्थ—यदि कुल में कुपुत्र है तो धन का जोड़ना पिता का व्यर्थ ही परिश्रम है क्योंकि वह सब धन नष्ट कर देगा । यदि पुत्र सुपुत्र है तो भी पिता का धन संग्रह वृथा ही है । क्योंकि सो आप ही बहुत पैदा कर लेगा ।

श्लो.—एकेन शुष्क वृक्षेण दह्यमानेन वह्निना ।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं यथा ॥४॥

अर्थ—वनमें एक वृक्ष में आग पैदा होने से सभी वन जल कर भस्म हो जाता है वैसे ही कुपुत्र से कुल नष्ट होती है। ॥४॥

श्लो.—निरुत्साहं निरानन्दं निर्वीर्यं मरिमर्दनम्।
सीमन्तिनी काचिज्जनयेत्पुत्रमीदृशम् ॥५॥

अर्थ—उत्साह रहित आनन्द रहित, पराक्रम उद्यम रहित, शत्रुपने के दुष्ट कर्म करने वाला कुकर्मी मन्दभाग्य ऐसा कुपुत्र तो किसी माता के घर मत उत्पन्न हो ॥५॥

श्लो.—यस्य पुत्रो न वैशूरोनविद्वान्न च धार्मिकः।
अप्रकाशं कुलं तस्य नष्ट चन्द्रेव शर्वरी ।६।

अर्थ—जिसका पुत्र न तो शूरवीर ही है न विद्वान् ही है न धर्म करने वाला ही है उसका कुल शोभा नहीं पाता जैसे चन्द्रमा के बिना रात्रि शोभा नहीं पाती ।६।

श्लो.—किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गर्भिणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः ।७।

अर्थ—उस गाय को क्या करें? जो न गर्भधार कर बच्चा देती है न दूध देती है सो उस पुत्र को क्या किया जाय अर्थात् उससे क्या फल है? जो न तो विद्वान् ही है न धर्म कर्ता ही है ।७।

श्लो.—उत्तमश्चिंतितं कुर्यात्प्रोक्तं करोतु मध्ययः।
अधमोऽश्रद्धयात्कुर्या न्नोचेदुच्चरितः पितुः ।८।

भा.–उत्तम पुत्र उसको कहा जाता है जो पिता के मन की वार्ता समझ कर आगे ही कार्य करले, जो कहने पर करे वह मध्यम है जो माता पिता के कहे को अश्रद्धा से करे या देर से करे सो अधम कहा है जो कहने से भी काम को करे ही नहीं सो तो पुत्र नहीं है एक प्रकार ना माता पिता का मल समझा जाता है वेग होने पर मल गिर गया उसमें एक कीट पैदा होगया ॥८॥

३१— ❀ नरक गति ❀

श्लो.—ये परस्वापहर्त्तार स्तद्गुणा नाम सूयकाः ।
परश्रियाऽभितप्यन्ते तेनै निरय गामिनः ।१।

अर्थ—नर्क गति कहते है जो पुरुष पराया धन हर लेते है किसी के गुणों में दोष लगाते है पराई विभूति को देख कर तपते रहते हैं ।१।

श्लो.—कूपानांच तडागानां प्रपानांच परं तपः ।
रथ्यानां चैव भेत्तारस्तेनै निरयगामिनः ।२।

अर्थ—जो कुआ बावड़ी, तलाब, प्रपा (जल पीने का मकान) गली बाजार इन सबको जो तोड फोड देते हैं ।२।

श्लो०–निसृज्यादन्ति ये दारान् शिशून् भृत्यातिथींस्तथा ।
उत्सृज्य पितृदेवेज्या स्तेवै निरय गामिनः ।३।

अर्थ—स्त्री, बालक, वृद्ध, अतिथि, अभ्यागत, दीन, पितर देवता इनकी सेवा पूजा को छोड़ कर आप ही अकेले भोजनादि खाये पीये जाते हैं ॥३॥

श्लो०—यतीनाँ दूषका राजन् सतीनाचैव दूषकाः।
वेदानां दूषकाश्चैव ते वै निरयगामिनः ।४।

अर्थ—जो यती, संन्यासी महात्मा को, सती धर्मात्मा स्त्री को, वेद को परमेश्वर को दोष लगाते हैं ॥४॥

श्लो.—आद्यं पुरुषमीशानं सर्व लोक महेश्वरम्।
न चिन्तयन्ति ये विष्णुं ते वै निरयगामिनः ।५।

अर्थ—जो आद्य पुरुष परमात्मा ईश्वर जगत का नियत कारक पालक है उसका चिन्तन भजन नहीं करते सो हे राजन्! युधिष्ठर सभी नरक में गिरते हैं।

श्लो०—काष्ठैर्वाशंकू भिर्वापि कण्टकै रूपलैस्तथा।
पन्थानं येऽवरुन्धन्ति ते वै निरयगामिनः ।६।

अर्थ—जो लकड़ी, घास, कांटे पत्थर से रास्ता बन्द कर देते हैं सो नरक में विचरते हैं ।६।

मू०—क्षेत्रवृत्ति गृहच्छेदं प्रीतिच्छेदं तथा नराः।
आशाच्छेदं प्रकुर्वन्ति तेवै निरयगामिनः ।७।

अर्थ—किसी का खेत, जीविका "रोजगार" घर प्रीति प्रेम मनोरथ का आशाभंग इनमें विघ्न कर देते हैं सो नर्क में विचरते हैं ॥७॥

मद्यमांस रताश्चैव महापातक कारिणः।
द्यूतस्तेयश्चहिंसांच तेवै निरयगामिनः ।८।

अर्थ—मदिरा माँस महापाप जो ब्रह्महत्यादि करते हैं जुआ, चोरी हिंसा, जीवघात, ये जो करते हैं सो नर्क में जाते हैं ॥८॥

श्लो०—अनाथं कृपणं दीनं रोगार्त्तं वृद्धमेवच।
नानुकम्पयन्तिये मूढास्तेवै निरयगामिनः ।९।

अर्थ—अनाथ, दुर्बल, दीन, निर्धन, रोगी अति वृद्ध, बालक, दीन स्त्री इनके ऊपर दया नहीं करते उल्टा इनको क्लेश देते हैं सो मूर्ख भी नर्क में जाते हैं। ।९।

श्लो०—ये शरीर मलान्यग्नौ प्रक्षिपन्ति जले तथा।
उद्यानेगोगोष्ठेरा, तेवै नरक गामिनः ॥१०॥

अर्थ—जो शरीर के मल, मूत्र कफ, वीर्यादि को अग्नि जल बाग में, गौशाला में साधु के स्थान में व देव मन्दिर के समीप त्यागते हैं सो ये सभी पापी पुरुष नरक में जाते हैं। ॥१०॥

३२— ❀ स्वर्ग गति ❀

मू०—सत्येन तप साक्षांत्या दानेनाध्ययनेन च।
ये धर्ममनु वर्तन्ते तेनराः स्वर्ग गामिनः ।१।

अर्थ—अब स्वर्गगति कहते हैं जो पुरुष सत्य, तप

क्षमा, दान वेदाध्ययन, अहिंसा इन धर्मों के अनुसार चलते हैं सो स्वर्ग को जाते है ।१।

मू०—येच होम जप स्नान देवतार्चन तत्पराः ।
श्रद्धावन्तोमहात्मानस्तेनराः स्वर्ग गामिनः ।२।

भा०—जो होम, जप, यज्ञ, स्नान, देवता पूजन, पितृ पूजन में श्रद्धा करते हैं । महात्मा जनों की श्रद्धा से सेवा करते हैं सो स्वर्ग को जाते हैं । ।२।

मू०—आढ्याश्चरुपवन्तश्च यौवनस्थाच भारत ।
येवै जितेन्द्रियाः धीरा स्तेनराः स्वर्गगामिनः ।३।

अर्थ—धन, रूप, यौवन से युक्त होकर जो इन्द्रिय गण को जीत लेते हैं अतिः धैर्यवान हैं सो स्वर्ग में जाते हैं।

मू०—सुवर्णस्यच दातारो गवां भूमेरच भारत ।
अन्नानांवासासांश्चैव नरास्ते स्वर्गगामिनः ।४।

अर्थ—स्वर्ण, गौ, पृथ्वी, अन्न, वस्त्र, जलादि पदार्थों का जो दान देते हैं सो स्वर्ग में जाते है ।४।

मूल—वापीकूप तड़ागानां प्रपानाम् देव वेश्मनाम् ।
आश्रमाणां च कर्तार स्तेनराःस्वर्ग गामिनः ।५।

अर्थ—बावली, कूप, तालाब, पौं, देव मन्दिर, आश्रम धर्मशाला, पाठशाला, औषधालय, अनाथरक्षा, हे युधिष्ठिर ! इन धर्म कर्मों के करने वाले सब पुरुष स्वर्ग को जाते हैं ।५।

मू०—मनसश्चेन्द्रियाणां च नित्यं संयमनेरताः ।

त्यक्तशोकभयक्रोधा स्तेनगः स्वर्गगामिनः ।६।

अर्थ—जो नित्य ही मन इन्द्रिय रोकने में प्रयत्न करते हैं, शोक, भय, क्रोध, कामादि को त्याग देते हैं सो स्वर्ग में जाते हैं । ॥६॥

मू०—कर्मणा मनसा वाचा नोपतापयते परम् ।
सर्वथा शुद्धभावोयः सयाति त्रिदिवं नरः ।७।

अर्थ—जो मन, वाणी, क्रिया से किसी भी भूत को सन्ताप नहीं देते जो सदा शुद्ध भाव मगल चित्त रहते हैं सो स्वर्ग जाते हैं । ।७।

मू०—ये वर्जयन्ति नित्यंहि परद्रोहं च मानवाः ।
सर्व भूतसमाः दान्ता स्तेनरा स्वर्ग गामिनः ।८।

अर्थ—जो किसी से द्रोह, धोखा नहीं करते सब प्राणी मात्र पर समान दृष्टि रखते हैं । इन्द्रिय मन का दमन करते हैं सो देवलोक को जाते हैं ।८।

मू०—मातृवत्स्व सृवच्चैव नित्य दुहितृ वच्चये ।
परदारेषु वर्तन्ते ते नरा स्वर्ग गामिनः ।९।

अर्थ—पर स्त्री, बड़ी माता बराबर और बहिन छोटी को पुत्री समान जान कर त्यागते हैं वे स्वर्ग जाते हैं ।

मू०—भयार्तानां सशोकानां दरिद्रान्व्याधिकर्षिताम् ।
विमोचयतिये जन्तून् तेनरः स्वर्गगामिनः ।१०।

अर्थ—जो भयातुर, दीन, चिन्तातुर, निर्धन, रोगी,

शरणांगत, अनाथों इन्की रत्ता करने से अभय कर इनको प्रसन्न करते है। वे पुरुष देवलोक स्वर्ग को प्राप्त होते है।

३३— ✻ अन्योक्तय: ✻

मू०—अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरज मण्डितम्।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना ।१।

जो किसी के निमित्त से किसी की स्तुति, निन्दा व उपदेश किया जाय इसमें विशेष तो रूपालंकृति ही होती है। यद्यपि सब स्थानों में कमलों से मण्डित जल के सरोवर भरे भी है तथापि हँस का मन मानसरोवर के विना नहीं रमता सिद्धान्त ये हैं कि यद्यपि संसार नाना विषय चित्र-विचित्र पदार्थों से आनन्द से भरे भी हैं। परन्तु सन्त जन परमहंसो का मन विना आत्म विचार ब्रह्मानन्द से नहीं लगता अथवा जिसकी जिससे प्रीति है उसके विना उस उत्तम जन का मन और जगह नहीं लगता ।१।

मू०—हंसः श्वेतो वकः श्वेतः को भेदो वकं हंसयोः।
क्षीरनीर विभागेन हंसो हंसो वको वकः ।२।

अर्थ—इसी रीति से सब जगह जान लेना हंस भी श्वेत है बगुला भी श्वेत है इसमें क्या भेद है। हंस दूध जल के विभाग से जाने जाते है ? ये दूध ग्रहण करने वाले

हंस होते हैं और सब एक हैं दुष्ट और सज्जन भी गुण दोष ग्राहकता से जाने जाते हैं सन्त गुण को दुष्ट अवगुणों को ग्रहण करते हैं ॥२॥

मू०—भद्रं भद्र कृतं मौनं कोकिलैर्जलदागमे।
वक्तारो दर्दुरायत्र तत्र मौनं हि शोभते ॥३॥

अर्थ—अच्छा किया री कोयल जो तू मेघों के आने से चुप हो गई क्योंकि मेंडकों के रौले में तुम्हारा मौन ही भूषण है। सिद्धान्त ये है कि बहुत मूर्खों में विद्वान का चुप रहना श्रेष्ठ है ।३।

मू०—रे रे कोकिल मा भज मौनं किञ्चिदुच्चारयपंचमरागम्।
नोचेत्त्वामिहको जानीते काक कदम्बकपीहतेचूते ।४।

अर्थ—हे कोयल ! तू यहाँ अति मौन भी न कर कुछ अपने पंचम स्वर को उच्चार, नहीं तो ये कागों के भरे हुए आम वृक्षों पे तुझे कौन जानेगा । गुणी पुरुषों को मूर्खों में अति मौन भी न होना चाहिये फिर गुण को कौन जान सकता है ? ॥४॥

मू०—रे रे चातक सावधान मनसा ।मित्र ! क्षणं श्रूयताम-
म्भदा बहवो वसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशाः।
केचिद् वृष्टि भिरार्द्रयन्ति वसुधां, गर्जन्तिकेचित्वृथा
यं यं पश्यसितस्य तस्य पुरतो मा-ब्रूहिदीनं वचः।५।

अर्थ—हे मित्र पपीहे ! तुम क्षण भर सावधान हो

कर वार्ता को सुनो ये जो बहुत मेघ आकाश पर हैं ये सभी एक से नहीं हैं कोई तो वर्षते हैं कोई वृथा गरजते ही हैं पृथ्वी को जल से कोई-कोई तृप्त करता है। तू जिस २ को देखता है सबके आगे दीन वचन मत कहो धीर रहो सिद्धान्त ये हैं कि पृथ्वी पर अनेक पुरुष धनी हैं उनमें वृथा बढाई करने वाले तो बहुत हैं दाता कोई है। बुद्धिमानों को सबके आगे दीन नहीं होना चाहिये।५।

मू०—काकस्य गात्रं यदि काँचनस्य, माणिक्य रत्नंयदिचंचु देशे।
एकैक पक्षेग्रथितं मणीनां, तथापि काको न तु राजहंसः।६।

अर्थ—काक पक्षी का शरीर स्वर्ण का चुंच रत्नों की और सभी पंखों पर मणी जडी जाय तो भी काक हंस नहीं होता दुष्ट को कितनी शिक्षा करो उपकार करो, प्रीति करो पर दुष्ट जन सज्जन नहीं होता।६।

मू०—लाङ्गूल चालनमधश्चरणावपातं
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनंच।
श्वापिण्डदस्य कुरुते गज पुङ्गवस्तु,
धीरंविलोकयतिचाटुः, शतैश्चभुंक्ते।।७।।

अर्थ—कूकर रोटी देख कर पूँछ हिलाता है आगे लेट कर पेट दिखाता है पैरों में पडता है परन्तु उसको निरादर के बिना कुछ नहीं मिलता। हस्ती राज दरबार में खड़ा रहता है। उसको बड़े आदर से उसका पूरा

आगार मिलता है। बुद्धिमानों को श्वान के समान चचल चित्तका अधीर न होना चाहिये हस्ती के समान धर्य चाहिये।

मू०—दुर्वाङ्कुर फलाहाराः धन्यास्तात वनेमृगा।
विभवोन्मत्त चित्ताना न पश्यन्ति मुखानियत् ।८।

अर्थ—धन्य है वे मृग जो वनमें रह कर घास तृण फूल फलों से निर्वाह करते है पर दुष्ट धनियों के मुख को नहीं देखते सिद्धान्त ये है कि वीतराग पुरुषों को ऐसा ही होना चाहिये जसे वन में वनचारी है ॥८॥

मू०—छायामन्यस्य कुर्वन्ति तिष्ठन्ति स्वयमातपे।
फलान्यपि परार्थाय वृक्षाः सत्पुरुषा इव ।६।

अर्थ—दूसरों पर छाया करते हैं आप धूप सहते हैं फल भी दूसरो को ही देते हैं वे वृक्ष सत्पुरुषों की सदृश हैं क्योंकि सत्पुरुष भी स्वयं कष्ट सह कर गुणों को सग्रह कर परोपकार में ही लगाते हैं।६।

मू०—पत्रपुष्पफलच्छाया मूल वल्कलदारुभिः।
धन्या महिरुहाः येभ्यो निराशा' याति नार्थिनः।१०।

अर्थ—धन्य है ये वृक्ष जो इनमें कोई भी अर्थी निराश नहीं जाता कोई पत्र, कोई फूल फल, कोई मूल, छिलका, लकडी कोई छाया ही पाते हैं सो सत्पुरुषों से भी कोई निराश नहीं जाता जो जिसका अर्थ है वे पूर्ण किये जाते है ॥१०॥

मू०—नीरसान्यपिरोचन्ते कर्पासस्य फलानिमे ।
येषां गुणमयं जन्म परेषां गुह्यगुप्तये ॥१२॥

अर्थ—कपास का फल वे रस भी है पर तो भी सबको अच्छा लगता है क्योंकि सबको परदा करता है । शीत आतप निवारण करता है सिद्धान्त ये कि सत्य पुरुष धन्य हैं यदि कुरूप भी हैं परन्तु जिनका जन्मगुण मय है, परोपकार पर दुःख निवारण ही है ।१२।

मू०—अधः करोषि यद्रत्नंमूर्ध्निधारयते तृणम् ।
दोषस्तवैव जलधे रत्नं रत्नं तृणन्तृणम् ॥१३॥

भा०—समुद्र तेरे में ये बड़ा दोष है जो रत्न हैं सो तो तैने नीचे दबा रखे हैं जो तृण (फेन) है सो ऊपर धारण कर रखी है । ये प्रगट कर दिखाते हैं कि मूर्ख धनी विद्वान् का निरादर करते हैं और मूर्खों का सत्कार करते हैं । अथवा दुष्टजन अच्छी वस्तु को आप दबा लेते हैं निकृष्ट लोगों को देते हैं ॥१३॥

मू०—वातोल्लसितकल्लोलैधिक्ते सागर गर्जनम् ।
यस्य तीरे तृषार्तः पान्थः पृच्छतिवापिकाम् ।१४।

अर्थ—वायु वेग से उठी लहरें तरङ्ग और महान् समुद्र का गर्जना सुनकर एक राही (मुसाफिर) बोला हे समुद्र ! तेरे ऐसे बड़े तरङ्गों को और गर्जन को धिक्कार है जिसके इतने जल के होते भी पंथाई (मुसाफिर) प्यासे ये पूछते हैं

कि भाई कहीं जल पीने को बावली व कूआ है। बताओ सिद्धान्त ये है कि उस महान् मूर्ख बड़े धनवान को धिक्कार है जो वृथा अपनी बढ़ाई करता है और अर्थी सब निराश चले जाते हैं ॥१४॥

मू०—अगाधेनापिकिंतेन तोयेन लवणाम्बुधेः।
जानु मात्रं वरं वारि तृष्णाच्छेदकरं नृणाम् ।१५।

अर्थ—हे समुद्र! तेरे अगाध बहुत खारे जल से क्या है जो तू किसी की प्यास दूर नहीं कर सकता? इस ताल का थोड़ा जल ही बहुत है जो प्यासों की प्यास दूर कर रहा है। बड़ा धनी किस काम का जो किसी का अर्थ पूर्ण नहीं करता है। थोड़े धनवाला ही बड़ा समझो जो सब को पूर्ण करता है ॥१५॥

मुञ्च मुञ्चसलिलं दयानिधे। नास्ति २ समयो विलम्बने ॥
अद्य चातककुलेदिवंगते। वारि २ धर किं करिष्यसि ।१६।

अर्थ—चातक कहता है, हे दयानिधे! हे मेघ; जल की बूँद छोड़ अब देर का समय नहीं है आज हमारी कुल जब प्यासी मर जायेगी तो तू फिर जल को क्या करेगा? राजा को प्रजा व धनी को भिक्षु गण विपता के समय पर कहते हैं कि अब हम भूख से प्राणान्त हों तो फिर इस विभूति को आप क्या करोगे? देना है तो दया कर अभी देवो ॥१६॥

गर्जसि मेघ न यच्छसि तोयम्। चातक पक्षी व्याकुलितोऽयम्।
दैवादिह यदि दक्षिण वातः क्वत्वं क्वाहं क्व च जलपातः ।१७।

अर्थ–हे मेघ ! क्या वृथा गर्जता है ? जल की बूँद नहीं देता हम चातक पक्षी व्याकुल हो रहे हैं। दैवगति से यदि दक्षिण का पवन चल पड़े तो कहाँ तू कहाँ हम कहाँ तेरा जल चला जायगा ? धनी यदि दान देना चाहे तो अर्थी पुरुषों को अभी देले क्योंकि फिर विभूति स्थिर नहीं वृथा क्या मान गर्व करना है ॥१७॥

वातैर्विधूनय विभीषण भीमनादैः।
सञ्चूर्णयत्वमथवा करकाभिघातैः॥
त्वद्वारि विंदुपरि पालित जीवितस्य।
नान्यागतिर्भवति वारिद चातकस्य ।१८।

अर्थ–हे जल ! मेघ हम चातकों की तेरे बिना और गति आश्रय नहीं है चाहे कितना धुनो कठोर गर्जना से डराओ भी अथवा ओले वरषा कर हमें चूर्ण भी कर डालो परन्तु तुम्हारी बूँद से जो हम पालन किये हुये हैं फिर बताओ कहाँ जाँय ? जो जिसके आश्रित है सो उसको त्याग नहीं करता न दूसरी जगह उसकी गति है जैसे स्त्री की गति पति, शिष्य की गुरु ही है रँक दीन की राजा है।

आश्वास्य पर्वत कुलं तपनोपतप्तं ।
दुर्दावविह्नि विधुराणि च काननानि ।

नाना नदीनद शतानिच पूरयित्वा ।
रिक्तोमियज्जलद ! सैव तवोत्तमाश्रीः ॥१६॥

भा०—हे मेघ ! कई एक धूप से तपे हुए पर्वत अग्नि से जलते हुए वन तैने शान्त किये, नाना नदी,नद भर कर पूर्ण कर बहा दिये यदि इतना बरप कर अब तू खाली हो गया है तो ये भी तेरी एक शोभा है। यदि कोई धनी दीन दुःखी को दान देकर अनेकों के दुःख दरिद्र दूर कर या दान देकर निर्धन हो जाय तो वह निर्धनता उसकी अतीव शोभा है । जैसे हरिश्चन्द्र बली आदि राजा हुए हैं। ।१६।

हे कूपत्वंचिरञ्जीव स्वल्पतोये बहुव्ययः ।
गुणनद्रिक्त पात्राणि प्राप्नुवंतिहि पूर्णताम् ।२०।

अर्थ—हे कूप ! तू चिर काल तक जीव, तेरे में जल तो थोड़ा ही है परन्तु तू देता बहुत है क्योंकि गुण (रस्सी) वाला तेरे में खाली पात्र भेजता है तू उसे भर कर भेजता है। थोड़ा धनी भी श्रेष्ठ है जो आए गुणवान को कुछ देकर प्रसन्न कर भेज देता है ।२०।

हे हेमकार ! परदुःख विचार मूढ़,
किं मां मुहुः क्षिपसि वारशतानिवन्हौ ।
मं दीप्यते मयि सुवर्ण गुणातिरेको ।
लाभः परंतव मुखेखलु भस्मपातः ।२१।

भा०—सोनो सुनार को कहता है कि हे मूर्ख, तुम पर दुःख को तो कुछ मन में विचार तू बार बार मुझे आग में तपाता है। मैंने तो स्वर्ण के विना कुछ और नहीं हो जाना है परन्तु तेरे को तो मुख पर भस्म पड़ने के विना और कुछ नहीं है यदि कोई सज्जन किसी सज्जन को ताप दे तो सज्जन की कुछ हानि नहीं है वह दुष्ट आपही क्लेश पाकर विनाश होता है।२१।

३४— * गुरु प्रभावः *

मू०—गुरु र्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।१।

भा०—गुरु ही ब्रह्मा है गुरु ही विष्णु गुरुही शिव है गुरु ही ब्रह्मस्वरूप है। तीन गुरुओं को प्रणाम है।१।

अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।२।

भा०—अज्ञान रूपी मोतियों से जो पुरुष अन्धे है उनके ज्ञान रुपी सुरमे की सलाई से नेत्र खोल दिये है जिन्होंने उन गुरुओं के ताईं प्रणाम ॥२॥

यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मनः ॥३।

अर्थ—जिसकी जैसी ईश्वरमें परमभक्ति है वैसाही गुरुओं में भी हो उसको ही महात्मा तत्त्वार्थ पद का उपदेश देते हैं।

एते वेदोदिताः सर्वे पुरुषार्थाश्चतुर्विधाः ।
गुरु भक्तस्य हस्तस्था भवन्त्यत्र न संशयः ॥४॥

अर्थ–धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह वेद के कहे हुए जो चारों पुरुषार्थ रूप फल हैं सो गुरू भक्त के हाथ में आ टिकते हैं इसमें संशय नहीं ।

प्रष्टव्यागुरुवो नित्यंज्ञातोऽप्यर्थो यदि स्वयम् ।
स वैनिश्चियमानीतो ददाति परमं सुखम् ।४।

अर्थ–पूछना योग्य है मन कुछ गुरुओं से, चाहे आप जानता भी हो तो बात गुरु से निश्चय की जाती है सो परम सुख देती है ।

यः पृष्टा कुरुते कार्यं प्रष्टव्यान् स्वहितान् गुरुन् ।
न तस्य जायते विघ्नः कस्मिंश्चिदपि कर्मणि ॥५॥

अर्थ–जो अपने हितकार्य पूछने योग्य हैं वे गुरु को पूछ के करता है उसको किसी काम में विघ्न नहीं होता है।

यावन्नानुग्रह साक्षात् जायते परमेश्वरात् ।
तावन्न सद्गुरु कश्चित् मच्छास्त्रं वापिनोलभेत् ॥६॥

अर्थ–जब तक पुरुष के उपर परमेश्वर की कृपा साक्षात् नहीं होती तब तक सत्गुरु और सत, शास्त्र का योग नहीं मिलता ॥६॥

उत्पादक ब्रह्म धत्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता ।
ब्रह्म जन्महि विप्रस्य प्रेत्यचेहचशास्वतम् ।७।

अर्थ--एक पिता जन्म देता है दूसरा जो वेद पढाता है उनमें वेद पढ़ाने वाला बडा है वेद पढना ही ब्राह्मण को दोनों लोकों में उत्तम है ।७।

न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः ।
यो वै युवाप्यधीयानस्तंदेवाः स्थविरंविदुः ।८।

अर्थ--जिसके केश श्वेत हो जाते हैं उस अवस्था से वह वृद्ध नहीं कहा जाता जो उमर में युवा भी है परन्तु विद्या पढ़ा हुआ है वोही देवताओं में वृद्ध गिना जाता ।८।

सत्य धर्मार्य वृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा ।
शिष्यांश्च शिष्याद्धर्मेण वाग्बाहूदर संयतः ।६।

अर्थ--सत्य धर्म शौच और सत्पुरुषों के सदाचार है सो सब वाणी इन्द्रियगण उदर को रोक कर आप भी गुरु सदा करें और शिष्यों को भी भलीप्रकार उपदेश करें।

यः समः सर्व भूतेषु निरागी गतमत्सरः ।
जितेन्द्रियः सुचिर्दक्षः सदाचार समन्वितः ॥१०॥

अर्थ--जो सर्व भूतों को सम जानता है, वैराग्यवान है, ईर्षा रहित है, जितेन्द्रिय है, अन्तर बाहिर से शुद्ध और चतुर हो, सदाचार वाला हो ॥१०॥

समबुद्धिः पदप्राप्तस्तत्रापि भगवन्मयः ।
कर्मणा मनसा वाचा भीतेषुह्यभय प्रदः ।११।

अर्थ-- समबुद्धि, भगवद् पद को प्राप्त हो मन वाणी

कर्म से भय वालों को अभय देने वाला हो ।११।

सत्य गुणाविशिष्येभ्यइत्येवयोनिश्च्यते।
हितोपदेशकश्चैव गुरु शब्दार्थ एवस ।१२।

अर्थ—और शिष्यों को सत्य बताने वाला हो कि यह विचार नि सन्देह ऐसा ही है और शिष्यों को हित का उपदेश दिया करे उसको गुरु कहते है ।।१२।।

अत्र सर्वासु विद्यासु कारण गुरुरीरित ।
यथा शिवस्तथैवाय पूजनीय प्रयत्नत ।१३।

अर्थ—इस ससार में सब विद्या के देने में गुरु ही कारण है इससे गुरु को शिवजी के समान जान यत्न से पूजा करे ।१३।

गुरुभ्यस्त्वासन देयमभिवाद्याभि पूज्य च ।
गुरुमभ्यर्च्य वर्द्धन्ते आयुषा यशसाश्रिया ।१४।

अर्थ—गुरु को आसन देना, वन्दना करना पूजन करना धर्म है । क्योंकि गुरुओं की पूजनादि करन से शिष्यों की आयु धन यश बढ़ते है ।

तद्विद्धिप्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञान ज्ञानिनस्तत्त्व दर्शिन ।१५।

अर्थ—साक्षात् ब्रह्म तत्व के जानने वाले ज्ञानी महात्मा तुझ ज्ञान उपदेश करेंगे । तू उस ज्ञान को उनसे सेवा करके, प्रणाम व प्रश्न करके जान ।

यत्रात्मनोगुरोर्निन्दा क्रियते पाप मोहितैः।

तत्र कर्णौपिधायेत्स्थेयं शक्यागतिर्नचेत् ।१६।

अर्थ—जहाँ अपने गुरु की निन्दा कोई पापी पुरुष करता हो वहाँ से चला जाय नहीं जाय सके तो अपने कान बन्द कर लेवे ।१६।

परिवादात् खरो भवति श्वावैभवति निन्दकः।

परिभोक्ता कृमिर्भवति कीटोभवति मत्सरी ।१७।

अर्थ-परिवाद यानि गुरु में कुछ सामान्य दोष है उसको भी किसी से विशेष कहे तो गधा होता है और निन्दा करने से श्वान (कूकर) होता है गुरु की आज्ञा बिना जबरदस्ती से गुरु की कोई चीज को ले के वरते तो क्रिमि होता है। ईर्षा करे तो बड़ा कीडा होता ।१७।

एकमेवाक्षरंयस्तु गुरुःशिष्यं प्रबोधयेत्।

पृथिव्यानास्तितद्द्रव्यं यद्दत्वाचानृणीभवेत् ।१८।

अर्थ-जो गुरु शिष्य को एक अक्षर या विनाश रहित परमात्मा का यथार्थ बोध करदे ऐसा कोई धन पृथ्वी में नहीं है जिसको देकर शिष्य कर्ज से रहित हो ।१८।

नीचं शय्यासनंचास्य सर्वदा गुरु सन्निधौ।

गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत् ।१६।

अर्थ-शिष्य का सदा गुरुओं के पास आसन शय्यादि नीचे होना चाहिये। अपने मन चाहा वसा कोई भी निन्दा

आचरण गुरु के पास न होने चाहिये ।

यस्य साक्षात् भगवति ज्ञान दीप प्रदे गुरौ ।
मनुष्य इति दुर्बुद्धिः तस्य सर्वं निरर्थकम् ॥२०॥

अर्थ—साक्षात् भगवानस्वरूप और ज्ञानरूपी दीपक के प्रकाश कर्त्ता गुरुओं में जिस शिष्य की यह बुद्धि है कि यह भी मनुष्य ही है उसके सब साधन व्यर्थ है ।

"तुलसीदास जी कहते हैं"

चौ०—हरै शिष्य धन शोक न हरई,सो गुरु घोर नरक में परई ।

३५— ❀ क्षमा धर्म ❀

क्षमा तुल्यं तपोनास्ति सन्तोषान्नपरं सुखम् ।
न च तृष्णा परोव्याधिर्नच धर्मोदया परः ।१।

अर्थ—क्षमा समान कोई तप नहीं है, सन्तोष के समान कोई सुख नहीं है, तृष्णा के समान कोई रोग नहीं है, दया के समान कोई धर्म नहीं है ।

बाह्ये चाभ्यन्तरेचैव दुःखेचोत्पादिते क्वचित् ।
न कुप्यति न चा हन्ति सा क्षमा परिकीर्तिता ॥२॥

अर्थ—बाहर व भीतर का कोई किसी प्रकार का अपराध करे उस पर न कोप होना न मारना उसको क्षमा कहते हैं ।

क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेव प्रशाम्यति ॥३॥

अर्थ—क्षमा रूपी शस्त्र जिसके हाथ में है उसका दुर्जन पुरुष क्या कर सकता है ? इन्धन के बिना आग आप ही शान्त हो जाती है।

क्षमाबलमशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा।
क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमयाकिन्नसाध्यते ॥४॥

अर्थ—दुर्बलों का तो क्षमा बल है बलवान् क्षमा करे तो उसका भूषण है। क्षमा सबको वश कर लेती है क्षमा से सब कुछ हो सकता है

नरस्या भरणं रूपं रूपस्या भरणं गुणाः।
गुणस्या भरणं ज्ञानं ज्ञानस्या भरणं क्षमा।५।

अर्थ—पुरुष का भूषण तो रूप है रूप तब सजता है यदि बीच में गुण हो तो गुण शोभा देता है। यदि ज्ञान हो तो ज्ञान का भूषण क्षमा है।

क्षमा शत्रौच मित्रेच यतीनामेव भूषणम्।
अपराधिषु सत्त्वेषु नृपाणां सैव दूषणम् ।६।

अर्थ—क्षमा शत्रु और मित्र पर भी करनी चाहिये। संन्यासियों का तो क्षमा ही भूषण है, क्षमा अपराधी पर व सत्पुरुष पर भी करनी चाहिये। राजा यदि दुष्टों को दण्ड न दे क्षमा करदे तो दूषण है।

प्रियाऽप्रियेषु सर्वेषु समत्वं यच्छरीरिणाम् ।
क्षमामेवेति विद्वद्भिर्गदिता वेदवादिभिः ।७।

अर्थ—प्रिय हो व अप्रिय हो सब पर ही क्षमा समान रीति से की जाय वेद वादी विद्वान् इसी को क्षमा कहते हैं।

यदिनस्युर्मनुष्येषु क्षमिणः पृथिवी समाः ।
नस्यात्संधिर्मनुष्याणां क्रोधमूलोहि विग्रहः ।८।

अर्थ—संसार में टूटे-फूटे को मिला देने वाले क्षमा-वान् पुरुष पृथ्वी के समान अपराध सहने वाले न होते तो किसी पुरुष का भी परस्पर मिलाप न रहे क्योंकि क्रोध तो कलह का कारण है।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्ड विधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमागुणवतां बलम् ।९।

अर्थ—दुष्टों का तो हिंसा या मारना, पीटना, दुर्वचन, बकना यही बल है राजा का बल दण्ड है, स्त्रियों का बल पति की (आज्ञा में रहना) गुणी पुरुषों का बल क्षमा है।

क्षुधासमं नास्तिशरीर पीड़नचिन्तासमं नास्तिशरीर शोषणम्
विद्यासमं नास्ति शरीर भूषणंक्षमासमं नास्तिशरीर रक्षणम् ।१०।

अर्थ—क्षुधा के समान कोई शरीर को और पीड़ा करने वाला नहीं चिन्ता के समान कोई शरीर को सुखाने वाला नहीं। विद्या के समान कोई शरीर का भूषण नहीं। क्षमा के समान कोई शरीर की रक्षा नहीं है।

३८— ❀ सन्तोष महिमा ❀

सन्तोषामृत तृप्तानां यत्सुखं शान्त चेतसाम्।
कुतस्तन्न लुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥१॥

अर्थ—सन्तोष रूपी अमृत से तृप्त शान्ति चित्त वाले पुरुषों को जो सुख है सो सुख इधर-उधर दौड़ने वाले धन के लोभी पुरुषों को कभी नहीं मिलता।

सर्वत्र संपदस्तस्य संतुष्टस्य च देहिनः।
उपानद्गूढपादस्यननुचर्मावृतैवभूः ।२।

अर्थ—सन्तोष चित्तवाले प्राणियों को सभी जगह सम्पदा है जैसे अपने पाँवों में जूता पहना हो तो सब भूमि चर्म से लपेटी हुई है।

अकिञ्चनस्य दान्तस्य शान्तस्य सम चेतसः।
सदा सन्तुष्ट मनसः सर्वाः सुखमयाः दिशः ।३।

अर्थ—जो निष्किंचन (त्यागी) है सदा सन्तुष्ट मन है, उनको सभी दिशा सुखरूप हैं।

आत्माधीन शरीराणाँ स्वपताँनिद्रया स्वया।
कदन्नमपि मर्त्यानाममृतत्वाय कल्पते ।४।

अर्थ—मन जिसके आधीन है सो अपनी नींद से सोते हैं जो पुरुष सन्तोषी हैं उनको रूखा-सूखा अन्न भी अमृत के समान सुख पुष्टि करता है।

अकृत्वा पर सन्तापमगत्वा खल नम्रताम् ।
अनुत्सृज्य सतांवर्त्म यत्स्वल्पमपि तद्बहुः ।५।

अर्थ—जो धन किसी को पीडा सन्तप्त देकर न लिया हो, दुष्टजनों के आगे दीन होकर भी न लिया हो, सत्पुरुषों का मार्ग त्याग कर अधर्म से न लिया हो सो धन थोड़ा भी हो तो भी बहुत है।

यो मे गर्भगतस्यापि वृत्तिं कल्पितवान्प्रभुः ।
शेष वृत्तिविधानेच नमासुप्तो नवामृत. ।६।

भा०—जो परमात्मा गर्भ में हमारा पालन करता था सो जन्म देकर अब सो गया या मृत्यु तो नहीं होगया वे सदैव ही सबका पालन करता है।

अकिंचनोप्यसौ जन्तु. साम्राज्यसुख मश्नुते ।
आधि व्याधि विनिर्मुक्तं सन्तुष्टं यस्य मानसम् ।७।

भा०—आधि (मन सन्तापादि) व्याधि (शरीर रोगादि) इन दोनों से जो रहित, अर्थात् शोकरोग से रहित, सन्तोषी है धन के बिना भी चक्रवर्ती राजा के समान सुख को भोगते हैं।

धेनुर्वत्सस्यगोपस्य स्वामिनस्तस्करस्यच ।
पयः पिबति यस्तस्या धेनुः तस्येति निश्चय. ।८।

अर्थ—गौ स्वामी की है बच्छे की भी है चोर की और गोप की भी है परन्तु जो दूध पीता है गौ उसकी ही है

दूसरे की नहीं है। वैसे ही लक्ष्मी भी जो वर्तता है उसी की है दूसरे की नहीं है।

गोशतादपि गोक्षीरं प्रस्थंधान्य शतादपि ।
प्रासादादपि खट्वार्ध्यं शेषाः परविभूतयः ।९।

अर्थ–सौ गाय होने पर भी एक सेर दूध आपका है। सौ कोठा अन्न का होने पर भी एक सेर अन्न आपका है जितना पिया खाया गया है, सौ मन्दिर होने पर भी आपकी खाट की जगह है बाकी तो सभी विभूति पराई ही है

सन्तुष्टस्य करं प्राप्ते प्यर्थे भवति नादरः ।
न योजन शतंदूरं बाध्य मानस्य तृष्णया ।१०।

भा०–तृष्णा से बन्धे हुए पुरुषों को तो धन हजारों कोसों पर भी नहीं, सन्तोषी के सोई धन मुट्ठी में देने पर भी उस धन का आदर नहीं होता।

येन शुक्ली कृता हंसा शुकाश्च हरितीकृताः ।
मयूराश्चित्रितायेन समेवृत्तिं विधास्यति ।११।

अर्थ–जिस परमेश्वर ने हंस श्वेत, तोते हरित, मोर विचित्र किए हैं ऐसे सुन्दर रच कर फिर सब चराचर की वृत्ति जीवन को देता है सो हमको भी जरूर देगा।

विश्वंभरं भरत्वं मां विश्वस्माद्वावहिः कुरु ।
उभयोर्यद्यशक्तोसि त्यज विश्वंभराभिधाम् ।१२।

भा०–हे विश्व के पालन पोषण करने वाले! तू

हमारा भी पालन पोषण कर, नहीं तो तेरा नाम निरन्भर नहीं हो सकता।

आपदर्थे धनं रक्षेन्महतां कुत आपदः।
कदाचित्कुपितोदैवः संचितोपि विनश्यति ।१३।

अर्थ—विपदा के लिए धन जमा रखना चाहिये परन्तु भाग्यशाली पुरुषों को विपदा भी नहीं होती, यदि दैवयोग से लक्ष्मी जाने भी लगी तो संचय की हुई भी नहीं ठहरती।

सन्तोषैश्वर्य सुखीनां दूरे दुर्गति भूमयः।
भोगाशा पाश बद्धानां अवमानं पदे २ ।१४।

अर्थ—जो सन्तोषरूपी धन से युक्त है उस पर विपदा नहीं आ सकती है, जो लोभ रूपी आशा फाँसी से बन्धे हुए हैं उनको जगह २ में अपमान और दुःख होता है जो स्वतः मिल जाय उसमें भी सन्तोष रखने वाले ब्राह्मण का तेज बढ़ता है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषुचैव न कर्तव्यो दाने तपसि पाठने ।१५।

अर्थ—अपनी स्त्री, भोजन, धन इन तीनों में पुरुषों को सन्तोष होना चाहिये, विद्या पढ़ने, तप भजन दान देने इन तीनों में सन्तोष न करना चाहिये।

मू०— सर्पाः पिबन्ति पवनं न च दुर्बलास्ते।

शुष्कै स्तृणैर्वनगजाः बलिनो भवन्ति ॥
कन्दैः फलैर्मुनिवराः क्षपयन्ति कालम् ।
सन्तोष एव पुरुषस्य परं निधानम् ॥१६॥

अर्थ—सर्प वायु पीते हैं सो क्या दुर्बल हैं ? वन में रहने वाले हस्ती आदि पशु सूखा घास खाते हैं सो भी बलवान हैं मुनिजन कन्द मूल से ही निर्वाह कर लेते हैं सो सन्तोष ही पुरुषों की परम निधि है ॥१६॥

मू०— वयमिह परितुष्टावल्कलैस्त्वं च लक्ष्म्या ।
सम इह परितोषो निर्विशेषो विशेषः ॥
सतु भवति दरिद्रोयस्यतृष्णा विशाला ।
मनसि च परि तुष्टे कोर्थवान् को दरिद्रः ॥१७॥

अर्थ—भर्तृहरि योगीराज एक राजा को उपदेश करते हैं कि हे राजन् ! हम साधु वन में तृण शय्या वल्कल पहिर कन्द मूल फलाहार कर शान्ती सन्तोष से तृप्त हैं तुम राजा लोग सुन्दर मन्दिरों में बहुत व्यञ्जन भाजी भोजन कर फूलों की सेज पर सुन्दर रानियों से बहुत विभूति से तृप्त हो परन्तु तृप्ति दोनों की एक जैसी हैं शाक हलवा मिठाई में तृप्ति का कोई विशेष भेद नहीं हैं जिसको तृष्णा अधिक है सोई दरिद्री है मन में सन्तोष होने पर न कोई दरिद्री न कोई धनी भासता है ॥१७॥

गन्धाढ्या नव मल्लिकां मधुकर स्त्यक्त्वा गतो यूथिकाम् ।

तांस्त्यक्त्वाशुगतः स चन्दनवनं पश्चात्सरोजं गतः ॥
बद्धस्तत्र निशाकरेण सहसा रोदित्यसौ मन्दधीः ।
सन्तोषेण विना पराभव पदं प्राप्नोति सर्वेजनाः ॥१८॥

अर्थ–जैसे भौंरा लोभ से सन्तोष बिना सुगन्धि युक्त मालती को छोड़ कर जूही के फल पर जाता है वहां तृप्त नहीं होता तो चन्दन वन में जाता है। उसको छोड़ कर कमल में वहां रात्रि को मिंच कर बन्द हो मर जाता है। ऐसे ही मूढ़ पुरुष भी जगह २ निरापद पाकर विनाश होते हैं ॥१८॥

---

३७ ❀ उद्यमाख्यानम् ❀

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।
नहि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः ॥१॥

अर्थ–अब उद्यम वर्णन करते हैं सभी काम उद्यम से ही सिद्ध होते हैं। मनोरथ से कुछ नहीं होता कभी सोये पड़े सिंह के मुख में मृग नहीं आते हैं ।१।

वीरः सुधीः सुविधश्च पुरुषः पुरुषार्थवान् ।
तदन्ये पुरुषाकाराः पशवः पुच्छ वर्जिताः ॥२॥

अर्थ–पुरुषार्थ वाला पुरुष ही वीरता विद्या धन बुद्धि आदि गुणों को प्राप्त हो सकता है अथवा इन गुणों से ही

पुरुष कहा जाता है नहीं तो पशु ही है, सींग पूंछ नहीं तो क्या है ?

सिंहा सत्पुरुषाश्चैव निजधर्मोपजीविनः ।
पराश्रयेण जीवन्तिकातराः शिशवः स्त्रियः ॥३॥

अर्थ—सिंह और सत्पुरुष ये अपने बल से अपना जीवन निर्वाह करते हैं स्त्री बालक और कायर जन ये पराये आश्रय से जीते हैं ॥३॥

आलस्यंहि मनुष्याणाँ शरीरस्थो महान्रिपुः ।
नास्त्युद्यम समोबन्धुः कृत्वा यं नावसीदति ॥४॥

अर्थ—पुरुषों के शरीर में जो आलस्य है यह महान् शत्रु है । उद्यम के समान कोई मित्र बन्धु नहीं है उद्यम करने वाला विनाश नहीं पाता ॥४॥

आलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम् ।
निर्धनस्य कुतो मित्र ममित्रस्य कुतः सुखम् ॥५॥

अर्थ—आलसी को विद्या कहां, विद्या बिना धन कहां, धन बिना मित्र कहां मित्रों के बिना सुख नहीं होता इनसे उद्यम ही सुख का मूल है ।५।

उच्छास्त्रितंच शास्त्रितं पौरषं द्विविधं स्मृतम् ।
उच्छास्त्रितमनर्थाय परमार्थाय शास्त्रितम् ॥६॥

अर्थ—एक तो पुरुषार्थ शास्त्रानुसार है सो तो परमार्थ का हेतु है एक पुरुषार्थ शास्त्र विरुद्ध है सो अनर्थ का कारण है ।

शुभेन पुरुषार्थेन शुभमासद्यते फलम् ।
अशुभेनाशुभं राम यथेच्छसि तथा कुरु ॥७॥

अर्थ–वशिष्ठ मुनि बोले हे राम ! धर्मानुष्ठान सहित जो शुभ पुरुषार्थ है उसको तो शुभ रूप फल है । जो अशुभ अधम पुरुषार्थ है उसका अशुभ दुःख ही फल है, आगे जैसी तेरी इच्छा हो सो कर ।

अनेनमर्त्यदेहेन यल्लोकद्वयशर्मदम् ।
विचिन्त्यतदनुष्ठेयं कर्म हेयं तदन्यथा ॥८॥

अर्थ–ये पुरुष का शरीर दोनों लोकों के कल्याण का कारण है सो इससे करने योग्य शुभ कार्य का करना चाहिये जो त्यागने योग्य अशुभ कार्य है उनको त्याग देना चाहिये ।८।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ।
आत्मैवह्यात्मनो बन्धु रात्मैवरिपुरात्मनः ॥९॥

अर्थ–अपनी आत्मा का यह पुरुष स्वयं ही उद्धार कर लेवे अपना विनाश न करे, धर्मानुष्ठान में लगे रहने से इसकी आत्मा ही अपना बन्धु है अधर्म में लगाने से आत्मा ही इसका शत्रु है ॥९॥

विद्यावितर्को विज्ञानं स्मृतिस्तत्परता क्रिया ।
यस्यैतेषड्गुणास्तस्य न साध्यमतिवर्तते ॥१०॥

अर्थ–विद्या, नीति व सर्वज्ञता, स्मृति, उद्यम, क्रिया

यह छः गुण जिस पुरुष में हैं उसको कोई कार्य असाध्य नहीं, वह सभी कुछ सिद्ध कर सकता है ॥१०॥

शुभाशुभाभ्यांमार्गाभ्यां वहंति वासना सरित् ।
पौरुषेण प्रयत्नेन योजनीया शुभे पथि ॥११॥

अर्थ—शुभ अशुभ दोनों मार्गों से वासना रूपी नदी बह रही है। इसको पुरुष यत्न करके शुभ मार्ग में ही चलावे ॥११॥

विषम समता याति दूर मायाति चांतिकम् ।
सलिलं स्थलतामेति कार्य काले महात्मनाम् ॥१२॥

अर्थ—पुरुषार्थ करने पर महापुरुषों को कठिन कार्य भी सुगम हो जाता है दूर की वस्तु भी समीप और जल की जगह स्थल हो जाता है ॥१२॥

यत्रोत्साह समारम्भो यत्रालस्य विहीनता ।
नय विक्रम संयोग स्तत्र श्री रचला ध्रुवम् ॥१३॥

अर्थ—जो पुरुष उत्साह से कार्य आरम्भ करता है आलस्य से रहित हो खरीदने बेचने में वस्तु के लेने देने में चतुर वा सामर्थ वाला हो उसके पास लक्ष्मी स्वयं ही टिकी रहती है अर्थात वह सहज ही धनवान हो जाता है ।

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृत दण्डं विकारिषु ।
परीक्ष्यकारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते ॥१४॥

अर्थ—मन इन्द्रियें जिसके वश में हों दण्ड जिसका

दृढ़ हो विकारों से रहित हो सभी वस्तु की पशु पुरुष की भी परीक्षा करने वाला धीर हो उसके पास लक्ष्मी दासी बन कर सेवा करती है।

अज्ञोऽपिविज्ञतामेतिशनैः शैलेऽपि चूर्ण्यते।
घुणोप्यत्ति महावृक्षं पश्याभ्यास विजृम्भितम् ॥१५॥

अर्थ—अभ्यास ऐसी वस्तु है अभ्यास से अज्ञानी सर्वज्ञ हो जाता है। पर्वत भी धीरे धीरे चूर्ण हो सकता है। देखो घुण का कीट क्या वस्तु है ? एक तुच्छ जन्तु भी महान् काष्ठ को जीर्ण शीर्ण छेदन कर देता है ॥१५॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्या कुलात्मनः।
सर्वथा व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥१६॥

अर्थ—उद्यम उत्साह से रहित दीन शोक चिन्ता से व्याकुल रहने वाला पुरुष सर्व प्रकार से महान् क्लेश को ही पाता है।

यद्यत्परवशं कर्मतत्तद्यत्नेन वर्जयेत्।
यद्यदात्मवशं तुस्यात्तत्तत्सेवेत यत्नतः ।१७।

भा०—जो २ कर्म पराधीनता से हो, सो २ कर्म प्रयत्न से त्यागने के योग्य है। जो २ कर्म स्वाधीन हो उसको ही यत्न से सेवन करना चाहिये।

सर्वं परवशं दुःखंसर्वमात्मवशं सुखम्।
एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ।१८।

भा०—पराधीनता सर्व प्रकार से दुःख, स्वतन्त्रता से सदा सुख ही होता है सुख-दुःख होने का लक्षण कारण यह थोड़ा में ही समझ लो।

उद्यमः साहसंधैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडैते यत्र वर्तन्ते तत्रदैवः सहायकृत् ।१६।

भा०—उद्यम, साहस, सामर्थ्य, धैर्य, बुद्धि, विचार, शक्ति इन्द्रिय शक्ति यह छे गुण जिस पुरुष में वर्तते हों वहाँ जाना जाय कि यहाँ पर ईश्वर सहायक है।

अलब्धश्चैव लिप्सेतलब्धं रक्षेद वेक्षया।
रक्षितं वर्धयेत्सम्यग्वृद्धं पात्रेषु निक्षिपेत् ।२०।

अर्थ—जो धन अपने पास नहीं है उसको पुरुष पुरुषार्थ प्रयत्न करके संपादन या पैदा करे, संपादन किए हुए को बढ़ाना चाहिये वृद्ध की रक्षा करनी रक्षा किये हुए धन को पात्र, शुभ कर्म दान, भोगादि में लगाना चाहिये।

दोषभीतेरनारम्भस्तत् कापुरुष लक्षणम्।
कैरजीर्ण भयात् भ्रातर्भोजनं परिहीयते ।२१।

अर्थ—जो धन के लिए खेती बणिज सेवा आदि दोषों के भय से जो धन सम्पादन के लिए उद्यम नहीं करता यह लक्षण कायर का है, अर्थात् वह पुरुष कायर है क्या कभी कोई अजीर्ण के भय से भोजन भी त्याग देता है? कोई भी नहीं।

साधूपदिष्ट मार्गेण यन्मनोऽङ्गविचेष्टितम् ।
तत्पौरुषं तत्सफलमन्यदुन्मत्त चेष्टितम् ।२२।

अर्थ—जो कर्म सत्पुरुषों के उपदेशों से शास्त्र वेद की विधि से और अपने मन इन्द्रियों से यथार्थ किया जाय उसको पुरुषार्थ व उद्यम कहा जाता है सो अवश्य सफल भी होता है, इसके विरुद्ध जो कर्म किया जाय सो उन्मत्त चेष्टा या पागलपना है ।२२।

येन संचरते देशान्येन सेवेत पण्डितान् ।
तस्य संकुचिता बुद्धिर्घृतबिन्दुरिवाम्भसि ।२३।

अर्थ—जो पुरुष, विदेश भ्रमण, पण्डित, गुरुजनों की संगति नहीं करता उसकी बुद्धि सन इस प्रकार संकुचित हो जाती है जैसे पानी में घृत की बूँद जम जाती है।

यस्तु संचरते देशोन्यस्तुसेवेत पण्डितान् ।
तस्य विस्तरता बुद्धिस्तैल बिन्दु रिवाम्भसि ।२४।

अर्थ—जो विदेशों में घूमता है, पण्डितों की संगति करता है उसकी बुद्धि जल में तेल के समान फैल जाती है।

व्यापारान्तर मुत्सृज्य वीक्षमाणो वधूमुखम् ।
योगृहेष्वेव निद्राति, दरिद्राति संदुर्मतिः ।२५।

अर्थ—जो पुरुष वणिज खेती आदि कर्म को छोड़दे घर में ही स्त्री के मुख को देखता रहता है सो मूर्ख तो जरूर निर्धन दरिद्री ही हो जाता है ।२५।

ये समुद्योग मुत्सृज्य स्थिता दैव परायणाः ।
ते धर्ममर्थं कामं च नाशयंत्यात्मविद्विपः ॥२६॥

अर्थ—जो पुरुषार्थ को त्याग कर दैवाधीन हो रहता है कि अपने आप ही दैव या प्रारब्ध कर देगा। सो तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से भ्रष्ट हुआ अपना ही विनाश करता है ।२६।

विश्वामित्रेण मुनिना दैव मुत्सृज्य दूरतः ।
पौरुषेणैव संप्राप्तं ब्राह्मण्यंराम ! नान्यथा ॥२७॥

अर्थ—वशिष्ठ बोले हे राम ! विश्वामित्र मुनि दैव का भरोसा त्याग कर अपने पुरुषार्थ से ही ब्राह्मणत्व को प्राप्त हुआ न-कोई दूसरी युक्ति से ॥२७॥

पश्य कर्म वशात्प्राप्तं भोज्य कालेतु भोजनम् ।
हस्तोद्यमं विनावक्रे प्रविशेन्न कथंचन ॥२८॥

अर्थ—देखो कर्म प्रारब्ध के बल से जो भोजन मिल गया परन्तु खायगा तो हाथ उठाकर पुरुषार्थ से ही क्या ग्रास भी मुख में दैव ही घसोड़ देगा ।

पूर्व जन्म कृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते ।
तस्मात्पुरुष कारेण विनादैवं न सिध्यति ।२६।

भा०—पूर्व जन्म के लिए कर्म को ही दैव, विधाता प्रारब्ध भाग्य नसीव कहा जाता है पुरुषार्थ बिना दैव भी सिद्ध नहीं होता । दैव भी इसी का पुरुषार्थ है ।

प्राक्कर्म वशतः सर्वं भवतिवेदितिनिश्चितम् ।
तदोपदेशा व्यर्थाः स्युः कार्याकार्य प्रबोधकाः ।३०।

भा०—यदि दैववश से शुभाशुभ होता हो तो वेद शास्त्र के उपदेश सभी व्यर्थ हो जायेंगे शुभाशुभों का दण्ड या प्रायश्चित निन्दादि कोई किसी को न होना चाहिये इससे पुरुषार्थ ही मुख्य है ।३०।

धीमन्तोऽवन्ध्यचरितामन्यन्ते पौरुषं महत् ।
अशक्ता पौरुषं कर्तुं क्लीवा दैवमुपासते ॥३१॥

अर्थ—बुद्धिमान सत्पुरुष तो पुरुषार्थ को ही महान् मानते हैं। जो असमर्थ कायर, आलसी पुरुष हैं सो दैव के भरोसे रहते हैं ॥३१॥

दैवमेवेह चेत्कर्तृ पुरुषः किमिव चेष्टया ।
स्नान दानासनोच्चारान्दैवमेव करिष्यति ॥३२॥

अर्थ—यदि सभी कुछ दैव ही करता है पुरुष कुछ नहीं कर सकता तो फिर स्नान, दान, पान, मल, मूत्र का त्याग यह भी सब दैव ही कर देगा पुरुषार्थ की क्या आवश्यकता है ?

आलस्य स्त्रीसेवा सरोगता जन्मभूमिवात्सल्यम् ।
सन्तोषोभीरुत्वंपड्व्याघाताामहत्त्वस्य ॥३३॥

अर्थ—आलस्य, स्त्री की सेवा या स्त्री में आशक्त रोगी रहना जन्म ग्राम में मोह होना सन्तोष या वैराग्य से

डरते रहना यह छः बातें पुरुष को बड़ा प्रतापवान होने में विघ्न रूप हैं ॥२३॥

अव्यवसायिनमलसं दैवपरं साहसाच्च परिहीनम् ।
प्रमदापतिमिव वृद्धं नेच्छति लक्ष्मीरुपस्थातम् ॥२४॥

अर्थ–जिसका निश्चय यथार्थ न हो, आलसी हो, दैव का भरोसा रखने वाला हो उत्साह उद्यम से जो रहित हो, उससे लक्ष्मी दूर रहती है, जैसे अति वृद्ध पुरुष से स्त्री दूर रहती है ॥२४॥

विद्यां वित्तं शिल्पं तावन्नाप्नोतिमानवः सम्यक् ।
यावद् व्रजति न भूमौ देशाद्देशान्तरंहृष्टः ॥२५॥

अर्थ–विद्या धन, शिल्पतादि गुणों को पुरुष उतना काल नहीं प्राप्त होता जब तक प्रसन्नता से देश देशान्तरों में भ्रमण नहीं करता ।

देशान्तरेषु बहुविधभाषावेषादियेन न ज्ञातम् ।
भ्रमता धरणीपीठे तस्यफलं जन्मनो व्यर्थम् ।२६।

अर्थ–जो विदेशों में घूम कर भी बहुत प्रकार की भाषा बोलना अनेक गुणों को नहीं सीखता वृथा ही पृथ्वी पर घूमता रहा उसका भ्रमण और जन्म भी निष्फल है ।

गंतव्या राजसभा द्रष्टव्या राजवल्लभाः पुरुषाः ।
यद्यपि न भवत्यर्थोभवत्यनर्थ प्रतीकारः ॥२७॥

अर्थ–राजसभा (कचहरी) में जाना चाहिये राजपुरुष

हाकिमों से मिलना चाहिये उनसे बहुत लाभ होगा। यदि लाभ न भी होगा तो अनर्थ उपद्रवों से तो रक्षा हो सकती है।

यस्यास्ति सर्वत्रगतिः स कस्मात्स्वदेशरागेण हि याति नाशम्।
तातस्य कूपोयमिति ब्रुवाणाः क्षारं जलं का पुरुषाः पिबन्ति ॥३८॥

अर्थ—जो पुरुष गुण विद्या पुरुषार्थवान् है सो फिर क्यों स्वदेश में राग कर दरिद्र दुःख को सहारता है, अपना विनाश करता है पिता का लगाया हुआ खारा कूप का जल मूर्ख पीते हैं यदि अपने में सामर्थ्य है तो और क्यों न खोद लिया जाय ? जो स्वदेश ग्राम गृह की प्रीति से दरिद्र ग्रहित करता है। देशान्तरों में उद्योग नहीं करता सो पुरुष कायर है।

त्याज्य न धैर्यं विधुरेऽपि काले धैर्यात्कदाचिद् गतिमाप्नुयात्सः।
यथा समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे संयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥३९॥

अर्थ—विपत्ता आ जाने पर भी धैर्य को न त्यागना चाहिये धैर्य से विपत्ति दूर होकर सम्पदा सुख हो सकता है, जैसे समुद्र में किसी का जहाज डूब जाता है तो फिर भी यात्री (मुसाफिर) तरने का उद्यम करते ही हैं और करना भी अवश्यक है।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदञ्च लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः ॥४०॥

अर्थ—उत्साह (हौसले) वाले को, उद्यमी को कर्म की

क्रिया, काम करने की तरकीब जानने वाले को, व्यसनों से दूर रहने वाले को, शूरवीर को, किये उपकार को, गुण के जानने वालों को, दृढ़ प्रीति वाले को, ऐसे पुरुष के पास लक्ष्मी स्वयं ही निवास करने को आती है।

कुचैलिनं दन्त मलोपधारिणं, बह्वाशिनं नित्य कठोर भाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमयेचशायिनं, विमुञ्चतिश्रीरपि चक्रपाणिनम् ४१

अर्थ—मैले वस्त्र, दान्तो पर मल, बहुत खाना, कठोर, बोलना, सन्ध्या सूर्योदय समय सोना ऐसे मनुष्य चाहे विष्णु तुल्य भी हो तो भी लक्ष्मी नहीं ठहरती ॥४१॥

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
दैवं प्रधानमितिकापुरुषाः वदन्ति ॥
दैवं विहाय कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
यत्नेकृतेयदिन सिध्यतिकोऽत्रदोषः ॥

अर्थ—उद्यमी पुरुष की ही लक्ष्मी सदा सेवा करती है, दैव को मुख तो कायर दुर्बल पुरुष मानते हैं, दैव का भरोसा छोड़ कर अपनी शक्ति के अनुसार कार्य करे यदि प्रयत्न करने पर भी सिद्धि न हो तो फिर अपने को कोई दोष नहीं है।४२।

३८— ❀ द्यूतादि ❀

नश्रियस्तत्र तिष्ठन्ति द्यूतं यत्र प्रवर्तते ।
न वृक्षो जायते तत्र ज्वलति यत्र पावकः ॥१॥

अर्थ—जहाँ जुआ खेलते हों वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती जैसे जहाँ अग्नि का कुण्ड है वहाँ वृक्ष नहीं लगता ॥१॥

द्यूतमेतत्पुराकल्पेदृष्टं वैरकरं नृणाम् ।
तस्माद्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥२॥

अर्थ—जूवा प्रथम कल्प या शुरु से सृष्टि में वैर का कारण देखा गया है राजा नल, राजा युधिष्ठिरादिकों ने जूवे से ही महान् क्लेश पाये हैं, इससे बुद्धिमान् पुरुष जूए को हँसी से भी न खेले ॥२॥
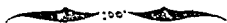
३६— ✻ मद्यादि दुर्व्यसन निन्दा ✻

एकतश्चतुरो वेदाः ब्रह्मचर्यं तथैकतः ।
एकतः सर्व पापानि मद्यपानं तथैकतः ॥१॥

अर्थ—अब मदिरादि दुष्ट विषयों की निन्दा दिखाते हैं, एक तरफ तो चार वेद पढ़ने का फल एक तरफ केवल ब्रह्मचर्य दोनों का फल समान ही है। एक तरफ सब पाप हों एक तरफ केवल मदिरापान, दोनों का समान फल है।

वैकल्पंधरणी पातमयथोचित भाषणम् ।

सन्निपातस्य चिन्हानिमद्यं सर्वाणि दर्शयेत् ।२।

अर्थ—विकल होना पृथ्वी पर गिर जाना, वृथा बकना जो सन्निपात रोग वाले के लक्षण होते हैं सो ही लक्षण मदिरा पीने वाले के होते हैं ।२।

मद्यपस्य कुतः सत्यं दया मांसाशिनः कुतः ।
कामुकस्य कुतो विद्यानिर्धनस्य कुतः सुखम् ।३।

अर्थ—मदिरा पीने वाला सत्य नहीं बोल सकता, मॉस खाने वाले में दया नहीं आती, कामी को विद्या नहीं होती, धन हीन को सुख नहीं होता ।३।

· नग्नविक्षिप्यगात्राणि वालोन्मत्ताविश्रमद्यपः ।४।
मर्त्योहिनस्ति सर्वं मिथ्या प्रलपतिहिविकलयाबुध्या ।
मातरमपि कामयते सावज्ञं मद्यपानमत्तः सन् ।५।

अर्थ—नग्न हुवा अङ्गो को वयर्थ पटकता बालक व पागल की तरह चेष्टा करता है गुप्तवार्ता भी कह देता है ।४। मस्त होकर सबको मारता है, मिथ्या बकता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है माता व बहिन से भी भोग करने में शंका नहीं मानता सबका अनादर करता है । मदिरा को पीकर यह कुकर्म ही करता है ।५।

ना .दत्तमिच्छेन्न पिबेच्चमद्यं प्राणान्नहिंसेन्न वदेच्चमिथ्या ।
परस्य दारान्मनसापिनेच्छेद्यःस्वर्गमिच्छेद् गृहवत्प्रवेष्टुम् ।६।

अर्थ—किसी के धन की इच्छा न करे मदिरा न पीवे

किसी भी प्राणी को न मारे असत्य न बोले पर स्त्री की भी इच्छा न करे जो ये बातें त्याग दे तो घर की तरह स्वर्ग में चला जाय कोई नहीं रोकता ।६।

भंगागञ्जाहिफेनञ्च अहिफेनञ्च कारणम् ।
अहिफेन समं ज्ञात्वा मेधावी नैव सेवयेत् ।७।

अर्थ—भाँग, गाँजा, अफिम, पोस्त, चरस इन सब नशे को बुद्धिमान् कभी न सेवन करे इनको सर्प जहर के समान जाने ।७।

नगेदारिद्र शीलोपितमासुंनैव मुञ्चति ।
निवारितोपि मार्जारस्तमाखुंनैरमुञ्चति ।८।

अर्थ—दरिद्री पुरुष तम्बाखू को भी नहीं छोड़ सकता। जैसे बिल्ली चूहे को नहीं छोड सकती ।८।

नस्वादु नौषधमिदं न च च सुगन्धि ।
नाक्षि प्रियं किमपि शुष्क तमाखु चूर्णम्
किं चाशिरोग जनकश्च तदस्य भोगे ।
बीजं नृणाम् नहि नहि व्यसनम् विनान्यत् ।९।

अर्थ—नए कुछ रसका है न दवाई है न सुगन्धि है न देखने में प्रिय है सूखा भी तमाखू का चूर्ण खाँसी को पैदा करता है, नेत्र रोगों को करता है। बस ये केवल लोगों को व्यसन पड़ा है। इसकी नस्य भी, सुर्ट भी काम भी न लेनी चाहिये। सिद्धान्त यह है कि ये सब वस्तु दवाई

में वैद्य वर्तते थे अब भी वर्तते हैं सो इनको वैद्य की आज्ञा से, विना रोग से कोई कभी न वरते वैसे वृथा इनके सेवन से महान् रोग बढ़ते हैं इसके नशे सेवन से आप अमीर नहीं हो सकते, छोड़दो, ३।

४०— * वेश्या परदारादि *

वेश्याऽसौमदन ज्वाला रूपेन्धन समेधिता।
कामिभिर्यत्रहूयन्ते यौवनानि धनानिच।१।

अर्थ—ये वेश्या (गणिका) कामरूपी अग्नि, अग्नि का पुंज है रूप इसमें ईंधन की जगह है पुरुषों का इस अग्नि कुंड में हवन होता है धन यौवन के साथ वह फूंके जाते हैं।

एताहसंति च रुदंति च वित्त हेतोः।
विश्वासयन्ति पुरुषं न च विश्वसन्ति॥
तस्मान्नरेण कुलशील समन्वितेण।
वेश्याः श्मशाने घटिका इव वर्जनीयाः।२।

ये वेश्या धन के लिए पुरुषों को मोह उत्पन्न करती हुई कभी रोती है कभी हँसती है विश्वास जमा देती है स्वयम् विश्वास नहीं करती, इसी से उत्तम कुल वाले पुरुषों को चाहिये कि वेश्या मसानों की घट की तरह दूर से त्याग दें।

तपोव्रत यशोविद्या कुलीनत्वं दमोव्रयः।

छिद्यन्ते वेश्ययाश्चयः कुठारेण लतायथा ।३।

अर्थ—तप, व्रत, यश, विद्या, कुलीनता, दम, शम, उमर इत्यादि धर्म कर्मों को ये वेश्या ऐसे नाश कर देती है जैसे कुहार से वल्ली का, नाश जल्दी ही होता है ।३।

परदारा न गन्तव्या पुरुषेण विपश्चिता ।
यतो भवन्ति दुःखानि नृणां नास्त्यत्र संशयः ।४।

अर्थ—पर स्त्री गमन बुद्धिमान पुरुषों को कभी नहीं करना चाहिये जिससे अनेक महान् दुःख होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं है ।४।

वधो बन्धोधनभ्रंशस्तापः शोकः कुलक्षयः ।
आयासः कलहो मृत्युर्लभ्यन्ते पारदारिकैः ।५।

अर्थ—मर जाना कैद (बन्धन) में आ जाना, धन का नाश होना सन्ताप शोक कुल का विनाश, वृथा परिश्रम कलह लड़ाई बहुत पुरुषों की मृत्यु ऐसे २ महान् दुःख पर स्त्री से होते हैं ।५।

परदारा न गन्तव्या सर्व वर्णेषुकर्हिचित् ।
नहीदृशमनायुष्यं त्रिषुलोकेषु विद्यते ।।६।।

भा०—ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र, पुरुष मात्र सब को ही पर स्त्री गमन न चाहिये पुरुषों की आयु के घटाने वाला ऐसा कर्म कोई तीनों लोकों में नहीं है।

परस्त्री स्मरणेनापिकोप्यनर्थागमः क्षणात् ।

दृष्टौ कुलादिहंतारौ हा ? दुर्योधन रावणौ ।७।

भा०—पर स्त्री का स्मरण क्षण मात्र भी जो करे तो करोड़ अनर्थों के करने वाला है देखो, रावण, कीचक दुर्योधनादि महान् राजों की कुल का ही विनाश हो गया।

परनारी महामारीश्चष्टाऽकारी यतस्ततः ।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ॥

सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ।८।

भा०—हा महान् बड़ा कष्ट है पर नारी तो महामारी विसूचिका है जो कि बिमारी है मारे बिना छोड़ती नहीं पर धन का हरण, पर स्त्री सेवन सज्जनों का परित्याग सन्तों की निन्दा ये तीनों कर्म पुरुषों की निन्दा कराते हैं।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः सिंन्ध परदाराभिमर्शम्

दम्भंस्तैन्यं पिशुनं मद्यपानम् न सेवेत् यस्यचेच्छा सुखेवै ।९।

अर्थ—पराये घर में वसना, दुष्टों की संगति, परस्त्री सेवन, दम्भ चोर चुगली या शरारत मदिरापाने ये सब दोष अति अनर्थ कारक है इनको त्याग देना चाहिये। ।९।

कुत्र विधेयो यत्नो विद्याभ्यासे सदौषधेदाने।

अवधीरणाक्वकार्य खलपरयोषित्परधनेषु ।१०।

अर्थ—पुरुषों को पुरुषार्थ प्रयत्न अभ्यास करना श्रेष्ठ है। विद्याभ्यास सत्संग दान में त्याग में, आलस्य दुष्ट संग पर स्त्री पर धन का त्याग करें ।१०।

रावणस्तिर्जनकजा हरणेन वाली ।
तारापहार विधिना म-च कीचकोऽपि ॥
पाञ्चालिकामथनान्निधनं जगाम ।
तस्मात्कदापि परदाररतिं न कुर्यात् ॥११॥

अर्थ—सीता हरण से रावण, तारा से वाली, द्रौपदी से कीचक, ये सब विनाश हो गये इससे पर स्त्री से प्रीती कभी न करे ।११।

यः पुरुषेपरयोषित्सङ्गं वाञ्छतियश्चधनंपरकीयम् ।
यश्चसदा गुरु बन्धु विमानी तस्यसुखं न परत्र न चेह ।१२।

अर्थ—जो पुरुष पर स्त्री संग करता है पराया धन हर लेता है जो गुरुका, सन्तों का माता पितादि वृद्धों का अपमान करता है उस पुरुष को न इस लोक में कोई सुख होता है न परलोक में ।१२।

प्राणातिपातः स्तैन्यं च परदाराभिमर्शनम् ।
त्रीणिपापानिकायेननित्यशः परिवर्जयेत् ।१३।

अर्थ—जीवों का मारना, पर स्त्री, चोरी ये तीनों पाप कोई भी न करें ।१३।

विषस्य विषयाणाञ्च दृश्यते महदन्तरम् ।
उपभुक्तं विषंहंति विषयाः स्मरणादपि ।१४।

अर्थ—विष का और विषयों का महान् भेद है विष तो खाने से मारती है विषय स्मरण करने से ही मार देता है

कुरंग मातंग पतंग भृंगा मीना हत्ताः पञ्चभिरेवपञ्च।
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवतेपञ्चभिरेव पञ्च ।१५।

अर्थ—मृग शब्द से। हस्ती स्पर्श से, पतंग रूप से, मच्छी रस से, भँवरे गन्ध से, ये पाँचों एकाएक विषय के सेवन से मारे जाते हैं ये पुरुष में तो पाँचों ही वर्तते हैं सो ये अज्ञानी पुरुष पाँचों को सेवन करता हुआ कैसे बच सकता है। परन्तु इन मृगादि पशुओं से ये विचार की अधिकता रखता है। इससे विचार ज्ञान बल से ये बच सकता है यदि इसको विचार नहीं हो तो यह भी पशु ही है।

४१— ❀ अथ लोक वासना निन्दा ❀

अति दाक्षिण्ययुक्तानां शङ्कितानां पदे पदे।
परापवादभीरूणाँ दूरतो यान्ति सम्पदः ।१।

अर्थ—अति चतुराई करने वालों से हर एक बात में शंका व तर्क करने वालों से अति निन्दा से डरने वालों से विभूति दूर चली जाती है ।१।

निन्दां यः कुरुते साधो स्तथस्वंदूषयत्यसौ।
खेभूतिं यस्त्यजेदुच्चै मूर्ध्नितस्यैवसापतेत् ।२।

अर्थ—जो पुरुष किसी सत्य पुरुष की निन्दा करता है सो तो अपनी ही निन्दा करता है आकाश में जो धूली फैंकता है सो तो उसी के सिर, नेत्र, मुख पर गिरती है।

काकः पक्षिषु चाण्डालः स्मृतः पशुषुगर्दभः।

मुनीनां कोप चाण्डालः सर्वचाण्डालः निन्दकः ।३।

अर्थ--पक्षियों में काक, पशुओं में श्वान, खर, सर्पों में क्रोध चाण्डाल है परन्तु सबसे चाण्डाल पुरुष निन्दा करने वाला है ।३।

म्रियते न खलु कश्चिदुपायः सर्वलोक परितोष करोप. ।
सर्वथा स्वहितमाचरणीयं किं करिष्यतिजनो बहुजल्पः ।४।

अर्थ—महात्मा इस उपाय को देख रहे है कि सब लोक हमारे पर प्रसन्न रहें परन्तु ऐसा उपाय तो कोई है ही नहीं । इससे सदा ही अपने धर्म रूप हित के मार्ग में चले जाना चाहिये वृथा मूर्ख लोगों की कल्पना क्या कर सकती है ।

जीवन्तु मे शत्रुगणाः सदैवयेषां प्रसादात्सुविचक्षणोऽहम् ।
यदा यदा हं विकृतिंभजामि तदा तदा मां प्रतिबोधयन्ति ।५।

अर्थ—जीते रहें हमारे शत्रु गण निन्दा करने वाले वह तो हमारे पर कृपा करते है क्योंकि जैसे २ हमारे विकारों को कहते हैं वैसे २ हम अपने दोषों को त्यागते है । उनकी कृपा से हम सज्जन हो गए, सो वो हमारे शत्रु नहीं हैं किन्तु मित्र हैं ।५।

नवेत्तियोयस्य गुणप्रकर्षं स तं सदा निन्दतिनात्रचित्रम् ।
यथा किराती करि कुम्भ जातां मुक्तां परित्यज्यबिभर्तिगुञ्जाम् ।६।

अर्थ—जो जिसके गुण को नहीं पहुँच सकता है सो

मूर्ख उसकी निन्दा करता है गुण पर प्रसन्न नहीं करता जैसे कोई भील नीच जाति गज मोति माला को त्याग कर गुंजा को धारण करते हैं ये आश्चर्य की बात है ।६।

वसन्त्यरण्येषुचरन्तिदूर्वाः पिबन्तितोयान्य परिग्रहाश्च।
तथापिवध्या हरिणाः नराणामकोलोकमाराधयितुं समर्थः ।७।

अर्थ—देखो मृग वन में रहते हैं घास खाते हैं नदियों का पानी पीते हैं किसी को कभी नहीं सताते तो भी दुष्ट जन उनको मारते हैं। फिर इस संसार को वश करने में कौन समर्थ हो सकता है ? कोई भी नहीं ।७।

मन्निंदयायदिजनः परितोषमेति,
नन्वप्रयत्नसुलभोयमनुग्रहोमे ।
श्रेयेर्थिनोऽपिपुरुषा परितुष्टि हेतोः,
दुःखार्जितान्यपि धनानिपरित्यजन्ति ।८।

अर्थ—हमारी निन्दा कर यदि कोई जन प्रसन्न होते हैं तो ये तो निर्यत्न सुखाली ही वार्ता है ये तो मेरे पर बड़ी कृपा है सुख के अभिलाषी पुरुष तो प्रसन्नता के लिए दुःख से पैदा किए धन को भी त्याग देते हैं ।८।

निन्दंतु नीति निपुणाः यदिवास्तुवंतु ।
लक्ष्मीः समा विशतु गच्छतुवायथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगाँतरे वा ।
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।९।

अर्थ—चाहे कोई निन्दा करे चाहे स्तुति करे विभूति भी रहे चाहे चली जावे, मृत्यु भी आज ही हो चाहे कालान्तर तक हो परन्तु नीति विद धीर पुरुषों का मन धर्म के मार्ग से चलायमान कभी नहीं होता ।६।

जाड्यं ह्री मति गएयते व्रतरुचौ दम्भः शुचौकैतवम् ।
शूरेनिर्घृणता मुनौगिमतिता दैन्यं प्रियालापिनि ॥
तेजस्विन्य निलिप्तता मुखरतावक्तार्थशक्तिस्थिरे ।
तत्कोनामगुणोभवेत्सुगुणिनाँयोदुर्जनैर्नाङ्कितः ।१०।

अर्थ—सो दुष्ट जन लज्जा वाले को जड कहते हैं, व्रती को दम्भी शुद्धि करो तो छलिया, शूर को क्रूर, मुनिजनों को अभिमानी, मीठा बोल ले तो दीन, तेजस्वी को विलामी वार्ता करने में चपल, स्थिर चित्त वाले को कठोर कहते हैं गुणी पुरुषों का ऐसा कौन गुण है जिसको दुष्टों ने दोष नहीं लगाया हो ? गुण में दोष लगाना तो दुर्जनों का सहज स्वभाव ही है ।१०।

:oo.

४२— ❀ विषयाशक्ति ❀

मत्तेभ कुम्भदलने भुवि सन्ति शूराः ।
केचित्प्रचण्ड मृगराज वधेषु दक्षाः ॥
किन्तु ब्रवीमि बलिनाँ पुरतः प्रसह्य ।
कन्दर्पदर्पदलने विरलो मनुष्यः ।१।

अर्थ—मदे हुए हस्ती के सिर तोड़ने को समर्थ और बलवान् सिंह के वध करने में समर्थ शूरवीर तो भूमि पर कई एक हैं किन्तु बलवानों के आगे हम भुजा उठा कर कहते हैं कि कामदेव की विजय करने में कोई पुरुष विरला ही होगा ।१।

योषिद्धिरण्या भरणाम्बरादि ।
द्रव्येषु मायी रचितेषुमूढ़ाः ॥
प्रलोभतात्माह्युपभोग बुद्धिः ।
पतङ्ग वन्नश्यति नष्ट दृष्टिः ॥

अर्थ—स्त्रियों के सुन्दर स्वर्ण के भूषण पाटंबरादि वस्त्र जो शृंगार किया हुआ है सो मिथ्या भूत माया रचित पदार्थ है उनके तत्त्व को न विचारते हुए अज्ञानी पुरुष भोग बुद्धि से उनमें गिरकर दीपक में जैसे पतंग जल जाता है ऐसे दग्ध हो जाते हैं ।२।

कृशः काणः खंजः श्रवणरहितः पुच्छविकलः ।
व्रणैः पूतिक्लिन्नःक्रमिकुल शतैरावृततनुः ॥
क्षुधा क्षामो जीर्णः पिडरकपालार्दितगलः ।
शुनीमन्वेतिश्वाहतमपि चहन्त्येव मदनः ।३।

अर्थ—भर्तृहरिजी कामातुर कूकर को देख कर कहते हैं कि देखो ये श्वान काना है, लंगड़ा है, कृश सूखा हुआ है, कान कटे हैं पुच्छ कटी है, पका हुआ सब शरीर उसमें

कृमि कीड़े पड़े हैं, ऊपर से माँस काग खाते हैं, दूसरे कुत्तों से पीछे दबाया हुआ बूढ़ा भूखा प्यासा भी है। ऐसी दशा होने पर भी ये कुत्ती के पीछे दौड़ा जाता है। हाः हाः काम बड़ा बलवान् है, निर्दयी है, मरे को भी मारता है।

संसार ! तवनिस्तारः पदवी न दवीयसी।
अन्तरा दुस्तरा नस्युः यदिरे मदिरेक्षणाः ।४।

अर्थ—हे संसार ! तेरे से पार होना कुछ कठिन नहीं था यदि पूर्ण मदभरे नेत्रों वाली तरुण स्त्री रूपी दुस्तर विघ्न बीच में न होती ॥४॥

भिक्षाशनं नीरसमेकवारं शय्या च भूः परिजनो-
निज देह मात्रं, वस्त्रंच जीर्ण शतखंडमयी-
चकन्था हा हा तथापि विषयाः न परित्यजन्ति ।५।

अर्थ—भिक्षा अन्न नेरस एक बार कभी नहीं भी मिलता है भूमि में सोता है कोई पास सम्बन्धी भी नहीं शरीर मात्र ही अकेला रहता है फटी सी लीरें जोड़ कर गोदड़ी बनी है बूढ़ा है अन्ध पड़ता है परन्तु ये पामर चित्त भोगों की आशा को अभी भी नहीं छोड़ता। दुस्तर है।

विज्ञानंतोऽप्यते यपमिह विपज्जाल जटिला, न मुञ्चाम।
कामानहह गहना मोह महिमा ॥६॥

अर्थ—पतंग रूप से, मीन रस से, भ्रमर गन्ध से, मृग शब्द से, हस्ती काम से, ये सब एक एक विषय के

अधीन होकर मारे गये। भला इन को सो ज्ञान नहीं है। हा ! हम पुरुष जो सब कुछ जानते हुए भी नहीं बच सकते। हाय ? मोह बड़ा प्रबल है।६।

४३— ❀ अथ पर सेवा दोष ❀

सेवया धनमिच्छाद्भिः सेवकैः पश्यकिंकृतम् ।
यत्स्वातंत्र्यं शरीरस्य मुढैस्तदपिहारितम् ।१।

अर्थ—अब पर सेवा दुःख कहते हैं सेवा से धन की इच्छा वालों को देखिए स्वतन्त्र रहने वाले अपने इस सुन्दर शरीर को पराधीन कर विनाश कर लेते हैं सो मूर्खपना ही है।१।

मौनान्मूर्खो माषाणाच्च धूर्तोवाजल्पकस्तथा ।
पार्श्ववर्तीचधृष्ठः स्याद् प्रगल्भश्चदूरतः ।२।

अर्थ—चुप रहो तो कहते हैं अरे मूर्ख। बोलने से कहते हैं क्यों वृथा बकता है ? हर वक्त पास रहे तो कहते हैं चल परे, परे रहे तो कहते हैं बेसुध कहाँ मर रहा था।

चान्त्याभीरुः कोपयुक्तोमूर्खः सेवक उच्यते।
रूपवांश्च भवेज्जारः सेवाधर्मोऽतिदुर्गमः ।३।

अर्थ—शान्त चित्त हो तो कहते हैं ये बड़ा डरपोक है क्रोधी को बड़ा क्रूर कठोर है, रूपवान हो तो ये बड़ा कामी है। सेवा धर्म बड़ा कठिन है ॥३॥

भूशय्या ब्रह्मचर्य्यं च कृशत्वं लघुभोजनम् ।
सेवकस्ययतेर्वापि विशेषः पापधर्मजः ॥४॥

अर्थ—भूमि पर सोना, स्त्रियों से बच कर रहना, थोडा भोजन मिलना सो भी बचा हुआ कृश रहना संन्यास धर्म का और सेवक धर्म का भेद इतना ही है संन्यास पुण्य कर्म का फल है सेवकपना पापकर्म का फल है तितीक्षा "सहन" दोष सहन "शीतादि सहन" दोनों समान ही है ।

वरं वनं वरं भैक्ष्यं वरं भारोपजीवनम् ।
पुंसां विवेकहीनानां सेवया न धनार्जनम् ।५।

अर्थ—वन में रहना व भिक्षा माँग लेना व भार उठाना सो तो श्रेष्ठ है परन्तु जो मूर्ख की सेवा कर धन की इच्छा करता है सो तो अति निकृष्ट है कोई बडे पाप का फल है । ॥५॥

स्वाभिप्रायः परोक्षस्य परिचित्तानुवर्तिनः ।
स्वयं विक्रीतदेहस्य सेवकस्यकुतः सुखम् ।६।

अर्थ—जो किसी से अपने मन का चरित्र नहीं कह सकता पराये चित्त के अनुसार वर्तता है । अपना शरीर ही बेच रक्खा है तो सेवक होकर सुख कहाँ ? ॥६॥

जीवतोऽपिमृताः पञ्चव्यासेन परिकीर्तिताः ।
दरिद्रोव्याधितोमूर्खः प्रवासी नीचसेवकः ।७।

अर्थ—दरिद्री, रोगी मूर्ख विदेश व पर घर में रहने

वाला दुष्ट का नौकर रहना ये पाँचों ही जीते जी मृत हैं व्यास जी ने कहे हैं ॥७॥

स्वयं जहाति सेवकः सुखंचमानमेव च ।
यदर्थमर्थमीहते तदेव तस्य हीयते ॥८॥

अर्थ—सुख और मान के लिए पुरुष धन को संग्रह करते हैं सो सेवक के दोनों पहिले ही नहीं रहते उल्टा धन के लिए सुखमान का स्वयं ही विनाश कर लेता है।

प्राणमस्युन्नतिहेत्तोः जीवहेतोर्विमुञ्चति प्राणान् ।
दुःखयति सुखहेतोः को मूर्खः सेवकादन्यः ।९।

अर्थ—प्राणों की पुष्टि के लिए तो प्राणों को देता है सुख की इच्छा से आयु भर ही दुःख भोगता है भृत्य से परे और कौन मूर्ख है ॥९॥

तुलसीदास जी ने कहा है कि—

चौ०—कौल कामवश कृपण विमूढ़ा, अति दरिद्रि अपयशी अति बूढ़ा। सदा रोग वश, संतत क्रोधी राम-विमुख श्रुति सन्त विरोधी, तन पोषक निन्दक अघखानी, जीवत शव सम चौदह प्राणी ॥

४४—— ❀ अथ आत्म हत्यारा ❀

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभंप्लवंप्रकल्प्यगुरुकर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितम्, पुमान्भवाब्धिंनतरेत्सआत्महा ।१।

अर्थ—यह पुरुष देह मिलना दुर्लभ है परन्तु किसी पुण्य योग से सुलभ मिल गया संसार समुद्र तरने को नर देह जहाज की समान है जो गुरु मिल गये सो एक मल्लाह मिल गया उसका चलाने वाला ईश्वर कृपा जो हुई सो पीछे सहारा करने वाला वायु चल पड़ा ऐसे समान को पाकर भी जो पुरुष संसार सागर से न तरे सो आत्म हत्यारा है

आनन्दरूपोनिजबोधरूपोदिव्यस्वरूपोबहुनामरूपः ।
तपः समाधौ कलितोनयेनपुमान्भवाब्धि न तरेत्सआत्महा ।२।

अर्थ—आनन्द स्वरूप बोधस्वरूप, दिव्य स्वरूप अनेक जिसके नाम रूप हैं ऐसे परमात्मा को समाधि द्वारा जो पुरुष प्राप्त नहीं है वह भी आत्मघाती है ॥२॥

असूर्या नामनलोका अन्धेनतमसावृता ।
तांतेप्रत्यभिगच्छन्तिये केचात्महनोजना ।३।

अर्थ—कभी भी जहाँ ज्ञान रूप प्रकाश नहीं है अन्ध तम महान् अज्ञान से ढके हुए पशु वृक्षादि देह हैं उन योनियों को वह पुरुष मर कर प्राप्त होता है जो पुरुष देह को पाकर ईश्वर से विमुख विषयों में आयु व्यतीत करते हैं वे पुरुष अपनी आत्मा को घातक हैं ॥३॥

४५— ※ अथ सन्ध्योपासनम् ※

मन्ध्यामुपासतेयेतु मततं मंशितव्रताः ।
विधूतपापास्तेयाँतिब्रह्मलोकमनामयम् ।१।

अर्थ—जो सन्ध्योपासना निरन्तर विघ्न रहित नित्य करते हैं वह स्तुति करने के योग्य है, व्रत जिसका है वह मौ पापों से रहित होकर क्लेश रहित ब्रह्म पद को प्राप्त होता है । ॥१॥

अहोरात्रस्य यो सन्धिः सूर्यनक्षत्र वर्जितः ।
साचसन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।२।

अर्थ—दिन रात की जो सन्धि या मिलाप है व सूर्यतारागण न होवें उमी समय का तत्त्व वेत्ता मुनियों ने सन्ध्या कही ॥२॥

जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ।
सन्ध्याँप्राक् प्रात रेवं हि तिष्ठेदासूर्यदर्शनात ॥३॥

अर्थ—उस समय सन्ध्योपासन करके रात्रि को तो तब तक गायत्री जप करे जब तक अच्छी तरह तारे उदय होवे सवेरे के समय तड़के से लेकर जब तक सूर्य अच्छी तरह से तेजवान् होवे तब तक जप करे यदि ज्यादा समय तक भी जप करना हो तो करो निषेध नहीं परन्तु उतना समय तक तो जरूर करो ।३।

सन्ध्याहीनस्तुयोविप्रोह्यन्यत्रकुरुतेश्रमम् ।
सजीवन्नेवशूद्रत्वमाशुगच्छति सान्वयः ॥४॥

अर्थ—जो ब्राह्मण सन्ध्या कर्म से रहित हो तो वह ब्राह्मण वृथा टूंणे कुमन्त्र से तागे तावीज करता है और वह जीवता हुआ भी शीघ्र शूद्र संज्ञा को प्राप्त होता है उसको शूद्र ही समझो ॥४॥

तस्मान्नित्यं प्रकुर्वीतसन्ध्योपासनमुत्तमम् ।
तदभावेऽन्य कर्मादावधिकारोभवेन्नहि ॥५॥

अर्थ—इससे नित्य ही सन्ध्योपासना दोनों समय जरूर करो सन्ध्या के बिना वैदिक कर्म का यथार्थ अधिकार नहीं होता ॥५॥

नानुतिष्ठति यः पूर्वांनोपास्तेयश्चपश्चिमाम् ।
ससाधुभिर्बहिष्कार्यः सर्वस्माद्द्विजकर्मणः ।६।

अर्थ—जो प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय की सन्ध्या नहीं करता उसे ब्राह्मण कर्म से या साधु को वैदिक धर्म से उसी समय बाहर निकाला जाय मनु जी ने उस पर ये दण्ड कहा है ॥६॥

तस्मात्सर्वे प्रयत्नेनसन्ध्योपासनमाचरेत् ।
अन्यथा शूद्रवद्भूयात् सर्वकार्येषु निन्दितः ।७।

अर्थ—इससे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य ये दोनों समय में संध्या जरूर करें नहीं तो शूद्र के समान निन्दित समझे जाते हैं।

तस्मान्नलंघयेत्सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः।

उल्लंघयति योमोहात् स याति नरके ध्रुवम् ।८।

अर्थ—इससे सन्ध्या को दोनों समय न छोड़े। जो छोड़ते हैं अज्ञान से जरूर नरक में जाते हैं।८।

ब्रह्मणोपासितासन्ध्या विष्णुना शंकरेण च।

कोपास्ते कस्वतांदेवीं सिद्धिकामो द्विजोत्तमः।६।

अर्थ—ब्रह्मा विष्णु शिव और सब ऋषि मुनि सन्ध्योपासन करते रहे हैं सन्ध्या किए बिना उत्तमद्विज कोई सिद्धि नहीं पा सकता।६।

विप्रोवृक्षस्य मूलश्च सन्ध्यावेदाः शाखाधर्मकर्माणिपत्रम्।

तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्नेमूलेनैव पत्रं न शाखा।

अर्थ—ब्राह्मण रूप एक वृक्ष है, उसका मूल सन्ध्या है वेद पठन इसके डालें हैं, वैदिक धर्म कर्म इसके डाली पत्र हैं. स्वर्गादि लोक सुख इसके फूल हैं, मोक्ष इसका फल है। जो सन्ध्योपासन करता है, वेद पढ़ता है, वैदिक कर्म करता है, वह तो मोक्ष रूपी फल भी पा सकता है। जब मूल ही कट गया तो फल कहाँ? अर्थात् सन्ध्या मात्र भी नहीं होती तो फिर मोक्ष कहाँ? फिर तो नरक ही तैय्यार है। इससे सन्ध्या को ही बड़े प्रयत्न से करो।

४६— ❀ अथ अक्रोध (शम) ❀

यः समुत्पतितं क्रोधं अक्रोधेन निरस्यति ।

देवयानि ! विजानीहि तेन सर्वमिदं जितम् ।१।

अब कुछ क्रोध का निरूपण करते हैं कि जो पुरुष क्रोध की उत्पत्ति होते समय ही शान्ति से क्रोध का निवारण कर लेता है उस पुरुष ने यहाँ सबको जीत लिया है हे देवयानि ! ये तुम जानो ।

क्रोधोमूलमनर्थानां क्रोधः संसार वर्द्धनः ।

धर्मक्षयकरः क्रोधः कालकूटो न यथा तथा ।२।

अर्थ—क्रोध ही सब अनर्थों का मूल है क्रोध ही साँसारिक दुःखों को बढ़ाता है । क्रोध ही धर्म का विनाश करता है इससे काल कूट विष के समान क्रोध का परित्याग करदे ॥२॥

उत्तमे तु क्षणंकोपो मध्यमे घटिका द्वयम् ।

अधमे स्यादहोरात्रं चाण्डाले मरणान्तिकम् ।३।

अर्थ—उत्तम पुरुषों को यदि क्रोध हो तो क्षण मात्र होता है मध्यम पुरुष में दो घड़ी मात्र, अधम में दिन रात तक, चाण्डालों में मरण तक रहता है ।३।

क्रोधस्यकालकूटस्य विद्यते महदन्तरम् ।

स्वाश्रयं दहति क्रोध.कालकूटो नचाश्रयम् ।४।

अर्थ—क्रोध का और विष का बड़ा फर्क है क्योंकि

क्रोध तो जिससे पैदा होता है व जिसमें रहता है उसी को पहले दाह करता है विप जिससे पैदा होता है या जिस पात्र में रहता है उसको नहीं दाह करता ।४।

क्रोधोनाशयते धैर्यंक्रोधोनाशयतेश्रुतम् ।
क्रोधो नाशयते सर्वं नास्तिक्रोधसमोरिपुः ।५।

अर्थ—क्रोध धैर्य का भी नाश कर देता है पढ़ा सुना भी भुला देता है क्रोध सर्वांश का भी नाश कर देता है इससे क्रोधके समान कोई शत्रु नहीं है क्रोध ही परम शत्रु है

यस्तु क्रोधं समुत्पन्नं प्रज्ञया प्रतिबाधते ।
तेजस्विनं तं विद्वांसो मन्यन्ते तत्वदर्शिनः ।६।

अर्थ—जो क्रोध होते समय ही बुद्धि से क्रोधको निवारण कर लेता है उसी को ही तत्वदर्शी ज्ञानी पुरुष तेजस्वी और विद्वान् मानते हैं ।६।

विपाके दुःख कामस्य नाधुना सर्वदेहिनाम् ।
विपाके प्यधुनाक्रोधः सर्वदा दुःखदः स्मृतः ।।७।।

अर्थ—काम का दुःख सब भूतों को वर्तमान या भोग के समय पर मालूम नहीं होता पीछे फल अवस्था में मालुम होता है और क्रोध तो पीछे पहिले सदा ही दुःख दायक है ।७।

जायते यत्र स क्रोधस्तं दहेदेपसर्वतः ।
विपयाञ्च क्वचित क्रोधः सफलो निर्दहेद्वयम् ।८।

अर्थ—जिसमें क्रोध पैदा होता है उसको तो पहिले ही सब प्रकार से फूँक देता है और जिस पर कोप किया जाता उसको तो पीछे थोडा सा दाह करता है किसी को ज्यादा भी करता है ॥८॥

अश्वारोहं यथा दुष्टोवाजीगर्ते निपातयेत् ।
एवं क्रोधश्चनिरकेनरमाशु निपातयेत् ॥९॥

अर्थ—जैसे दुष्ट घोड़ा सवार को खाई खोपों में गिराकर नाश कर देता है ऐसे क्रोध भी पुरुषों को नरक में गिरा देता है ॥९॥

सुखार्थिनस्तथापुंसो नास्ति कोप समोरिपुः ।
ततः कोपो नियन्तव्यः कामोदप्यति कष्टदः ॥१०॥

अर्थ—सुख की इच्छा वाले पुरुषों का तो क्रोध परम शत्रु है अर्थात् सब सुख का नाश कर देता है क्रोध काम से भी कष्ट दायक है इससे इसको बहुत यत्न से रोकना चाहिये

क्रुद्धः पापं नरः कुर्यात क्रुद्धो हन्यात्गुरुनपि ।
क्रुद्धः पुरुषया वाचा श्रेयसोऽप्यवमन्यते ।११।

अर्थ—क्रोध के वश होकर पुरुष पाप कर्म करता है क्रोध से गुरु या माता-पिता आचार्यादि सब को मार देता है क्रोध से ही दुष्ट वचन कहता है क्रोध से ही श्रेष्ठों का अपमान भी करता है ।११।

लोभात्क्रोधः प्रभवतिक्रोधाद्द्रोहः प्रवर्तते ।

द्रोहेण नरकं यातिशास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ॥१२॥

अर्थ—लोभ से क्रोध, क्रोध से द्रोह होता है द्रोह करने से नरक में जाता है चाहे शास्त्र पढ़ा हुआ चतुर भी हो धोखा देना बहुत बुरा है।१२।

मातरं पितरं पुत्रम् भ्रातरं वा सुहृत्तम् ।
क्रोधाविष्टो नरोहन्ति स्वामिनं वा सहोदरम् ।१३।

अर्थ—माता पिता पुत्र भ्राता मित्र स्वामी यानि गुरु व राजा आदि सगे भाई बन्धु क्रोध के वश होकर पुरुष इन सबको जान से मार देता है।१३।

धन्यास्ते पुरुषव्याघ्राः ये बुद्ध्याकोपमुत्थितम् ।
निरुन्धन्ति महात्मानो दीप्तमग्निमिवाँभसा ।१४।

अर्थ—धन्य है वे पुरुष जो क्रोध को पैदा होते ही बुद्धि के बल से रोक लेते हैं जैसे जलती हुई अग्नि को जलने से रोक दें अर्थात् शान्त करदें जो क्रोध को शान्त कर लेता है वही महात्मा है।१४।

न भवति भवतिचेन्नचिरं भवतिचिरंचेत्फलेविसंवादी ।
कोपः सत्पुरुषाणां, तुल्यः स्नेहे न नीचानाम् ।१५।

उत्तम पुरुषों में क्रोध नहीं होता यदि हो तो भी चिर तक नहीं रहता। यदि चिर तक भी हो तो फल दायक यानि हानिकारक नहीं होता, ऐसे ही दुष्ट पुरुषों में स्नेह नहीं होता हो तो चिर तक नहीं रहता चिर तक भी हो तो

भी कुछ लाभ दायक नहीं होता।

क्रोधोहिशत्रुःप्रथमोनराणां देहस्थितो देहविनाशनाय।
यथास्थितः काष्ठगतोहिवन्हिः स एव वन्हिर्दहतेचकाष्ठम् ॥

अर्थ—क्रोध के नाश करने के लिए तो क्रोध रूपी शत्रु पुरुषों के देहमें ही स्थित रहता है जैसे काष्ठ में रहता हुआ अग्नि काष्ठ को ही भस्म कर देता है।१६।

नाक्रोशीस्यान्नावमानीपरस्य मित्रद्रोहीनातिनीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रुक्षांवाचरुषतींवर्जयन्ति।१७।

अर्थ—कभी कठोर क्रोधयुक्त न होना चाहिये किसी का अपमान भी न करना चाहिये मित्र के साथ द्रोह नहीं करना चाहिये नीच की संगति व सेवा न करनी चाहिये। अभिमान न करना चाहिये दुष्ट कर्म दुराचार न करने चाहिये रूखी वाणी क्रोध के पैदा करने वाली न बोलनी चाहिये ॥१७॥

न द्विषंतः क्षयंयान्ति यावज्जीवमपिघ्नतः।
क्रोधमेवं तु यो हन्ति तेन सर्वे द्विषोहताः।१८।

अर्थ—जीव मात्र सबके मारने पर भी शत्रु क्षय नहीं होते जिसने क्रोध रूप वैरी को मार लिया उसने सभी शत्रु मारकर जीत लिए ॥१८॥

सुखंह्यव मतः शेते सुखश्च प्रति बुद्धयते।
सुखं चरति लोकेस्मिन्नवमन्ता विनश्यति।१९।

अर्थ—निर्मान रहने वाला पुरुष सुख से सोता जागता है सब जगह निर्भय विचरता है वेफ़िकर रहता है निर्मान पुरुष का कोई विनाश नहीं कर सकता ।

एकः क्षमवतांदोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ।२०।

अर्थ—क्षमा करने में एक दोप प्रतीत होता है और तो कोई दोप नहीं सब सुख ही है, क्षमा वाले पुरुष को सब लोग असमर्थ कहते हैं ।२०।

सोऽस्यदोषो न मन्तव्यः क्षमाहि परमं वलम् ।
शान्तिखड्गः करे यस्य दुर्जनः किंकरिष्यति ।२१।

अर्थ—सो ये दोप क्षमावान् पुरुष को न मानने चाहिये । क्षमा ही परम बल वाली है ।२१।

क्षुतृट् त्रिकाल गुण मारुत जैह्वशैश्न्यानस्मानपार ।
जलधीनति तीर्य केचित् क्रोधस्य यान्ति विफलस्य वशं पदे गोर्मज्जन्ति दुश्चरतपश्चवृथोत्सृजन्ति ।२२।

अर्थ—भूख प्यास सर्दी गर्मी वर्षा जीभ का रस, काम का सुख, कई एक महात्मा इन सबको जीत कर क्रोध में फँस कर अपना नाश कर लिया,जो जप तप बड़ी कठिनता से किए थे वह सब वृथा ही त्याग दिए, जैसे कोई पुरुष महान् समुद्र को पार करके गौ के खुर में जो पानी भरा है उसमें डूब जाय ।२२।

क्रोध के अधीन होकर पुरुष हिंसा यानि जीवों का वध करता है इसलिए हिंसा की निवृत्ति को ही विद्वान अहिंसा कहते हैं। सो अब अहिंसा का स्वरूप व फल सूक्ष्म रीति से कहते हैं।

४७— * अहिंसा *

अहिंसा परमोधर्मस्तथाऽहिंसा परन्तपः
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ।१।

अर्थ—अहिंसा ही परम धर्म है अहिंसा ही परम तप है अहिंसा ही परम सत्य है अहिंसा से ही धर्म की प्रवृत्ति होती है। ॥१॥

अहिंसा परमो यज्ञस्तथाऽहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परममित्रमहिंसा परमं सुखम् ।२।

अर्थ—अहिंसा ही परम यज्ञ है अहिंसा ही परम फल है अहिंसा परम मित्र और परम सुख रूप है ।२।

सर्वभूताभयस्याहुः सर्वदानेभ्यरुत्तम ।
न भूतानामहिंसाया ज्यायान्धर्मोस्तिकश्चन ।३।

अर्थ—जो सब प्राणी मात्र को अभय दान देता है ये सब दानों से उत्तम दान है किसी भी जीव की हिंसा न करनी इससे परे कोई भी श्रेष्ठ धर्म और नहीं है।

सत्यं तपोदया दानं चतुष्पाद्धर्मईरितः।

सर्वैरपि सदासेव्यो जन्मतो मरणावधि ॥४॥

अर्थ—सत्य, तप, दान दया ये चार पाद वाला धर्म कहा जाता है इसमें वर्णाश्रम उमर जाति आदि की कोई आवश्यकता नहीं इसमें सबका अधिकार है कोई भी करो।

चतुष्पादेपधर्मोयं सुखदः सर्व देहिनाम्।

नचवर्णाश्रमं वापि न च योगाद्यपेक्षते ॥५॥

अर्थ—यह चार पद वाला धर्म सबको जन्म से मरण तक करना योग्य है और ये सबको अति सुख देने वाला है

चतुर्विधानाँ भूतानाँ कर्मणा मनसागिरा।

अहिंसायाँसदाधर्मचतुष्पाद्धि व्यवस्थितः।६।

अर्थ—जो अंडज, जेरज, स्वेरज, उद्भिज आदि सर्व जीवों को मनवाणी कर्म से किसी प्रकार से भी नहीं मारता है यही इस धर्म की परम व्यवस्था है।६।

असत्य वचनं तद्वत् भूतानां दुःख कारणम्।

आत्मनोवाऽन्यलोकेवा, परलोके च हिंसनम्।७।

अर्थ—असत्य बोलना और भूतों को किसी कारण से दुःख देना अपनी आत्मा को वृथा पीड़ा देनी है इस लोक में अपने को पीड़ा देने वाला कार्य करना ये सब हिंसा ही है। ॥७॥

यज्ञादिधर्मकरणे प्रवृत्तस्य निवारणम्।

स्वयं चाकरणं पुंसः कुतर्कायैस्तु हिंसनम् ।८।

अर्थ—यज्ञादि कर्म करते हुए किसी को हटा देना और स्वयं भी न करना और शुभ पुरुषों में व शुभ कर्मों में कुतर्क करना ये भी हिंसा ही है।

शौचादीनां तु संत्यागः कर्तव्यानां सदात्मनः।
अकर्तव्यस्य करणं कुलात्मादेस्तु हिंसनम् ।९।

अर्थ—शौच कर्मों का त्याग करना और अपने कर्तव्य नित्य नैमित्तकों का त्याग करना सदा न करने योग्य निषिद्ध कर्मों को करना यह अपने कुल का और अपनी आत्मा का हैनन करना समझ लेना चाहिये।

पापस्य राजभृत्यादेः कथनंहिसनं गिरा।
अपकीर्तेश्च करणं दोषकीर्तिर्गुणेष्वपि ॥१०॥

अर्थ—किसी का पाप बिना प्रयोजन ही राज पुरुषों को या हाकिमों को कह देना व किसी और को कह देना किसी के गुणों में दोष लगा देना और आप भी अपयश देने वाले कर्मों को करना ये सब ऐसे कर्म वाणी की हिंसा कही जाती है ॥१०॥

योयजेताश्वमेधेन मासि मासि दृढव्रतः।
वर्जयेन्मधुमांसश्च सममेतद् युधिष्ठिर ! ।११।

भा०—जो महीने २ दृढव्रत अश्वमेध यज्ञ करे और जो मदिरा माँस का त्याग करे सो दोनों सम ही है हे

राजन् ! युधिष्ठिर ।११।

सप्तर्षयोवालखिल्या ,अन्येचैव मरीचयः ।
न मांस भक्षणं राजन् प्रशंसन्ति मनीषिणः ।१२।

अर्थ—सप्त ऋषि वालखिल्य मरीचि-आदि मुनि मांस भक्षण की बड़ाई नहीं करते किन्तु निन्दा ही करते हैं ।

नभक्षयति यो मांसं न च हन्यान्नघातयेत् ।
तन्मित्रं सर्व भूतानाँ मनुःस्वायंभुवोऽब्रवीत् ।१३।

अर्थ—जो पुरुष माँस नहीं खाता न जीव को मारता है न मरवाता है वह सब जीवों का मित्र है यह मनु कहते हैं ।१३।

अधृष्यः सर्व भूतानाँ विश्वास्यः सर्वजीवानाम् ।
साधूनाँ संमतो नित्यं भवेन्मास विवर्जनात् ।१४।

अर्थ—जो-किसी भी जीव को भय देकर धमकाता नहीं और सबको विश्वास भरोसा देता है और माँस का त्याग करता वह साधुओं में अत्युत्तम माना जाता है ।

स्वमांसं परमांसेनयोवर्धयितुमिच्छति ।
नारद प्राहुः धर्मात्मा नियतं सोऽवसीदति ॥१५॥

अर्थ—जो पराये जीवों का माँस को खाकर अपना माँस बढ़ाता है वह अवश्य परलोक में क्लेश भोगता है । यहाँ भी विनाश ही होता है यह धर्मात्मा नारद जी कहते हैं ॥१५॥

सर्व भूतेषु यो विद्वान् ददात्यभयदक्षिणाम्।
दाता भवति लोके सः प्राणानाँ नात्र संशयः ॥१६॥

अर्थ—जो विद्वान् सब जीवों को अभय दान देता है वह इस लोक में प्राणों का दाता होता है। इसमें कोई शंका नहीं है। ॥१६॥

नहिमाँसं तृणात्काष्ठादुपलाद्वापि जायते।
हत्वा जन्तु ततोमांसं तस्माद्दोषस्तु भक्षणे ।१७।

अर्थ—माँस कहीं घास या काष्ठ या पत्थर में से तो पैदा होता ही नहीं जीव को मार के ही पैदा होता है इसी से इसके खाने में दोष है।

यदिचेत्खादकोनस्यान्नतदाघातको भवेत्।
घातकः खादकार्थाय, तद्घातयतिवैनरः ।१८।

अर्थ—यदि कोई मांस खाने वाला न हो तो फिर क्यों कोई जीव को मारे, मारने वाला भी न मारे, सब खाने वाले के लिए ही सब मनुष्य मारते है।

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रय विक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः ।१९।

अर्थ-सम्मति देने वाला, लाने वाला बेचने वाला पकाने वाला स्वाद देखने वाला, खाने वाला मारने वाला ये सभी पाप के भागी होते है।

मांसभक्षयिता निन्त्यं यस्य मांसमिहाद्म्यहम्।

एतन्मांसस्यमांसत्व प्रवदन्ति मनीषिणः ।२०।

अर्थ—जो जिस जीव के माँस को यहाँ खाता है वह जीव उसी पुरुष के माँस को परलोक में खाता है। माँस शब्द का अर्थ ऋषियों ने यही कहा है।

धन्यंयशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं स्वस्त्ययनं महत् ।
मांसस्याभक्षणं प्राहुर्नियता परमर्षयः ।२१।

भा०—महर्षि लोग नियम से कहते हैं कि जो मांस का परित्याग करता है उसको धन यश बड़ी आयु स्वर्ग कल्याण ये महान् सुखरूप फल होता है।

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा ।
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः ।२२।

अर्थ—मन, वाणी, कर्म से सब भूतों को कभी क्लेश न देना किसी प्रकार से भी, इसी को योगी जन अहिंसा कहते हैं ॥२२॥

अहिंसा सत्यसन्तोषमानृशंस्यं दमोघृणा ।
एतत्तपोविदुः धीरा न शरीरस्य शोषणम् ।२३।

अहिंसा सत्य सन्तोष अपनी स्तुति न करना दमदया इसी को धीर पुरुष तप कहते हैं आग से शरीर को जलाना या सुखा देने को तप नहीं कहा है ।२३।

सुखंवा यदिवा दुःखं यत्किंचित्क्रियते परे ।
ततस्तत्तुपुनः पश्चात् सर्वमात्मनिजायते ।२४।

अर्थ—दुःख सुख जो कोई किसी को देता है वही दुःख सुख पीछे अपने को ही प्राप्त होता है ।२४।

अपहृत्यार्तिमार्तानां सुखं यदुपजायते ।
तस्य स्वर्गापवर्गौ वा कलां नार्हतिषोडशीम् ।२५।

अर्थ—जो दुःखी के दुःख को दूर कर उसको सुख देता है तिसके पुण्य फल सोलहवें हिस्से को भी स्वर्ग के समान अपवर्ग फल को नहीं पा सकता ।

मधुमांसंचयेनित्यंवर्जयन्तीह धार्मिकाः ।
जन्मप्रभृति हिंसां च सर्वे ते मुनयः स्मृताः ।२६।

अर्थ—जो धर्मात्मा पुरुष जन्म से मरण तक मदिरा माँस को व हिंसा को परित्यागन करते हैं सो सब मुनि ही कहे जाते हैं ॥२६॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ! ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमोमतः ।२७।

अर्थ—जो पुरुष अपने शरीर के समान पर शरीर के दुःख सुख को मानता है उसको मैंने सब योगियों में उत्तम माना है ।२७।

सर्वाणि भूतानि सुखेरमन्ते सर्वाणिदुःखादभृशंत्रसन्ते ।
तेषां भयोत्पादन जातखेदः कुर्याच्च कर्माणिहिश्रद्दधानः ।२८

अर्थ—सभी जीव अपने सुख में ही प्रयत्न करते हैं और दुःख से भय करते हैं तीनों के भय व दुःख देने वाला

काम श्रद्धालु पुरुष कोई न करे ।२८।

न गो,प्रदानं न महीप्रदानं नचान्न दानंहितथा प्रदानम् ।
यथा वदन्तिविबुधाःप्रधानं,
सर्वेषुदानेष्वभयप्रदानम् ।२६।

अर्थ—गौ, भूमि, अन्नादि दान ऐसे प्रधान नहीं हैं जैसा सब जीवों को अभय देने का दान प्रधान है ऐसा बुद्धिमान कहते हैं ।२६।

यथाहि तेजीवनमात्मनः प्रियंतथा परेषाम् जीवनं प्रियम् ।
संरक्षसे जीवनमात्मनो यथा तथा परेषामपिरक्ष जीवनम् ।३०।

अर्थ—जैसे तेरे को अपना जीवन प्रिय है ऐसे ही सर्वभूतों को अपना जीवन भी प्रिय है जैसे तू अपने जीवन की रक्षा करता है, वैसे ही सब भूतों के जीवन की भी रक्षा कर ॥३०॥

प्राणानाम् परिरक्षणाय सततंसर्वाः क्रियाः प्राणिनाम् ।
प्राणेभ्योप्यधिकंसमस्त जगतां नास्त्येव किञ्चित्प्रियम्॥
पुण्यं तस्य नशक्यते गणयितुं यः पूर्ण कारुण्यवान् ।
प्राणानामभयंददाति सुकृतिर्येषामहिंसाव्रतम् ।३१।

अर्थ—सब प्राणीमात्र की जो क्रियाकर्म प्रयत्न हैं सो प्राणरक्षा के लिए ही हैं प्राणों से अधिक और कोई वस्तु जगत् में प्यारी भी नहीं तिस पुरुष के पुण्य की गिनती करने को कोई समर्थ नहीं होता जो पूर्ण कृपा

रुके सब भूतों को अभय दान देकर प्राणों की रचा करता है और जिस पवित्रात्मा का अहिंसा धर्म है।

४८— ❀ अथ ऐक्य प्रशंसा ❀

संहत्ययथावेणुर्निविडैःकण्टकैर्वृतः ।
न शक्यते समुच्छेत्तुँभ्रातृसंघातगोस्तथा ।१।

अर्थ–अब एकता की महिमा कहते हैं सघन मिले रहने के कारण से बाँस के पेड़ को कोई काटने को समर्थ नहीं होता इसी प्रकार भ्राताओं का मिलाप भी होना योग्य है

वयंपञ्च वयंपञ्च, वयंपञ्च शतश्चते ।
अन्यैःसह विवादेतु वयं पञ्चशतंहिवै ॥२॥

अर्थ–हम पाँच हैं तुम सौ हो परन्तु औरो के साथ विवाद में हम सब मिलकर एक सौ पाँच हैं। ॥२॥

अल्पानामपि वस्तूनां संहतिः कार्यसाधिका ।
तृणैर्गुणत्वमापन्नैः वध्यंते मत्तदन्तिनः ।३।

तुच्छ वस्तुओं का मिलाप भी बड़ा कार्य साधक हो जाता है जैसे मूँज के घास तृण को मिलाया रस्सी बनाकर हस्ती बाँधा जाता है ।३।

बहूनांचैवसंत्वानां समवायोरिपुंजयः ।
वर्षधाराधरोमेघस्तृणैरपि निवार्यते ।४।

अर्थ—बहुतों का समुदाय मिलकर शत्रु को जीत लेता है जैसे वर्षाधारों को फूसका समुदाय छप्पर बनकर रोक लेता है।

संहतिः श्रेयसी पुँसांस्वकुलैरल्पकैरपि ।
अन्योन्यैक्यप्रभावेण पाण्डवानां जयः किल ।४।

अर्थ—चाहे छोटा कुल भी हो परन्तु सबका मिलाप कल्याण करने वाला है आपस में भाइयों के मिलने से पाण्डवों की जय हो गई है।

विनष्टाः कौरवाः सर्वे तदभावान्न संशयः ।
तृणोऽपिनैव गृह्येत् करांगुल्यैक्यतांविना ।५।

अर्थ—और मिलाप के न होने में कौरवों का विनाश हो गया बिना मिलाप के तो कोई भी कार्य नहीं हो सकता बिना मिलाये पाँच ऊँगलियों से तृण या एक मिट्टी का कणका भी नहीं उठाया जाता इससे सबसे मिलाप रखना श्रेष्ठ है।

पृथिव्यप्तेजसां संघो दृष्टः कार्यस्य साधकः।
भिन्नास्तदणवः सर्वे न सक्तास्तस्य सिद्धये ।६।

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन सबके परमाणु मिलकर ईश्वर सत्ता से महान् चराचर रूप संसार कार्य बन रहा है जुदा जुदा हुए परमाणु रूप होकर कुछ भी नहीं कर सकते ।६।

एकस्मिन्पथिपि काकेयदाविज्ञायतेविपत्।

ते काकामिलितास्संतोयतन्ते तन्निवृत्तये ।७।

अर्थ—एक काग पत्ती को जब विपता होती है तो सब काक मिल कर उसकी निवृति का यत्न करते हैं ।

वानराणां यथा दृष्टा परस्पर सहायता ।

तथा नराणां कर्त्तव्या न विरुद्धयेत् कदाचन ।८।

अर्थ—इसी तरह वानर भी एक को कष्ट देखकर सब मिल जाते हैं देखिए पशु पत्तियों में ऐसी एकता है तो पुरुष पशु पत्तियों की सी बुद्धि भी नहीं रखते पुरुषों को भी परस्पर मिल कर सहायता करनी चाहिये विरोध न करना चाहिये ॥८॥

पञ्चभिस्सहगन्तव्यं स्यातव्यं पञ्चभिस्सह ।

पञ्चभिस्सह वक्त॑ न दुःखं पञ्चभिःसह ॥६॥

अर्थ—पाँच जने मिल कर स्थिति करनी चाहिये पाँच जने मिल कर सलाह करनी चाहिये पाँचन्ने मिलने से कोई दुःख नहीं होता ।६।

कुलीनैःसह सम्पर्कं पण्डितैस्सह मित्रताम् ।

ज्ञातिभिश्च समंमेलं कुर्वाणो नावसीदति ।१०।

अर्थ—उत्तम कुल से सम्बन्ध पण्डितों से मित्रता अपनी जाति से मिलाप इन बातों के करने वाला क्लेश नहीं पाता ।१०।

इस पर ये विचार हैं—१ एक एक ही रहित है ।

२—दूआ दूआ दीस ० शून्य शून्य ही रहित है। सब मिल कर, एक सौ बीस। वृद्धि होत संयोग से हानि करत त्रियोग अंकगति सम जान लो। हानि वृद्धि सब लोग ॥२॥ ताते समता है भली। विपता नासन हार॥ आपदा में तो कीजिये सब मिल कर अति प्यार ॥३॥

तुलसीदास जी कहते हैं—

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना।
जहाँ कुमति तहाँ विपति निदाना॥

ये वै भेदनशीलास्तु सकामानिस्त्रपाः शठाः।
ते पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ।११।

अर्थ—जो दया रहित मूर्ख अपनी दुष्कामना से दूसरों में भेद या फूट कर देने वाले हैं वे पुरुष पापी कहे जाते हैं। व नगरों में निन्दित हैं ॥११॥

मित्रयोः जाया पत्योश्चभ्रात्रोश्चस्वामिभृत्ययोः।
भगिन्योर्मित्रयोर्भेदं न कुर्याद् गुरुशिष्ययोः ।१२।

अर्थ—स्त्री पति में पिता पुत्र में भाईयों में स्वामि नौकर में गुरु सेवक में बहनों में मित्रों में किसी में भी किसी को भेद न डालना चाहिये।

यो ज्ञाति मनुगृह्णाति दरिद्रं दीनमातुरम्।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ।१३।

अर्थ—जो पुरुष अपनी जाति दीन दरिद्री को भी

आतुर को भी ग्रहण करता है मेल करता है पालन पोषण से रक्षा करता है सो पुत्र पशुधन सहित होकर अनन्त सुख को भोगता है ।१३।

समोजनं सकथनं सप्रीतिश्च परस्परम् ।
ज्ञातिभि: सहकार्याणि न विरोध: कदाचन ।१४।

अर्थ—भोजन बातचीत सलाह मन्त्र प्रीति यह सब बातें जाति में आपस में मिलकर ही सदा करनी चाहिये और जाति में विरोध कभी न करना चाहिये हे युधिष्ठिर ! जाति से विरोध न करें जाति विरोध अतीव हानिकारक है।

न वैभिन्ना जातु चरंति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्ना: ।
न वैभिन्नाः गौरवं प्राप्नुवन्ती न वैभिन्नाः प्रशमं रोचयन्ति।

अर्थ—जो जाति से जुदा पुरुष हो जाय तो वह कुछ धर्म भी नहीं कर सकता न उसको सुख हो सकता है न वे कुछ बड़ाई पा सकता है न उसको शान्ति होती है इससे सदा ही मिलाप से रहना चाहिये ।

४६— ※ उदारता ※

अनुभव करके देखियो तीन लोक के माह ।
कैसे हूँ भी अपनो धनिया धनिया नाह ।।
मित्रोदय को चाहत है पङ्कज मृगारु नैन ।
बिना मित्र इनकी दशा को कवि करि है गैन ।।

प्रेम हेम परखन लिये निकसो पल परदेस।
उत्तम मध्यम अधम का कर देवे उपदेश॥
अखिलेषु विहङ्गेषु हन्त स्वच्छन्द चारिषु।
शुक! पञ्जरबन्धस्ते मधुराणाँ गिरां फलम्॥
गुण को दोष जो मानिये लेश दोष गुण तोल।
सब खग सुख सों विहर हैं शुक बंध्यो मिठबोल॥
अनुभव में जो आगए अनुभव की ही शक्त।
विन अनुभव न पाय है कैसेहुँ, न विरक्त॥
मू.--शतेषु जायते शूरः सहस्रेषुच्चापि पण्डितः।
वक्तादश सहस्रेषु दाता भवति वानवा॥१॥

अर्थ—सौ पुरुष में से एक शूरवीर, हजारों में से कोई पंडित एक, दश हजार में एक उपदेष्टा जन्मता है दाता तो इन सबमें गुणने से इतनों में भी अर्थात् दाता तो १०००००००००००वों में भी कोई हो या नहीं भी हो।

दाता नीचोपिसेव्यः स्यान्निष्फलो न महानपि।
जलार्थी वारिधित्यक्त्वा पश्यकूपं निषेवते।२।

अर्थ—दाता तो नीच भी सेवन के योग्य है कंदर्प महान् भी सेवन के योग्य नहीं होता जैसे प्यासे पुरुष समुद्र पर भी हो तो भी कुए के पास चले आते हैं।२।

अयंनिजः परोवेति गणनालघु चेतसाम्।
उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।३।

अर्थ—ये तो अपना और ये पराया है ऐसी गिनती तो छोटे चित्त वालों के होती है उदारात्मा तो सब ही विश्वम्भर को अपना ही कुटुम्ब समझते हैं।

याचितोयः प्रहृष्येत दत्त्वा च प्रीतिमान्भवेत्।
तं दृष्ट्वा प्यथवाश्रुत्वा नरः पुण्यमवाप्नुयात् ।४।

अर्थ—माँगने वाले पर तो प्रसन्न हो देकर फिर भी प्रीति रखे उसको देखके या सुनके भी पुरुष पवित्र हो जाते हैं। ॥४॥

कर्णस्त्वचंशिविर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः।
ददौदधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम् ।५।

अर्थ—कर्ण राजा ने अपना चर्म भी दे दिया और शिवि राजाने अपना माँस भी दिया जीमूतवाहन राजा ने अपना जीव दिया और दधीचि ने अपनी हड्डी दी पर उपकारी उदार आत्मा को कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो न दे सकें।५।

युध्यन्ते पक्षिपशवः पठन्ति शुक सारिकाः।
दातुं शक्नोतियोवित्तं सशूरः सचपण्डितः ।६।

अर्थ—पशु पक्षि भी युद्ध करते हैं तोता मैना भी पढ़ते हैं, वे शूरवीर व पण्डित हो नहीं सकते, जो धनदान में समर्थ है वे ही पण्डित व शूरवीर हैं।

रक्षन्ति कृपणाः प्राणौ द्रव्यं प्राणैरिवात्मनः।

तदेवमन्तः सततमुत्सृजंति यथा मलम् ।७।

भा०—कृपण पुरुष अपने प्राणतुल्य धन की रक्षा करते हैं सन्त जन उसको मलकी समान स्वतः ही त्याग देते हैं

दातारं कृपणं मन्ये मृतोऽप्यर्थं न मुञ्चति ।
अदाताहि धनत्यागी धनंहित्वाहि गच्छति ।८।

भा०—हम दाता को तो कृपण मानते हैं क्योंकि दान करके अपने परलोक का सहायक बना लिया और कृपण को त्यागी मानते हैं क्योंकि जो अपना सब धन यहाँ ही छोड़ गया न तो खाया न पहना न यश लिया न उपकार न अहसान किया न कुटुम्ब को ही खिलाया एक पैसा नहीं दान किया

निज सौख्यं निरुद्धानो योधनार्जनमिच्छति ।
परार्थभार वाहीव क्लेशस्यैवहि भाजनम् ॥६॥

अर्थ—जो स्वयं दुःखी होकर धन इकट्ठा करते हैं न खाते हैं न देते हैं सो तो जैसे कोई पराये अर्थ बोझ को ढोता है उसकी समान वृथा ही दुःख के भागी हैं।

दानोपभोग रहिताः दिवसाः यस्ययांतिवै ।
सलोहकारभस्त्रेवश्वसन्नपि न जीवति ।१०।

भा०—दान भोग से रहित जिस धनी का व्यर्थ दिन जाता है सो तो लोहार की धौंकनी की तरह स्वाँस लेता हुआ भी मुरदा समझो ।

लुब्धोनविसृजत्यर्थं नरोदारिद्य शङ्कया ।
दातापिसृजत्यर्थं तथा दारिद्रयशङ्कया ॥११॥

भा०—लोभी तो दरिद्र की शंका से दान नहीं करता और दाता दरिद्र से ही डरता हुआ दान करता है ।

किंशुके किंशुकः कुर्यात्फलितेपि बुभुक्षितः ।
अदातरि समृद्धेऽपि किंकुर्युरुपजीविनः ।१२।

अर्थ—केशु के पेड़ के फल फूल भी गले हुए हैं परन्तु भूखे तो क्या करें उसके योग्य नहीं ऐसे ही विभूति वाला भी परन्तु कृपण है तो भिक्षुक विचारे क्या करें ।

उपभोगकातराणां पुरुषाणामर्थ सञ्चय पराणाम् ।
कन्यामणिरिमदने तिष्टत्यर्थः परस्यार्थे ॥१३॥

दान भोग से बिना धन जोड़ने वाले पराये के वास्ते उस धन के रखवाले हैं जैसे कन्या का पालक (रक्षक) ही पिता होता है भोक्ता दूसरा है ।१३।

दैववशादुत्पन्ने सतिविभवेयस्यनास्तिभोगेच्छा ।
न च परलोक समीहासभवतिधन पालको मूर्खः ।१४।

अर्थ—दैवयोग से जिनको धन मिल गया है न भोगने वर्तने की इच्छा है न परलोक की इच्छा है सो तो केवल धन के पालक हैं या रक्षा करता है ।

५०— ❀ अथ आशा तृष्णानिन्दा ❀

तृष्णाहि सर्व पापिष्ठा नित्योद्वेग करीस्मृता ।
अधर्मबहुलाचैव घोरा पाप निबन्धनी ।१।

अर्थ—अब आशा तृष्णा को निरूपण करते हैं। तृष्णा ही सबसे पाप रूप है। उद्वेग कारक है बड़ी घोर रूप अधर्म को कराने वाली है ॥१॥

यथैवशृंगंगोः काले वर्धमानस्यवर्धते
तथैव तृष्णा वित्तेन वर्धमानेन वर्धते ।२।

अर्थ—जैसे जैसे नित्य गौ बढ़ती है वैसे ही उसके सींग बढ़ते हैं वैसे ज्यों-ज्यों धन बढ़ता है त्यों २ ही तृष्णा बढ़ती जाती है ॥२॥

तृष्णांचेह परित्यज्य को दरिद्रः कईश्वरः ।
तस्याश्चेत् प्रसरो दत्तो दास्यश्च शिरसिस्थितम् ॥३॥

अर्थ—जिसने इस तृष्णा का परित्याग किया उसको न कोई राजा न दरिद्री सब एक से हैं जिसके मन में तृष्णा का विस्तार है सो तो सब का दास है ॥३॥

वलिभिर्मुखमाक्रान्तं पलितैरङ्कितंशिरः ।
गात्राणि शिथलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ॥४॥

अर्थ—वृद्धावस्था में केश श्वेत (धौले) होते हैं। मुख पर झिल्ली पड़ जाती है शरीर के अंग ढीले होते हैं। तृष्णा उस समय जवान होती है ॥४॥

च्युताः दंता सिताः केशाविनिरोधः पदे पदे।
पातसज्जमिदंदेहं तृष्णा साध्वी न मुञ्चति ।५।

अर्थ—दान्त गिर गये, केश धोले हो गये, नेत्र बन्द हो गये, पाँव शिथिल हो गये, यह देह मरने के समीप आ गयी। जीर्ण-शीर्ण हो गया परन्तु ये तृष्णा अभी नहीं छोड़ती है ।५।

तृष्णेरमपि तृष्णांधाग्रिपुस्थानेषु वर्तसे ।
व्याधिग्रस्ते चानपत्ये जरापरिणतेषु च ॥६॥

अर्थ–हे तृष्णा तू भी तृष्णा से अन्धी हो रही है तू तीन जगहों में अधिक ठहरती है रोगी में, सन्तान रहित, और बूढ़ों में ॥६॥

अतिरूपमतिप्राज्ञमपिशूरमपिस्थिरम् ।
तृणी करोति तृष्णैका निमेषेण नरोत्तमम् ।

अर्थ–अति बुद्धिमान् हो विद्यावान् हो शूरवीर भी हो पर्वत के समान दृढ़ भी हो ऐसे उत्तम पुरुष को भी एक पल में तृष्णा घास पत्ते से भी हल्का कर देती है ।७।

आशानाम मनुष्याणों काचिदाश्चर्यशृङ्खला ।
यपारद्धा प्रधावन्ती मुक्तातिष्ठन्ति पङ्गुवत् ॥८॥

अर्थ—ये आशा रूपी फाँसी एक उल्टी रीति है जिस से बन्धा हुआ पुरुष तो दौड़ता फिरता है खुले लँगड़े की तरह बैठा रहता है अर्थात् आशा का प्रेरा हुआ देशान्तरों

तक दौड़ा फिरता है आशा निवृत होने पर शान्त होकर बैठ जाता है।

तेनाधीतं श्रुतंतेन तेन सर्वमनुष्ठितम् ।
येनाशापृष्ठतः कृत्वा नैराश्यमविलम्बितम् ।९।

अर्थ–बस उसी ने पढ़ा, सुना उसने अनुष्ठान या अमल किया है जिसने आशा त्याग कर वैराग्य ग्रहण किया है ॥९॥

न जातुकामः कामनामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते ॥१०॥

अर्थ–कभी भोगों को भोग कर कामना शान्त नहीं होती किन्तु बढ़ती है अग्नि घृत हवी से बढ़ती जाती है जैसे जल से अग्नि शान्त होती है वैसे ही वैराग्य से ही तृष्णा की शान्ति होती है।

धनेषु जीवितव्येपुस्त्रीषु भोजनवृत्तिषु ।
अतृप्ता मानवाः सर्वे याता यास्यन्ति यान्ति च ।११।

अर्थ–धन, आयु, स्त्रीयों, भोजन, विभूति अर्थात् संसार के भोगों से कोई प्राणी तृप्त हुआ नहीं, न अब तृप्त है न कोई तृप्त होकर जावेगा ॥११॥

सप्त द्वीपाधिपतयो नृपाः वैन्यःगयाऽदयः ।
अर्थैः कामैर्गतानान्तं तृष्णया इतिशुश्रुमः ॥१२॥

अर्थ–भीष्म कहते हैं हे राजन् ! सातों द्वीपों के पति

होकर भी राजा सगर, वेन गयादि संसार के शर्थ भोगों से तृप्त न हुए इस तृष्णा का अन्त न हुआ ये हम सुनते हैं।

सहस्रेभ्यः सहस्रेभ्यः कश्चिदुत्थाय वीर्यवान्।
भिनत्ति वासना जालं पञ्जरं केसरीयथा ।१३।

अर्थ—कई हजार पुरुषों में से कोई एक पुरुष महापराक्रम बल वाला उठ कर विचार रूप बल से इस वासना के जाल को तोड़ता है जैसे कोई एक केसरी नाम सिंह पिञ्जरे को तोडकर स्वतन्त्र निर्भय होकर विचरता है।

यान्येतानि दुःखानि दुर्जराण्युन्नतानिच।
तृष्णावल्याः फलानीह तानि दुःखानिराघव ।१४।

अर्थ—हे राम! जितने दुःख बड़े २ दुर्जय कठिन इस में हैं वे सब तृष्णारूपीवल्ली के फल हैं अर्थात् सब दुःखों का मूल ये तृष्णा ही है।

यावती यावतीजन्तो रिच्छोदेतियथा यथा।
तावती तावती दुःख बीजमुष्टिः प्ररोहति ॥१५॥

अर्थ—हे राम! जितनी जितनी अधिक जैसे जैसे ये जीव इच्छाओं को बढाता है उतनी उतनी ये पुरुष दुःखों के बीजों की मुट्ठी भर भर बीज बो रहा है अर्थात् जितनी तृष्णा करता है उतना क्लेश भोगता है।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्यतत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ।१६।

अर्थ—जितने भी इस जगत में अन्न पशु सोना चाँदी स्त्री आदि जो विभूति हैं सो सब एक पुरुष को दी जाय तो एक की भी तृप्ती नहीं हो सकती ऐसा देखकर भी इस पुरुष को विचार नहीं होता है ।

हतेभीष्मे हतेद्रोणेकर्णेवा त्रिदिवं गते ।
आशाबलवती राजन् शल्यो जेष्यति पाण्डवान् ।१७।

अर्थ—भीष्म जी बोले देखो मैं बाण शय्या पर मरणधर्मा पड़ा हूँ । द्रोणाचार्य कर्णवीर भी हत हो गये; दुर्योधन अब भी कह रहा है कि शल्य राजा पाण्डवों को जीतेगा । हे राजन् ! युधिष्ठिर आशा बड़ी बलवान है ।

आशाहि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम् ।
यथा संछिद्य कान्ताशां सुखं सुष्वापपिंगला ।१८।

अर्थ—आशा ही परम दुःख रूप है निराशता सन्तोष परम सुख रूप है जैसे आशा को त्याग कर पिंगला नाम वाली वेश्या सुख से नींद भर सोई ये भागवत् में कथा विस्तार से वर्णन है ।१८।

उपकारः परोधर्मः परार्थं कर्मनैपुणम् ।
पात्रे दानं परोधर्मः परोमोक्षोवितृष्णया ।१९।

अर्थ—परोपकार ही परम धर्म है पराया को ही सुधार देना है यही निपुणता है पात्र में दान देना ही परम परलोक है तृष्णा को त्याग देना ही परम मोक्ष है ।

विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकार स शान्तिमधिगच्छति ।२०।

अर्थ—जो पुरुष सब कामनो को त्याग ममता अहंकार रहित इच्छा रहित होकर विचरता है सो परम मोक्ष भूत शान्ति को प्राप्त होता है ।

यशोयशस्विनां शुद्धं श्लाघ्याः ये गुणिनां गुणाः ।
लोभः स्वल्पोपितान्हन्तिश्चित्रोरूपमिवेप्सितम् ।२१।

अर्थ—यश वाले पुरुषों का जो शुद्ध यश है, जो बड़ाई के योग्य गुणियों के उत्तम गुण हैं थोड़ा भी लोभ सबका नाश कर देता है जैसे सुन्दर स्वरूप का नाश सचित्र कुष्ट कर देता है

जीर्य्यन्ते जीर्य्यतः केशाः दन्ताः जीर्य्यन्ति जीर्य्यतः ।
जीर्य्यतश्चक्षुषीश्रोत्रे तृष्णैका तरुणायते ॥२२॥

अर्थ—वृद्ध होने पर केश भी पुराने हो गये-नेत्र श्रोत्र, दाँत यह सब पुराने जीर्ण-शीर्ण हो गये एक तृष्णा न जीर्ण हुई बल्कि जवान होगई ।

काम जानामि ते मूलं संकल्पात् खलुजायते ।
संकल्पे तु मयात्यक्ते कथंत्वमपि जायते ॥२३॥

भा०—काम का मूल संकल्प है, संकल्प से कामना उत्पन्न होती है यदि पुरुष संकल्प को न होने दे तो काम की उत्पत्ती ही नहीं होती ॥२३॥

कामःकिंकरतां प्राप्यजनोनकस्य किङ्करः ।
एकं कामं परित्यज्य जनोऽसौकस्य किङ्करः ।२४।

अर्थ—जब पुरुष काम के अधीन होता है फिर सब का ही दास हो जाता है एक काम को ही पुरुष त्याग दे फिर किसका दास है फिर तो सबका गुरु है।

पदापि युवतिं भिक्षुर्नस्पर्शेद्दारुवीमपि ।
स्पर्शने करीव बध्येत् करिण्या ह्यंगसंगतः ।२५।

अर्थ—पाँव से भी संन्यासी काठ की स्त्री को काम बुद्धि से कभी स्पर्श न करें यदि कामासक्ति से स्त्री को स्पर्श करेगा तो जैसे हस्ती कागजों की हस्तनी से स्पर्श हो के उमर भर बन्धा जाता है ऐसे यह भी बन्धा जायेगा।

आशायायेदासास्ते दासाः सर्वलोकस्यः ।
आशायेषां दासीतेषां दासायते लोकः ।२६।

अर्थ—आशा का जो दास होवे सो सब लोकों का दास है। आशा जिनकी दासी है सब लोक उस पुरुष के दास हैं।

अङ्गंगलितं पलितं मुण्डं दशनं विहीनं जातंतुंडम्।
वृद्धोयाति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुंचत्याशापिण्डम्।

अर्थ—अङ्ग सब ढीले पड़ गये दान्त गिर गये, बूढ़ा होकर लाठी के सहारे से कठिनता से चलता है आशा को तब भी नहीं छोड़ता है।

दिनयामिन्यौसायंप्रातः शिशरवसन्तौ पुनरायातः ॥
कालः क्रीडतिगच्छत्यायुस्तदपिनमुँचत्याशावायुः।२८।

अर्थ—रात्रि, दिन ऋतुएं वह बारम्बार फिर २ वेही आते हैं। काल क्रीडा से खेल रहा है पुरुष की आयु मन व्यतीत होने लगी है तो भी आशा को नहीं त्यागता।

भोगाः न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपोनतप्तंवयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेवयातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेवजीर्णाः

अर्थ—जिस पुरुष ने भोग नहीं भोगे उलटा इसी का शरीर ही भोगों में खर्च होगया (भोगा गया) वैसे तो तपस्या धार कर तप नहीं किया काम क्रोध से सारी उमर तपता रहा काल नहीं व्यतीत हुआ यही व्यतीत होगया यह पुराना जीर्ण-शीर्ण हो गया परन्तु तृष्णा इसकी जीर्ण न हुई।

यादुस्त्यजादुर्मतिभिः या न जीर्यति जीर्यत.।
योऽसौ प्राणान्तको रोगस्तां तृष्णांत्यजतः सुखम् ।३०।

अर्थ—जो मूर्खता करके नहीं त्यागी जाती जो वृद्ध होने पर भी क्षीण नहीं हो तो यह रोग प्राणान्त तक है वह तृष्णा के त्यागे बिना सुख नहीं पाता।३०।

यच्च कामसुखं लोके यच्चदिव्यं महत्सुखम्।
तृष्णाक्षयसुखस्यैते नार्हन्ति षोडशीं कलाम्।३१।

अर्थ—जो काम सुख से लेकर जितने महान सुख इस लोक में हैं व स्वर्ग में हैं। सो सभी सुख मिलकर भी

तृष्णा के त्याग का जो सुख है उसके सोलहवें भाग को नहीं पाते ।३१।

नाह्नापूरयितुंशक्यां न च मासैर्भरतर्षभ ।
अपूर्यां पूरयन्निच्छामायुषापिन शक्नुयात् ।
धर्मार्थं यस्य वित्तेहावरं तस्य निरीहता ।
प्रक्षालनाद्धि पङ्कस्य दूरादस्पर्शनंवरम् ।३३।

अर्थ—एक दिन में मास वर्ष आयु तक भी यह इच्छा पुरी नहीं होती कोई भी इसके पूर्ण करने को समर्थ नहीं है। धर्म के लिए भी जो धन की आशा करता है उससे भी निराश रहना श्रेष्ठ है जैसे कीचड़ के धोने से उससे दूर रहना श्रेष्ठ है।

ते धन्या पुण्य भाजस्ते तैस्तीर्णः क्लेशसागरः ।
जगत्संमोहजननी आशाराशिस्तु वैर्जिता ।३४।

अर्थ—वही पुरुष धन्य है वही पुण्यवान् है वही इस क्लेश सागर से पार होगया जो इस जगत को ही मोह (अज्ञान) में भुला देने वाली तृष्णा जिन्होंने जीती है ।३४।

उत्खातं निधिशङ्कयाक्षितितलंध्मातागिरेर्धातवो ।
विस्तीर्णः सरित्पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिता ॥
मन्त्राराधनतत्परेण मनमानीताश्मशाने निशाः ।
प्राप्तःकाणः वराटकोपि न मया तृष्णेऽधुनामुञ्चमाम् ॥

अर्थ—धन की शंका से हम पुरुषों ने भूमि को खोदा

पर्वतों की धातु भी साधन के लोभ से फूँकी, समुद्रों में भी गोते लगाये, राजा लोगों को भी प्रसन्न किया, मसानों में कुमन्त्र भी सिद्ध किये। परन्तु एक कौड़ी भी मुझको न मिलि हे तृष्णे! अब तो मुझे छोड़दे ।२५।

भ्रान्तंदेशमनेकदुर्गं विषमं प्राप्तं न किञ्चित् फलम् ।
त्यक्त्वा जाति कुलाभिमानमुचितं सेवाकृता निष्फला ॥
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत् ।
तृष्णे जृम्भसिपापकर्मे निरते नाद्यापि सन्तुष्यसि।२६।

अर्थ—क्लेश कारक देशों में भी भ्रमण किया तो कुछ फल न हुआ, जाति कुल की बड़ाई छोड़कर निष्फल ही नीचों की सेवा भी की, काक की तरह निर्मान होकर भी परद्रव्यों को भोगा, हे पाप मूलक तृष्णे! अभी तक भी तू तृप्त न हुई।

निःस्वोवष्टि शतंशती दशशतंलक्षंसहस्राधिपः ।
लक्षेशः क्षितिराजतां क्षितिपतिश्चक्रेशतां वाञ्छति ।
चक्रेशः सुरराजतां सुरपतिर्ब्रह्मास्पदंवाञ्छति ॥
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिः शिव पदं तृष्णावधिंकोगतः ।२७।

अर्थ—निर्धन सौ की सौ वाला हजार की फिर लाख की करोड़ की राजा की चक्रवर्ती राज्य होने की, चक्रवर्ती को स्वर्ग की, इन्द्र ब्रह्मलोक की, ब्रह्मा विष्णुपद की, विष्णु शिवपद की बस तृष्णा की अवधि कोई नहीं पाता।

५१—अथ पण्डित लक्षणम्

यस्य सर्वे समारम्भाः काम संकल्प वर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ।१।

अर्थ—जिससे सब संसारी व परलोक सम्बन्धी आरंभ या यज्ञादि इष्ट कर्म वासना बीज सहित संकल्प निवृत है और ज्ञानरूप अग्नि से कर्म दाह होगये हैं उस ज्ञान सम्पन्न को ही विद्वान पण्डित कहते हैं ॥१॥

अशोच्यानन्वशोचस्त्वंप्रज्ञावादांश्च भापसे ।
गतासूनगतासूँश्चनानुशोचन्ति पण्डिताः ।२।

अर्थ—न शोच करने योग्य देहादि भाव हैं उनका तू मूर्ख पुरुष की भाँती शोच करता है । और पण्डितों जैसी बातें करता है जीवित व मरे हुए बन्धुओं की शोच पण्डित जन नहीं करते ॥२॥

पण्डितेहिगुणान्सर्वे मूर्खे दोपाश्च केवलाः ।
तस्मान्मूर्खसहस्त्रेभ्यः प्राज्ञएको विशिष्यते ।३।

अर्थ—सब गुण जिसमें रहें तो सो पण्डित है केवल सब दोप रहें सो मूर्ख है इससे हजारों मूर्खों से पण्डित एक ही विशेष है ।

प्राज्ञोहितवदतां पुंसांश्रुत्वावाचः शुभाऽशुभाः ।
गुणवद्वाक्यमाधत्तेहँसः क्षीरमिवाँम्भसः ।४।

अर्थ—जो कोई पुरुष शुभ व अशुभ वाक्य बोलता है।

तब भी बुद्धिमान पुरुष गुण वाले वाक्यों को ग्रहण कर लेता है और अवगुणों को त्याग देता है जैसे हंस जल को त्याग कर दूध को ग्रहण करता है ।४।

शोकस्थान सहस्राणि भयस्थान शतानिच ।
दिवसे दिवसेमूढ़गानिशन्ति न पण्डितम् ।५।

अर्थ—नित्य ही जिन से शोक व भय पैदा होता है सो उपद्रव अनेक ही मूर्खों में जाकर जमा होते जाते हैं । जिनमें ये नहीं हो सो पण्डित है ।

नाप्राप्यमपि वाञ्छन्ति नष्टं नेच्छन्तिशोचितुम् ।
आपत्स्वपि न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः ।६।

अर्थ—जो अप्राप्त वस्तु की तो इच्छा नहीं करता नष्ट हुई वस्तु की शोच नहीं करता और विपता में व्याकुल नहीं होता उस पुरुष को पण्डित कहा जाता है ।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ॥
अनास्तिकः श्रद्दधानएतत्पण्डित लक्षणम् ॥७॥

अर्थ—जो सत्कर्म व सत्पुरुषों की सेवा करता है निन्दित कर्म व निन्दित पुरुषों की सेवा नहीं करता आस्तिक है अर्थात् वेद शास्त्र पुराण इतिहास और इनका प्रतिपादित किया हुआ ईश्वर और गुरु इन सब में श्रद्धा वाला है । और आस्तिक है वे ही पण्डित के लक्षण हैं ।

क्रोधोहर्षश्च दर्पश्च ह्री स्तम्भो मान्य मानता ।

यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ।८।

अर्थ—क्रोध, हर्ष,दर्प मद,मान और लज्जा, लौकिक अर्थ यानि धनादि जिनको निक्री न कर सके उसी को पण्डित कहा जाता हैं।

यस्यकृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वामन्त्रितंपरे।
कृतमेवास्य जानन्ति सवे पण्डित उच्यते ।६।

अर्थ—जिसके करने योग्य काम को व मन्त्र सलाह को कोई न जान सके गुप्त ही रक्खे पीछे मालुम हो सो पण्डित कहा जाता है।

न हृष्यत्यात्मनिमम्माने नावमाने च तप्यते ।
गाँगोहृदइवाचोभ्योयः स पण्डित उच्यते ।१०।

अर्थ—जो अपने मान करने पर प्रसन्न नहीं होता। निन्दा करने पर दुःखी नहीं होता गंगा के हृदय की समान चोभ रहितगंभीर रहता है। उसको पण्डित कहा जाता है।

यत्रविद्वज्जनो नास्तिश्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि ।
निरस्तपादपेदेशे एरण्डोपि द्रुमायते ॥११॥

अर्थ—जहाँ कोई विद्वान् नहीं होता वहाँ पर थोड़ी बुद्धि वाले मान पाते हैं जैसे जिस देश में वट पीपल बड़े वृक्ष नहीं हैं वहाँ पर एरण्ड ही प्रधान है।

विद्वानेव विजानाति विद्वज्जन परिश्रमम् ।
नहिवंध्या विजानाति गुर्वी प्रसव वेदनाम् ।१२।

अर्थ–विद्वानों के गुणों को विद्वान ही जानते है मूर्ख नहीं जानते जैसे प्रसूता की पीडा को वन्ध्या स्त्री क्या जानती है । ॥१२॥

स्वगृहेपूज्यतेमूर्खः स्वग्रामे पूज्यते प्रभु ।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ।१३।

अर्थ–मूर्ख अपने घर में, चौधरी अपने ग्राम में राजा अपने देश में पूजा जाता है, विद्वान सर्व जगह पूजा जाता है ।

विप्रोऽपियो भवेन्मूर्खः स पुराद्वहिरस्तुमे ।
कुम्भकारोपि योविद्वान्स तिष्ठतु पुरेमम ॥१४॥

मू.–राजा भोज का संस्कृत विद्या में इतना प्रेम था और यह ढिंढोरा था कि विद्या से रहित ब्राह्मण को भी मैं ग्राम से बाहर निकाल दूंगा और विद्वान् चमार भी हो सो मेरे ग्राम में बसे ॥१४॥

सविद्यः पुरुषः श्रेष्ठो यत्रकुत्रापितिष्ठति ।
तत्रैव भवति श्रीमान् पूजापात्रश्चभूभुजाम् ॥१५॥

अर्थ–विद्वान् पुरुष कहीं भी रहे वो सबमें श्रेष्ठ है जहाँ पर ठहरे वहाँ पर भी विभूति वाला और राजाओं का भी पूज्य होता है ।१५।

सेनापत्यत्पञ्च राजञ्च दण्डने तृत्वमेवच ।
सर्व लोकाधिपत्यञ्च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१६॥

अर्थ—सेनापति होना राजा होना, दण्ड और न्याय

कर्त्ता होना सर्व लोगों का पति चक्रवर्ती पद होना इन सब अधिकारों को विद्वान् प्राप्त कर सकता है।

पण्डितोहिवरं शत्रुर्नमूर्खो हितकारकः।
वानरेण हतो राजा विप्रश्चौरेण रक्षितः ॥१७॥

अर्थ—पण्डित तो शत्रु भी हो तब भी अच्छा है मूर्ख का हित करना भी अच्छा नहीं है एक बन्दर राजा का मित्र था उसने मक्खी उड़ाने से राजा को मार दिया पण्डित एक राजा के घर चोरी करने को गया वहाँ पर धर्म का विचार करते २ ही दिन चढ़ गया कुछ चोरी राजा की नहीं करी ॥१७॥

मातृवत्परदाराश्च परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सपण्डितः ॥१८॥

अर्थ—पर स्त्री को मातावत् पर धन को मिट्टी के समान सभी जीवों को अपनी आत्मा के समान जो जानता है सो पण्डित है।

विद्या वृद्धान्सदैवत्वमुपासीथाः युधिष्ठिर।
शृणुयास्ते च यद्ब्रयुःकुर्यास्चैवाऽविचारयन् ॥१९॥

अर्थ—भीष्म कहते हैं हे युधिष्ठिर! विद्या से जो वृद्ध हैं उन विद्वानों की उपासना कर जो उपदेश तुमको करें सो सुनकर उसको वैसे ही करना उसमें कोई तेरे विचार की आवश्यकता नहीं है।

प्रातरुत्थायतान् राजन् पूजयित्वा यथाविधि ।
कृत्यकाले समुत्पन्ने पृच्छेथाः कार्यमात्मनः ।२०।

अर्थ—नित्य ही प्रातः काल उठकर उन वृद्धों को प्रणाम कर, विधि से पूजा कर फिर जो करने योग्य काम हो उसी समय में उनको पूछ कर सो काम कर ।२०।

विद्याविनयोपेतोहरति न चेतांसि कस्यमनुजस्य ।
काञ्चनमणि संयोगोनो जनयति कस्यलोचनानन्दम् ।२१।

अर्थ—विद्या भी हो और विनय भी हो इन दोनों गुणों वाला पण्डित किस पुरुष के चित्त को नहीं हर लेता जैसे स्वर्ण का भूषण हो और मणियों से जड़ा हो फिर किसके नेत्रों को आनन्द नहीं देता ।

यद्यपि भवति कुरुपोवस्त्रालङ्कारवेषपरिहीनः ।
सज्जन सदसि प्रविष्टो राजतिविद्याधिकः पुरुषः ।२२।

अर्थ—यद्यपि रूपवान भी न हो और वस्त्र अलङ्कार वेष से रहित भी हो परन्तु विद्वान विशेष हो सो सज्जनों की सभा में सत्कार पाकर विराजता है ।

विद्वत्तरयः कवयः केवल कवयस्तु केवलंकपयः ।
कुलजाया साजाया केवल जायातुकेवलामाया ।२३।

अर्थ—जो विद्वान् भी हो और कवि भी हो सो ही कवि कहा जाता है । जो कुल की स्त्री हो सो ही स्त्री है जो कुल से रहित है सो स्त्री नहीं सो तो माया छल

प्रपञ्च रूप ही है । ।२३।

न पण्डिताः साहसिकाः भवन्तिश्रुत्त्वापितेसतुलयन्तितत्वम्।
तत्त्वं समादाय समाचरन्ति स्वार्थं प्रकुर्वन्तिपरस्यचार्थम् ।२४।

अर्थ—जो भी पण्डित पुरुष हैं वे कार्य करने में जल्दी नहीं करते बात को सुनकर उसके तत्व को विचारते हैं। अच्छी प्रकार से उसको विचार कर फिर उस करने योग्य कार्य को करते हैं अपना और दूसरे का भी अर्थ सिद्ध करते हैं।

सम्पूर्ण कुम्भोनकरोतिशब्दमर्धोघटोघोपमुपैतिनूनम् ।
विद्वान् कुलीनोनकरोतीगर्वं,गुणैर्विहीनावहुजल्पयन्ति।२५।

अर्थ—पूर्ण भरा हुआ घड़ा छलकता नहीं, जो आधा है वही छल २ करता है जो पुरुष विद्वान और कुलीन है सो अपनी बड़ाई व गर्व नहीं करता जो विद्या कुल से रहित है सोई बहुत वक्ता है।

विद्याविलासमनसोधृतशील शिक्षाः
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः ॥
संसारदुःखदलनेनसुभूषिताः ये ।
धन्यानराः विहितकर्म परोपकाराः ।२६।

अर्थ—जिन पुरुषों ने विद्या विलास को व मन में शील विद्या को धारण किया है वह सत्य व्रत है मान मदादि मल से रहित हैं संसार के दुःख दूर करने को अर्थात

पुत्रों के दुःख दूर कर जिन्होंने यश पाया है परोपकार रूप कर्म जिनका संसार भर में प्रसिद्ध है सो पुरुष धन्य है

वैद्य पानरतं नटं कुपठितंस्वाध्यायहीनंद्विजम् ।
योधं कापुरुषं हयं गतरयं मूर्खपरिव्राजकम् ॥
राजानंच कुमंत्रिभिः परिवृतं देशञ्च सोपद्रवम् ।
भार्यायौवनगर्वितां पररतां मुञ्चन्ति तेपण्डिताः।२७।

अर्थ—मदिरा पीने वाला वैद्य, नृत्य से रहित नटका, वेद विद्या से रहित ब्राह्मण को कायर डरपोक शूरको गति से रहित घोड़े को ज्ञान से रहित संन्यासी को कुमन्त्री जिसके पास है उस राजा या उपद्रवयुक्त देशको, रूप से गर्वित और पर पुरुषरक्त स्त्री को पण्डित जन इन सबको त्याग देते हैं।

सांख्ययोगौपृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः। गीता. अ. ५
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ श्लो० ४)

अर्थ—हे अर्जुन ! ऊपर कहे हुए संन्यास और निष्काम कर्मयोग को मूर्ख लोग अलग २ फल वाले कहते हैं न कि पण्डित जन क्योंकि दोनों में से एक में भी अच्छी प्रकार स्थित हुआ पुरुष दोनों के फल रूप परमात्मा को प्राप्त होता है।

विद्याविनय सम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि । गीता अ. ५
शुनिचैव श्वपाकेच पण्डिताः समदर्शिनः। ।२८।

अर्थ—ऐसे वे ज्ञानी जन, विद्या और विनययुक्त

ब्राह्मण में तथा गौ हाथी कुत्ते और चाण्डाल में भी समभाव से देखने वाले होते हैं।

५२— * अथ दुर्जन स्वभावः *

दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम्।
मुख प्रक्षालनात्पूर्वंगुदाप्रक्षालनं यथा ॥१॥

अर्थ—दुर्जन स्वभाव लिखते हैं, दुष्टों को प्रथम वन्दना करते हैं सज्जनों को उनके पीछे करेंगे जैसे गुदा को पहले धोते हैं मुख को पीछे धोते हैं।

सर्पदुर्जनयोर्मध्ये वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पोदशतिकालेनदुर्जनस्तु पदे पदे ।२।

अर्थ—सर्प और दुष्टजन दोनों ही बुरे हैं पर सर्प फिर भी अच्छा है क्योंकि सर्प कभी किसी को काल योग से डंसता है, दुर्जन जितने अक्षर बोलता है उतने ही डंक मारता है, फिर भी सर्वदा मारता ही रहता है।

दह्यमाना सुतीव्रेण नीचाः पर यशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदंगन्तुँ ततो निन्दा प्रकुर्वते ।३।

अर्थ—पराये यश को सुनके दुष्ट पुरुष दग्ध हो जाता है जैसे पदवी पाने की तो समर्थ है नहीं उलटा निन्दा करने लग जाता है।

उपकारोपि नीचानामपकारोहि जायते।

पयः पानं भुजङ्गानांकेवलंविषवर्द्धनम् ।४।

अर्थ–नीचों पर उपकार करना क्लेश का ही कारण होता है जैसे सर्पों को दूध पिलाने से विष ही बढ़ता है।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपिसन् ।
मणिनालंकृतः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ।५।

अर्थ–दुष्ट पुरुष में यदि दैवयोग से विद्या भी होजाय तो भी उसका संग त्याग देना ही अच्छा है जैसे मणि वाला सर्प क्या डंक चलाने में देर करता है? नहीं चला ही देता है। ।५।

सद्भिः संबोध्यमानोपि दुरात्मा पापपूरुषः ।
घृष्यमाण इवाङ्गारो निर्मलत्वं न गच्छति ।६।

अर्थ–साधुजनों के समझाने पर भी दुष्टजन सुधरता नहीं जैसे कोयले को कितना भी घिसाओ या धोओ तो भी निर्मल नहीं होता है।

खलः सर्षपमात्राणि परछिद्राणि पश्यति ।
आत्मनो बिल्व मात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ।७।

अर्थ–दुष्टजन पराये छिद्र को तो राई जितना भी हो झट देख लेता है अपने मन में चाहे कितना बड़ा दोष हो उसको देखता हुआ भी नहीं देखता ।७।

स्पर्शन्नपि गजोहन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गमः ।
हसन्नपि नृपोहन्ति मानयन्नपि दुर्जनः ।८।

अर्थ-हाथी स्पर्श करने से मारता है सर्प सूंघने से मारता है राजा हाँसी से ही मार देता है दुष्ट जनका मान करे तो भी मारता ही है।

न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः।
काकः सर्वं रसान्भुंक्ते विनाऽमेध्यं न तृप्यति ।९।

अर्थ—पराई निन्दा या हानि किये विना दुष्ट को प्रसन्नता नहीं होती जैसे काग को कितने सुन्दर पदार्थ मिलें परन्तु विष्टा के विना तृप्ती नहीं होती है।

दुर्जनोदोषमादत्ते दुर्गंधमिव सूकरः।
सज्जनश्चगुणग्राही, हंसक्षीरमिवाम्भसा ॥१०॥

अर्थ—दुर्जन तो दोष को ही ग्रहण करता है जैसे सूकर दुर्गंध को ही ग्रहण करता है सन्त जन गुण को ग्रहण करते हैं जैसे हंस पानी मिलाने से भी केवल दूध को ही ग्रहण करते हैं ॥१०॥

दुर्जनेन समंवैरं प्रीतिश्चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम् ॥११॥

अर्थ—दुष्ट के संग वैर प्रीति दोनों न करने चाहिये दोनों से ही हानि होती है कोयला गर्म हाथ से पकड़ो तो दाह करता है शीतल पकड़ो तो हाथ को काला करता है।

वर्जनीयो मतिमतां दुर्जनः सख्यवैरयोः।
श्वाभवत्यपकाराय लिहन्नपि दशन्नपि ॥१२॥

अर्थ–इससे नीच के संग न वैर करे न प्रीति करें जैसे कुत्ता लाड़ करने पर और काटने पर भी हानि करता है।

दुर्जनस्य विशिष्टत्वं परोपद्रवकारणम् ।
व्याघ्रस्य चोपवासेन पारणं पशुमारणम् ।१३।

अर्थ–दुष्ट का विशेष होना भी सृष्टि में उपद्रवों का ही कारण है जैसे सिंह उपवास भी करेगा तो भी पशुओं के मृत्यु का ही कारण है।

मुखंपद्मदलाकारं वाचश्चन्दन शीतला ।
हृदयं क्रोधसंयुक्त त्रिविधंधूर्तलक्षणम् ॥१४॥

अर्थ–दुष्ट का मुख तो देखने में कमल जैसा, वाणि चन्दन जैसी शीतल है, परन्तु हृदय दम्भ छल क्रोध से पूर्ण होता है ॥१४॥

या पुरुषः कुक्कुरश्च भोजनैक परायणौ ।
लालितः पार्श्वमापातिनारितो न च गच्छति ।१५।

अर्थ–कुत्ता और मूर्ख ये दोनों अपने खाने से ही गरज रखते हैं जरा कभी बुलाओ तो झट पास आ जाते हैं।

दुर्जनो दूषयत्येव, सतांसर्वगुणं क्षणात ।
मलिनीकुरुते धूमः सर्वथा विमलाम्बरम् ।१६।

अर्थ–दुर्जन सज्जनों के गुण समूह को क्षण में दूषित कर देता है जैसे धुंआँ सुन्दर वस्त्र व मन्दिर को काला कर देता है।।१६।

खलानाँ कण्टकानाञ्च द्विविधैव प्रतिक्रिया ।
उपानहावक्त्रभंगो दूरतो वा विसर्जनम् ॥१७॥

अर्थ—दुष्टों का व काँटों का निवारण दो प्रकार से ही हो सकता है या तो जूते से मुंह-तोड़ना या फिर दूर से ही परे हो जाना ।१७।

यस्मिन्वंशे समुत्पन्नस्तमेव निजचेष्ठितैः ।
दूषयत्यचिरेणैव घुणकीट इवाधमः ।१८।

अर्थ—जैसे घुण का कीड़ा जिस लकड़ी में पैदा होता है उसी को काट २ कर खा जाता है ऐसे ही दुष्टजन भी जिस वंश में उत्पन्न होता है उसी को ही दुष्टाचरणों से विनाश कर देता है ।

तक्षकस्य विषंदन्ते मक्षिकायास्तु मस्तके ।
वृश्चिकस्यविषंपृच्छे दुर्जनस्य समंततः ।१६।

अर्थ—सर्प के दान्त में मक्खी के सिर में, बिच्छू के पूंछ में विष होती है और दुष्ट के तो सब अङ्ग २ में रोम रोम में नख से सिख तक सब का सब विष भरा ही रहता है । ।१६।

यथा परोपकारेषु नित्यं जागर्ति सज्जनः ।
तथा परापकारेषु जागर्ति सततंखलः ॥२०॥

अर्थ—जैसे सज्जन पर उपकार में नित्य तत्पर रहते हैं ऐसे ही दुष्ट पुरुष अपकार में नित्य तैयार रहते हैं। ये

उनका स्वभाव ही है ॥२०॥

मृत्घटवत् सुखभेद्यो दुःसन्धानश्चदुर्जनो भवति ।
मज्जनस्तु कनक घटवद्दुर्भेद्यश्चाशुसंधेयः ।२१।

अर्थ—जैसे मिट्टी का घड़ा टूट तो जल्दी जाता है जुड़ता नहीं ये स्वभाव दुष्टों का है और सन्तों का यह स्वभाव है कि जैसे सुवर्ण का घड़ा टूटना तो मुश्किल से जुड़ना आसान है।

पिशुनत्वमेवविद्या परदूषणमेव भूषणंयेषाम् ।
परदुःखमेव सौख्यं शिव २ ते केनवेधसासृष्टा ।२२।

अर्थ—जगत को लड़ाना फाड़ना ही जिनकी विद्या पर दूषण ही जिनके भूषण हैं पराये की दुःख ही जिनका सुख है हे परमेश्वर ऐसे दुष्टों को विधाता ने किस मसाले से रचा या ये किस विधाता ने रचे, क्यों रचे ?

मृगमीनसज्जनानां तृणजल सन्तोष विहितवृत्तीनां ।
लुब्धकधीवर पिशुना निष्कारणमेववैरिणो जगति ।२३।

अर्थ—मृग और मीन सन्त इनका घास जल सन्तोष ये भोजन है अर्थात् मृगों के अहेड़ी मच्छी के धीवर सन्तों के दुष्ट जन विना कारण वैरी हैं।

परवादे दशवदनः पररंध्रनिरीक्षणे सहस्राक्षः ।
सद्वृत्तवित्तहरणे बाहुसहस्रार्जुनः पिशुनः ।२४।

अर्थ—दुष्टजन पराई निन्दा करने को एक मुख के

दश मुख कर लेने हैं पर दोष देखने को दो नेत्रों के हजार नेत्र हो जाते हैं पराया धर्म या धन हरने को दो की हजार भुजा कर लेते हैं ॥२४॥

अर्थ ग्रहणे न तथा व्यथयति कटुकलितैर्यथापिशुनः ।
रुधिरादानादधिकं दुनोतिकर्णेक्वणन्मशकः ।२५।

अर्थ—दुष्ट जन यदि धन हरले तो इतनी पीड़ा नहीं होती जितने उनकेदुर्वचन कड़ुवे वाक्यों से होती है जैसे मच्छर को शरीर पर काटने से इतना बुरा नहीं माना जाता जितना बुरा कान के समीप बोलने से माना जाता है।

अति मलिने कर्तव्ये भवति खलानां निपुणा धीः ।
तिमिरेहि कौशिकानां रूपं प्रतिपद्यते दृष्टिः ।२६।

अर्थ—अति मलिन कर्मों में दुष्टों की बुद्धि निपुण होती है जैसे उल्लू की दृष्टि अन्धेरे को ही अच्छी प्रकार देखती है।

शिरसिनिहितोपि नित्यं यत्नादपि सेवितो बहुस्नेहैः ।
तरुणीकचइव नीचः कौटिल्यं नैव विजहाति ।२७।

अर्थ—जैसे युवा स्त्रियों के केश सिर पर भी धारण किये हैं तेल फुलेल आदि के शृङ्गार भी हैं तो भी कुटिलता नहीं त्यागते ऐसे ही दुष्टों को अपने सिर पर भी उठालें नित्य बड़े स्नेह से पालन भी करें तो भी दुष्टपन नहीं छोड़ते इनका स्वभाव ही ऐसा है।

अति रमणीयेकाव्ये पिशुननोऽन्वेषयति दूषणान्येव।
अति रमणीये काये व्रणमेव मक्षिका निकरः ।२८।

अर्थ—अति रमणीय सुन्दर कविता में भी दुर्जन दोष ही देखता है जैसे अति सुन्दर शरीर भी हो परन्तु मक्खी व्रण या पकी हुई जगह को ही देखती है।

नलिकागतमपि पुच्छलं नभवतिसरलंशुनः पुच्छम्।
तद्वत् खलजनहृदयं बोधितमपिनैवयातिमाधुर्यम् ।२९।

अर्थ—नलकी में पा रखने से भी कुत्ते की पूंछ सीधी नहीं होती है। ऐसे दुष्टजनों का हृदय सुबोध रसिक नहीं होता चाहे कितना ही बोध क्यों न किया जाय॥

अकरुणत्वमकारण विग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजन बन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदं हि दुरात्मनाम्॥

अर्थ—बिना ही कारण बैर करना न करने योग्य कर्म को करना पराया धन पराई स्त्री में इच्छा रखनी सज्जनों में और बन्धुवर्ग में विरोध करना ये दुष्टों का स्वभाव ऐसे ही होता है।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपिशिक्ष्यमाणः।
असिक्तमूलं पयसा घृतेन न निम्ब वृक्षो मधुरत्वमेति ।३१।

अर्थ—दुष्ट पुरुष साधु कभी नहीं होता चाहे कितनी ही शिक्षा दो जैसे दूध, घी गुड मिलाकर भी सींचो तो भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता ऐसे दुष्ट नहीं सुधर सकता।

फूले फले न वेत यदपि सुधा बरषे जलद् ।
मूरख हृदय न चेत जो गुरु मिले विरंचिसम ॥
न जारजातस्य ललाटशृङ्गम् ।
कुल प्रसूतस्य न पाणि पद्मम् ॥
यदायदामुञ्चति वाक्य बाणम् ।
तदा तदा जातिकुल प्रमाणम् ।३३।

अर्थ—जो पर पुरुष का पुत्र है उसके सिर पर सींग नहीं होते और जो कुल का पुत्र है उसके हाथ में कोई कमल का फूल नहीं होता वह जैसी जैसी वाणी बोलते हैं तैसी ही उनकी वाणी से जाति जानी जाती है।

तथारिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः
हतो दिगन्ते हृदयेन दूयता ।
यथा खलानां कुधिया दुरुक्तिभि
र्दिवानिशंतप्यति मर्म ताडितः ॥३४॥

अर्थ—यदि कोई शत्रु दूर से बाण मारे तो कोई पीड़ा नहीं होती जितना दुष्टों के कुवाक्यों से हृदय तपता है।

प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसम् ।
कर्णे कलं किमपि रौतिशनैर्विचित्रम् ॥
छिद्रं निरुप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः ।
सर्वंखलस्य चरितं मशकः करोति ॥३५॥

अर्थ—पहिले पैरों में गिर जाना फिर पीठ के पीछे

काटना फिर कान समीप बुरा अप्रिय शब्द कहना फिर नाक कान आदि छिद्र को देख झट उसमें प्रवेश करना यह सब चिन्ह दुष्ट पुरुषों के मच्छर के से हैं अर्थात् दुष्ट पुरुष भी ऐसा ही चरित्र करते हैं।

दुर्जन वदन विनिर्गत वचन भुजङ्गेन सज्जनो दष्टः।
तद्विष नाश निमित्तं साधु संतोषमौषधं पिबति ।३६।

अर्थ दुष्टों के मुख से निकाला जो वचन सो सर्प की समान सज्जनों को डसता है साधुजन उसकी शान्ति के लिए सन्तोष रूप औषधि पान करते हैं अर्थात् चुप हो रहते हैं ।३६।

५३— ❀ मित्र प्रशंसा ❀

मित्रवान्साधयत्यर्थान् दुस्साध्यानपि वैयतः।
तस्मान्मित्राणि कुर्वीत समानान्येवचात्मनः ।१।

अर्थ—अब मित्र लक्षण कहते हैं जिसके मित्र होंवे सो पुरुष कठिनता से होने वाले कार्यों को भी कर लेता है इसीलिए दो चार मित्र बना लेना, परन्तु मित्र जाति, धन उमर गुणों में अपने समान हो।

आपन्नाशाय विबुधैः कर्त्तव्या सुहृदोऽमलाः।
नतरत्यापदंकश्चियोऽत्र मित्रविवर्जितः ॥२॥

अर्थ—विपत्ति में सहायता के लिए सुमित्र को बनावे बिना मित्र के कोई भी विपत्ति नहीं टर सकती चाहे

बुद्धिमान भी हो।

कराविव शरीरस्य नेत्रयोरिव पक्ष्मणि।
अविचार्य प्रियं कुर्यात्तन्मित्रं मित्र मुच्यते ।३।

अर्थ—जैसे हाथ शरीर की, पलकें नेत्रों की रक्षा करते हैं इस प्रकार बिना विचारे, बिना प्रयोजन के जो रक्षा करे उस मित्र को ही मित्र कहा जाता है।

शुचित्वंत्यागता शौर्यं सामान्यं सुख दुःखयोः।
दाक्षिण्यश्चानुरक्तिश्च सत्यता च-सुहृद्गुणाः ।४।

अर्थ—पवित्रता शुद्धि त्याग शूरवीर होना मित्र की तरफ से सुख हो चाहे दुःख हो एक जैसा समजना, चतुरता अनुराग सत्य यह मित्रता की वृद्धि करने वाले हैं।

न मातरि न दारेषु नसोदर्येन चात्मनि।
विश्वासस्तादृशः पुँसा यादृङ्ग मित्रेस्वभावजे ।५।

अर्थ—माता, स्त्री, भाई और अपने पर भी इतना विश्वास नहीं होता जितना विश्वास शुद्ध मित्र पर होता है।

व्याधितस्यार्थहीनस्य देशान्तरगतस्य च।
नरस्य शोकदग्धस्य सुहृद्दर्शनमौषधम् ॥६॥

अर्थ–रोगग्रस्त को धन के नाश होने के समय विदेश जाने पर और विपत्ति तथा शोक के समय पर मित्र का मिलाप होना दवाई के समान है।

किं चन्दनैः सकर्पूरैस्तुहिनैः किञ्च. शीतलैः ।
सर्वे ते मित्रगात्रस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥७॥

अर्थ—जैसे मित्र को देखकर चित्त शान्त होता है उसके आगे चन्दन,कपूर,हिम (बरफ) की शीतल पोडशाँशभी न ।

शोकारातिं भयत्राणंप्रीति विश्रम्भभाजनम् ।
केनरत्न मिदंसृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।८।

अर्थ—शोक से रक्षा करने वाले प्रीति विश्वास के पात्र मित्र ये दो रत्न रूपी अक्षर किसने रचे हैं ।८।

धृतिः शमोदमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणाश्चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधःश्रियः ॥६॥

अर्थ—धैर्य, सम, दम, शुद्धि, दया, मीठी वाणी, अद्रोह, मित्र से धोखा छल न करना ये कल्याण व प्रीति के बढ़ाने को सातों समिधे हैं ।

ददाति प्रति गृह्णाति गुह्य माख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीति लक्षणम् ।१०।

अर्थ—अपनी कोई वस्तु देना, मित्र से ले लेना गुप्त बात करना पूछ लेनी, खालेना खिलाना ये छः लक्षण प्रीति के हैं ।१०।

मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ।
तत्रापि सम्भवन्त्येते मित्रोदासीनशत्रवः ।११।

अर्थ—मुनि लोग वन में रहकर अपना धर्म जप-तप

करते हैं किसी से कुछ प्रयोजन राग-द्वेप नहीं करते परन्तु वे भी बहुत शत्रु-मित्र उदासीनता की कल्पना कर लेते हैं।

माता मित्रं पिता चेतिस्वभावात्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।१२।

अर्थ—माता- पिता मित्र ये तीन तो स्वभाव से ही बिना प्रयोजन हित करते हैं दूसरे सब जगह अपने प्रयोजन के लिए हित करते हैं।१२।

दीपनिर्वाण गन्धश्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।
न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।१३।

अर्थ—दीपक बुझने के पीछे जिसको गन्ध न आवे मित्र का कहा जिसको न रुचै अरुन्धति तारा जिसको न दीखे उसकी मृत्यु समीप होती है।

यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं त्रीणि तत्र न कारयेत्।
वाग्वादमर्थ सम्बन्धं- परोक्षे स्त्रीषु भाषणम्।१४।

अर्थ—बहुत प्रीति बढ़ाना तथा सर्व काल रखना चाहते हो, तो तीन बातें वहाँ न करो वाणी वादविवाद झगड़ा रुपये पैसे लेने देने का व्यापार, छिप के स्त्री से बात करना ये तीनों न करें।१४।

परोक्षे कार्य हन्तारं प्रत्यक्षेप्रिय वादिनम्।
वर्ज्जयेत् तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।१५।

अर्थ—जो पीछे से तो हानि करे सामने मीठा बोले

व हित करे ऐसे कुमित्र को त्याग देना जैसे विष के भरे घड़े के मुख ऊपर थोड़ा दूध हो।

रहस्यभेदोयाच्ञाच नैष्ठुर्यं चलचित्तता ।
क्रोधोनि सत्यता द्यूतमेतन्मैत्रीषु दूषणम्॥१६॥

अर्थ—गुप्त रखने वाली बात को प्रकट कर देना, कुछ मांगना, कठोर बोलना, चञ्चल चित्त होना, क्रोध करना झूठ बोलना, जुवा खेलना ये सब मित्रता के दूर करने वाले दूषण हैं।

मित्र द्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वास घातकः ।
तेनराः नरकं यान्ति यावचन्द्र दिवा करौ ॥१७॥

अर्थ—मित्र के साथ द्रोह करने वाला, किये उपकार को भुला देने वाला, विश्वासघाति ये तीनों तब तक नरक में रहते हैं जब तक सूर्य चन्द्र हैं।

मृगाः मृगैस्सङ्गमनुव्रजन्ति गावश्चगोभिस्तुरगास्तु रङ्गैः।
मूर्खाश्च मूर्खैस्सुधियस्सुधीभिस्समान शीलव्य सनेषु सख्यम्।

अर्थ—समान शील वालों की मित्रता होती है जैसे मृग से मृग गाय से गाय, घोड़े से घोड़ा, मूर्ख से मूर्ख, पण्डित से पण्डित इससे जिसकी जाति, आयु, धन, गुण, विद्या समान होवे, स्वभाव सम होवे उनकी ही मित्रता होती है।

आरम्भगुर्वी क्षयणी क्रमेणलघ्वी पुरा वृद्धि मतीचपश्चात्।
दिनस्य पूर्वार्द्ध परार्द्ध भिन्नाच्छायेवमैत्री खलसज्जनानाम्॥

अर्थ–दुष्टों की मैत्री तो सवेरे की छाया के तुल्य होती है पहिले तो लम्बी चौड़ी बहुत सी होती है फिर घटती २ कुछ भी नहीं रहती और सज्जनों की प्रीति दोपहर पीछे की छायावत होती है पहिले तो थोड़ी होती है फिर बढ़ती ही चली जाती है।

इस पर ही एक दोहा है—

सन्त प्रीति द्वितीय शशी बढ़त २ बढ़ जाय।
दुष्ट प्रीति पूरण शशी घटत घटत घट जाय ॥१६॥

मुखं प्रसन्नं विमला च दृष्टिः कथानुरागोविमला च वाणी।
स्नेहोधिकं सम्भ्रमदर्शनञ्च सदानुरक्तस्य जनस्य लक्ष्म ॥

अर्थ–मुख प्रसन्न होना, निर्मल दृष्टि, बात कहने सुनने में प्रेम कोमल वाणी, प्रेम ज्यादा होना, प्रेम से देखना, बुलाना।

उत्कृष्ट मध्यम निकृष्ट जनेषु मैत्री।
यादृक् शिलासु सिकतासु जलेपुरेखा।
वैरं पुनस्त्वधम मध्यम सज्जनानाम्।
यादृक् शिलासु सिकितासु जलेषु रेखा।२१।

अर्थ—उत्तम पुरुषों की मित्रता शिला की रेखा के समान मध्यम् पुरुषों की रेता की रेखा नीचों की जल में रेखा के समान होती है और वैर उल्टी रीति से होता है दुष्टों का पत्थर की रेखा मध्यम का रेता की रेखा उत्तमों

का जल रेखा की समान होती है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय।
गुह्यान्निगुह्य सुगुणान्प्रकटी करोति ॥
आपद् गतश्च न जहाति ददाति काले।
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।२२।

अर्थ—पापों से हटाना, हित धर्म के रास्ते में लगाना, दोषों को छिपाना गुणों को प्रकट करना विपत्ति में छोड़ना नहीं कुछ सहायता करनी समयानुसार कुछ देना ये श्रेष्ठ मित्रों के लक्षण हैं ऐसे सन्तजन कहते हैं।

यः प्रीणयेत्सु चरितैः पितरं स पुत्रो।
यद् भर्तु रेव हित मिच्छतितत्कलत्रम्॥
तन्मित्रमापदि सुखेच समक्रियं यत्।
एतत्त्रितयगतिं पुण्यकृतो लभंते ॥२३॥

अर्थ—जो पिता को अपने पवित्र आचरणों से प्रसन्न कर देता है सो ही सुपुत्र कहा जाता है, जो पति की सेवा करे सदाहित चाहे सो ही स्त्री कही जाती है। मित्र वह है जो सुख में था वैसे दुःख में भी साथ रहे छोड़े नहीं सुपुत्र सुमित्र, शुशीला स्त्री तीनों पुण्यात्मा को प्राप्त होते हैं दूसरों को नहीं।

क्षीरेयात्मगतोदकाय हि गुणाः दत्ताः पुरातेऽखिलाः।
क्षीरोतापमवेचतेन पयसाह्यात्मा कृशानौहुतः॥

गन्तुं पावकमुन्मुरस्तदभवद्दृष्ट्वा तु मित्रा पदम् ।
युक्तं तेन जलेन शाम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ॥

अर्थ—मित्रता के विशेष गुण ये हैं जब पानी दूध के साथ मिला तो दूध ने अपने जैसा बना लिया मीठा और श्वेत होगया जब मित्र दूध आग पर जलने लगा तब दूध की जगह पहले पानी स्वयम् जला जब दूध ने देखा कि मेरी जगह पानी जल रहा है तो दुश्मन को मारने के लिए दूध दौड़ा अर्थात् आग बुझाने को उबला आग में गिरा जब किसी ने दूध को उबला हुआ देखा, जल के छींटे दिये तो दूध ने मान लिया कि मैं अपने मित्र को छुड़ा लाया हूँ । दोनों मिलकर शान्त होगये इसी तरह सत्पुरुषों की ऐसी मित्रता होती है । आपस में उपकार करके जीते हैं।

अवलिप्तेषु मूर्खेषुरौद्रसाहसिकेषु च ।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ।२५।

अर्थ–अति लोभी, क्रोधी, मूर्ख क्रूर खोटे स्वभाव वाले बलात्कारी अधर्मी से बुद्धिमान इनसे मैत्री न करे ।

५४— ❀ अथ विद्या महिमा ❀

विद्या धनं श्रेष्ठधनं तन्मूलमितरद्धनम् ।
दानेन वर्द्धते नित्यं न भाराय न नीयते ।१।

अर्थ–विद्या सब धनों में श्रेष्ठ धन है और सब धनों का मूल विद्या ही है दान करने से बढ़ती है कोई बोझ नहीं

है न कोई छीन ले जा सकता है।

विद्यारूपं कुरुपाणाँ क्षमारूपं तपस्विनाम् ।
कोकिलानां स्वररूपंनारीरूपंपतिव्रतम् ।२।

अर्थ—कुरूप पुरुषों का विद्या ही रूप है तपस्वी का क्षमा रूप है, कोयल का स्वर रूप है स्त्रियों का पतिव्रत रूप है। ॥२॥

सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच सर्वदा ।३।

अर्थ—विद्या सब पदार्थों में अत्युत्तम पदार्थ है कोई हर नहीं सकता ले जा नहीं सकता अक्षय या कम नहीं होती वरतने पर सदा बढ़ती है।

हर्तुर्न गोचरं याति दत्ताभवति विस्तृता ।
कल्पांतेऽपिनया नश्येत् किमन्यद्विधयासमम् ।४।

अर्थ—चोरों से चुराई नहीं जाती देने से घटती नहीं जन्मान्तरों तक भी नाश नहीं होती विद्या समान क्या और कोई वस्तु है ? कोई भी नहीं।

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति ।
व्ययतो वृद्धि मायाति क्षयमायाति संचयात् ।५।

अर्थ—हे सरस्वति ! यह विद्या रूपी तेरा भण्डार (खजाना) ये अपूर्व रूप ही है खर्च करने से तो बढ़ता है संचय करने से घटता है अर्थात् पढ़ाने सुनाने से तो बढ़ती

है ना बरतो चुपचाप रहो तो घट जाती है ॥५॥

सद्विद्या यदि काचिन्ता वराकोदरपूरणे ।
शुकोप्यशनमाप्नोति हरेराम इतिस्मरन् ॥३॥

अर्थ–जिसके पास श्रेष्ठ विद्या है तो फिर जीवन बीताने की क्या चिन्ता है ? तोता भी हरे राम २ जब कहने लग जाता है तो उसको भी माखन मिश्री खाने को मिलती है ।६।

विद्याददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धना धर्म ततः सुखम् ।७।

अर्थ–विद्या से पुरुषों को विनय (नम्रता) होती है । नम्रता से पात्रता या (योग्याधिकारी) न्यायादिक मिलता है, पात्रता से धन, धन से धर्म, धर्म से सब सुख मिलता है ।

गतेऽपि वयसिग्राह्या, विद्या सर्वात्मना बुधैः ।
यदि नस्यादत्रफलदा सुलभा सान्यजन्मनि ।८।

अर्थ–वृद्ध उमर भी हो तो भी विद्या को सब तरह से पढ़े यदि इस जगह कुछ फल नहीं देगी तो फिर दूसरे जन्म में पढ़नी सुखाली हो जायगी ।

नक्षत्रभूषणं चन्द्रो नारीणां भूषणं पतिः ।
पृथिवीभूषणं राजा विद्या सर्वस्य भूषणम् ।९।

अर्थ–तारों का भूषण चन्द्रमा है, स्त्री का भूषण पति है, पृथ्वी का भूषण श्रेष्ठ राजा है, विद्या सबका ही भूषण है।

यथा खनन् खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति ।१०।

अर्थ—जैसे जमीन को नीचे तक खोदने से जल प्राप्त हो जाता है ऐसे ही सेवा करने वाला सेवक गुरु की सब विद्या को प्राप्त हो जाता है ।

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वात्यजति दुर्मतिम् ।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वामोक्षं च विंदति ॥११॥

अर्थ—शास्त्र वेद को सुनकर ही धर्म को जानता है वेद सुन कर ही कुमति को छोड़ता है, वेद सुन कर ही ज्ञान से मोक्ष पाता है ।

वित्तंबन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पञ्चमी ।
एतानि मान्यस्थानानि, गरीय उत्तरोत्तरम् ।१२।
धर्माऽधर्मं न जानाति लोकोऽयं विद्ययाविना ।
तस्मात्सदैव धर्मात्मा विद्यादान परोभवेत् ।१३।
कामधेनुगुणाविद्या ह्यकाले फलदायिनी ।
प्रवासे मातृ सदृशी विद्यागुप्त धनंस्मृतम् ।१४।
अनेकसंशयोच्छेदि, परोक्षार्थस्यदर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्यनास्त्यन्धएवसः ।१५।

अर्थ—धन से भाईयों वाला,भाईयों वाले से भी बड़ी उमर से शुभ कर्म करने वाला, कर्म से भी विद्या वाला

सबसे-बड़ा है ।।१२।।

अर्थ—धर्म अधर्म शुभ अशुभ को भी पुरुष विद्या बिना नहीं जानता इससे धर्मात्मा पुरुष विद्या को सदा पढ़ता ही रहे ।।१३।।

अर्थ—कामधेनु गौ ही विद्या है कुसमय में या वृद्धा रोगादि अवस्था में भी परम सुख रूप फल देती है और विदेश में माता के समान पालन करती है विद्या एक प्रकार का गुप्त धन है ।१४।

अर्थ—अनेक संशयों को दूर करने वाला और परोक्षार्थ अर्थात् जिन पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं हो सकता या भूगोल खगोल जिमी आकाश का हवाल, अन्दर के जो आत्मा मन बुद्धि, कला, आकाश आदि पदार्थ हैं शास्त्र-वेद इन गुप्त पदार्थों को भी प्रकट दिखा देता है और शास्त्र ही सबका नेत्र है जिसको शास्त्र ज्ञान नहीं उसे अंधा समझें।

शुनः पुच्छमिवव्यर्थं जीवितं विद्ययाविना ।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे ।१६।

अर्थ—विद्या बिना पुरुष का जीवन व्यर्थ ही है जैसे कुत्ते की पूंछ न तो उसका कुछ परदा करती न मक्खी मच्छर उड़ाती है व्यर्थ ही अकड़ी हुई खड़ी रहती है वैसे ही विद्याहीन पुरुष हैं।

विद्यामित्रं प्रवासेषु भार्यामित्रं गृहेषु च ।

व्याधितस्यौषधं मित्रंधर्मोमित्रमृतस्य च ॥१७॥

भा०—विदेश में मित्र विद्याहै, घर में स्त्री मित्र है सुख देती है रोगी का मित्र औषधि व वैद्य है, परलोक में धर्म मित्र है ॥१७॥

सुखार्थीयस्त्यजेद्विद्याविद्यार्थीयस्त्यजेत् सुखम् ।
सुखार्थिनः कुतोविद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम् ॥१८॥

अर्थ—विषय सुख में फँसा हुआ पुरुष विद्या नहीं पढ़ सक्ता यदि विद्या पढनी हो तो लौकिक सुख को छोड दे सुख की इच्छा वाले को विद्या कहाँ ? विद्यार्थी को सुख कहाँ ? ॥१८॥

गुरुशुश्रूषया विद्यापुस्कलेन धनेनवा ।
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थोनैव साधनम् ॥१९॥

अर्थ—उत्तम विद्या तो गुरुओं की सेवा से मिलती है अथवा कुछ धन खर्चने से भी मिलती है या विद्या से भी विद्या मिल सक्ती है जैसे एक को कोई विद्या आती है दूसरे को कोई आती है तो दोनों आपस में उसको पढा देवें, यही तीन साधन है चौथा नहीं ।

अपिपलितकायेन कर्तव्यः श्रुति संग्रह ।
न तत्र धनिनो यान्ति यत्र याति बहुश्रुताः ॥२०॥

अर्थ—जहाँ विद्या वाला जा सक्ता है वहाँ धन वाला नहीं जा सकता इसलिए पुरुष को वृद्ध होता हुआ

भी विद्या संग्रह करे ।२०।

किंकुलेन विशालेन विद्याहीनस्य देहिनः ।
विद्यावान् पूज्यते लोके विद्याविहीनः पशुः ।२१।

अर्थ—उत्तम कुल से क्या जो पुरुष में विद्या नहीं है जगत में विद्वान की ही पूजा होती है विद्या विना तो पशु है पूजा क्या ही होनी है ?

पुस्तकस्था च याविद्या परहस्त गतंधनम् ।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम् ।२२।

अर्थ—पुस्तक में पढ़ी हुई विद्या पराये हाथ में गया हुआ धन ये दोनों समय पड़ने पर काम नहीं आते ।

प्रथमे नार्जिता विद्याद्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये नार्जितोधर्मः चतुर्थे किं करिष्यति ।२३।

अर्थ—पहली अवस्था में जिसने ब्रह्मचर्य कर विद्या नहीं पढ़ी, दूसरी उमर या २५ से ५० तक जिसने गृहस्थ और धनादि का सुख नहीं भोगा, तीसरी उमर पच्चास से पचहत्तर तक जिसने अपने वानप्रस्थ में धर्म संचय नहीं किया वह फिर चौथी अवस्था में क्या कर सकता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं ।

यः पठति लिखति परयति परिपृच्छति पंडितानुपाश्रयति ।
तस्य दिवाकर किरणैर्नलिनिदलमिविकारयते बुद्धिः ।।२४।।

अर्थ—जो पुरुष पढ़ता है लिखता है विचारता है पूछता

है विद्वानों के आश्रय रहता उसकी बुद्धि इस प्रकार खिल जाती है जैसे सूर्य की किरणों से कमल खिल जाते हैं।

न चोरहार्यं न च राज्यहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि।
व्ययेकृते वर्धतएव नित्यम् विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ।२५।

अर्थ—न चोर चुरा सकता है न राजा छीन सकता है न भाई बन्धु हिस्सा ले सकते हैं न कुछ उठाने में बोझ होता है जैसे खर्च करो तो नित्य ही बढ़ती है विद्यारूप धन सब धनों में मुख्य है।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुक्ते।
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीयखेदम् ॥
लक्ष्मींतनोति वितनोति चदिक्षुकीर्तिम्।
किं किन्न साधयति कल्पलतेव विद्या ।२६।

अर्थ—विद्या माता के समान रक्षा करती है पिता के समान पालन करती है स्त्री के समान रमण कराती है खेद को दूर कराती है धन का बहुत विस्तार करती है चारों दिशा में यश को फैला देती है। कल्पवृक्ष के समान विद्या क्या क्या नहीं कर सकती ? सभी कुछ कर सकती है।

केयूराः न विभूषयन्ति पुरुषं हाराः न चन्द्रोज्वलाः।
नस्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृताः मूर्धजाः ॥
वाण्येका समलं करोति पुरुषं या संस्कृताधार्यते।
क्षीयन्ते खलुभूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ॥२७॥

अर्थ—बाजू का भूषण चन्द्रमा की किरणों जैसा गले का हार, स्नान चन्दन का लेप फूल की माला की सुगन्धी सब शृंगार पुरुष को इतना नहीं सजाते जैसे संस्कृत विद्या पुरुष को सजाती है क्योंकि भूषण सब नाश हो जाते हैं, विद्या का नाश नहीं होता ॥२७॥

.००:

५५— ❀ अथ स्त्री धर्मः ❀

सा भार्या या गृहेदक्षा सा भार्या या प्रजावती ।
सा भार्या या पतिप्राणा सा भार्या या पतिव्रता ।१।

अर्थ—अब स्त्री धर्म कहते हैं ।

जो घर के काम में चतुर हो, पुत्रवती पति की प्रिय हो पतिव्रता हो सो भार्या कही जाती है ।

भर्ताहि परमंनार्या भूषणं भूषणैर्विना ।
एषा विरहिता तेन शोभमाना न शोभते ।२।

अर्थ—स्त्रियों का पति ही भूषण है और भूषण हो व न हो पति से बिना स्त्री सुन्दर भी हो तो भी शोभा नहीं पाती ।२।

न सा स्त्री त्यमिमंतव्या यस्यां भर्ता न तुष्यति ।
तुष्टेर्भर्तरि नारीणां तुष्टः स्यात् परमेश्वरः ।३।

अर्थ—वह स्त्री मान के योग्य नहीं होती जिस पर पति प्रसन्न न होवे जिस पर पति प्रसन्न हो उस पर परमे-

स्वर भी प्रसन्न जानो ।३।

न कामेषु न भोज्येषु नैश्वर्ये न सुखे तथा ।
स्पृहा यस्या यथा पत्यौ सानारीधर्म्मभागिनी ।४।

अर्थ—जिस नारी की काम, भोग, विभूति ऐश्वर्य सुख में इतनी प्रीति नहीं है जितनी पति में प्रीति है सो नारी धर्मात्मा जानो ।४।

पतिर्हि देवो नारीणाँ पतिर्बन्धुः पतिर्गतिः ।
पत्या समा गतिर्नास्ति दैवतं वा यथा पतिः ।५।

अर्थ—पति ही स्त्रीयों का देवता है, पति परम बन्धु है क्योंकि पति गति निर्वाह करता है । पति समान और कोई भी नहीं है ।

श्वश्रू श्वशुरयोः पादौजोषन्ति सुगुणान्विताः ।
मातृ-पितृ परानित्यं या नारीसा तपोधना ।६।

अर्थ—जो सास ससुर की सेवा करती है, गुणवान है और माता पिता की नित्य आज्ञानुसार है सो नारी तपोधन तप करने वाली कही जाती है ।

शुश्रूषां परिचर्यां च करोत्य निमना सदा ।
सुप्रीता सुविनीता च सानारी धर्म भागिनी ॥७॥

अर्थ—श्वश्रुषा पति की व वृद्धों की सेवा परिचर्या, घर की सम्भाल रखनी गृह-कार्य में चतुर होना सेवा परिचर्या को जो प्रसन्न मन से करती है प्रीति सहित विनीत

रहती है सो नारी धर्म की भोगी यानि धर्म वाली है।

नेक्षेत् पतिं क्रूर दृष्ट्याश्रावयेन्नैवदुर्वचः ।

नाप्रियं मनसा वापिचरेत्पत्युः पतिव्रता ।८।

अर्थ—पतिव्रता स्त्री पति को दोष दृष्टि से न देखे दुर्वचन न कहे मन से भी पति का अप्रिय करने वाला काम न करे ।

न दानैः शुध्यते नारी नोपवासशतैरपि ॥

न तीर्थसेवया तद्वत् भर्तुः पादोदकैर्यथा ।९।

अर्थ—दान, व्रत, तीर्थ सेवन से भी नारी इतनी शुद्ध नही होती जितना पति के चरणों का जल पीने से, स्नान दर्शन से शुद्ध होती है ।

सुस्वभावा सुवचना सुव्रता सुख दर्शना ।

अनन्य-चित्ता सुमुखी भर्तुः सा धर्मचारिणी ।१०।

अर्थ—जिसका सुन्दर स्वभाव है, शुभ वचन बोलती है, शुभ व्रत है, शुद्ध दृष्टि है, पति से बिना और कही मन नहीं जाता हो, प्रसन्न मुख हो, भर्ता की सेवा में रहती हो सो स्त्री धर्मात्मा है ।

मितंददातिहि पितामितं भ्राता मितं सुतः ।

अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ।११।

अर्थ–पिता, भ्राता, पुत्र, सम्बन्धी ये सब प्रमित सुख को ही देते हैं और पति स्त्री को अमित सुख देता

है फिर उस भर्ता की कौन स्त्री सेवा नहीं करती ।११।

नास्ति भर्तृ समो नाथो नास्तिभर्तृ समं सुखम् ।
विसृज्य धनसर्वस्वं भर्तावैशरणंस्त्रियः ॥१२॥

अर्थ—भर्ता की समान न तो कोई रक्षक है न सुख ही देने वाला है इससे सर्वधन को छोड़ कर स्त्री पति की शरण ही रहे ।

छायेवानुगता स्वच्छा सखीव हितकर्मपु ।
दासी वादिष्टकार्येषु भार्या भर्तुः सदाभवेत् ।१३।

अर्थ—पुरुष शरीर की छाया के समान तो अनुसार वरते दासी की समान सब काम को हित से करे सखी की समान हित करे सदा शुद्ध बुद्ध रहे स्त्री इस रीति से भर्ता से सदा वरते ।१३।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृह कार्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्त हस्तया ।१४।

अर्थ—सदा प्रसन्न मन रहे करने योग्य कार्य को विचार में रखे गृह के कार्यों में चतुर हो घर की सामग्री को शुद्ध व यथार्थ जो वस्तु जैसे रखने वरतने के योग्य हो उसको उसी तरह रखे,वरते,घर से ज्यादा खर्च व्यर्थ न करे।

नातंत्री विद्यते वीणा ना चक्रो विद्यते रथः ।
नापतिः सुखमेधेत यास्यादपि शतात्मजा ।१५।

अर्थ—ऐसे तंत्री तार के बिना वीणा, सितार नहीं

यजती चक्र पहियों के बिना रथ नहीं चलता ऐसे ही पति के बिना स्त्री को भी सुख नहीं होता चाहे सौ पुत्र वाली भी हो

नास्ति यज्ञः स्त्रियः कश्चिन्नव्रतंनोपवासकम् ।
याहि भर्तृश्रुश्रूषा तया स्वर्गं जयत्यसौ ।१६।

अर्थ—न स्त्रियों को यज्ञ, व्रत, न उपवास, तप ऐसा फलदायक कोई नहीं है जैसी पति की सेवा फल देती है । पति सेवा से ही स्त्री स्वर्ग को जाती है ।

कार्येषु मन्त्रीकरणेषुदासी, भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा ।
धर्मानुकूला क्षमयाधरित्री, षड्गुणयमेतद्धिपतिव्रतानाम् १७

अर्थ—सलाह में मन्त्री की समान शुभ सलाह दे, सेवा दासी की तरह करे भोजन माता के समान प्रेम से खिलावे शय्याशयन समय रंभा अप्सरा की समान काम क्रीड़ा में चतुर हो धर्म के अनुसार चले क्षमा को धारण करे यह छः गुण पतिव्रता स्त्रियों के हैं ।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम् ।
स्वपनं चान्यगृहे वासो नारीणांदूषणानि षट् ॥१८॥

अर्थ—मदिरा से लेकर नशे का सेवन दुष्ट पुरुष स्त्री का संग पति का वियोग, अपनी इच्छा से जहाँ तहाँ फिरना दूसरों के घर रात को सोना या बसना यह छः दोष स्त्रियों के धर्म में हानिकारक हैं ये नहीं होने चाहिये ।

नित्यं स्नाता सुगन्धा च नित्यं च प्रियवादिनी।

अन्यशुक्मितवक्री च देवलासा न मानुषी ॥१९॥

अर्थ—जो देवी नित्य स्नान करती है चन्दन कस्तूरी केशरादि सुगंधी लगाती है प्यारा मीठा सत्य वचन बोलती है वे मानुषी नहीं है सो स्त्री तो देवता ही है।

यातुभार्या शुचिर्दक्षामर्तारमनुगामिनी ।
नित्यं मधुरवक्री च सारमा न रमा रमा ।२०।

अर्थ—जिसकी स्त्री पवित्र चित्त वाली चतुर है भर्ता· की आज्ञानुसार है, नित्य मीठा बोलती है सोई रमालक्ष्मी है, लक्ष्मी को लक्ष्मी मत कहो ॥२०॥

उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् ।
प्रत्यहंलोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्री निबन्धनम् ।२१।

अर्थ—सन्तानों की उत्पत्ति करना उनका पालन करना मानव शरीर के निर्वाह के लिये स्त्री प्रत्यक्ष हेतु है ये प्रत्यक्ष ही स्त्रीयों को बन्धन है ।२१।

पतिशुश्रूषणाद्भार्यास्तपोनान्यत्रविधीयते ।
सावित्रीपति शुश्रूषां कृत्वा स्वर्गे महीयते ।२२।

अर्थ—पति की सेवा से अन्य तप स्त्रीयों का नहीं कहा पति सेवा ही परम तप है पति सेवा से ही सावित्री स्वर्ग में पूजी गई है ।२२।

एतद्धि परमंनार्याः कार्यंलोके सनातनम् ।
प्राणानपि परित्यज्य यद् भर्तुर्हितमाचरेत् ।२३।

अर्थ—बस यही स्त्रीयों का परम कार्य इस लोक में सनातन है भर्ता के हित के लिए अपने प्राण भी त्यागदे।

एवं धर्मपथंनार्यः पालयन्ति समाहिताः।
अरुन्धतीवसानारी स्वर्गे लोके महीयते ।२४।

अर्थ—इस प्रकार जो नारी अपने धर्म को पालती है सो स्त्री अरुन्धती वशिष्ठ मुनि की स्त्री की समान स्वर्ग में पूजी जाती है ।

कार्यार्थेनिर्गतं चापिभर्तारं गृहमागतम् ।
आसनेनोपसंयोज्य पूजयेत्सु समाहिता ।२५।

अर्थ—जब पति बाहिर से अपने घर आवे, स्त्री, उसी समय उठ कर आसन दे और समय अनुसार अन्न जल पंखादि से उसकी पूजा सेवा आदि यथा योग्य किया करे।

५६— ❀ अथ धन दोष ❀

वित्तवान्स्वजनाद्भय‌त् चोरेभ्योपिच दुर्जनात् ।
राजादिभ्योऽपि सततं मृत्युमाप्नोति दुःखतः ।१।

अर्थ—अब धन के दोष कहते हैं धनवान् पुरुष स्वजनों से चोरों से राजादि के भय से दुःखी मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता है।

वित्तवान्कोहिलोकेस्मिन्निर्श्चितः कुत्रचिद्वसेत् ।
अपि स्वपनेऽपितस्यास्तिभयं चौरादिजंमहत् ।२।

अर्थ—धनवान् पुरुष जागता हुआ या स्वप्न में भी चोरादिकों से निर्भय होकर निश्चिंत कभी भी नहीं होता।

निर्धनानां सदादैवमनुकूलं हि जायते।
धनिनां प्रतिकूलं तद् प्रायशोदृश्यतेभुवि।३।

अर्थ—तो इस दुःख से तो परमेश्वर निर्धनों पर ही अनुकूल और धनियों पर प्रतिकूल समझा जाता है।

यतोऽत्र धनिनोलोके रोगिणः क्षुद्विवर्जिताः।
अल्पायुषोह्यतृप्ताश्च धनराशौमहत्यपि ॥४॥

अर्थ—इस लोक में धन के होते हुए भी महाधनी रोगी होते हैं भूख कम लगती है थोड़ी आयु होती है महान् धन होने पर भी जिन को तृप्ति या शान्ती नहीं होती है।

निरोधिनश्च सततं मंत्रपुत्रादिभिर्जनैः।
केचिद्बहिश्च दृश्यन्तेश्वभिः श्वानो यथाभुवि।५।

अर्थ—अन्तर भीतर खाने में तो पुत्र बन्धु भाईयों में विरोध रहता है यह तो बुद्धिमानों की गति है और मूर्ख तो परस्पर कूकरों की समान लड़ते देखे जाते हैं।

धनमत्ताः प्रकुर्वन्ति पापानि विविधानिहि।
दरिद्राः सर्वतो भीताः नैवकुर्वन्ति किञ्चन।६।

अर्थ—और धन के मद से पुरुष महापापों को कर देते हैं और निर्धन तो डरता हुआ कुछ पाप उपद्रव नहीं करता है।६।

अवि जानन्ति धनिनोदेवान् राज्ञो गुरूनपि ।
अर्थीनं ब्राह्मणं तद्वद् वेदवेदाँगपारगान् ॥७॥

अर्थ—धन के गर्व से पुरुष छोटे धनी का देवता का राजा का गुरु का गर्ज वाले अर्थी का ब्राह्मण; साधु पंडितों का सबका निरादर कर देता है ।

इत्यादिकं धनी दुःखं प्राप्नुया न्निर्धनोनतत् ।
शक्त्यभावेन मैत्रेपि! धनिभ्यो निर्धनोवरः ।८।

अर्थ—इत्यादि दुःखधनी पुरुषों को होते हैं निर्धन को नहीं होते यह अथर्ववेद की बृहदारण्यक शाखा के मैत्रेयी ब्राह्मण में याज्ञवल्क्य ऋषि अपनी मैत्रेयी नाम भार्या को कहते कि हे मैत्रेयी । शक्ति के न होने से धनी से निर्धन श्रेष्ठ है

द्रव्येण जायते कामः क्रोधो द्रव्येण जायते ।
द्रव्येण जायते लोभो मोहो द्रव्येण जायते ।६।

अर्थ—धनके मद से काम, क्रोध लोभ, मोह अहंकार मान मदादि सभी अधिक हो जाते हैं ।

दरिद्रं पुरुषं दृष्वा नार्यः कामातुराअपि ।
स्प्रष्टुं नेच्छन्ति कुणपंयद्वत् कृमिविदूपितम् ।१०।

अर्थ—दरिद्री पुरुष को देखकर तो कामातुर स्त्री भी इस प्रकार नहीं छुहती जैसे कृमि करके दूपित दुर्गन्धि से युक्त जो मुर्दा है जैसे उसको कोई नहीं छुहता ।

दरिद्रः कासुचित्कामं न कुर्याज्जननीष्विव ।

अन्नमेकं विहायायं किञ्चिन्नेच्छति कर्हिचित् ।११।

अर्थ—दरिद्री पुरुष माता के समान पर स्त्री की कामना नहीं करता अन्न के फिकर में उसको और कोई इच्छा कम फुरती है ।

विवेकीव दरिद्रोयं कोपं न कुरुते क्वचित् ।

राजादिभयतोनित्यं यमराज भयं तथा ।१२।

अर्थ—राजा के लोकों के यम के भय से दरिद्री को किसी पर कोप भी नहीं आता विवेकी पुरुष के समान शान्त रहता है ।

परदारं परद्रव्यं भीतस्तस्मान्नचेच्छति ।

क्षुधया पीडतश्चायं तुन्यत्यल्पेन सर्वदा ।१३।

अर्थ—भयभीत होने से पर स्त्री, परधनादि की इच्छा नहीं करता क्षुधा पीड़ित होने से थोड़े पदार्थ मिलने पर भी तृप्त आनन्द हो जाता है ।

दरिद्रस्य न लोभोऽस्ति न मोहोऽस्ति महात्मनः ।

इत्यमेवं सुविचार्यसुखं तिष्ठति निश्चलः ॥१४॥

अर्थ—धनहीन को न ज्यादा लोभ न मोह होता है ऐसे विचार कर सुख से ही टिकता है ।१४।

पृथिवीचन पूर्णचेत्हमांसागर मेखलाम् ।

प्राप्नोति पुनरप्येष स्वर्गमिच्छति नित्यशः ॥१५॥

अर्थ—सम्पूर्ण भूमि समुद्र तक स्वर्ण से पूर्ण हुई भी

किसी एक पुरुष को मिल जाय तो फिर स्वर्ग की इच्छा करता है इससे इसकी इच्छा कभी भी पूर्ण नहीं होती।

वरंहलाहलं पीतं सद्यः प्राण- हरं नृप।
न द्रष्टव्यं धनाढ्यस्य भ्रूभंग कुटिलंमुखम् ॥१६॥

अर्थ—हे राजन् प्राणों के नाश करने वाले विष को पीलेना श्रेष्ठ है परन्तु धन के मद से कुटिल चित्त और विकृत टेढ़े हैं मुख जिनके ऐसे दुष्ट धनवालों का मुख देखना बुद्धिमान पुरुषों को श्रेष्ठ नहीं है।

अर्थस्योपार्जने दुःखमर्जितस्यापिरक्षणे।
नाशे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थं दुःखभाजनम् ।१७।

अर्थ—धन के जोड़ने में, रक्षा में खर्च होनेमें सभी दुःख ही है दुःखदाई होने से धन को धिक्कार है।

अविश्वास निधानाय महा पातक हेतवे।
पिता पुत्र विरोधाय हिरण्याय नमोस्तुते ।१८।

अर्थ—अविश्वास कारक पापों का हेतु पुत्रादि में विरोध का कारण है ऐसे धन को नमस्कार है।

वधिरयति कर्णविवरं वाचंमूकं नयनन्धयति।
विकृतयतिगात्रयष्टिश्वसंपदोऽगदोऽद्भुतो राजन् ।१६।

अर्थ—कानों से बहिरा, जबान से मूक (गूंगा) नेत्रों से अन्धा मुख का टेढ़ा, शरीर का अकड़ा हुआ चित को कठोर कर देता है, सो धनरूपी रोग अद्भुत विलक्षण ही है।

वरमसिधारतरुतल वासो वरमिह भिक्षा वरमुपवासः।
वरमपि घोरे नरके पतनं न च धन गर्वितबान्धवशरणम्।

अर्थ—भूखा रहना, उपवास रहना तलवार से मरना और तरुतले निवास करना नर्क घोर में गिरना ये सब श्रेष्ठ है परन्तु धन गर्वित बन्धुजनों के आधीन रहना श्रेष्ठ नहीं है।२०।

आपद्गतं हससि किंद्रविणान्धमूढलक्ष्मीः।
स्थिरा न भवतीति किमत्र चित्रम्॥
एतान्न पश्यसि घटान् जल यंत्र चक्रे।
रिक्ता भवन्ति भरिताः भारतारचरिक्ताः॥२१॥

अर्थ—दरिद्री को देखकर हे मूर्खधनी! तू धन मद से क्या हंसता है? लक्ष्मी कभी किसी के पास स्थिर रहती है कभी भी नहीं, तू कुंये पर देख भरी हुई घड़ी खाली आती है? खाली भरी हुई आती है।

धन के दोष दर्शाने को एक इतिहास श्रीमद्भागवत के दशवें स्कन्ध में लिखा है। वह यह है कि एक शत्राजीत् नाम का यादव था सो किसी सूर्य नामा राजर्षि का परम मित्र था उसको सूर्य्य ने एक मणि दी। उस मणि में बहुत से गुण थे परन्तु दो गुण उसमें विचित्र थे। एक तो वह गले का भूषण था, दूसरा वह स्वर्ण बनाने की कला थी,

उससे तीन बार स्वर्ण एक दिन में बन सकता था सो कृष्ण देव शत्राजीत यादव से कहते थे कि तुम यह मणि उग्रसैन राजा को देदो। ये रत्न राजा के योग्य ही है शत्राजित ने न माना उलटा श्रीकृष्णदेव से विरोध करने लगा। एक दिन शत्राजित का भार प्रसेन उस मणी को गले में पहन कर शिकार को बन में गया उधर से एक जामवन्त नाम का शूरवीर सत्री जो सुग्रीव का मन्त्री था। रामचन्द्र की सेना का सेनाध्यक्ष था जामवन्त उसी वंश का एक शूरवीर था, जो जामवन्त का और प्रसेन का उस बन में युद्ध हुआ वह प्रसेन को मार कर मणी को लेकर अपनी राजधानी में शत्राजित किले में चला गया। प्रसेन के तीन दिन तक न आने में शत्राजित ने कृष्ण जी को ये दोष लगाया कि श्रीकृष्ण मुझ से मणी लेना चाहते थे सो मेरे भाई प्रसेन को मार मणी स्वयम् ले आये हैं। ये सुनकर श्रीकृष्ण इस दोष को दूर करने के लिए प्रसेन के पीछे अपनी सेना लेकर बन में गए। उस बन में प्रसेन मरा हुआ मिला फिर उसी रास्ते में जामवन्त का कोट जाय रोका परन्तु वह कोट गिर दुर्ग था, उसके भीतर कोई शूरवीर सहज नहीं आ सकता था सो उसके भीतर कृष्णदेव जो घुसे जामवन्त से युद्ध करने लगे निदान जामवन्त ने श्रीकृष्णदेव को अमित प्रभाव अजीत ईश्वरीय चिन्ह

समझ उनसे मिलाप किया और उनसे क्षमा मांगी और अपने राजकाज की सहायता के लिए कृष्णदेव को अपनी पुत्री से विवाह किया मणी देकर विदा किये। इस रीति से मणी लेकर श्रीकृष्ण द्वारिका में आये वधु अपने घर में लाये, मणी सत्राजीत को दी फिर शत्राजीत कृष्ण को वृथा दोष लगाने के भय से श्रीकृष्ण का सत्यभामा पुत्री के साथ विवाह करके मणी भी कृष्ण को देने लगा। श्री कृष्णचन्द्र कहते हैं कि हमारे ससुर हो आपके पुत्र नहीं हैं आपका धन सो हमारा ही है मणी अभी आप ही रखो ऐसा कह कर अपने आप हस्तिनापुर पाण्डवों के पास चले गए पीछे अक्रूर यादव ने कृतवर्मा यादव को कहा कि शत्राजित के मारे जाने से सत्यभामा पति कृष्ण के पास जा रोई कृष्ण झटपट द्वारिका में आये सब पता लिया तब कृतवर्मा कृष्ण के भय से मणी अक्रूर को देकर अपने आप दौड़ गये। उनके पीछे ही पता लेकर कृष्ण बलदेव दोनों भाई दौड़े बलदेव पीछे थे कृष्ण ने आगे जाकर कृतवर्मा को मारकर देखा तो मणी उसके पास नहीं निकली, बलदेव को कहा कि भाई! कृतवर्मा को वृथा ही मारा मणी तो इससे नहीं निकली बलदेव के मन में भेद हुआ कि मेरे से छिपाव करते हैं मणी कृष्ण के पास है इसी रंज से बलदेव जनक राजा के पास चले गये और उधर अक्रूर मणी लेकर काशी

में भाग गया इधर भाई से विरोध होने से कृष्ण को अति चिन्ता हुई निदान सब पता लेकर श्रीकृष्णचन्द्र ने अक्रूर को बुलाकर बड़े यत्न के साथ अक्रूर से मणी लेकर बलदेव के सामने राज्य सभा में आये सो मणी राजा उग्रसेन को दी। फिर से शाँति करवाई और सभा में इस श्लोक को पढ़ते रहे कि भाई धन में सोलह दोष हैं, चोरी, हिंसा, मद, दम्भ, काम, क्रोध, अहंकार, इच्छा, भेद बैर, अविश्वास, ईर्ष्या, मदिरा, मांस, परस्त्री वेश्या।

स्तेयं हिंसा मदोदम्भः कामः क्रोधस्मयः स्पृहा।
भेदोवैरमविश्वासंसस्पर्धा व्यसनानिचेति ॥

अर्थ—पहले कह दिया है अब जो कोई शंका करके प्रथम धन के गुण कहे, फिर दोष कहते हैं पूर्वोत्तर शास्त्र का विरोध होगा। (उत्तर) विरोध नहीं होता। लिखा है कि गुणदोष सब वस्तु में होते हैं यहां गृहस्थाश्रम के लिए तो धन के गुण कहे हैं। संन्यास के वैराग्य दिखाने को शास्त्र ने दोष दिखाये हैं।

५७—❀ जीव की ईश्वर के आगे प्रार्थना ❀

अब सौंप दिया इस जीवनका, सब भार तुम्हारे हाथोंमें।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में॥
मेरा निश्चय बस एक यही, एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।

अर्पण करदूं दुनियाँ भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में ॥अब॥
जो जगमें रहूँ तो ऐसे रहूँ, ज्यों जलमें कमल का फूल रहे।
मेरे अवगुण दोष समर्पित हों, करतार तुम्हारे हाथोंमें ॥अब॥
यदि मानुषका मुझे जन्ममिले, तो तव चरणोंका पुजारी बनूं।
इस पूजक की इक-इक रग का, हो तार तुम्हारे हाथों में ॥अब॥
जब-जब संसार का कैदी बनूँ, निष्काम भाव से कर्म करूँ।
फिर अन्त समयमें प्राण तजूँ, निराकार तुम्हारे हाथोंमें ॥अब॥
मुझमें तुझमें बस भेद यही, मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूं संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में ॥अब॥

५८—— ॥ शान्तिपाठः ॥

सहनाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥ ।१। क.उ.नि.प्र.अ.१व.मं.१
पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।२। बृहदार० उ० अ० ५ ब्रा० १ मं०
ओंद्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्ति रोषधयः शान्तिः । वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्ति र्ब्रह्म शान्तिः सर्व ँ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥३॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥
शु० य० अ० ३६ मं० १७॥

स्वामी ज्ञानी, चन्दा सिंह, निर्मल, षट् शास्त्री के
द्वारा संगृहीतमिदं पुस्तकं समाप्तम् ॥